सूर्य सिद्धान्त

भाग २

विज्ञानभाष्य

भाष्यकार
स्व० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान
विज्ञान परिषद् भवन, इलाहाबाद

सूर्य-सिद्धान्त

द्वितीय खण्ड

सूर्य-सिद्धान्त

का

विज्ञान भाष्य

द्वितीय खण्ड

[चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, परिलेखाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार, उदयास्ताधिकार, शृङ्गोन्नत्यधिकार, पाताधिकार, भूगोलाध्याय, ज्योतिषोपनिषदध्याय, मानाध्याय]

भाष्यकार

स्व० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान

इलाहाबाद

प्रकाशक
डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान
विज्ञान परिषद् भवन
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-२११००२
फोन नं० ५४४१३

प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९४०
[विज्ञान परिषद् प्रयाग से]
द्वितीय संस्करण, मई १९८३
(स्वाध्याय संस्थान से)

मूल्य रु० ४०·००

मुद्रक
सरयू प्रसाद पाण्डेय
नागरी प्रेस, अलोपीबाग, इलाहाबाद

प्रस्तावना

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान की ओर से प्राचीन वाङ्मय के कई ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं—स्वामी सत्यप्रकाश और डॉ० उषा ज्योतिष्मती के ग्रन्थ, जैसे बखशाली-मेनुस्क्रिप्ट, शुल्व-सूत्र (संस्कृत और अंग्रेजी में)। इसी परम्परा में हम स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के सूर्य-सिद्धान्त का विज्ञान भाष्य प्रकाशित कर रहे हैं। यह गौरव हमें विज्ञान-परिषद्, प्रयाग की उदारता से प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम परिषद् के अधिकारियों के उपकृत हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्ययसाध्य कार्य सम्पादित करना हमारे लिए कठिन होता यदि हमें करनाल के आदरणीय रायसाहब चौधरी प्रताप सिंह जी और उनके द्वारा स्थापित न्यास से आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं हुई होती। चौधरी साहब के हम अत्यन्त आभारी हैं। हम प्रथम खण्ड मार्च १९८२ में प्रकाशित कर चुके हैं, जिसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार और त्रिप्रश्नाधिकार हैं। इस दूसरे खण्ड में ११ अध्याय हैं। इस प्रकार कुल १४ अध्यायों में पूरा सूर्य-सिद्धान्त समाप्त हुआ।

एस० रंगनायकी,

१० मई, १९८३.

एम० एस-सी०, डी० फिल, डी० एस-सी०

निदेशिका

भूमिका

स्वामी दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में १८७४ ई० में विद्यालयों के स्नातकों के पठन-पाठन का एक समग्र पाठ्य-क्रम दिया। इस पाठ्यक्रम का एक ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि ऋषि दयानन्द की इस आलोचना से पूर्व इस देश में पाठ्यक्रमों की कोई सर्वाङ्गीण पद्धति न थी। १८५८ ई० में देश में तीन विश्वविद्यालय खुले—कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के। १८८८ ई० में प्रयाग और लाहौर के दो और विश्वविद्यालय (महर्षि दयानन्द की मृत्यु के बाद) स्थापित हुए। संस्कृत की ऐसी परीक्षायें भी, जैसे काशी की, आरम्भ नहीं हुई थीं। अतः हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं, कि ऋषि दयानन्द की समग्र पाठ्यक्रम विधि ही इस दिशा में प्रथम प्रयास है। व्याकरणादि पढ़ने के अनन्तर ऋषि ने मनुस्मृति, वाल्मीक रामायण, महाभारत, षड् दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अथर्ववेद-शिल्पादि) सिखाने की बात कही। फिर लिखा कि दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र, सूर्य-सिद्धान्त, जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल, और भूगर्भ विद्या हैं, इसको यथावत् सीखें।

ज्योतिष् विषयों का आदि स्रोत वेद की ऋचाएँ हैं। ऋग्देद के प्रथम मण्डल के सूक्त १६४ का नाम अस्यवामीय सूक्त है। इस सूक्त के मन्त्रद्रष्टा ऋषि दीर्घतमस् हैं। यह सूक्त ज्योतिष् शास्त्र का प्रेरणादायक स्रोत है—

द्वादशारं न हि तञ्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्युः॥

(ऋ० १/१६४/११)

सूर्य का चक्र जिसमें बारह अरे हैं, जो निरन्तर घूमता रहता है, कभी थकता नहीं, जीर्ण भी नहीं होता, मरता भी नहीं। ७२० इसके पुत्र हैं (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ)। अथर्ववेद में दो सूक्त उन्नीसवें काण्ड में हैं (सूक्त ७ और ८), जिनका ऋषि गार्ग्य है। इस सूक्त में २७ नक्षत्रों की गणना दी गयी है। वेद से प्रेरणा पाकर लगध मुनि ने वेदांग ज्योतिष की रचना की जिसके श्लोक ऋग् ज्योतिष और यजुः-ज्योतिष् नाम से मिलते हैं। लगध का काल ६०० ईसा से पूर्व माना जाता है। ज्योतिष् के लिए एक और शब्द **काल-विधान-शास्त्र** (यजुः-ज्योतिष् ३) है। "गणित" शब्द का भी प्रयोग इसी अर्थ में लगध ने किया है, और वेदांग के इस अंग की महिमा इस प्रकार व्यक्त की है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद् वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।।

(यजुः ज्योतिष्, श्लोक ४)

मयूर के शरीर में जो शिखा की शोभा है, और साँपों के शिर में मणि की वही महिमा वेदांगों में गणित की अर्थात् गणित-ज्योतिष् की है ।

वेदांग ज्योतिष् के बाद ज्योतिष् शास्त्र के क्षेत्र में ज्योतिष् के कई सिद्धान्तों का प्रचलन हुआ । इनमें से पाँच सिद्धान्त विशेष महत्व के हैं । इनका तुलनात्मक विवेचन वराहमिहिर ने अपनी प्रसिद्ध रचना "पंचसिद्धान्तिका" में किया है । पाँच सिद्धान्त निम्न श्लोक में गिनाये हैं—

पौलिश-रोमक-वासिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पंचसिद्धान्तः ।

इन पाँचों में से प्रथम दो का (पौलिश और रोमक का) लाटदेव ने विवेचन किया । वराहमिहिर की दृष्टि से पौलिश सिद्धान्त में गणना यथार्थ है, रोमक-सिद्धान्त भी लगभग ऐसा ही है । इन दोनों से भी अधिक स्पष्ट सावित्र-सिद्धान्त अर्थात् सौर सिद्धान्त या सूर्य-सिद्धान्त है । शेष दो वासिष्ठ और पैतामह झूठे (दुरविभ्रष्ट) हैं । पंचसिद्धान्तिका का एक संस्करण प्रोफेसर थीबोट (G. Thibaut) और महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया । सुधाकर जी के संस्कृत भाष्य का नाम "पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिका" है (प्रयाग, १५ दिसम्बर, १८८८) ।

इसकी परम्परा में ही विज्ञान परिषद्, प्रयाग, के पुराने पार्षद श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने **सूर्यसिद्धान्त** के विज्ञान-भाष्य का दुस्तर कार्य हाथ में लिया । उनके जीवन भर का यह गुरुतर कार्य १९४० ई० में समाप्त हुआ । १९२२ में ग्रन्थ आरम्भ हुआ, इसका प्रथम अध्याय (मध्यमाधिकार) १९२४ में प्रकाशित हुआ । बारहवाँ अध्याय १९३१ में छपा । धनाभाव से फिर काम रुक गया । अन्तिम दो अध्याय १९४० में छपे । इस प्रकार यह भाष्य भ्रातृ द्वितीया संवत् १९९७ वि० अर्थात् सन् १९४० ई० को समाप्त हुआ था । श्रीवास्तव जी का यह ग्रन्थ थोड़ा-थोड़ा करके **विज्ञान मासिक पत्रिका** में लगभग प्रतिमास निकलता था, और ग्रन्थ रूप में इसकी कुछ प्रतियाँ अलग से भी तैयार कर दी गयीं । पिछले लगभग २० वर्ष से सूर्य-सिद्धान्त का यह विज्ञान भाष्य अनुपलब्ध रहा है ।

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान को यह गौरव प्राप्त है कि विज्ञान परिषद्, प्रयाग के अधिकारियों की असीम उदारता से इसके प्रकाशन की अनुमति इस संस्थान को प्राप्त हुई । प्राचीन वाङ्मय के अनमोल ग्रन्थों के प्रकाशन की आयोजना, स्वाध्याय संस्थान ने अपने हाथ में ली है । इस ग्रन्थ को हम दो खण्डों में

प्रकाशित कर रहे हैं। ग्रन्थ के अन्तर्गत जो चित्र हैं, उनके ब्लाक विज्ञान-परिषद् ने तैयार कारके संस्थान को सौंपे। स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के पुत्र श्री श्रीकृष्ण श्रीवास्तव, अवकाश प्राप्त जज, ने इस कार्य में रुचि ली। विज्ञान परिषद् के महामंत्री डा० शिवगोपाल मिश्र जी ने समस्त ग्रन्थ का प्रूफ-संशोधन कार्य स्वयं तपस्या-पूर्वक तत्परता से किया। सूर्य-सिद्धान्त का मूल संस्कृत पाठ प्रो० कृपाशंकर शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय, के सम्पादित संस्करण के आधार पर दिया गया है। पाठ के संशोधन में हमें यथेष्ट सहायता अपने वयोवृद्ध सदस्य पं० ओंकारनाथ शर्मा जी से भी प्राप्त हुई थी। हम इन सब के आभारी हैं।

स्वर्गीय श्री श्रीवास्तव जी ने पुस्तक की एक विस्तृत भूमिका (४३ पृष्ठों की) लिखी थी, जो अन्तिम खण्ड के साथ प्रकाशित हुई थी (१९४०)। खेद है, कि उसकी यह भूमिका वर्तमान संस्करण के भाग १ में पूरी तरह से नहीं दी जा सकी है। इसके कुछ ही आवश्यक अंश हम यहाँ दे पाये हैं। स्व० श्रीवास्तव जी ने विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित **"सरल विज्ञानसागर"** (१९४६) ग्रन्थ में भारतीय ज्योतिष पर अत्युपयोगी सामग्री दी है। यदि यह अलग से प्रकाशित हो जाय, तो अत्युत्तम होगा।

स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने यह विज्ञान-भाष्य अपने दिवंगत पूज्य पिता जी को समर्पित किया था। **समर्पण** के शब्द थे—"पूज्य पिताजी की पुण्य स्मृति में, जिनके चरणों में बैठकर गणित का प्रथम पाठ पढ़ा था।"

—उषा ज्योतिष्मती
अध्यक्ष
अनुसंधान विभाग

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान,
प्रयाग
१० मई १९८३

विषय-सूची

चतुर्थ अध्याय

चन्द्रग्रहणाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—सूर्य और चन्द्रमा के मध्यव्यास के मान । २-३ श्लोक—प्रत्येक के स्पष्ट व्यास जानने की रीति तथा चंद्रमा की कक्षा में सूर्य का स्पष्ट व्यास (योजनों और कलाओं में) जानने की रीति । ४-५ श्लोक—चंद्रमा की कक्षा में पृथ्वी की छाया के व्यास का मान जानने की रीति । ६ श्लोक—चंद्रमा के पात के कहाँ रहने से ग्रहण हो सकता है । ७ श्लोक—किस तिथि में ग्रहण हो सकता है । ८ श्लोक—अमावस्या और पूर्णमासी के अन्तकाल के सूर्य और चंद्रमा को स्पष्ट करने की रीति । ९ श्लोक—ग्रहण क्यों पड़ता है । १० श्लोक—ग्रस्त भाग का परिमाण जानने की रीति । ११ श्लोक—सर्वग्रास ग्रहण होगा या खंड ग्रहण अथवा ग्रहण न पड़ेगा यह निश्चय करने की रीति । १२-१५ श्लोक—ग्रहण और सर्वग्रास ग्रहण कितने समय तक रहेगा यह जानने की रीति । १६ श्लोक—ग्रहण के आरंभकाल और अन्तकाल जानने की रीति । १७ श्लोक—सर्वग्रास ग्रहण के आरंभकाल और अन्तकाल जानने की रीति । १८-२१ श्लोक—किस समय कितना भाग ग्रस्त रहेगा यह जानने की रीति । २२-२३ श्लोक—ग्रास का परिमाण जानकर इष्टकाल जानने की रीति । २४-२५ श्लोक—ग्रहण का चित्र खींचने के लिये वलन जानने की आवश्यकता । २६ श्लोक—इष्टकाल में बिम्ब का अंगुलात्मक मान जानने की रीति ।]

सूर्य और चंद्रमा में ग्रहण किस प्रकार लगता है यह जानने के लिए पहले प्रकाश के कुछ गुणों की जानकारी आवश्यक है । इसलिए पहले संक्षेप में इन्हीं पर विचार किया जायगा । यह सबके अनुभव की बात है कि रात को दीपक के उजेले में दीवाल पर किसी वस्तु की जो छाया पड़ती है वह कहीं हल्की और कहीं गहरी होती है । गहरी छाया बीच में होती है और हल्की छाया गहरी छाया को घेरे रहती है । यदि वस्तु दीवाल के पास हो तो गहरी छाया बड़ी होती है और हल्की छाया कम । ज्यों-ज्यों वह वस्तु दीवाल से दूर होती जाती है परंतु दीपक के निकट त्यों-त्यों छाया का विस्तार तो बढ़ता जाता है परंतु गहरी छाया कम होती जाती है और हल्की छाया अधिक । यदि वस्तु दीपक से छोटी हो तो एक स्थिति ऐसी भी आ जायगी जिसमें गहरी छाया बिल्कुल नहीं पड़ेगी, केवल हल्की छाया दीवाल पर देख पड़ेगी ।

हां, यदि वस्तु दीपक से बड़ी हो तो गहरी छाया दीवाल पर सदैव पड़ेगी।

दीवाल के जिस भाग पर गहरी छाया पड़ती है उस भाग पर दीपक के प्रकाश का कोई अंश नहीं पहुँचता परन्तु हल्की छाया में दीपक का प्रकाश कुछ न कुछ अवश्य पहुँचता है। यदि कोई कीड़ा दीवाल पर गहरी छाया में हो तो उसे दीपक बिल्कुल नहीं देख पड़ेगा परन्तु हल्की छाया में उसे दीपक का कोई न कोई भाग अवश्य देख पड़ेगा। इसकी परीक्षा यों की जा सकती है :—

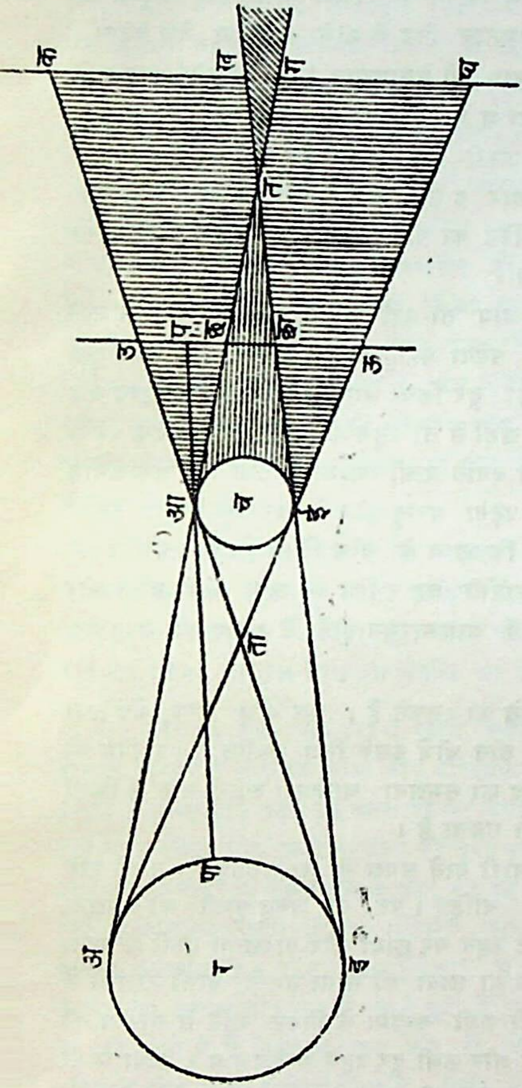
एक दीपक या लम्प जलाकर रख लो। थोड़ी दूर पर एक पेंसिल, गोली या ऐसी चीज़ जो दीपक से छोटी हो खड़ी कर दो या टाँग दो। कुछ और दूर पर एक पतला कागज़ हाथ में इस प्रकार थामो कि इस पर पेंसिल की गहरी और हल्की दोनों छाया पड़ें। गहरी छाया में सुई से एक छेद कर दो और इसीमे देखो कि दीपक देख पड़ता है या नहीं। दीपक नहीं देख पड़ेगा। हल्की छाया में सुई से छेद करके देखो। दीपक का कुछ अंश देख पड़ेगा।

रेखागणित से यह जाना जा सकता है कि गहरी छाया कहाँ पड़ेगी और हल्की छाया कहाँ पड़ेगी। इनके विस्तार आदि का पता लगाना भी गणित से सम्भव है। सूर्य, चन्द्रमा में ग्रहण कैसे पड़ता है यह जानने के लिए गहरी और हल्की छाया का गणित करना पड़ता है इसलिए इस पर अच्छी तरह विचार करना आवश्यक है। आगे गहरी छाया को केवल छाया और हल्की छाया को परिछाया कहा जायगा।

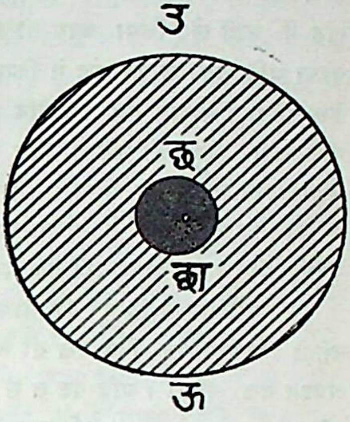
मान लो र एक प्रकाशमान पिंड और च एक अपारदर्शक पिंड है। दोनों पिंड गोलाकार हैं। र से प्रकाश की किरणें चारों दिशाओं में फैलती हैं परन्तु जो किरणें च पिंड पर पड़ती हैं वे इसके आगे नहीं बढ़ने पातीं। इन दोनों पिंडों को सीधी स्पर्श करती हुई रेखाएँ खींची जायँ तो वे त विन्दु पर परस्पर मिलकर एक दूसरे को काटती हुई आगे बढ़ेंगी। आ त ई सूची (cone) के आकार का होगा। यही च पिंड से बनी हुई छाया की सीमा होगी। इसके ऊपर, नीचे, इधर उधर छाया नहीं पड़ेगी। (देखो चित्र ६०)।

इन दोनों पिंडों को छूती हुई जो रेखाएँ ता विन्दु पर मिलती हैं इनसे परिछाया की सीमा बनती है।

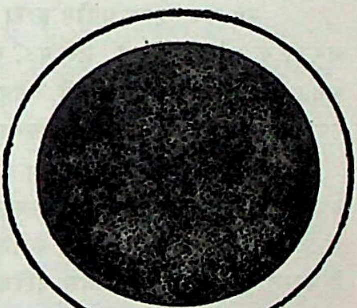
यदि एक पट (पर्दा) छाया में इस प्रकार रखा जाय कि वह र, च पिंडों के केन्द्रों को मिलानेवाली रेखा से समकोण पर रहे तो इस पट पर छाया का जो वृत्त बनेगा उसका व्यास छ छा होगा और परिछाया के वृत्त का व्यास उ ऊ होगा जिसमें छाया का व्यास भी शामिल है (देखो चित्र ६१)। यदि उ छ खंड में किसी जगह प विंदु पर एक छेद कर दिया जाय और इसी छेद से प्रकाशमान पिंड देखा जाय तो पिंड का वह ऊपरी भाग देख पड़ेगा जो पा विन्दु के ऊपर है। यह पा विन्दु प आ



चित्र ९०



चित्र ९१



चित्र ९२

स्पर्शरेखा को बढ़ाने से प्रकाशमान पिंड पर निश्चय किया जाता है। यदि ऊ छा खंड में कहीं छेद किया जाय तो प्रकाशमान पिंड के नीचे का भाग देख पड़ेगा। परन्तु यदि छेद छ छा खंड में किया जाय तो प्रकाशमान पिंड का कोई भाग नहीं देख पड़ेगा। सारांश यह कि यदि द्रष्टा अ आ त रेखा के ऊपर परन्तु ता अ उ के नीचे कहीं रहेगा तो उसे र पिंड का ऊपरी भाग अवश्य देख पड़ेगा परन्तु नीचे वाला भाग नहीं देख पड़ेगा। इसी प्रकार इ ई त रेखा के नीचे और अ ई ऊ रेखा के ऊपर द्रष्टा के रहने से प्रकाशमान पिंड का नीचे वाला भाग अवश्य देख पड़ेगा परन्तु ऊपर वाला भाग नहीं देख पड़ेगा।

यदि पट त विन्दु पर लाया जाय तो यहाँ छाया नाममात्र को भी नहीं रहेगी। प्रकाशमान पिंड देख तो नहीं पड़ेगा परन्तु इसकी चमक चारों ओर कुछ अवश्य देख पड़ेगी। यदि पट त से और दूर किया जाय तो एक और ही दृश्य देख पड़ेगा। क ख और ग घ परिछाया के खंडों में तो पहले की ही तरह बात देख पड़ेगी परन्तु ख ग खंड में जो छाया की सीमा बनाने वाली रेखाओं के बीच में है प्रकाशमान पिंड का किनारे वाला पूरा भाग देख पड़ेगा परन्तु बीच में अन्धकार रहेगा (देखो चित्र ६२)। चित्र से यह प्रकट ही है कि ख ग के बीच किसी विन्दु से च पिंड को स्पर्श करती हुई जो रेखाएँ खींची जायेंगी वह र पिंड के ऊपर नीचे दोनों ओर पहुँचेंगी। पिंड गोल है इसलिए बीच में अन्धकारमय होने से कंकण की तरह देख पड़ेगा।

यह सब दृश्य प्रयोग द्वारा देखे जा सकते हैं। एक गोल लम्प, गेंद तथा लकड़ी के चौखटे में तने हुए पट, बस तीन चीजें इसके लिए पर्याप्त हैं। र पिंड की जगह गोल लम्प और च की जगह गेंद को समझना चाहिए। अंधेरी रात में किसी स्थान में यह प्रयोग सहज ही किया जा सकता है।

इसी प्रयोग से सूर्य ग्रहण की सारी बातें समझ में आ सकती हैं। र को रवि या सूर्य ओर च को चन्द्रमा समझना चाहिए। पट की जगह पृथ्वी को समझना चाहिए। जिस तरह यह पिंड के निकट रहने पर छाया और परिछाया दोनों में रहता है परन्तु दूर रहने पर केवल परिछाया या छाया की सीमा बनाने वाली रेखाओं के बीच में रहता है, इसी तरह पृथ्वी भी कभी चन्द्रमा के निकट रहने से चन्द्रमा की छाया और परिछाया दोनों में रहती है और कभी दूर रहने से केवल प र छाया में ही रहती है। पृथ्वी चन्द्रमा से बहुत बड़ी है इसलिए सारी पृथ्वी छाया या परिछाया में नहीं पड़ सकती। पृथ्वी का जो भाग छाया में पड़ जाता है वहाँ के निवासियों को सूर्य बिलकुल नहीं देख पड़ता। इसलिये सूर्य का पूर्णग्रहण या सर्वग्रहण (total eclipse of the sun) होता है। पृथ्वी का जो भाग परिछाया में पड़ता है वहाँ के

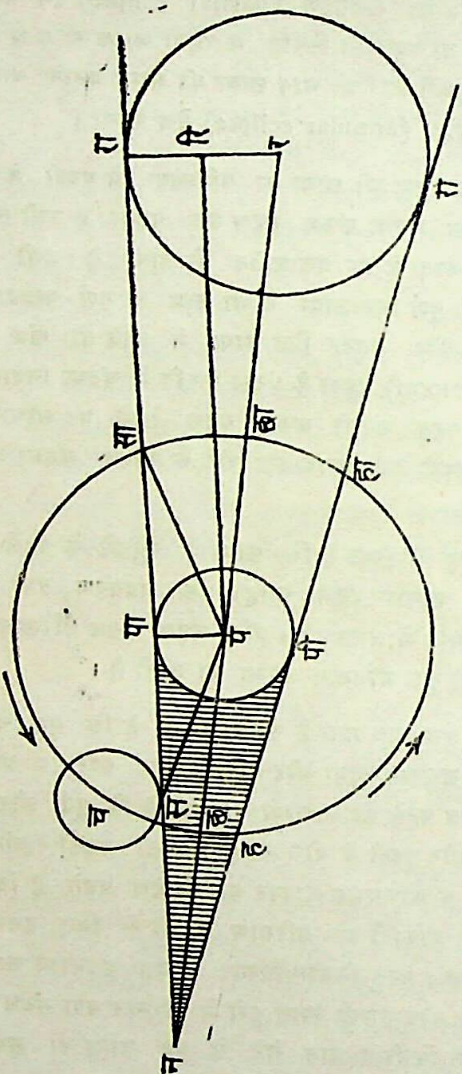
निवासियों को सूर्य का खंडग्रहण (partial eclipse) देख पड़ता है। यदि पृथ्वी पर छाया न पहुँचे तो वह उसी स्थिति में रहेगी जो क ख ग घ पट से दिखायी गयी है। ऐसी दशा में पृथ्वी का जो भाग छाया की सीमा बनाने वाली रेखा के बीच में होगा वहाँ कंकण ग्रहण (annular eclipse) देख पड़ेगा।

जिस तरह चंद्रमा की छाया या परिछाया में पृथ्वी के आ जाने से सूर्य में पूर्ण ग्रहण खंड ग्रहण, अथवा कंकण ग्रहण देख पड़ता है उसी तरह पृथ्वी की छाया में जब चंद्रमा आ जाता है तब प्रकाशहीन हो जाता है। इसी को चन्द्रग्रहण कहते हैं। यदि चंद्रमा का पूर्ण पिंड छाया में आ जाय तो पूर्ण चन्द्रग्रहण (total eclipse of the moon) और अधूरा पिंड छाया में आवे तो खंड चंद्रग्रहण (partial eclipse of the moon) पड़ता है। इस स्थिति में चंद्रमा निवासी सूर्य में ही ग्रहण लगता हुआ देखेंगे परंतु उनको कंकण ग्रहण देखने का सौभाग्य नहीं हो सकता क्योंकि चंद्रमा से पृथ्वी का आकार बड़ा होने के कारण चंद्रमा कभी छाया से बाहर नहीं जा सकता है।

चित्र से यह भी स्पष्ट है कि छाया में पहुँचने के पहले परिछाया मे घुसना आवश्यक है। यह स्मरण रखना चाहिए कि चंद्रग्रहण तभी देख पड़ता है जब चंद्रमा पृथ्वी की छाया में जाता है। यदि चंद्रमा केवल परिछाया में जाय तो ग्रहण नहीं देख पड़ेगा, हाँ कुछ मलिनता अवश्य आ जाती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी की परस्पर दूरियों के अनुसार छाया और परिछाया का परिमाण भी कम या अधिक हो सकता है। यह बात पहले ही बतलायी जा चुकी है कि सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी तथा चंद्रमा और पृथ्वी के बीच की दूरी घटती बढ़ती रहती है। दूरी के घटने बढ़ने से इन पिंडों के कोणात्मक आकार घटे बढ़े देख पड़ते हैं (देखो पृष्ठ ८४-८५) इसलिए कोणात्मक आकारों का परिमाण जानने के लिए इनकी स्पष्ट दूरियों का जानना आवश्यक है। परंतु त्रिप्रश्नाधिकार में यह बतलाया गया है कि किसी पिंड के आकार, लम्बन और उसकी स्पष्ट दूरी में परस्पर क्या संबंध है। इसलिए लंबन या दूरी दोनों में से किसी के जान लेने से यह जाना जा सकता है कि छाया का परिमाण किस समय कितना होता है। चित्र ९३ से यह जाना जाता है कि चंद्रग्रहण के समय चंद्रमा की कक्षा में पृथ्वी की छाया का व्यास कितना बड़ा होता है।

मान लो कि चित्र ९३ में च चंद्रमा है जो पृथ्वी की छाया में स विंदु पर प्रवेश कर रहा है, इसलिए यह रा पा स्पर्श रेखा को छू रहा है क्योंकि सूर्य और



चित्र ६३

पृथ्वी की सामान्य स्पर्शरेखाओं रा पा और री पी से ही पृथ्वी की छाया बनती है जिसकी नोक न है । सूर्य और पृथ्वी की त्रिज्याएँ र रा और प पा स्पर्शरेखा रा पा के समकोण पर हैं । प रि रेखा पा रा के सामानान्तर है ।

पहले यह जानना आवश्यक है कि कोण स प छ किसके समान है क्योंकि यह कोण पृथ्वी के केन्द्र पर छाया की उस त्रिज्या से बनता है जो चंद्रमा की कक्षा में है इसलिए इससे चंद्रकक्षा में छाया के आकार का पता चलेगा ।

$$\angle \text{रि प र} = \frac{\text{रि र}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{रा रि}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{पा प}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र}}{\text{प र}} - \frac{\text{पा प}}{\text{प र}}$$

$$= \text{सूर्य की त्रिज्या} - \text{सूर्य का लंबन}$$

$$= \text{त्र} - \text{ल}$$

त्र और ल से सूर्य की त्रिज्या और लंबन सूचित किये गये हैं ।

$$\angle \text{स प छ} = \angle \text{प स पा} - \angle \text{प न पा}$$

$$= \angle \text{प स पा} - \angle \text{रि प र}$$

क्योंकि प रि और न पा रा समान्तर हैं और न प र दोनों को काटता है ।

$$\text{यहाँ } \angle \text{प स पा} = \frac{\text{प पा}}{\text{प स}} = \text{चंद्रमा का लंबन} = \text{ला}$$

ला को चंद्रमा का परम लंबन या क्षितिज लंबन मान लेने में बहुत अंतर नहीं पड़ेगा । इसलिए

$$\angle \text{स प छ} = \text{ला} - (\text{त्र} - \text{ल})$$

$$= \text{ल} + \text{ला} - \text{त्र}$$

इससे यह सिद्ध हुआ कि यदि सूर्य और चन्द्रमा के क्षितिज लम्बनों के योगफल से सूर्य की त्रिज्या का कोणात्मक मान घटा दिया जाय तो जो कुछ शेष रहता है उसी के समान चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया की त्रिज्या का कोणात्मक मान होता है । इसी को भूभार्द्ध भी कहते हैं ।

अनुभव से जाना गया है कि पृथ्वी के वातावरण के कारण इसकी छाया उपर्युक्त गणितसिद्ध छाया से $\frac{१}{५०}$ गुना बड़ी होती है क्योंकि ऊपर के गणित में पृथ्वी के केवल ठोस पिंड का विचार किया है, इसके वातावरण का नहीं ।

उदाहरण—यदि सूर्य का लंबन ६″, चन्द्रमा का लंबन ५८′१″ और सूर्य त्रिज्या १६′१३″ हो तो चंद्रकक्षा में पृथ्वी की छाया की त्रिज्या बतलाओ ?

$$\text{भूभार्द्ध} = \text{ल} + \text{ला} - \text{त्र}$$

$$= ६'' + ५८'१'' - १६'१३''$$

$$=५८'१०'' - १६'१३''$$
$$=४१'५७''$$

यह गणितसिद्ध छाया की त्रिज्या है। वातावरण के कारण छाया का $\frac{१}{५०}$ गुना बढ़ जाता है। इसलिए कुल छाया

$$=४१'५७'' + \frac{४१'५७''}{५०} = ४१'५७'' + ५०'' = ४२'४७''$$

यह प्रकट है कि चन्द्रकक्षा में भूभार्द्ध (पृथ्वी की छाया की त्रिज्या) का परिमाण सदैव एकसा नहीं रहता क्योंकि यह सूर्य और चन्द्रमा के लंबन तथा सूर्य की कोणात्मक त्रिज्या पर अवलंबित है और यह तीनों बातें पृथ्वी से सूर्य और चन्द्रमा की दूरियों पर अवलंवित हैं जो सदैव घटा बढ़ा करती हैं।

अब यह बतलाया जायगा कि इस विषय पर सूर्य-सिद्धान्त का क्या मत है।

सूर्य और चन्द्र विम्बों का मध्यम व्यास तथा चन्द्रकक्षा में सूर्य का स्पष्ट व्यास—

सार्धानि षट् सहस्राणि योजनानि विवस्वतः।
विष्कम्भो मण्डलस्येन्दोः साशीतिस्तु चतुश्शती ॥१॥
स्वव्यासौ त्रिज्ययाऽभ्यस्तौ स्वमन्दश्रवणोद्धृतौ।
स्पष्टौ स्वकौ स्वकौ भूमेस्तथा सूची शशाङ्कवत् ॥२॥
स्फुटस्वभुक्तिगुणितौ मध्यभुक्त्या हृतौ स्वकौ।
रवेस्स्वभगणाभ्यस्तः शशाङ्कभगणोद्धृतः ॥३॥

अनुवाद—(१) सूर्य के मण्डल का मध्यम व्यास ६५०० योजन और चंद्रमा के मण्डल का मध्यम व्यास ४८० योजन है। (२) जिस समय किसी का स्पष्ट व्यास जानना हो तो उसके मध्यम व्यास को उस समय की उसकी स्पष्टगति से गुणा कर दो और गुणनफल को उसकी मध्यमगति से भाग दे दो। सूर्य के स्पष्ट व्यास को सूर्य के महायुगीय भगण से गुणा करके गुणनफल को चन्द्रमा के महायुगीय भगण से भाग देने पर (३) अथवा सूर्य के स्पष्ट व्यास को चन्द्रकक्षा से गुणा करके और गुणनफल को सूर्य की कक्षा से भाग देने पर जो आता है वही चन्द्रकक्षा में सूर्य के स्पष्ट व्यास का परिमाण है। चन्द्रकक्षा में सूर्य और चन्द्रमा के व्यास को १५ से भाग देने पर सूर्य और चन्द्रमा के व्यास कलाओं में ज्ञात हो जाते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकों का सार यह है—

सूर्य बिम्ब का मध्यम व्यास = ६५०० योजन
चन्द्र विम्ब का मध्यम व्यास = ४८० योजन

$$\text{स्फुट व्यास} = \frac{\text{मध्यम व्यास} \times \text{स्फुट गति}}{\text{मध्यम गति}}$$

चन्द्रकक्षा में सूर्य का स्फुट व्यास

$$= \frac{\text{सूर्य का स्फुट व्यास} \times \text{सूर्य का महायुगीय भगण}}{\text{चन्द्रमा का महायुगीय भगण}}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{सूर्य का स्फुट व्यास} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य की कक्षा}}$$

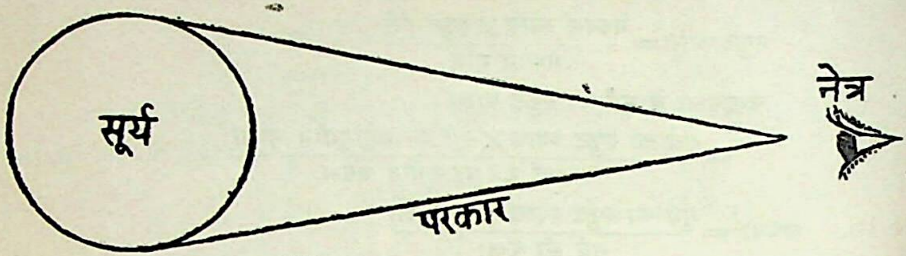
यहां यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि क्या सूर्य का योजनात्मक आकार भी घटता बढ़ता है क्योंकि ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य का स्फुट (स्पष्ट) व्यास उसकी स्फुट गति पर अवलंबित है जो सदा घटती बढ़ती रहती है। परन्तु बात यह नहीं है। सूर्य का योजनात्मक आकार स्फुट गति के अनुसार कदापि घटता बढ़ता नहीं है, हाँ कलात्मक या कोणात्मक आकार अवश्य बदलता है जिसकी मीमांसा स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८४-८९ में अच्छी तरह की गयी है। यहाँ मध्यम व्यास और स्फुट व्यास का परिमाण यद्यपि योजनों में बतलाया गया है तथापि इसे कोणात्मक ही समझना चाहिए क्योंकि इस जानने की जो रीति भास्कराचार्य जी[1] ने लिखी है उससे यह अर्थ निकलता है। भास्कराचार्य जी कहते हैं कि जिस दिन सूर्य की स्पष्ट या स्फुट गति मध्यम गति के समान हो उस दिन उदयकाल में ३४३८ इकाइयों के समान दो लकड़ियां लेकर इनके दो सिरों को मिलाकर[2] मूल स्थानों में आँख रखकर सूर्य के बिंब को इस प्रकार वेधो कि इन लकड़ियों के आगेवाले सिरे बिम्ब के उत्तर और दक्खिन वाले किनारों को स्पर्श करें। इसी दशा में लकड़ियों के सिरों को इस प्रकार कस दो कि आगेवाले सिरों की दूरी में कोई भेद न पड़े। अब इन सिरों की दूरी को उसी इकाई से नापो जिससे लकड़ियों की लम्बाई नापी गयी है। यह अन्तर जितनी इकाइयों के समान होगा उतनी ही कला सूर्य के बिम्ब का व्यास होगा। भास्कराचार्य जी के अनुसार यह व्यास ३२′३१″३३‴ होता है। यदि इसको ३२′३०″ या ३२′·५ माना जाय और सूर्य की कक्षा[3] का मान ४३,३१,५०० योजन लिया जाय तो सूर्य-बिम्ब का योजनात्मक मान इस प्रकार प्राप्त होगा :—

---

१. गणिताध्याय पृष्ठ १७१-१७२

२. आजकल यह काम परकार (dividers) की नोकों से किया जा सकता है। आँख उस विन्दु पर होनी चाहिए जहां कम्पास की दोनों भुजाएं मिलती हों।

३. भूगोलाध्याय श्लोक ८६।



चित्र ६४

कोई कक्षा = ३६०°

= २१,६००′

∴ सूर्य की कक्षा भी २१,६०० कला के समान है परन्तु योजनों में यह ४३,३१,५०० के समान है इसलिए

२१६००′ = ४३,३१,५०० योजन

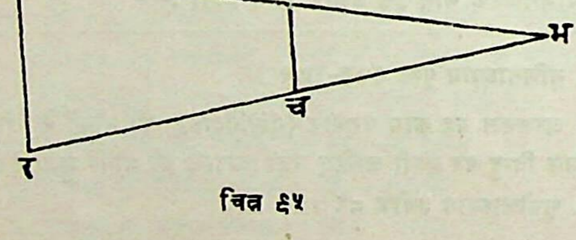
$$∴ ३२·५′ = \frac{३२·५ \times ४३३१५००}{२१६००} \text{ योजन}$$

= ६५१७ योजन

सूर्य-सिद्धान्त ने सूर्य का मध्यम व्यास ६५०० योजन माना है इससे प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ में सूर्य का उदयकालिक बिम्ब ३२′३०″ से कम लिया गया है जो ठीक भी है क्योंकि वर्तन के कारण उदयकालिक बिम्ब यथार्थ से कुछ बड़ा देख पड़ता है।

इस तरह यह सिद्ध है कि सूर्य या चन्द्र बिम्बों का योजनात्मक मान कलात्मक मानों से ही जाना गया है।

मध्यम व्यास से स्फुट व्यास जानने का जो नियम बतलाया गया है वह कुछ स्थूल है क्योंकि सूर्य या चन्द्रमा की स्फुटगति का परिवर्तन उसी अनुपात से नहीं होता



चित्र ६५

जि अनुपात से इनके कोणात्मक बिम्बों का परिवर्तन होता है। (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८८)।

चन्द्रकक्षा में सूर्य का स्पष्ट व्यास जानने के दो नियम बतलाये गये हैं जो वास्तव में एक ही नियम के दो रूप हैं। चित्र ६५ में यदि र रा सूर्य की कक्षा, और च चा चन्द्रमा की कक्षा के खंड मान लिये जायँ, भ पृथी का केन्द्र हो और यदि र रा सूर्य बिम्ब के समान मान लिया जाय तो चन्द्रकक्षा में यह बिम्ब च चा के समान होगा। यह स्पष्ट ही है कि

$$\frac{\text{च चा}}{\text{र रा}} = \frac{\text{भ च}}{\text{भ र}} = \frac{\text{चन्द्रकक्षा का व्यासार्ध}}{\text{सूर्यकक्षा का व्यासार्ध}}$$

$$= \frac{\text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्यकक्षा}}$$

स

क्योंकि दो वृत्तों की परिधियों में वही अनुपात होता है जो उनके व्यासार्धों में होता है।

इसलिए

$$\text{च चा} = \frac{\text{र रा} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्यकक्षा}}$$

$$= \frac{\text{सूर्य का स्पष्ट व्यास} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य की कक्षा}}$$

इस प्रकार चन्द्रकक्षा में सूर्य के स्पष्ट व्यास के जानने का दूसरा नियम सिद्ध हो गया। अब यह बतलाना कठिन नहीं है कि पहला इसका रूपान्तर किस प्रकार है।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि हमारे आचार्यों का मत है कि प्रत्येक ग्रह की दैनिक योजनात्मक गति समान होती है। इसलिए यह सिद्ध है कि प्रत्येक ग्रह एक महायुग या कल्प में जितने योजन चलता है वह सब ग्रहों के लिए एक सा है। ग्रह एक महायुग में जितने योजन चलता है इसको यदि ग्रह के महायुगीय भगण से भाग दे दिया जाय तो ग्रह की कक्षा का मान योजनों में निकल आवेगा, इसको यों भी लिखा जा सकता है :—

$$\frac{\text{ग्रह की महायुगीय गति (योजनों में)}}{\text{ग्रह का महायुगीय भगण}} = \text{ग्रह की कक्षा (योजनों में)}$$

यदि ग्रह की महायुगीय योजनात्मक गति को म मान लिया जाय और सूर्य के महायुगीय भगण को र तथा चन्द्रमा के महायुगीय भगण को च मान लिया जाय तो उपर्युक्त नियम के अनुसार

$$\frac{म}{र} = \text{सूर्य की कक्षा}$$

और $$\frac{म}{च} = \text{चन्द्रकक्षा}$$

यदि दूसरे समीकरण के प्रत्येक पक्ष को पहले समीकरण के समपक्ष (corresponding sides) से भाग दे दिया जाय तो

$$\frac{म}{च} \div \frac{म}{र} = \frac{\text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य की कक्षा}}$$

अथवा $$\frac{र}{च} = \frac{\text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य की कक्षा}}$$

इस प्रकार सूर्य के स्फुट व्यास का पहला नियम भी सिद्ध हो गया।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि सूर्य का स्फुट व्यास तथा सूर्य की कक्षा का विस्तार यथार्थ में उतना नहीं है जितना हमारे सिद्धान्त ग्रन्थों में बतलाया गया है। अनेक वेधों से यह सिद्ध हो गया कि सूर्य का लम्बन ९ कला से अधिक नहीं होता इसलिए पृथ्वी से इसकी दूरी लम्बन के सूत्र के अनुसार (देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ३८४) ९ करोड़ २९ लाख मील है और इसके पिंड का व्यासार्ध ४, ३२, ८९० मील है (देखो पृष्ठ ९६)। यदि योजन का परिमाण ५ मील के समान समझा जाय (देखो पृष्ठ ५४) तो

$$\text{सूर्य का व्यासार्ध} = \frac{४३२८९०}{५} = ८६५७८ \text{ योजन, और}$$

$$\text{सूर्य की मध्यम दूरी} = \frac{९,२९,००,०००}{५} = १,८५,८०,००० \text{ योजन}$$

यह परिमाण हमारे सिद्धान्त के परिमाणों से कितना भिन्न है यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा जहाँ सब परिमाण योजनों में दिये जाते हैं :—

	सूर्यसिद्धान्त	सिद्धान्त शिरोमणि	R.S.Ball's Spherical Astronomy
सूर्य बिंब का व्यास	६५००	६५२२	१७३१५६
सूर्य की मध्यम दूरी	६८९३७८	६८९३७७	१८५८००००
चन्द्र बिंब का व्यास	४८०	४८०	४३०
चन्द्रमा की मध्यम दूरी	५१५६६	५१५६६	४७५००

तीसरे श्लोक के उत्तरार्द्ध में यह भी बतलाया गया है कि चन्द्रमा की कक्षा में सूर्य विम्ब का जो व्यास योजनों में हो उसको १५ से भाग देने पर इसका परिमाण कलाओं में आ जायगा। इसका कारण यह है कि चन्द्रकक्षा का विस्तार ३२४००० योजन माना गया है जो ३६० अंश या २१६०० कला के समान भी है इसलिए जब २१६०० कला=३२४००० योजना तब १ कला $=\frac{३२४०००}{२१६००}=$ १५ योजन जिसका अर्थ यह हुआ कि चन्द्रकक्षा का १५ योजन एक कला के समान होता है।

चन्द्रकक्ष में भूछाया के व्यास का परिमाण—

शशाङ्ककक्ष्यागुणितो भाजितो वाऽर्ककक्ष्यया।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्ष्यायां तिथ्याप्तो मानलिप्तिकाः ॥४॥
स्फुटेन्दुभुक्तिर्भूव्यासगुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची महीव्यासस्फुटार्कश्रवणान्तरम् ॥५॥
मध्येन्दुव्यासगुणितं मध्यार्कव्यासभाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्यास्तु तमो लिप्ताश्च पूर्ववत् ॥६॥

अनुवाद—(४) चन्द्रमा की स्पष्ट गति को पृथ्वी के व्यास से गुणा करके गुणनफल को चन्द्रमा की मध्य गति से भाग देने पर जो लब्धि आती है उसे सूची कहते हैं। सूर्य के स्फुट व्यास से पृथ्वी के व्यास को घटाकर (५) शेष को चंद्रमा के मध्यम व्यास से गुणा करके और गुणनफल को सूर्य के मध्यम व्यास से भाग दे दो। लब्धि को सूची से घटा देने पर जो शेष आवेगा वह चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का व्यास योजनों में आ जायगा। इसको पहले की तरह १५ से भाग दे देने पर भूछाया का व्यास कलाओं में ज्ञात हो जायगा।

विज्ञान भाष्य—यहाँ चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियों को का और रा अक्षरों से सूचित किया जायगा। यदि चन्द्रमा और सूर्य के महायुगीन भगणों को महायुगीन सावन दिनों से भाग दे दिया जाय और लब्धि की कलाएं बनायी जायँ तो चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक गतियाँ क्रमानुसार ७९०′·५६ और ५९′·१३६२ होती हैं। पृथ्वी का व्यास १६०० योजन माना गया है (देखो मध्यमाधिकार श्लोक ५९)। इन मानों के आधार पर उपर्युक्त दो श्लोकों को संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकता है—

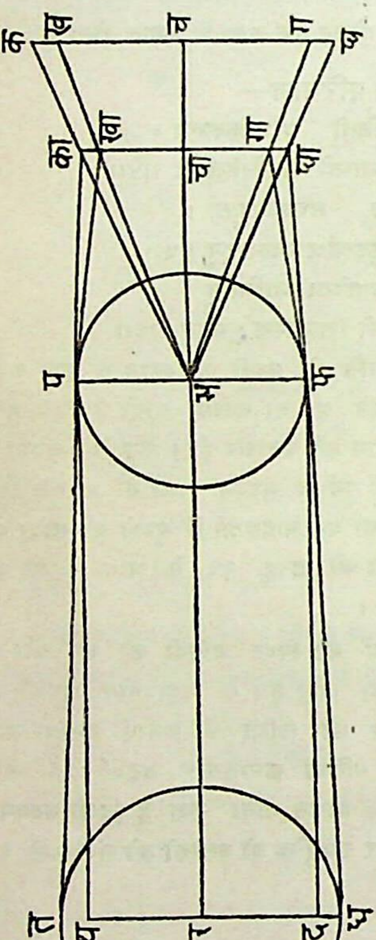
$$\text{सूची}=\frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०·५६}$$

$$\text{सूर्य का स्फुट व्यास}=\frac{६५०० \times \text{रा}}{५९·१३६२}$$ (देखो श्लोक २)।

चन्द्रकक्षा में भूछाया का योजनात्मक व्यास

$$=\frac{१६०० \text{ चा}}{७९०\cdot५६}-\left(\frac{६५०० \text{ रा}}{५९\cdot१३६२}-१६००\right)\times\frac{४८०}{६५००}$$

यदि इसको १५ से भाग दे दिया जाय तो चन्द्रकक्षा में भूछाया का कालात्मक व्यास



चित्र ६५

$$=१०६\frac{२}{३}\times\frac{\text{चा}}{७९०\cdot५६}-३२\times\frac{\text{रा}}{५९\cdot१३६२}+७\cdot८८$$

जिस समय चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियाँ इनकी मध्यम गतियों के समान होंगी उस समय $\frac{\text{चा}}{७९०\cdot५६}$ और $\frac{\text{रा}}{५९\cdot१३६२}$ एक के समान होंगे। ऐसी दशा में भूछाया का कलात्मक व्यास १०६·६७ − ३२ + ७·८८ = ८२·५५

चित्र ६३ की सहायता से आरंभ में यह बतलाया जा चुका है कि भूभार्ध अर्थात् चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का अर्धव्यास ४१′५७″ होता है जिससे पृथ्वी की छाया का व्यास ८४′ के लगभग आता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धान्त के नियम से पृथ्वी की छाया का व्यास जितना आता है वह नवीन रीति से निकाले हुए व्यास के प्रायः समान ही होता है यद्यपि उसके उपकरण स्थूल और अशुद्ध हैं। भारतीय रीति से भूछाया के व्यास का जो परिमाण आता है वह तीन पदों १०६·६७, ३२ और ७·८८ के योग वियोग से सिद्ध होता है।

इसी तरह नवीन रीति से भूभार्द्ध का परिमाण भी तीन पदों ५८′१″, १६′१३″ और ९″ के योग वियोग से व्यक्त किया जा सकता है (देखो ४३८ पृष्ठ का उदाहरण)। इन तीन पदों के दूने क्रम से ११६′ २″, ३२′ २६″ और १८″ है। इनमें ३२′२६″ भारतीय नियम के दूसरे पद से बिल्कुल मिलता है, पहला पद यहाँ ११६′ और वहाँ १०७ कला है और तीसरा पद यहाँ १८″ और वहाँ ८′ के लगभग है इसलिए पहले और तीसरे पदों का योग ११६′ के लगभग हो जाता है। इससे प्रकट है कि हमारे सिद्धान्त से भूभार्ध का जो रूप सिद्ध होता है वह नवीन रूप से केवल इस बात में भिन्न है कि सूर्य का आकार और उसकी दूरी हमारे यहाँ बहुत कम मानी गयी है।

उपपत्ति : कल्पना करो कि भ पृथ्वी का केन्द्र, प फ पृथ्वी का व्यास, र सूर्य का केन्द्र, त ध सूर्य का व्यास, च मध्यम चन्द्रमा का केन्द्र, चा स्पष्ट चन्द्रमा का केन्द्र, त प खा और ध फ गा पृथ्वी और सूर्य की सामान्य स्पर्शरेखाएं, तथा थ प का और द फ धा रेखाएं र भ के समानान्तर हैं। यह स्पष्ट है कि खा गा स्पष्ट चन्द्रमा के तल में पृथ्वी की छाया का व्यास है जो भूकेन्द्र से देखने पर मध्यम चन्द्रमा की कक्षा में ख ग के समान होगा। यदि भ का और भ घा बढ़ाये जायं तो मध्यम चन्द्रमा की कक्षा में क, घ विन्दुओं पर मिलेंगे।

चित्र ९६ से स्पष्ट है कि

$$\text{भूछाया का व्यास खा गा} = \text{का घा} - (\text{का खा} + \text{गा घा})$$
$$= \text{प फ} - (\text{का खा} + \text{गा घा})$$

समजातीय त्रिभुज प का खा और प थ त में,

$$\frac{\text{प का}}{\text{प थ}} = \frac{\text{का खा}}{\text{त थ}}$$

$$\text{इसी तरह } \frac{\text{फ गा}}{\text{फ ध}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{द ध}}$$

$$\text{परन्तु प का} = \text{फ गा और प थ} = \text{फ ध}$$

$$\therefore \frac{\text{का खा}}{\text{त थ}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{द ध}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त थ} + \text{द ध}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{थ द}}$$

$$\therefore \frac{\text{प का}}{\text{प थ}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{प फ}} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots(1)$$

समजातीय त्रिभुज का भ घा और क भ घ में

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{का घा}}{\text{क घ}}$$

परन्तु भ चा और भ च पृथ्वी से स्पष्ट और मध्यम चन्द्रमा की दूरियां हैं और यह बताया गया है कि कोणीय वेग कर्ण के वर्ग के प्रतिलोम के अनुसार बदलता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८८) इसलिए स्थूल रूप से यह माना जा सकता है कि कोणीय वेग कर्ण के भी प्रतिलोम के अनुसार बदलता है जैसा कि सूर्य-सिद्धान्त के नियम से प्रकट होता है।

इसलिए

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{चंद्रमा की मध्यम गति}}{\text{चंद्रमा की स्पष्ट गति}} = \frac{\text{म}}{\text{स}}$$

$$\therefore \frac{\text{म}}{\text{स}} = \frac{\text{का घा}}{\text{क घ}} = \frac{\text{प फ}}{\text{क घ}}$$

$$\therefore \text{क घ} = \frac{\text{प फ} \times \text{स}}{\text{म}} = \text{भू} \frac{\text{व्यास} \times \text{स्पष्टगति}}{\text{मध्यम गति}}$$

इसी क घ का नाम श्लोक ४ में सूची रखा गया है।

समजातीय त्रिभुज भ का खा और भ क ख इत्यादि से सिद्ध हो सकता है कि

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{का खा}}{\text{क ख}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{ग घ}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{क ख} + \text{ग घ}} \quad ...(२)$$

समीकरण (१) और (२) में प का और भ चा समान हैं इसलिए

$$\text{प ध} \times \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{प फ}} = \text{भ च} \times \frac{\text{का खा} + \text{गा घ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

या $$\frac{\text{प थ}}{\text{भ च}} = \frac{\text{त ध} - \text{प फ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

परन्तु प थ या भ र पृथ्वी से सूर्य की मध्यम दूरी और भ च पृथ्वी से चन्द्रमा की मध्यम दूरी है जिनका अनुपात $= \frac{४३३१५००}{३२४०००} = १३\cdot३७$ क्योंकि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ४३३१५०० योजन सूर्य की कक्षा और ३२४००० योजन चन्द्रमा की कक्षा के विस्तार हैं, तथा $\frac{६५००}{४८०} = १३\cdot५४$, सूर्य और चन्द्रमा के मध्यम व्यासों का अनुपात है जो १३·३७ के प्रायः समान है। इसलिए यह मान लेने में कोई हर्ज नहीं कि

$$\frac{\text{प थ}}{\text{भ च}} = \frac{६५००}{४८०} = \frac{\text{सूर्य का मध्यम व्यास}}{\text{चन्द्रमा का मध्यम व्यास}}$$

$$\therefore \frac{६५००}{४८०} = \frac{\text{तध} - \text{प फ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

$$\text{क ख} + \text{ग घ} = (\text{त ध} - \text{प फ}) \times \frac{४८०}{६५००}$$

परन्तु $\text{क ख} + \text{ग घ} = \text{क घ} - \text{ख ग}$

= सूची − चंद्रकक्षा में भूछाया

और $\text{त ध} - \text{प फ}$ = सूर्य का स्पष्ट व्यास — पृथ्वी का व्यास

सूची − चंद्रकक्षा में भूछाया

$$= (\text{सूर्य का स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वी का व्यास}) \times \frac{४८०}{६५००}$$

∴ चन्द्रकक्षा में भूछाया

$$= \text{सूची} - (\text{सूर्य का स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वी का व्यास}) \times \frac{४८०}{६५००}$$

यही ४, ५ श्लोकों का तात्पर्य है।

ग्रहण कब सम्भव होता है—

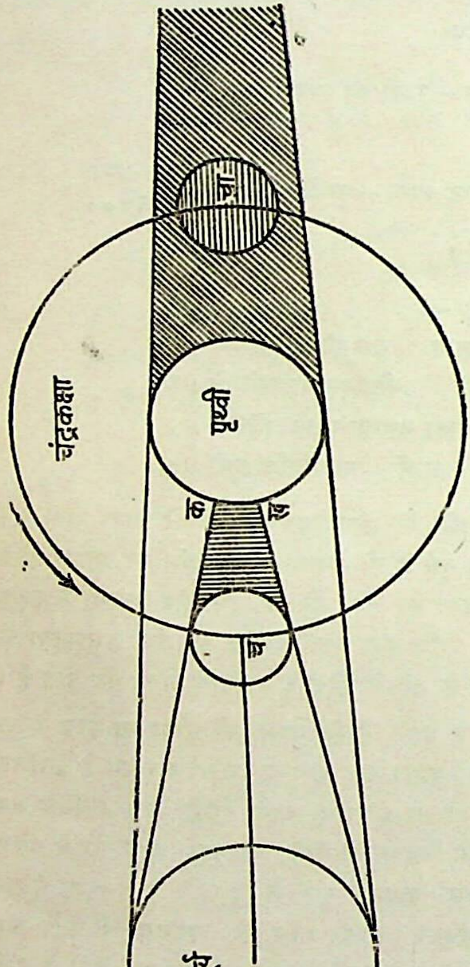
भानोभार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽथवा।
शशाङ्कपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके ॥६॥
तुल्यौ राश्यादिभिः स्याता ममावास्यान्तकालिकौ।
सूर्येन्दु पौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिभिस्समो ॥७॥

अनुवाद—(६) सूर्य से ६ राशि के अंतर पर पृथ्वी की छाया होती है। यदि सूर्य से इतनी ही दूरी पर अथवा सूर्य के ही समान राशि अंश पर अथवा इनसे कुछ ही कम या अधिक दूरी पर चन्द्रमा का पात हो तो सूर्य और चन्द्रमा में ग्रहण लगता है। (७) सूर्य और चन्द्रमा के राशि अंश कला विकला इत्यादि अमावस्या के अन्त में समान होते हैं और पूर्णमासी के अंत में ठीक ६ राशि के अंतर पर होते हैं।

विज्ञान भाष्य—चित्र ९३ से प्रकट है कि पृथ्वी की छाया का केन्द्र छ या न सूर्य और पृथ्वी के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा र प न पर सदैव रहता है इसलिए पृथ्वी की छाया सूर्य से सदैव १८०° या ६ राशि आगे रहती है। इसलिए जब चन्द्रमा सूर्य से १८०° के लगभग आगे रहता है तभी यह पृथ्वी के छाया में प्रवेश कर सकता है अन्यथा नहीं। परन्तु जब चन्द्रमा सूर्य से १८०° आगे रहता है तब पूर्णिमा का अंत होता है इसलिए पूर्णिमा के अंत काल के लगभग चंद्रग्रहण लग सकता है। इसी प्रकार जब चन्द्रमा सूर्य के सामने आकर उसको ढक लेता है तभी सूर्य ग्रहण लगता है परन्तु यह बात तभी संभव है जब सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश प्रायः समान होते हैं अर्थात् जब अमावस्या होती है। इसलिए यह प्रकट है कि चन्द्र-

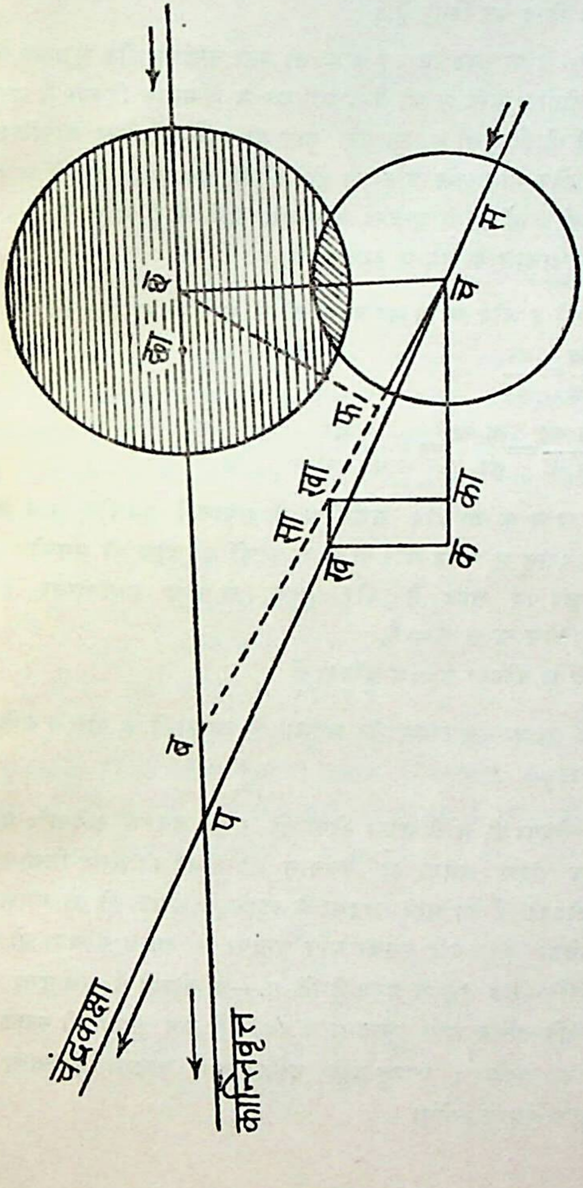
ग्रहण पूर्णिमा के अंत में और सूर्यग्रहण अमावस्या के अंत में लगते हैं। (देखो चित्र ९७)

अब यह प्रश्न हो सकता है कि प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या के अंत में चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण क्यों नहीं लगता ? इसका कारण यह है कि चन्द्रमा का कक्षातल क्रान्तिवृत्त के कक्षातल से भिन्न हैं। इन दोनों का परम अंतर ५° के लगभग है जिसे चन्द्रमा का परमविक्षेप या परम शर कहते हैं (देखो मध्यमाधिकार पृ० ७४-७५)। परंतु सूर्य और चन्द्रमा के बिम्बार्ध १६′ के लगभग तथा पृथ्वी की छाया का व्यासार्ध अथवा भूभार्ध ४२′ के लगभग होता है (देखो पहले का उदाहरण) इसलिए जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में ऐसी जगह रहता है जो क्रान्तिवृत्त के पास हो और क्रान्तिवृत्त से जिसका अन्तर १६′ + ४२′ = ५८′ के लगभग या इससे भी कम हो तभी ग्रहण हो सकता है। यह स्थिति उसी समय सम्भव है जब अमावस्या या पूर्णमासी के लगभग चन्द्रमा अपनी कक्षा और क्रान्तिवृत्ति के मिलन विन्दुओं अर्थात् पातों के पास हो। परन्तु चन्द्रमा के पात एक दूसरे से सदैव १८०° के अंतर पर होते हैं इसलिए यह



चित्र ९७

प्रकट है कि जब अमावस्या या पूर्णमासी के समय सूर्य के भोगांश के समान ही या इसके लगभग राहु या केतु किसी का भोगांश हो तभी ग्रहण लग सकता है अन्यथा नहीं । यह बात चित्र ६८ से अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी :—



चित्र ६८

पूर्णिमान्त काल में :— छ = पृथ्वी की छाया का केन्द्र च = चन्द्रमा का केन्द्र
च छ या श = चन्द्रमा का शर (विक्षेप)
म = भूछाया और चन्द्रमा के व्यासार्धों का योग प = चंद्रमा का पात
च क या चा = चन्द्रमा की प्रति घड़ी भोगांश गति
क ख या शा = ” ” शर की गति
छ छा या रा = भूछाया अथवा सूर्य की प्रतिघड़ी भोगांश गति

क च रेखा पर क का, छ छा के समान काट लो और का से क ख के समान और समानान्तर का खा खींचो, च खा को मिलाकर खा की ओर क्रान्तिवृत्ति के व विन्दु तक खींचो। यही च खा व चन्द्रमा का आपेक्षिक मार्ग होगा, यदि यह मान लिया जाय कि भूछाया छ विन्दु पर स्थिर है।

यदि छ से च व पर छ फ लम्ब डाला जाय तो यही चन्द्रमा और भूछाया के केन्द्रों की निकटतम दूरी होगी। यदि छ को केन्द्र मानकर म के समान त्रिज्या से वृत्त खींचा जाय जो च व को दो विन्दुओं स, सा पर काटे तो यही दो बिन्दु आपेक्षिक मार्ग पर चन्द्रमा के स्पर्श और मोक्षकाल के स्थान होंगे। यदि इन पर विन्दुओं से च क के समानान्तर रेखाएँ खींची जायँ तो ये चन्द्रमा के यथार्थ मार्ग के जिन विन्दुओं पर पहुँचेंगी वही स्पर्श और मोक्षकाल के यथार्थ स्थान होंगे।

यदि क च ख कोण को इ और का च खा कोण को ई मान लिया जाय तो

$$\text{स्परे इ} = \frac{\text{कख}}{\text{कच}} = \frac{\text{शा}}{\text{चा}}$$

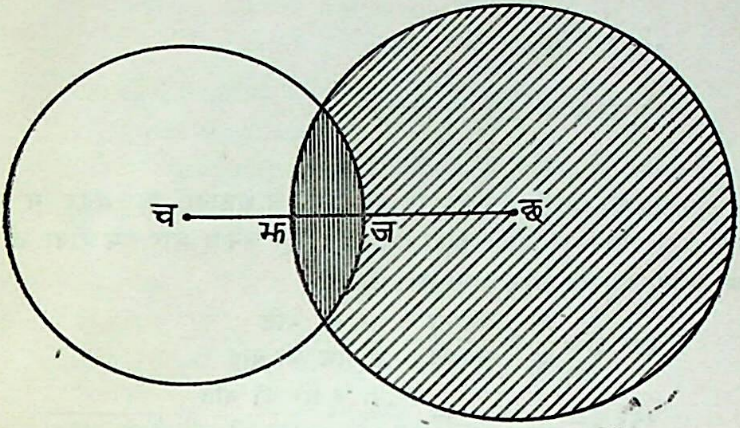
$$\text{स्परे ई} = \frac{\text{का खा}}{\text{का च}} = \frac{\text{क ख}}{\text{का च}} = \frac{\text{शा}}{\text{क च} - \text{क का}} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}}$$

कोण च छ फ और छ च फ का योग समकोण के समान है क्योंकि च ब पर छ फ लम्ब खींचा गया है परन्तु छ च फ और फ च क कोणों का योग भी समकोण के समान है क्योंकि चछ छप पर लम्ब है और च क, छ प के समानान्तर है। इसलिए कोण च छ फ = कोण फ च क = ई,

∴ छ फ = च छ कोज्या ई = श कोज्या ई

यदि श कोज्या ई का मान भूछाया और चंद्रमा के व्यासार्धों के योग से अधिक होगा तो ग्रहण नहीं लगेगा।

परन्तु यदि श कोज्या ई, म से छोटा होगा तो ग्रहण अवश्य लगेगा। यदि यह जानना हो कि खंड ग्रहण लगेगा या सर्वग्रास तो दोनों का अंतर निकालना चाहिये। यदि म—श कोज्या ई का मान चन्द्रमा के व्यास से छोटा हो तो समझना चाहिये कि खंड ग्रहण लगेगा और यदि इसका मान चन्द्रमा के व्यास से बड़ा हो तो सर्वग्रास ग्रहण लगेगा क्योंकि चित्र ६६ से प्रकट है कि म—श कोज्या ई = चन्द्रमा का ग्रसित भाग। इसलिए यदि ग्रसित भाग चन्द्रमा के व्यास से कम होगा तो स्पष्ट है कि सर्वग्रास ग्रहण नहीं लग सकता। परन्तु यदि ग्रसित भाग चन्द्रमा के व्यास के अधिक है जो सर्वग्रास ग्रहण अवश्य लगेगा।



चित्र ६६

चित्र ६६ चन्द्रमा और भूछाया का उस समय का चित्र है जब कि चन्द्रमा भूछाया से निकटतम अन्तर पर रहता है अर्थात् जब चन्द्रमा चित्र ६८ के फ बिन्दु पर रहता है और भूछाया छ पर। यह स्पष्ट है कि छ झ भूछाया का व्यासार्ध और च ज चन्द्रमा का व्यासार्ध है। चन्द्रमा का ग्रसित भाग ज झ के समान है। अब देखना है कि ज झ का परिमाण क्या है ?

ज झ = छ झ − छ ज

= छ झ − (च छ − च ज)

= छ झ + च ज − च छ

= म − श कोज्या ई

यदि म − श कोज्या ई शून्य के समान हो अर्थात् यदि म = श कोज्या ई तो ग्रहण नहीं लगेगा क्योंकि चन्द्रमा भूछाया को स्पर्श करता हुआ निकल जायगा। ऐसी दशा में भूछाया के केन्द्र से पात का अन्तर छ प का परिमाण यों निकलेगा—

यह प्रकट है कि कोण च प छ = इ,

$$\therefore \text{स्परे इ} = \frac{\text{च छ}}{\text{छ प}}$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{\text{च छ}}{\text{स्परे इ}} = \frac{\text{श}}{\text{स्परे इ}}$$

परन्तु ऊपर मान लिया गया है कि

म = श कोज्या ई

$$\therefore \text{श} = \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई}}$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई} \times \text{स्परे इ}}$$

$$= \text{म छेरे ई कोस्परे इ}$$

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जब पात से भूछाया का अंतर म छेरे ई कोस्परे इ के समान या अधिक होगा तब ग्रहण नहीं लगेगा और कम होगा तो ग्रहण अवश्य लगेगा। परन्तु ऊपर माना गया है कि

$$\text{स्परे इ} = \frac{\text{शा}}{\text{चा}} = \frac{\text{चन्द्रमा के शर की गति}}{\text{चन्द्रमा के भोगांश की गति}}$$

$$\text{स्परे ई} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}} = \frac{\text{चन्द्रमा के शर की गति}}{\text{सूर्य और चन्द्रमा की गतियों का अंतर}}$$

और म = भूछाया और चन्द्रमा के व्यासार्धों का योग

इसलिए यह तीनों गुणक चन्द्रमा और सूर्य की गतियों पर निर्भर हैं जो अस्थिर हैं इसलिए छ प का मान भी अस्थिर है। यहाँ इ क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षा के बीच का कोण है इसलिए वह ज्ञात है परन्तु ई अज्ञात है इसलिए पहले ई को ही जानना चाहिए। ऊपर के सम्बन्ध से स्पष्ट है कि

$$\frac{\text{स्परे ई}}{\text{स्परे इ}} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}} \div \frac{\text{शा}}{\text{चा}} = \frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}}$$

$$\therefore \text{स्परे ई} = \frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}} \times \text{स्परे इ}$$

$\because$ इ, चा और रा के मध्यम मान क्रमशः ५°९′, ७९०′३५″ और ५९′८″ है। इसलिए

$$\frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}} = \frac{७९०'३५''}{७९०'३५' - ५९'८''} = \frac{७९०'३५''}{७३१'२७''} = १\cdot०८०८४$$

$$\therefore \text{स्परे ई} = १\cdot०८०८४ \times \text{स्परे } ५°९'$$

$$= १\cdot०८०८४ \times \cdot०९०१$$

$$= \cdot०९७४$$

$$\therefore \text{ई} = ५°३४'$$

$$\therefore \text{छ प} = \text{म छेरे ई को स्परे इ}$$

$$= \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई स्परे इ}}$$

$$=\frac{म}{कोज्या\ ५°३४'\ स्परे\ ५°९'}$$

परन्तु म=भूछाया और चन्द्रमा के व्यासार्धों का योग

∴ म का मध्यम मान

=भूछाया का मध्यम व्यासार्ध+चन्द्रमा का मध्यम व्यासार्ध

भूछाया का मध्यम व्यासार्ध=चन्द्रमा का मध्यम लंबन+सूर्य का मध्यम लंबन

—सूर्य का मध्यम व्यासार्ध

=५७′११″+८″·५—१६′१″

=४१′१८″·५

इसका $\frac{१}{५०}$ और बढ़ाने पर भूछाया का मध्यम व्यासार्ध

=४१′१८″·५+४९″·६

=४२′८″=४२′·१३५

और चन्द्रमा का मध्यम व्यासार्ध=१५′३५″=१५′·५८३

∴ म=४२′·१३५+१५′·५८३=५७′·७२

$$∴ छ\ प=\frac{५७'·७२}{कोज्या\ ५°३४'\ स्परे\ ५°९'}$$

∴ लरि (छ प)=लरि ५७′·७२—लरि कोज्या ५°३४′—लरि स्परे ५°९′

=१·७६१४—९·९९७९—८·९५४६

=२·८०८९

∴ छ प=६४४′=१०°४४′

यह चन्द्रग्रहण की मध्यम सीमा है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि छ प का महत्तम मान १२°३६′ और लघुतम मान ९° है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि छ प १२°३६′ से अधिक हो तो चन्द्र ग्रहण असम्भव है और ९° से कम हो तो ग्रहण अवश्य पड़ेगा परन्तु यदि छ प ९° से अधिक और १२°३६′ से कम हो तो ग्रहण सम्भव हो सकता है, जिसका निश्चय पूर्णिमान्तकालिक सूर्य और चन्द्रमा के लंबन तथा इनके स्पष्ट बिम्बार्ध से करना चाहिए।

यह पहले ही बतला दिया गया है कि छ प भूछाया के केन्द्र से पात की दूरी है परन्तु भूछाया का केन्द्र सूर्य के केन्द्र से १८०° आगे रहता है और चन्द्रमा के दोनों पातों का अन्तर भी १८०° होता है इसलिए यदि पूर्णिमान्तकालिक सूर्य से चन्द्रमा के किसी पात का अन्तर १२°३६′ से अधिक हो तो ग्रहण असम्भव है, ९° से कम

हो तो ग्रहण अवश्य पड़ेगा और इन दोनों के बीच में हो तो सम्भव है ग्रहण लगे। इसलिए चन्द्रग्रहण की महत्तम सीमा १२°३६′ और लघुत्तम सीमा ९° होती है।

सूर्यग्रहण की महत्तम और लघुत्तम सीमा—जिस तरह चित्र ९३ से सिद्ध होता है कि जब चन्द्रमा पृथ्वी की छाया स ह में आ जाता है तब चन्द्र-ग्रहण पड़ता है उसी तरह उसी चित्र से यह भी सिद्ध होता है कि जब चन्द्रमा अमावस्या के अंत में पृथ्वी की छाया बनानेवाली स्पर्श-रेखाओं के सा, हा विन्दुओं के बीच में आ जाता है तब पृथ्वी पर कहीं न कहीं सूर्य-ग्रहण अवश्य देख पड़ेगा क्योंकि ऐसी स्थिति में चन्द्रमा की छाया पृथ्वी के किसी न किसी स्थान पर अवश्य पड़ेगी। जिस प्रकार स ह के व्यासार्ध के परिमाण से चन्द्र-ग्रहण की सीमा जानी जा सकती है उसी प्रकार सा हा के व्यासार्ध के परिमाण से सूर्य-ग्रहण की सीमा जानी जा सकती है।

∠सा प छा = ∠प न पा + ∠प सा पा

= ∠रि प र + ∠प सा पा

= सूर्य की त्रिज्या − सूर्य का लंबन + चन्द्रमा का लंबन

∴ ∠सा प छा का मध्यम मान

= १६′१″ − ८″·५ + ५७′११″

= ७३′३″.५

= ७३′·०५८

सूर्य-ग्रहण के संबंध में भी सूत्र छ प = म छेरे ई कोस्परे इ, काम दे सकता है।

यहां म = ∠सा प छा + चन्द्रमा का व्यासार्ध

= ७३′.०५८ + १५′.५८३ = ८८′.६४

∴ छ प = ८८′.६४ / (कोज्या ५°३४′ स्परे ५°९′)

∴ लरि छ प = लरि ८८′.६४ − लरि कोज्या ५°३४′ − लरि स्परे ५°९′

= १.९४७६ − ९.९९७९ − ८.९५४६

= २.९९५१

∴ छ प = ९८८′.६

= १६°२८′.६

यह सूर्य-ग्रहण की मध्यम सीमा है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि सूर्य-ग्रहण के संबंध में छ प का महत्तम मान १८°.५ और लघुत्तम मान १५°.३ है। अर्थात् यदि अमावस्या के अंत में सूर्य से चंद्रमा के किसी पात का अंतर १५°·३ से कम हो तो समझना चाहिए कि सूर्य-ग्रहण अवश्य पड़ेगा और यदि यह अंतर १८°·५ से अधिक है तो सूर्य-ग्रहण सम्भव नहीं है। परन्तु यदि यह अंतर इन दोनों के बीच

में हो अर्थात् १५°.३ से अधिक और १८°.५ से कम हो तो सम्भव है कि ग्रहण लगे जिसका निश्चय अमावस्या के अंतकाल के सूर्य, चंद्रमा के लंबन और उनकी स्पष्ट गतियों के द्वारा करना चाहिये।

चन्द्र-ग्रहण उन सब स्थानों मे देख पड़ता है जहां ग्रसित चंद्रमा का उदय हो चुकता है। परन्तु सूर्य-ग्रहण का देखना उन सब स्थानों से सम्भव नहीं जहाँ सूर्य का उदय हुआ रहता है क्योंकि चन्द्रमा के लंबन तथा इसकी छाया के बहुत पतली होने के कारण यह थोड़े ही स्थानों से देखा जा सकता है जिसका निश्चय करना सहज नहीं है।

पर्वान्त काल में सूर्य, चन्द्रमा और पात को स्पष्ट करने की रीति—

गतैष्यपर्वनाडीनां स्वफलेनोन संयुतौ।
समलिप्तौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा ॥८॥

अनुवाद—(८) जिस समय के सूर्य और चन्द्रमा स्पष्ट किये गये हों उस समय से पर्वान्त काल अर्थात् पूर्णमासी या अमावस्या के अंत काल का जो अंतर हो उतने समय की सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियां जानकर उनको सूर्य और चंद्रमा के स्पष्ट भोगांशों से क्रमशः घटाने या जोड़ने से जो आवें उन्हीं को पर्वान्तकालिक स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट चन्द्रमा समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल से पीछे हो तो घटाना चाहिये और पहले हो तो जोड़ना चाहिये। परन्तु पात का स्पष्ट स्थान जानने के लिए इसकी विलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल से पीछे हो तो उतने समय की पात की गति बढ़ानी चाहिये और पहले हो तो घटानी चाहिये क्योंकि पात की गति उलटी होती है।

विज्ञान भाष्य—जैसे मध्यमाधिकार ६७वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि किसी समय का मध्यम ग्रह दिया हुआ हो तो किसी अन्य समय का मध्यम ग्रह कैसे जानना चाहिये उसी प्रकार यहाँ बतलाया जाता है कि किसी समय के सूर्य चन्द्रमा और राहु के स्पष्ट भोगांश ज्ञात हों तो पर्वान्त काल के सूर्य और चन्द्रमा और राहु के स्पष्ट भोगांश कैसे जानने चाहिए। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि ग्रहण की गणना करने के लिए पूर्णमासी और अमावस्या के अन्तकालों के सूर्य, चन्द्रमा और राहु के स्पष्ट स्थानों तथा उनकी गतियों से ही काम लिया जाता है जैसा कि ऊपर की बतलायी गयी रीतियों से स्वयम् प्रकट होता है।

ग्रहण का कारण—

छादको भास्करस्येन्दुरधस्ताद् घनवद् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥९॥

अनुवाद—(९) सूर्य से नीचे रहने के कारण चन्द्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा भू-छाया में प्रवेश कर जाता है इसलिए चन्द्रमा को भू-छाया ढक लेती है। इसलिये सूर्य-ग्रहण में चंद्रमा का छादक होता है।

विज्ञान भाष्य—यह बात पहले ही बतलायी जा चुकी है इसलिए यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

ग्रास का परिमाण—

तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयोः।
योगार्धात्प्रोज्झ्य यच्छेषं तमश्छन्नं तदुच्यते ॥१०॥

अनुवाद—(१०) पर्वान्तकालिक चन्द्रमा के विक्षेप अथवा शर को छाद्य और छादक के व्यासार्धों के योग से घटा दो, जितना शेष रहे वही ग्रास का परिमाण होगा।

विज्ञान भाष्य—यह चित्र ९९ की व्याख्या से स्पष्ट है। यह चित्र सूर्य और चन्द्रमा दोनों के लिए समान लागू है। चंद्र-ग्रहण में छ छादक और च छाद्य है और सूर्य-ग्रहण में यदि छ सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो छ छाद्य और च छादक हो जायगा।

सर्वग्रास ग्रहण और खंड ग्रहण की अवस्था—

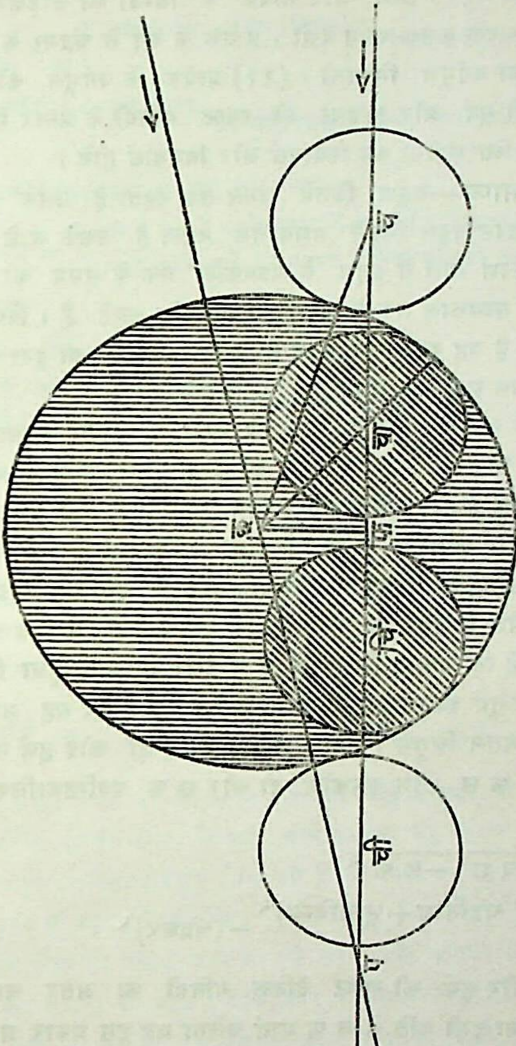
ग्राह्यमानाधिके तस्मिन्सकलं न्यूनमन्यथा।
योगार्धादधिके न स्याद्विक्षेपे ग्रास संभवः ॥११॥

अनुवाद—(११) यदि छाद्य के बिम्बमान से ग्रास का परिमाण अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण अर्थात् सर्वग्रास ग्रहण और कम हो तो खंड ग्रहण लगता है। परन्तु यदि चन्द्रमा का विक्षेप छाद्य और छादक के व्यासार्धों के योग से अधिक हो तो ग्रहण नहीं हो सकता।

विज्ञान भाष्य—यह भी चित्र ९९ की व्याख्या में समझा दिया गया है। वहाँ जो कुछ चन्द्रमा के विषय में कहा गया है वही सूर्य के सम्बन्ध में भी लागू हो सकता है।

स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध जानने की रीति

ग्राह्यग्राहकसंयोगवियोगौ दलितौ पृथक्।
विक्षेपवर्गहीनाभ्यां तद्वर्गाभ्यामुभे पदे ॥१२॥
षष्ठ्या संगुण्य सूर्येन्द्वोः भुक्त्यन्तरविभाजिते।
स्यातां स्थितिविमर्दार्धे नाडिकादिफले तयोः ॥१३॥



चित्र १००

अनुवाद—(१२) छाद्य और छादक के बिम्बों को जोड़कर और घटाकर प्रत्येक का आधा करके अलग-अलग रखो ; प्रत्येक के वर्ग से चंद्रमा के विक्षेप के वर्ग को घटाकर शेष का वर्गमूल निकालो। (१३) प्रत्येक के वर्गमूल को ६० से गुणा करके गुणनफल को सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियों के अन्तर से भाग दे दो। भाग देने से जो लब्धि आवेगी वह स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध होंगे।

विज्ञान भाष्य—ग्रहण जितने समय तक रहता है उसके आधे समय को स्थित्यर्ध और सर्वग्रास ग्रहण जितने समय तक रहता है उसके आधे को विमर्दार्ध कहते हैं। अथवा स्पर्श काल से ग्रहण के मध्यकाल तक के समय को स्थित्यर्ध और सम्मीलन काल से मध्यकाल तक के समय को विमर्दार्ध कहते हैं। स्थित्यर्ध का दूना करने से जो आता है वह कुल ग्रहण काल है और विमर्दार्ध का दूना कर देने से जो आता है वह सर्वग्रास ग्रहण का समय है।

चित्र १०० में छ प क्रान्तिवृत्त, च प चंद्र कक्षा, प चन्द्रमा का पात, छ भूछाया का केन्द्र, च स्पर्श काल के समय चन्द्रमा का केन्द्र, चा सम्मीलन-काल के समय चन्द्रमा का केन्द्र, चि उन्मीलन के समय चन्द्रमा का केन्द्र, ची मोक्षकाल के समय चन्द्रमा का केन्द्र और फ ग्रहण के मध्यकाल के समय चन्द्रमा का केन्द्र है। यहाँ सुविधा के लिए भूछाया को स्थिर मान लिया गया है इसलिए चन्द्रमा की गति अपनी कक्षा में सापेक्ष है जैसा कि चित्र ६८ में च ब रेखा से दिखलाया गया है। इसलिए यह सिद्ध है कि चन्द्रमा जिस गति से च रेखा पर जाता हुआ दिखलाया गया है वह चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियों का अन्तर है। यदि यह मान लिया जाय कि छ प च एक समतल त्रिभुज (plane triangle) है तो कोई हर्ज न होगा। ऐसी दशा में जब कि च फ छ कोण समकोण हो और छ फ पर्वान्तकालिक चन्द्रमा का शर हो तब

$$\text{च फ} = \sqrt{\text{च छ}^2 - \text{छ फ}^2}$$

$$= \sqrt{\left(\frac{\text{चंद्रबिम्ब} + \text{भूभाबिम्ब}}{2}\right)^2 - (\text{चंद्रशर})^2}$$

यदि चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट दैनिक गतियों का अंतर चा—रा हो तो जितनी देर में चन्द्रमा इसी गति से च फ मार्ग चलेगा वह इस प्रकार ज्ञात होगा—

जब चन्द्रमा चा—रा भाग ६० घड़ियों में चलता है तब च फ भाग

$$\frac{60 \times \text{च फ}}{\text{चा-रा}}$$ घड़ियों में चलेगा।

यदि च फ की जगह इसका ऊपर बतलायी गयी रीति से जाना हुआ मान रखा जाय तो स्थित्यर्ध काल यह होगा—

$$\frac{६०}{चा - रा} \times \sqrt{\left[\left(\frac{चंद्रबिम्ब + भूभाबिम्ब}{२}\right)^{२} - (चन्द्रशर)^{२}\right]}$$

यदि $\frac{चन्द्रबिम्ब + भूभाबिम्ब}{२}$ को मानैक्यखंड लिखा जाय और

इस सूत्र को सरल किया जाय तो यह रूप होगा—

$$स्थित्यर्ध = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{(मानैक्यखंड + शर)\ (मानैक्यखंड - शर)}}{चन्द्र \text{ और } सूर्य \text{ की } स्पष्ट \text{ दैनिक } गतियो \text{ का } अन्तर}$$

इसी प्रकार

$$चा\ फ = \sqrt{चा\ छ^{२} - छ\ फ^{२}}$$

$$= \sqrt{\left[\left(\frac{भूभाबिम्ब - चंद्रबिम्ब}{२}\right)^{२} - (चन्द्रशर)^{२}\right]}$$

इसलिए विमर्दार्ध काल

$$= \frac{६०}{चा - रा} \times \sqrt{\left[\left(\frac{भूभाबिम्ब - चंद्रबिम्ब}{२}\right)^{२} - \left(चंद्रशर\right)^{२}\right]}$$

यदि $\frac{भूभाबिम्ब - चंद्रबिम्ब}{२}$ को मानान्तरखंड लिखा जाय और इस सूत्र को

सरल किया जाय तो

$$विमर्दार्ध = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{(मानान्तर\ खंड + शर)\ (मानान्तर\ खंड - शर)}}{चंद्र \text{ और } सूर्य \text{ की } स्पष्ट \text{ दैनिक } गतियों \text{ का } अन्तर}$$

इनके सरल करने पर जो समय आवेगा वह घड़ियों में होगा। परन्तु यह स्थूल होगा क्योंकि इसकी गणना में सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गतियों का अन्तर तथा पर्वान्तकालीन चन्द्रशर लिये गये हैं जो स्पर्श या सम्मीलनकाल की स्पष्ट गतियों और शर से बहुत भिन्न होंगे। इसलिए आवश्यक यह है कि पर्वान्तकाल के कुछ पहले और पीछे की प्रत्येक घड़ी या घंटे की स्पष्ट गतियों का अन्तर और चन्द्र-शर निकाल कर गणना की जाय। यदि ऊपर के नियम से ही स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध काल जाना जावें तो चाहिए कि पर्वान्त काल से इतना पहले के सूर्य, चन्द्रमा, राहु और चन्द्र शर के स्पष्ट स्थान निकाल कर इनसे फिर स्थित्यर्ध काल और विमर्दार्ध काल जाना जावे। ये पहले की अपेक्षा अधिक शुद्ध होंगे। इसी प्रकार कई बार स्थित्यर्ध काल और विमर्दार्ध काल निकाले जायँ तो अंत में ऐसा फल मिलेगा जो फिर भिन्न न हो सकेगा। यही शुद्ध स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्ध काल होंगे ऐसी क्रिया को असकृतकर्म कहते हैं। इसी की रीति अगले दो श्लोकों में बतलायी गयी है।

असकृत्कर्म से स्थित्यर्धं और विमर्दार्ध काल जानना—

स्थित्यर्धनाडिकाभ्यस्ता गतयष्षष्टिभाजिताः ।
लिप्तादि प्रग्रहे शोध्यं मोक्षे देयं पुनः पुनः ।।१४।।
तद्विक्षेपैः स्थितिदलं विमर्दार्धं तथाऽसकृत् ।
संसाध्यमन्यथा पाते तल्लिप्तादिफलं स्वकम् ।।१५।।

अनुवाद—(१४) सूर्य, चन्द्रमा और पातकी दैनिक गतियों को स्थित्यर्ध काल से (जो घड़ियों में होता है) गुणा करके साठ से भाग देने पर यह ज्ञात होता है कि सूर्य-चन्द्रमा और पात स्थित्यर्ध काल में कितना चलते हैं। इन परिमाणों को क्रमशः पर्वान्तकालीन सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों से घटा देने पर सूर्य और चन्द्रमा के स्पर्शकालीन भोगांश आ जाते हैं और जोड़ देने पर इनके मोक्षकालीन भोगांश आ जाते हैं। (१५) परन्तु स्पर्शकालीन पात का भोगांश जानने के लिए स्थित्यर्ध काल में पात जितना चलता है उसको पर्वान्तकालीन पात के भोगांश में जोड़ना चाहिए और मोक्षकालीन पात का भोगांश जानने के लिए उसको पर्वान्तकालीन पात के भोगांश से घटाना चाहिए क्योंकि पात की गति उलटी होती है। इस प्रकार स्पर्शकालीन सूर्य चन्द्रमा और पात के भोगांश से चन्द्रमा का शर और सूर्य चन्द्रमा की स्पष्ट गतियों को जान कर स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध काल फिर निकाले। इसी प्रकार कई बार के असकृत् कर्म से स्पर्श और मोक्ष काल का ज्ञान सूक्ष्मतापूर्वक हो सकता है। इसी प्रकार सम्मीलन और उन्मीलन काल की शुद्धता भी जाननी चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इसकी उपपत्ति पिछले पृष्ट में बतलायी जा चुकी है इसलिए अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

स्पर्श और मोक्षकाल तथा सम्मीलन और उन्मीलन जानने की रीति—

स्फुटतिथ्यवसाने तु मध्यग्रहणमादिशेत् ।
स्थित्यर्धनाडिकाहीने ग्रासो मोक्षस्तुसंयुते ।।१६।।
तद्वदेव विमर्दार्धं नाडिकाहीन संयुते ।
निमीलनोन्मीलनाख्ये भवेतां सकल ग्रहे ।।१७।।

अनुवाद—(१६) स्पष्ट तिथि के अंत में अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्या के अन्त में ग्रहण का मध्यकाल होता है। इस समय से स्थित्यर्धकाल घटा देने पर स्पर्शकाल का समय आता है और जोड़ देने पर मोक्षकाल का समय आता है। (१७) इसी प्रकार ग्रहण के मध्यकाल मे विमर्दार्ध काल घटा देने पर सर्वग्रास ग्रहण के आरम्भ काल अर्थात् सम्मीलन काल का पता लग जाता है और जोड़ देने पर उन्मीलन काल अर्थात् सर्वग्रास ग्रहण के अंतकाल का पता लग जाता है।

विज्ञान भाष्य—यह स्वयम् इतना स्पष्ट है कि अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

अब यह भी बतला देना आवश्यक है कि अन्य प्रथा के अनुसार ग्रहण का मध्यकाल, स्पर्शकाल, मोक्षकाल, सम्मीलनकाल और उन्मीलनकाल कैसे जाने जाते हैं?

चित्र ९८ में दिखलाया गया है कि पूर्णमासी के अन्त में चन्द्रमा और भूछाया के भोगांश समान होते हैं। इसलिए घ घड़ी उपरान्त चन्द्रमा और भूछाया के भोगांशों का अन्तर घ×(चा−रा) के समान होगा जब कि चा और रा चन्द्रमा और सूर्य अथवा भूछाया की प्रतिघड़ी की भोगांश गति हो। यदि चन्द्रमा के शर की गति प्रतिघड़ी शा हो तो घ घड़ी के उपरान्त इसके शर में घ×शा के समान परिवर्तन हो जायगा। यदि पूर्णिमान्तकाल में चन्द्रमा का शर श हो तो घ घड़ी के उपरान्त इसका शर श−घ×शा होगा। इसलिए घ घड़ी के उपरान्त चन्द्रमा और भूछाया के केन्द्रों का अन्तर मा यह होगा :—

$$\text{मा} = \sqrt{[\text{घ}\ (\text{चा} - \text{रा})\ ]^2 + (\text{श} - \text{घ} \times \text{शा})^2}$$

क्योंकि चन्द्रमा और भूछाया के भोगांशों का अन्तर भुज, चन्द्रमा का शर कोटि और दोनों के केन्द्रों का अन्तर कर्ण के समान होगा जैसा कि स्पर्शकाल और सम्मीलनकाल के समय की दशा चित्र १०० में दिखलायी गयी है। इस समीकरण के दोनों पक्षों का वर्ग कर देने से

$$\text{मा}^2 = [\ \text{घ}\ (\text{चा} - \text{रा})\ ]^2 + (\text{श} - \text{घ. शा})^2$$
$$= (\text{चा} - \text{रा})^2\ \text{घ}^2 + \text{श}^2 - २\ \text{श. शा. घ} + \text{घ}^2\ \text{शा}^2$$
$$= [\ (\text{चा} - \text{रा})^2 + \text{शा}^2\ ]\ \text{घ}^2 - २\ \text{श. शा. घ} + \text{श}^2$$
$$\text{या}\ [\ (\text{चा} - \text{रा})^2 + \text{शा}^2\ ]\ \text{घ}^2 - २\ \text{श. शा. घ} + \text{श}^2 - \text{मा}^2 = ०$$

यह घ का वर्ग समीकरण है जिससे घ के दो मान ज्ञात होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पूर्णिमान्त के पहले और पीछे २ बार चन्द्रमा भूछाया से समान अन्तर पर आता है। यदि मा के स्थान में मानैक्य खंड का मान रखकर घ के दो मान निकाले जायँ तो यह स्पर्शकाल और मोक्षकाल के समय होंगे। यदि यह दो मान काल्पनिक हों तो समझना चाहिए कि ग्रहण नहीं लगेगा, यदि समान हों तो समझना चाहिए कि ग्रहण का आरम्भ और अन्त एकसाथ होगा अर्थात् चन्द्रमा भू भा को केवल स्पर्श करता हुआ निकल जायगा परन्तु ग्रहण नहीं लगेगा।

यदि मा के स्थान में मानान्तर खंड का मान रखकर घ के दो मान निकाले जायँ तो सर्वग्रास ग्रहण के आरम्भ काल और अन्त काल अथवा सम्मीलन और

उन्मीलन काल के समय ज्ञात होंगे। यदि यह दो मान काल्पनिक हों तो समझना चाहिए कि सर्वग्रास ग्रहण नहीं लगेगा और यदि दोनों मान समान हों तो समझना चाहिए कि सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ और अन्त एकसाथ ही होगा अर्थात् जैसे ही चन्द्रमा का पूरा विम्ब छाया में आवेगा वैसे ही छाया के वाहर भी होने लगेगा।

इस समीकरण से घ के दोनों मान नीचे लिखे सूत्र के अनुसार होंगे :—

$$घ = \frac{२\,श.\,शा. \pm \sqrt{४श^{२}.\,शा^{२} - ४\left[(चा - रा)^{२} + शा^{२}\right]\left[श^{२} - मा^{२}\right]}}{२\left[(चा - रा)^{२} + शा^{२}\right]}$$

$$= \frac{श.\,शा. \pm \sqrt{श^{२}.\,शा^{२} - \left[(चा - रा)^{२} + शा^{२}\right]\left[श^{२} - मा^{२}\right]}}{(चा - रा)^{२} + शा^{२}}$$

घ के इन दोनों मानों के योग का आधा

$$= \frac{श.\,शा}{(चा - रा)^{२} + शा^{२}}$$

यही ग्रहण का मध्यकाल है, अर्थात् पूर्णिमान्त के इतने ही समय उपरान्त ग्रहण का मध्य होता है।

सूर्य, चन्द्रमा के विपुवांश और क्रान्ति से भी ग्रहण का स्पर्श काल, सम्मीलन-काल इत्यादि जानने की रीति है जो उपर्युक्त रीति से वहुत कुछ मिलती-जुलती है परन्तु वह विस्तार भय से यहां नहीं लिखी जायगी।

यहां यह वतला देना आवश्यक समझ पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त में स्पर्श काल और मोक्ष काल इत्यादि के जानने का जो नियम दिया गया है उससे सिद्ध होता है कि ग्रहण का मध्य काल पूर्णिमा के अन्त में होता है परन्तु ऊपर वतलायी गयी दूसरी रीति में ग्रहण का मध्य काल पूर्णिमान्त के कुछ उपरान्त आता है। दूसरी रीति विलकुल शुद्ध है और पहली कुछ स्थूल। इसका कारण चित्र ६८ से स्पष्ट हो जाता है। ग्रहण का मध्यकाल उस समय होता है जिस समय चन्द्रमा भूभा से निकटतम अन्तर अर्थात् फ पर होता है जब कि छ फ चन्द्रमा की कक्षा पर लम्ब होता है। ऐसी दशा में चन्द्रमा का शर पूर्णिमान्त काल के शर से कुछ छोटा होता है और चन्द्रमा भी पूर्णिमान्त काल के स्थान च से कुछ आगे बढ़ा रहता है।

यह जानना कि ग्रास का परिमाण स्पर्शकाल से किस समय पर कितना होता है—

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयोः।
भुक्त्यन्तरं समाहन्यात् षष्ठ्याप्ताः कोटिलिप्तिकाः ॥१८॥
भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्ध सङ्गुणाः।
स्फुटस्थित्यर्धसम्भक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः स्मृताः ॥१६॥

क्षेपो भुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रव: स्मृत: ।
मानयोगार्धत: प्रोज्झ्य ग्रासस्तात्कालिको भवेत् ।।२०।।

अनुवाद—(१८) ग्रहण के आरम्भ काल से कुछ घड़ी पीछे परन्तु मध्य ग्रहण के पहले ग्रास का परिमाण कितना होता है यह जानने के लिए इष्ट घड़ी को स्थित्यर्धकाल से घटाकर शेष को चन्द्रमा और सूर्य की दैनिक स्पष्ट गतियों के अन्तर से गुणा करके गुणनफल को ६० से भाग दे दो । इस भागफल को कोटिकला कहते हैं जब कि दैनिक गतियां कलाओं में प्रकट की गयी हों । (१९) सूर्य ग्रहण का ग्रासमान जानने के लिए ऊपर की रीति से निकाली गयी कोटिकला को मध्य स्थित्यर्ध से गुणा करके गुणनफल को स्पष्ट स्थित्यर्ध से भाग देने पर जो आता है उसे स्पष्ट कोटिकला कहते हैं । (२०) उस समय के चन्द्रमा के शर को भुज मानकर इसके वर्ग को कोटिकला के वर्ग में जोड़कर योगफल का वर्गमूल निकालने से जो कर्ण आये उसे मानैक्य खंड से घटाने पर जो आवे वही तात्कालिक ग्रास होता है ।

विज्ञान भाष्य—इस नियम की उपपत्ति चित्र ९८, ९९ और १०० के संबंध में अच्छी तरह समझायी गयी है । १६-१७ श्लोकों के विज्ञान भाष्य में जो सूत्र $\text{मा} = \sqrt{[\text{घ}(\text{चा}-\text{रा})]^2 + (\text{श}-\text{घ}\times\text{शा})^2}$ स्थापित किया गया है वह इसी नियम का दूसरा रूप है । इस सूत्र में घ पर्वान्तिकाल से पहले या पीछे का समय है परन्तु नियम में स्पर्शकाल के उपरान्त का इष्टकाल माना गया है इसलिए स्थित्यर्ध से इष्टकाल घटाने का आदेश है । ऐसा करने से जो आवे उसको घ की जगह रखकर सूत्र को सरल करने पर मा का जो परिमाण आवेगा उसी को मानैक्य खंड से घटाने पर तात्कालिक ग्रास का परिमाण जाना जा सकता है । यहां घ (चा — रा) ही कोटिलिप्ता है क्योंकि चा — रा सूर्य और चन्द्रमा की प्रति घड़ी की गतियों का अन्तर है । यदि दैनिक स्पष्ट गतियों का अन्तर दिया हुआ हो तो इसको ६० से भाग देना पड़ता है जैसा कि नियम में बतलाया गया है । श — घ × शा तात्कालिक शर है और मा भूभा तथा चन्द्रमा के केन्द्रों का तात्कालिक अन्तर है । यह अन्तर मानैक्यखंड से जितना कम होता है वही ग्रास का परिमाण है जिसकी व्याख्या चित्र ९९ के सम्बन्ध में अच्छी तरह की गयी है । उस चित्र से भिन्नता केवल इतनी है कि उसमें चन्द्रमा और भूभा के केन्द्रों की निकटतम दूरी ली गयी है जो श × कोज्या ई के समान होती है और वहाँ वह दूरी ली गई है जो स्पर्शकाल से इष्ट घड़ी उपरान्त होती है ।

यदि मानैक्य खंड अर्थात् भूभा और चन्द्रमा के व्यासार्धों के योग को पहले की तरह म अक्षर से सूचित किया जाय तो स्पर्शकाल से घ घड़ी उपरान्त ग्रास का परिमाण यह होगा :—

$$ग्रास = म - \sqrt{\left[\left\{ (स्थि - घ) \times \frac{चा - रा}{६०} \right]^{२} + श^{२} \right\}}$$

जहाँ स्थि स्थित्यर्ध के लिए, श चन्द्रमा के तात्कालिक शर के लिए और चा – रा सूर्य चन्द्रमा के दैनिक गतियों के अन्तर लिए लिखा गया है। यदि चा – रा प्रति घटी का अन्तर हो तो ६० से भाग देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

सूर्य ग्रहण के सम्बन्ध की बात आगे आनेवाले सूर्य ग्रहणाधिकार में बतलाई जायगी।

मध्य ग्रहण के उपरान्त परन्तु मोक्षकाल से कुछ घड़ी पहले ग्रास का परिमाण—

मध्यग्रहणतश्चोर्ध्वम् इष्टनाडीर्विशोधयेत् ।
स्थित्यर्धान्मौक्तिकाच्छेषात् प्राग्वच्छेषस्तु मौक्षिके ॥२१॥

अनुवाद—(२१) जब यह जानना हो कि मध्य ग्रहण के उपरान्त मोक्षकाल से कुछ घड़ी पहले ग्रास का परिमाण क्या है तब मोक्षकाल सम्बन्धी स्थित्यर्ध से इष्ट घड़ी घटाकर जो शेष बचे उससे ऊपर के १८-२० श्लोकों में बतलायी गयी रीति के अनुसार ग्रासमान निकाले। इससे यह जाना जायगा कि मोक्षकाल से इष्ट घड़ी पहले चन्द्रमा का कितना ग्रस्त भाग शेष है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १८-२० श्लोकों में बतलाये गये नियम के समान है। उससे यह जाना जाता है कि इष्टकाल में कितना भाग ग्रस्त हो जाता है और इससे यह जाना जाता है कि इष्टकाल में कितना ग्रस्त भाग शेष रहता है क्योंकि मध्य ग्रहण के पहले जिस क्रम से ग्रस्त भाग की वृद्धि होती है, मध्यग्रहण के उपरान्त ठीक उसके विलोम क्रम से ग्रस्त भाग की क्षीणता होती है।

ग्रास का परिमाण ज्ञात हो तो इष्टकाल जानना—

ग्राह्यग्राहकयोगार्धात् प्रोज्झ्य संछन्नलिप्तिका: ।
तद्वर्गात्प्रोज्झ्य तत्कालविक्षेपस्य कृतिं पदम् ॥२२॥
कोटिलिप्ता रवे: स्पष्टस्थित्यर्धेनाहता हृता: ।
मध्येन कोटिलिप्ताभिस्स्थितिवद्ग्रासनाडिका: ॥२३॥

अनुवाद—(२२) मानैक्य खंड से ग्रस्त भाग की कला को घटाकर शेष का वर्ग करो और इसके वर्ग से चन्द्रमा के तात्कालिक शर के वर्ग को घटा दो और शेष का वर्गमूल निकालो तो (२३) कोटिलिप्ता का मान ज्ञात होगा। सूर्यग्रहण में इस कोटिलिप्ता को स्पष्ट स्थित्यर्ध से गुणा करके गुणनफल को मध्यम स्थित्यर्ध से भाग देने पर जो आता है वह कोटिकला है। इसी कोटिकला से स्थित्यर्धकाल जानने की रीति

से घड़ी बनावे अर्थात् कोटिकला को ६० से गुणा करके सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियों के अन्तर से भाग दे। जो भागफल आवे उसको स्थित्यर्धकाल से घटा दे तो यह ज्ञात होगा कि स्पर्शकाल के उपरान्त कितनी घड़ी बीती है। इसी का नाम ग्रासनाड़िका है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १८-२० श्लोकों में बतलाये गये नियम का विलोम है। वहां यह बतलाया गया है कि आरम्भ काल से इष्ट घड़ी उपरान्त ग्रास का परिमाण क्या होता है और यहां यह बतलाया गया है कि यदि ग्रास का परिमाण ज्ञात हो तो इष्टकाल कैसे जाना जाता है। इसलिए इसकी उपपत्ति भी वही है। इसका रूप यह है :—

$$\text{कोटिकला} = \sqrt{(\text{म} - \text{ग्रास})^2 - \text{श}^2}$$

$$\text{ग्रासनाडिका} = \text{घ} = \text{स्थि} - \frac{60}{\text{चा} - \text{रा}} \sqrt{(\text{म} - \text{ग्रास})^2 - \text{श}^2}$$

वलन जानना—

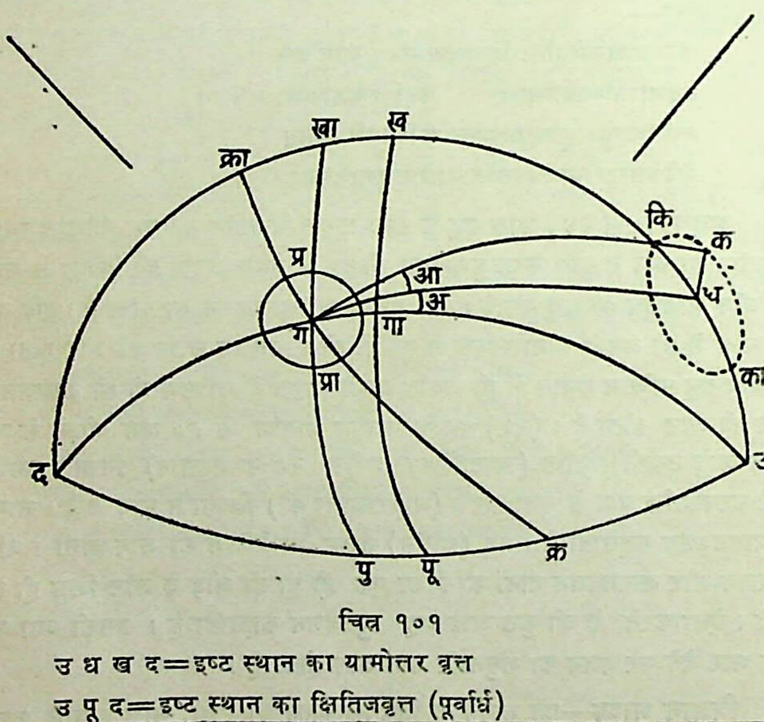
> **नतज्याक्षज्योर्घात: त्रिज्याप्तस्तस्य कार्मुकम् ।**
> **तदंशास्सौम्ययाम्यास्ते पूर्वापरकपालयो: ।।२४।।**
> **राशित्रययुताद्ग्राह्यात्क्रान्त्यंशै र्दिक्समे युतात् ।**
> **भेदेऽन्तराज्ज्यावलनसप्तत्यंशोऽङ्गुलात्मिका ।।२५।।**

अनुवाद—(२४) छाद्य ग्रह के समप्रोतवृत्त के नतांश की ज्या को इष्ट स्थान के अक्षांश की ज्या से गुणा करके गुणनफल को ग्रह के अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या से भाग दे दे, और भागफल का धनु बनावे। यही धनुग्रह का आक्षवलन कहलाता है। यदि ग्रह पूर्वक पाल में हो अर्थात् यामोत्तरवृत्त से पूर्व हो तो आक्षवलन उत्तर की ओर होता है और यदि ग्रह पच्छिम कपाल में हो अर्थात् यामोत्तरवृत्त से पच्छिम हो तो आक्षवलन दक्षिण की ओर होता है। (२५) ग्रह के सायन भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आवे उसकी क्रान्ति (स्पष्टाधिकार श्लोक २८ के अनुसार) निकाले अर्थात् उसको परमक्रान्ति ज्या से गुणा करके (अहोरात्रवृत्त की) त्रिज्या से भाग दे दे। भागफल आयनवलन कहलाता है। यह (क्रान्ति) उत्तर या दक्षिण की ओर होगी। यदि आक्षवलन और आयनवलन दोनों की दिशा एक ही हो तो जोड़ दे और भिन्न हो तो घटा दे। ऐसा करने से जो कुछ आवे वह स्फुटवलन कहलाता है। इसकी ज्या को ७० से भाग देने पर वलन का अंगुलादि मान ज्ञात होता है।

विज्ञान भाष्य—यह जानने के लिये कि ग्रहण का स्पर्श, मोक्ष इत्यादि छाद्य ग्रह के किस विन्दु से आरम्भ या अन्त होता है, स्फुटवलन की आवश्यकता पड़ती है।

छाद्य ग्रह के पूर्व या पच्छिम विन्दु से जितने कोण पर क्रान्तिवृत्त उत्तर या दक्षिण होता है उसी को स्फुटवलन कहते हैं। ग्रह विम्ब का पूर्व और पच्छिम विन्दु इस प्रकार जाना जाता है—ग्रह के केन्द्र से क्षितिज के उत्तर-दक्षिण विन्दुओं को जाता हुआ एक महावृत्त खींचते हैं जिसे उस ग्रह का समप्रोतवृत्त (circle of position) कहते हैं। यह समप्रोतवृत्त सममण्डल से[1] समकोण बनाता है। सममण्डल के समानान्तर ग्रह विम्ब के केन्द्र से जो ऊर्ध्व वृत्त खींचा जाता है वह भी समप्रोतवृत्त से समकोण पर होता है। यह ऊर्ध्ववृत्त ग्रह-विम्ब के किनारे के जिन विन्दुओं पर काटता है उनमें से जो पूर्व की ओर होता है उसे ग्रह का पूर्व विन्दु और जो पच्छिम की ओर होता है उसे ग्रह का पच्छिम विन्दु कहते हैं। चित्र १०१ से यह सब बातें स्पष्ट होती हैं।

चित्र १०१ से सिद्ध है कि क्रान्तिवृत्त क ग क्रा ग्रह विम्ब के प्राच्य विन्दु से पु ग क्र कोण के अन्तर पर है। इसी अन्तर को स्फुटवलन कहते हैं। यह जानने के



चित्र १०१

उ ध ख द=इष्ट स्थान का यामोत्तर वृत्त

उ पू द=इष्ट स्थान का क्षितिजवृत्त (पूर्वार्ध)

---

१. देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ २२८

उ, द, पू=क्षितिज के उत्तर, दक्षिण और पूर्व विन्दु
ख=खस्वस्तिक
ख पू=सममण्डल
क्र क्रा=क्रान्तिवृत्त
ग=छाद्य ग्रह के विम्ब का केन्द्र
उ ग द=ग विन्दु का समप्रोतवृत्त (circle of position)
ध=उत्तरीय आकाशीय ध्रुव
क=कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव)
क का कि=कदम्ब वृत्त (वह वृत्त जिस पर कदम्ब अहोरात्र में ध्रुव की परिक्रमा करता है)
ख गा=समप्रोत वृत्त का नतांश
का=कदम्ब का स्थान जब सायन कर्क यामोत्तर वृत्त पर होता है
कि=कदम्ब का स्थान जब सायन मकर यामोत्तरवृत्त पर होता है
ग ध=ग्रह का ध्रुवान्तर
ग क=ग्रह का कदम्बान्तर
कोण उ ग ध=ग्रह का आक्षवलन
कोण ध ग क=ग्रह का आयनवलन
कोण उ ग क=ग्रह का स्फुटवलन
कोण क्र ग पु=ग्रह का स्फुटवलन
खा प्र ग प्रा पु=ग्रह के केन्द्र से जाता हुआ सममण्डल का समानान्तर वृत्त
प्रा=ग्रह बिम्ब का प्राच्य (पूर्वी) बिन्दु
प्र=ग्रह बिम्ब प्रतीच्य (पच्छिमी) बिन्दु

लिए समप्रोत वृत्त उ ग और कदम्बप्रोत वृत्त क ग के बीच का कोण उ ग क जानने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि उ ग और क ग क्रमानुसार खा ग पु और क्र ग क्रा से समकोण पर हैं इसलिए पहले दो के बीच का कोण पिछले दो के बीच के कोण के समान होगा। इसलिए स्फुटवलन उ ग क कोण के समान हुआ जो उ ग ध और ध ग क नामक दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कोण उ ग ध को आक्षवलन और कोण ध ग क को आयनवलन कहते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि कोण उ ग क का परिमाण जानने के लिए आक्षवलन और आयनवलन को जोड़ना पड़ेगा। परन्तु यदि क ग कदम्बप्रोतवृत्त उ ग और ध ग के बीच में हो तो आक्षवलन से आयनवलन घटाने पर स्फुटवलन आता है। चित्र में ग्रह पूर्व कपाल में अर्थात् यामोत्तर वृत्त के

पूर्व दिखलाया गया है। ऐसी दशा में स्फुटवलन प्राच्य विन्दु से उत्तर की ओर होता है। यदि इसी तरह दूसरा चित्र वनाकर ग्रह पच्छिम कपाल में दिखलाया जाय तो उससे स्पष्ट होगा कि स्फुटवलन ग्रह के प्राच्य विन्दु से दक्खिन की ओर होता है। इस प्रकार श्लोक २४ के उत्तरार्ध की उत्पत्ति सिद्ध होती है। आक्षवलन का परिमाण गोलीय त्रिभुज ग ग ध से इस प्रकार जाना जाता है :—

गोलीय त्रिभुज उ ग ध में,

$$\frac{\text{ज्या (उ ग ध)}}{\text{ज्या (ध उ)}}=\frac{\text{ज्या (ग उ ध)}}{\text{ज्या (ग ध)}}=\frac{\text{ज्या (ख गा)}}{\text{ज्या (ध्रुवान्तर)}}$$

क्योंकि उ ख और उ गा ९०° के समान हैं इसलिए इनके बीच का कोण गा उ ख अथवा ग उ ध ख गा के समान हुआ जो समप्रोतवृत्त का नतांश है। ज्या (ध्रुवान्तर)=ग्रह की क्रान्ति कोटि ज्या=ग्रह की द्युज्या[1]=ग्रह के अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या; ज्या (ध उ)=अक्षांश की ज्या=अक्ष ज्या

इसलिए

$$\text{ज्या (उ ग ध)}=\frac{\text{अक्ष ज्या}\times\text{ज्या (ख गा)}}{\text{ग्रह के अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या}}$$

$$=\frac{\text{अक्ष ज्या}\times\text{ज्या (ख गा)}}{\text{क्रान्ति कोटि ज्या}} \quad \ldots \quad \ldots(१)$$

इस तरह श्लोक २४ का पूर्वार्ध भी सिद्ध हो गया। यहाँ त्रिज्या का अर्थ ३४३८ नहीं है वरन् अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या है जो ग्रह की क्रान्ति कोटि ज्या के समान होती है और नत ज्या का अर्थ ग्रह के नतांश ख ग अथवा नतकाल ख ध ग की ज्या नहीं है वरन् समप्रोतवृत्त का नतांश ख गा है। भास्कराचार्यजी ने इसका परिमाण जानने के लिए यह नियम[2] वतलाया है कि स्पर्शकाल में छाद्य ग्रह का जो नतकाल हो उसको ९० से गुणा करके यदि सूर्यग्रहण हो तो दिनार्धमान और चन्द्रग्रहण हो तो रात्र्यर्धमान से भाग दे दो। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जव दिनार्धमान या रात्र्यर्धमान में छाद्य ग्रह ९०° ऊपर चढ़ता है तो नतकाल में जितना चढ़ेगा वही उसका नतांश है परन्तु यह नियम स्थूल है। जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त ने भी छाद्य ग्रह के नतांश ख ग की ज्या के लिए ही नत ज्या लिखा है न कि ख गा के लिए क्योंकि ख गा का परिमाण जानने के लिए कोई नियम नहीं वतलाया गया है। यह भी सम्भव है कि नतकाल ख ध ग की ज्या के लिए भी नत ज्या लिखा गया हो। परन्तु यह दोनों अर्थ शुद्ध नहीं हैं। इसलिए मैंने अनुवाद में इसका अर्थ समप्रोतवृत्त के नतांश की ज्या किया है।

---

१. देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ २०७। २. गणिताध्याय पृष्ठ १२२

समप्रोतवृत्त का नतांश ख गा अथवा कोण ख उ ग गोलीय त्रिकोणमिति के आधार पर इस प्रकार शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है :—

पहले ग्रह के नतकाल से उसका नतांश ख ग पृष्ठ २६२ में सिद्ध किये गये सूत्र (ख) से जान लेना चाहिए। फिर नतांश की सहायता से कोण ध ख ग पृष्ठ २७६ में सिद्ध किये गये सूत्र से जानना चाहिए। जब नतांश ख ग और कोण ध ख ग अथवा उ ख ग ज्ञात हो गये तब गोलीय त्रिभुज ख ख ग के तीन अङ्ग अर्थात् दो भुज उ ख और ख ग तथा इनके बीच का कोण जानकर कोण ख उ ग सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि

कोस्परे (ख ग) × ज्या (ख उ)

= कोज्या (ख उ) कोज्या (उ ख ग) + कोस्परे (ख उ ग)[1] ज्या (उ ख ग)

परन्तु यहाँ ख उ = ९०°, इसलिए ज्या (ख उ) = १ और कोज्या (ख उ) = ०

∴ को स्परे (ख ग) = कोस्परे (ख उ ग) ज्या (उ ख ग)

$$\text{कोस्परे (ख उ ग)} = \frac{\text{कोस्परे (ख ग)}}{\text{ज्या (उ ख ग)}}$$

$$\text{अथवा स्परे (ख उ ग)} = \frac{\text{ज्या (उ ख ग)}}{\text{कोस्परे (ख ग)}}$$

= ज्या (उ ख ग) स्परे (ख ग)

परन्तु कोण उ ख ग = ९०° + ∠पू ख ग

= ९०° + अ ग्रा[2]

∴ ज्या (उ ख ग) = ज्या (९०° + अग्रा) = कोज्या (अ ग्रा)

∴ स्परे (ख उ ग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्शरेखा

इसलिए सिद्ध हो गया है कि ग्रह के समप्रोतवृत्त की नतांश-ज्या को जानने के लिए ग्रह की अग्रा की कोटिज्या को ग्रह के नतांश स्पर्शरेखा से गुणा कर देना चाहिये।

इस प्रकार ख उ ग कोण अथवा ख गा धनु का मान जान कर इसकी ज्या को पृष्ठ ४७८ के सूत्र (१) में उत्थापित करने से आक्षवलन का मान ज्ञात होगा।

---

१. देखो Todhunter and Leathem's Spherical Trigonometry, PP. 26.

२. देखो पृष्ठ २७६'

आयनवलन का मान इस प्रकार जाना जा सकता है :—

गोलीय त्रिभुज क ग ध में

$$\frac{\text{ज्या} \angle \text{क ग ध}}{\text{ज्या (क ध)}} = \frac{\text{ज्या} \angle \text{ग क ध}}{\text{ज्या (ग ध)}}$$

$$\therefore \text{ज्या} \angle \text{क ग ध} = \frac{\text{ज्या (क ध)} \times \text{ज्या} \angle \text{ग क ध}}{\text{ज्या (ग ध)}}$$

यहाँ क ध कदम्ब से ध्रुव का अन्तर है जो सूर्य की परम क्रान्ति के समान होता है। ग ध ध्रुव से ग्रह का अन्तर है जिसकी ज्या ग्रह की क्रान्ति कोटिज्या के समान है और कोण ग क ध, ग के कदम्ब प्रोतवृत्त ग क और अयनवृत्त क ध के वीच में है। पृष्ठ २०० के चित्र ३६ से स्पष्ट है कि दक्षिणायन विन्दु द बसंत संपात से ९०° आगे और उत्तरायण विन्दु व वसंत संपात से २७०° आगे है अर्थात् दक्षिणायन और उत्तरायण विन्दुओं से जाता हुआ अयनवृत्त वसंत संपात से ९०° और २७०° के अन्तर पर क्रान्तिवृत्त को समकोण पर काटता है। उसी चित्र से यह भी प्रकट है कि ग के कदम्ब प्रोतवृत्त प क और अयनवृत्त द ध क के बीच का कोण द क ग या द क प के समान है जो प द धनु के भी समान हुआ। ग्रह का भोगांश व प धनु है। इसलिए व प और प द का योग ९०° के समान हुआ अर्थात् प द की ज्या व प की कोटिज्या के समान है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ग्रह के कदम्बप्रोत वृत्त और अयन वृत्त के वीच के कोण की ज्या ग्रह के भोगांश की कोटिज्या के समान होती है। इसलिए

$$\text{ज्या} \angle \text{क ग ध} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ग्रह की भोगांश कोटिज्या}}{\text{ग्रह की क्रान्ति कोटिज्या}} \quad \cdots\cdots (२)$$

इस प्रकार क ग ध कोण का मान अथवा आयनवलन सिद्ध होता है। २५वें श्लोक के पूर्वार्ध में संक्षेप में केवल इतना बतलाया गया है कि ग्रह के भोगांश में ९०° जोड़ने से जो कुछ आवे उसकी क्रान्ति निलाले अर्थात् इसकी ज्या को परम क्रान्ति ज्या से गुणा करके ग्रह के अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या से भाग दे दो। परन्तु अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या=क्रान्तिकोटि ज्या (देखो पृष्ठ २०७) और ग्रह के भोगांश में ९०° जोड़कर जो आता है उसकी ज्या ग्रह के भोगांश की कोटि ज्या के समान होती है क्योंकि यदि भ भोगांश हो तो

ज्या (भ + ९०°) = को ज्या भ (देखो पृष्ठ १२६—१२८)

जब भोगांश ६ राशि से कम होता है तो क्रान्ति उत्तर होती है और ६ राशि से अधिक होता है तो क्रान्ति दक्खिन होती है। इसी तरह जब भ + ९०° ६ राशि से अधिक हो तो ∠क ग ध को दक्खिन समझना चाहिए और ६ राशि से कम हो तो उत्तर समझना चाहिए।

आक्षवलन और आयनवलन दोनों की दिशाएँ एक ही हों तो जोड़ने से और भिन्न हों तो इनके अन्तर से स्पष्ट वलन का परिमाण ज्ञात होता। यह चित्र १०१ से ही स्पष्ट है।

आक्षवलन और आयनवलन के सूत्रों से यह भी निश्चय किया जा सकता है कि इनके मान किस समय सबसे अधिक और किस समय शून्य हो सकते हैं। उदाहरण के लिए आयनवलन के सूत्रों को लीजिए। इस समीकरण के दाहिनी ओर ३ गुणक हैं जिनमें परमक्रान्ति ज्या अचल है परन्तु ग्रह की भोगांश कोटि ज्या और क्रान्ति कोटि ज्या चल हैं। जिस समय भोगांश शून्य होगा उस समय ग्रह वसंत संपात पर होगा इसलिए इसकी क्रान्ति भी शून्य होगी। ऐसी दशा में इनकी कोटि ज्याओं का मान २ होगा। इसलिए आयनवलन परम क्रान्ति के समान अर्थात् २३°२७′ होगा। यही बात शरद् सम्पात पर भी होगी। यही बात भाष्कराचार्य जी ने गोलाध्याय के ग्रहण वासना के ३०वें श्लोक में लिखी है। इसी प्रकार जब भोगांश ९०° या २७०° होगा तब भोगांश कोटि ज्या शून्य होगी परन्तु क्रान्ति कोटि ज्या शून्य नहीं होगी क्योंकि क्रान्ति २४° के लगभग होगी इसलिए आयन वलन भी शून्य होगा इत्यादि।

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि स्फुट वलन का परिमाण अंशों या कलाओं में कैसे जाना जाता है। यदि यह जानना हो कि चित्र खींचते समय अंगुल से नाप कर कैसे काम लिया जाय तो स्फुट वलन की ज्या को ७० से भाग देने पर अंगुलों में वलन का परिमाण आ जाता है। ऐसा २५ वें श्लोक में बतलाया गया है। इसकी उपपत्ति यह है कि छाद्य ग्रह के बिम्ब का चित्र खींचने के लिए ४९ अंगुल का व्यासार्ध मानकर वृत्त खींचने की परिपाटी थी। यह १२ अंगुल के शंकु के चौगुने के लगभग होता है और इस प्रकार एक अंगुल ७० कला के लगभग होता है क्योंकि त्रिज्या का मान साधारणतः ३४३८ कलाओं का समझा जाता है और ४९ × ७० = ३४३०, जो ३४३८ के बहुत निकट है।

अंगुलों में बिम्ब का मान जानना—

सोन्नतं दिनमानार्धं दिनार्धाप्तफलेन तु।
छिन्द्याद्विक्षेपमानानि तान्येषामङ्गुलानि तु ॥२६॥

अनुवाद— (२६) इष्ट समय में छाद्य ग्रह का जो उन्नत काल हो उसको दिनमान और दिनार्धमान के योग में जोड़ कर योगफल को दिनार्धमान से भाग दे दो। इस भागफल से विक्षेप, छाद्य और छादक ग्रहों के कलात्मक बिम्बों को भाग दे देने से इनके बिम्बों के अंगुलात्मक मान ज्ञात हो जायँगे।

विज्ञान भाष्य—पृष्ठ ३८२ में बतलाया गया है कि वर्तन के कारण उदय अस्त होते हुए सूर्य का आकार बड़ा देख पड़ता है। यही दशा चन्द्रमा की भी होती है। यह बात हमारे आचार्यों को भी ज्ञात थी[1]। यह तो निश्चय ही था कि उदय या अस्त होते हुए सूर्य और चन्द्रमा के यथार्थ पिंड में कोई अन्तर नहीं पड़ता इसलिये हमारे आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि उदय या अस्त काल के सूर्य या चन्द्रमा के बिम्ब मान को अंगुलों में प्रकट करने के लिए ३ कला का अंगुल माना जाय और जब यह पिंड ख-स्वस्तिक में हों तब ४ कला का अंगुल माना जाय[2]। ऐसा करने से आकारों में जिस प्रकार की भिन्नता देख पड़ती है वैसी ही भिन्नता उनके अंगुलात्मक मानों में भी हो जायगी। यह तो हुई उदय या अस्त होते हुए बिम्ब-मानों और ख-स्वस्तिक में स्थित बिम्बमानों की बात। यदि ग्रह ख-स्वस्तिक और क्षितिज दोनों के बीच में हो तो उसके बिम्ब का अंगुलात्मक मान जानने के लिए अनुपात से इस प्रकार काम लेते थे। क्षितिज से खमध्य अथवा यामोत्तर वृत्त तक जाने में अंगुल का मान ३ कला से ४ कला हो जाता है तो उदय काल या अस्त काल से इष्ट काल तक जो उन्नत काल है उसमें अंगुल का मान क्या होगा। परन्तु उदय काल से यामोत्तर वृत्त तक जाने में जितना समय लगता है उसे दिनार्धमान कहते हैं। इसलिए जब दिनार्धमान में अंगुल के मान में एक कला का अन्तर पड़ जाता है तब उन्नत काल में कितना अन्तर पड़ेगा। यह अन्तर $=\frac{\text{उन्नत काल} \times 1 \text{ कला}}{\text{दिनार्ध मान}}$। इसलिए यह प्रकट है कि इष्ट काल में बिम्ब का अंगुलात्मक मान जानने के लिए १ अंगुल का मान $3 + \frac{\text{उन्नत काल} \times 1 \text{ कला}}{\text{दिनार्ध मान}}$ लेना चाहिए। इसलिए इष्ट काल में

$$\text{१ अंगुल} = 3 + \frac{\text{उन्नत काल} \times 1 \text{ कला}}{\text{दिनार्ध मान}}$$

$$= \frac{3 \times \text{दिनार्ध मान} + \text{उन्नत काल} \times 1}{\text{दिनार्ध मान}} \text{ कला}$$

$$= \frac{3 \text{ दिनार्ध मान} + \text{उन्नत काल}}{\text{दिनार्ध मान}} \text{ कला}$$

---

१. देखो गणिताध्याय पृष्ठ १२४

२. भास्कराचार्य ने २॥ कला और ३॥ कला का अंगुल माना है। देखो गणिताध्याय पृष्ठ १२४।

$$=\frac{(२+१)\ \text{दिनार्ध मान}+\text{उन्नत काल}}{\text{दिनार्ध मान}}\ \text{कला}$$

$$=\frac{\text{दिनमान}+\text{दिनार्ध मान}+\text{उन्नत काल}}{\text{दिनार्ध मान}}\ \text{कला}$$

इस प्रकार २६वें श्लोक की उपपत्ति सिद्ध हुई। परन्तु यहां यह बतला देना आवश्यक है कि आकाशीय पिंड का आकार उदय से लेकर यामोत्तर वृत्त तक एक क्रम से नहीं घटता इसलिए अनुपात से ग्रह का आकार जानना शुद्ध नहीं है जैसा ३६५ पृष्ठ में दी हुई वर्तन की सारणी से स्वयं प्रकट होता है।

उदाहरण—संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा के चन्द्रग्रहण की गणना—

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार—

पहले इस दिन के सूर्य, चन्द्रमा, और राहु को स्पष्ट करना चाहिए। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि कलियुग से इस दिन तक का अहर्गण क्या है।

कलियुग के आरंभ से विक्रमी संवत् के आरंभ तक	३०४४	वर्ष
विक्रम के आरंभ से १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति तक	१९८१	,,
कलियुगादि से ,, ,, ,,	५०२५	,,

१ सौर वर्ष = ३६५·२५८७५६ सावन दिन

∴ ५०२५ सौर वर्ष = ५०२५ × ३६५·२५८७५६ सावन दिन

= १८३५४२५·२४८९ ,,

यह कलियुग के आरम्भ से १९८१ वि० की मध्यम मेष संक्रान्ति तक का समय है। स्पष्ट मेष संक्रान्ति २·१७०७ दिन पहले ही हो जाती है। इसलिए इसको घटा देने पर १९८१ वि० के मेष संक्रान्ति काल तक का समय १८३५४२३·०७८२ सावन दिन हुआ।

अब यह देखना है कि मेष संक्रान्ति के दिन कौन तिथि थी।

१ चान्द्र मास = २९·५३०५८८ सावन दिन

इससे उपर्युक्त सावन दिनों को भाग देने पर लब्धि बीते हुए चान्द्रमासों की संख्या होगी और शेष ८·४४२२३६ सावन दिन चैत्र की मध्यम अमावस्या से मेष संक्रान्ति तक का समय होगा। इसलिए चैत्र की मध्यम अमावस्या से ८·४४२२३६ दिन उपरान्त मेष की संक्रान्ति लगी। इससे यह सिद्ध होता है कि इस वर्ष मलमास नहीं लगेगा, क्योंकि जब वैशाख कृष्ण ४ के उपरांत मेष संक्रान्ति होती है तब वर्ष

में कोई महीना मलमास का पड़ता है । इस प्रकार चैत्र की अमावस्या श्रावणी पूर्णिमा तक ४॥ चान्द्रमास होते हैं ।

१ चान्द्रमास = २९·५३०५८८ दिन
४ ,, = ११८·१२२३५२ दिन
आधा ,, = १४·७६५२९४ ,,
∴ ४॥ ,, = १३२·८८७६४६ ,,

इसलिए १९८१ वि० के चैत्र की मध्यम अमावास्या से १३२·८८७६४६ दिन उपरान्त श्रावण की मध्यम पूर्णिमा का अन्त होगा । परन्तु चैत्र की अमावास्या से ८·४४२२३६ सावन दिन पर स्पष्ट मेष-संक्रान्ति होती है इसलिए स्पष्ट मेष-संक्रान्ति काल से १३२·८८७६४६—८·४४२२३६ = १२४·४४५४१० दिन उपरान्त श्रावण की मध्यम पूर्णिमा का अंत होगा ।

कलियुगादि से १९८१ की मेष संक्रान्ति तक	१८३५४२३·०७८२ दिन
मेष-संक्रान्ति से श्रावणी पूर्णिमा तक	१२४·४४५४,,
कलियुगादि से श्रावणी पूर्णिमा तक	१८३५५४७·५२३६ दिन

इसलिए १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा की मध्य रात्रि का अहर्गण १८३५५४७ हुआ । इसकी शुद्धता की परीक्षा करने के लिए यह जानना चाहिए कि इस अहर्गण से श्रावणी पूर्णिमा का बार ठीक आता है कि नहीं । इसलिए इसको ७ से भाग देना चाहिए । सात से भाग देने पर २६२२२१ सप्ताह आते हैं और शेष कुछ नहीं बचता । इसलिए सिद्ध होता है कि श्रावणी पूर्णिमा गुरुवार को थी क्योंकि कलियुग का आरम्भ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार गुरुवार की मध्यरात्रि को हुआ था । इस प्रकार संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा गुरुवार की मध्यरात्रि का अहर्गण १८३५५४७ हुआ ।

इसी अहर्गण से श्रावणी पूर्णिमा की अर्ध्य रात्रि काल के सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रोच्च, राहु इत्यादि के स्थान त्रैराशिक से जानने चाहिए । मध्यमाधिकार में बतलाया गया है कि एक महायुग में १५७७९१७८२८ सावन दिन होते हैं जिनमें सूर्य के ४३२०००० भगण, चंद्रमा के ५७७५३३३६ भगण, चन्द्रोच्च के ४८८२०३ भगण और राहु के २३२२३८ भगण होते हैं, इसलिए १८३५५४७ दिनों में

	भगण	राशि	अंश	कला	
सूर्य के	५०२५	३	२९	५९·७५	हुए
चंद्रमा के	६७१८२	९	२३	३९·२१	,,
चंद्रोच्च के	५६७	१०	२८	३४·०२	,,
राहु के	२७०	१	२६	६·८	,,

सूर्य और चंद्रमा के पूरे भगणों के छोड़ देने पर जो शेष रह जाते हैं वही श्रावणी पूर्णिमा की मध्यरात्रि काल में इनके मध्यम स्थान हैं। परन्तु चन्द्रोच्च और राहु के पूरे भगणों को छोड़ देने से जो शेष बचते हैं उनमें कुछ संस्कार करना पड़ता है क्योंकि कलियुग के[1] आदि में चन्द्रोच्च कर्क के आदि विन्दु पर और राहु तुला के आदि विन्दु पर थे और राहु की गति उलटी होती है इसलिए श्रावणी पूर्णिमा की मध्य रात्रि के समय

चन्द्रोच्च का स्थान ३ रा + १० रा २८°३४′·०२ = १ रा २८°३४′·०२

राहु का स्थान ६ रा − १ रा २६°६′·८ = ४ रा ३°५३′·२

सूर्य के मन्दोच्च की गति इतनी मन्द है कि इसका स्थान २रा १७°१७′·५२ ही मान लेना चाहिए[2]।

सूर्य का मन्द केन्द्र = २ रा १७°१७′·५२ — ३ रा २६°५६′·७५

= १० रा १७°१७′·७७

= ३ पाद + १ रा १७°१७′८

∴ चौथे पाद का गम्य भाग = १ रा १२°४२′२

= ४२°४२′·२

सूर्य की स्फुट मन्द परिधि

$$८४० - २० \times \frac{\text{भुजज्या } ४२°४२'}{३४३८}$$

$$= ८४० - २०' \times \frac{२३३०}{३४३८}$$

$$= ८४०' - १४'$$

$$= ८२६'$$

$$\text{भुजबल} = \frac{८२६ \times २३३०}{२१६००} = ८९'·१ = १°२९'·१$$

यही सूर्य का मन्दफल है क्योंकि इसका धनु इसी के समान होगा। यह ऋणात्मक है क्योंकि मन्द केन्द्र तुलादि है।

इसलिए मध्य रात्रि का स्पष्ट सूर्य

= ३ रा २६५६′·७५ − १°२९′·१

---

१. मध्यमाधिकार श्लोक ५७,५८ और पृष्ठ ५०

२. स्पष्टाधिकार पृष्ठ १४६

= ३ रा २८° ३०′·६५

= ११८° ३०′·६५

∴ द्रमा का मन्द केन्द्र = १ रा २८° ३४′·०२ − ६ रा २३° ३६′·२१

= ४ रा ४° ५४′·८१

= १ पाद + ३४° ५४′·८१

∴ दूसरे पाद का गम्य भाग = ५५° ५′·२

चन्द्रमा की स्फुट मन्द परिधि

$$= ३२° - २०' \times \frac{\text{भुजज्या } ५५° ५'·२}{३४३८}$$

$$= ३२° - २०' \times \frac{२८१८}{३४३८}$$

= ३२° − १६′ = ३१° ४४′ = १९०४′

$$∴ \text{चन्द्रमा का भुजफल} = \frac{१९०४ \times २८१८}{२१६००}$$

= २४८′·४ = ४° ८′·४

इसका धनु भी इतना ही होगा ।

इसलिए चन्द्रमा का मन्दफल = ४° ८′·४

यह धनात्मक है क्योंकि चन्द्रमा का मन्द केन्द्र अजादि ६ राशियों में है । इसलिए मध्यरात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा

= ६ रा २३° ३९′·२ + ४° ८′·४

= ६ रा २७° ४७′·७ = ६ रा २७° ४८′

सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों से ज्ञात होता है कि चन्द्रमा सूर्य से १८०° आगे नहीं है वरन् कुछ कम है इसलिए पूर्णिमान्त काल मध्यरात्रि से कुछ पीछे होगा जब चन्द्रमा और सूर्य का अन्तर ठीक १८०° होता है । यह जानने के लिए कि पूर्णिमान्त काल कब होगा हमें सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियां जाननी चाहिये । हमें यह मालूम है कि

सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′ ८″,

चन्द्रमा की ,, ७९०′ ३५″,

चन्द्रोच्च की ,, ६′ ४१″, = ६′·७,

और चन्द्रमा की दैनिक केन्द्र गति ७८३′ ५४″ होती है ।

इसलिए सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति (देखो स्पष्टाधिकार पृ० १५८)

$$=५९'८''-\frac{८२६}{२१६००}\times\frac{१६४\times५९'८''}{२२५}$$

$$=५९'८''-१'३९''$$

$$=५७'२९''=५७'.५$$

चन्द्रमा की दैनिक गति उपर्युक्त रीति से नहीं निकल सकती क्योंकि चन्द्रमा की गति बहुत तीव्र होती है। इसलिए चन्द्रमा की दैनिक गति जानने के लिए पूर्णमासी के उपरान्त शुक्रवार की मध्यरात्रि का चन्द्रमा स्पष्ट करना अच्छा है।

पूर्णमासी की अर्धरात्रि का मध्यम चन्द्र $=९^{रा}२३^\circ३९'\cdot२१$

चन्द्रमा की दैनिक मध्यम गति $=१३^\circ१०'\cdot५८$

∴ प्रतिपदा की मध्यम रात्रि का चन्द्रमा $=१०^{रा}६^\circ४९'\cdot७९$

$$=१०^{रा}६^\circ४९'\cdot८=१०^{रा}६^\circ५०'$$

,, ,, का चन्द्रोच्च $=१^{रा}२८^\circ३४'+६'\cdot७$

$$=१^{रा}२८^\circ४०'\cdot७$$

∴ प्रतिपदा की मध्यरात्रि का चन्द्र मन्द केन्द्र

$$=१^{रा}२८^\circ४०'\cdot७-१०^{रा}६^\circ४९'\cdot८$$

$$=३^{रा}२१^\circ५०'\cdot९$$

$=१$ पाद $+२१^\circ५१'$ स्वल्पान्तर से

∴ दूसरे पाद का गम्य भाग $=६८^\circ९'$

चन्द्रमा की स्फुट परिधि $=३२^\circ-२०'\times\frac{\text{भुज ज्या }६८^\circ९'}{३४३८}$

$$=३२^\circ-२०'\times\frac{३१९१}{३४३८}$$

$$=३२^\circ-१९'$$

$$=१९०१'$$

∴ भुजफल $=\frac{१९०१\times३११६}{२१६००}=२८१'$

इसका धनु भी इतना ही होगा।

इसलिए मन्दफल $=२८१'=४^\circ४१'$

∴ प्रतिपदा की मध्यम रात्रि का स्पष्ट चन्द्र $=१०^{रा}६^\circ५०'+४^\circ४१'$

$$=१०^{रा}११^\circ३१'$$

और पूर्णिमा की ,, ,, =९ रा २७°४८′

दोनों का अन्तर = १३°४३′

इस प्रकार चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति १३°४३′=८२३′

सूर्य की ,, ,, ५७′·५

इसलिए १ सावन दिन में चन्द्रमा सूर्य की अपेक्षा ७६५′·५ अधिक चलता है।

पूर्णिमा की मध्य रात्रि का चन्द्रमा ९ रा २७°४७′·६

,, ,, सूर्य ३ रा २८°३०′·७

दोनों का अन्तर=५ रा २९°१६′·९

यह अन्तर ६ राशि से ४३′.१ कम है। इसलिए जब चन्द्रमा सूर्य से इतना और आगे बढ़ेगा तब पूर्णिमान्त काल होगा। परन्तु ६० घड़ी में चन्द्रमा सूर्य से ७६५′·५ आगे बढ़ता है। इसलिए ४३′·१ वह $\frac{४३·१ \times ६०}{७६५·५}$ घड़ी में पूरा करेगा जो ३ घड़ी २३ पल होता है। इसलिए गुरुवार की मध्य रात्रि से ३ घड़ी २३ पल उपरान्त पूर्णिमान्त का अन्त हुआ।

अब पूर्णिमान्त काल के सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करना चाहिए।

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति=५७′·५

∴ ३ घड़ी २३ पल की गति=३′१४″·५=३′·२४

मध्य रात्रि कालिक सूर्य=३ रा २८°३०′·७

∴ पूर्णिमान्तकालिक सूर्य=३ रा २८°३३′·९=११८°३४′

चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति=८२३′

∴ ३ घड़ी २३ पल की गति=४६′२४″

=४६′·४

मध्य रात्रिकालिक चन्द्रमा=९ रा २७°४७′.६

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रमा=९ रा २८°३४′=२९८°३४′

राहु की दैनिक गति=३′११″

∴ ३ घड़ी ३ पल की गति=११″=·२′

मध्य रात्रिकालिक राहु=४ रा ३°५३′·२

राहु की गति उलटी होती है इसलिए इसमें से ३ घड़ी ३ पल की गति

घटाने से पूर्णिमान्तकालिक राहु=४ रा ३°५३′=१२३°५३′

राहु से चन्द्रमा=२९८°३४′−१२३°५३′=१७४°४१′ आगे है।

$$\therefore \text{चन्द्र शर की ज्या} = \frac{\text{ज्या } १७४°४१' \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८}*$$

$$= \frac{\text{ज्या } ५°१९' \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८}$$

$$= \frac{३१९ \times २७०}{३४३८} = २५'$$

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रशर=२५′

यह शर क्रान्तिवृत्ति से उत्तर है क्योंकि राहु से चंद्रमा ६ राशि से कम है। (स्पष्टा० श्लोक ७,)

पूर्णिमान्तकालिक राहु=१२३°५३′
,, ,, सूर्य=११८°३४′
दोनों का अंतर = ५°१९′

जो चन्द्रग्रहण की लघुतम सीमा ९° से कम है। इसलिए चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा। (चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ४६३)

चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक १,३ के अनुसार

$$\text{सूर्यविम्ब का स्फुट व्यास} = \frac{६५०० \times ५७'२९''}{५९'८''} \text{ योजन}$$

$$\text{चंद्र ,, ,, ,,} = \frac{४८० \times ८२३'}{७९०'३५''} \text{ योजन}$$

$$= \frac{४८० \times ८२३}{७९०{\cdot}५८३} \times \frac{१}{१५} \text{ कला}$$

$$= \frac{३२ \times ८२३}{७९०{\cdot}५८३} \text{ कला}$$

$$= ३३{\cdot}३१ \text{ कला}$$

श्लोक ४, ५ के अनुसार चन्द्रकक्षा में भूछाया का योजनात्मक व्यास

$$= \frac{१६०० \times ८२३}{७९०{\cdot}५८३} - \left(\frac{६५०० \times ५७'२९''}{५९'८''} - १६००\right) \times \frac{४८०}{६५००} \text{ योजन}$$

---

*चन्द्रमा का शर उसी प्रकार निकाला जाता है जिस प्रकार सूर्य की क्रान्ति स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक के अनुसार निकाली जाती है। ४°३०′ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार चन्द्रमा का परम शर है।

इसको १५ से भाग देकर सरल करने पर चंद्रकक्षा में भूछाया का कलात्मक व्यास अथवा भूभाविम्व $= १०६\frac{२}{३} \times \frac{८२३}{७६०\cdot५८३} - ३२ \times \frac{५७'२६''}{५६'८''} + ७\cdot८७७$

$$= १११\cdot१७ - ३१\cdot११ + ७\cdot८८$$

$$= ८७\cdot६४$$

चंद्रग्रहण में भूछाया ही छादक होती है। इसलिए छादक का व्यासार्ध $= ८७'\cdot६४ \div २ = ४३'\cdot६७$

चन्द्रमा का स्फुट व्यास $= ३३'\cdot३१$

$\therefore$ छाद्य का व्यासार्ध $= ३३'.३१ \div २ = १६'\cdot६६$

$\therefore$ मानैक्य खंड $= ४३'.६७ + १६'.६६ = ६०'.६३$

और मानान्तर खंड $= ४३'.६७ - १६.६६ = २७'.३१$

ग्रास का परिमाण $= ६०'.६३ - २५'$ (श्लोक १०)

$$= ३५\ ६३$$

यह चन्द्रविम्व के व्यास से वड़ा है। इसलिए सर्वग्रास ग्रहण लगेगा (देखो पृ० ४६० और श्लोक ११)।

पृष्ठ ४६६ के अनुसार,

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{६० \text{ घडी} \times \sqrt{\{(६०\cdot६३ + २५)\ (६०\cdot६३ - २५)\}}}{७६५\cdot५}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{\{८५\cdot६३ \times ३५\cdot६३\}}}{७६५\cdot५} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{६० \times ५५\cdot२३६}{७६५\cdot५} \text{ घड़ी}$$

$$= ४ \text{ घड़ी } २० \text{ पल}$$

$$\text{विमर्दार्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{\{(२७\cdot३१ + २५)\ (२७\cdot३१ - २५)\}}}{७६५\cdot५}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{\{५२\cdot३१ \times २\cdot३१\}}}{७६५\cdot५} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{६० \times १०\cdot९९२}{७६५\cdot५} \text{ घड़ी}$$

$$= ५१\cdot७ \text{ पल} = ५२ \text{ पल}$$

यह पहले वतलाया जा चुका है कि गुरुवार की मध्य रात्रि से ३ घड़ी २३ पल उपरान्त पूर्णिमा का अन्त हुआ। इस समय से स्थित्यर्ध काल घटाने पर ग्रहण का स्पर्श काल होगा और विमर्दार्ध काल घटाने से सम्मीलन काल आ जायगा।

∴ स्पर्श काल = ३ घड़ी २३ पल − ४ घड़ी २० पल

= −५७ पल

अर्थात् मध्य रात्रि से ५७ पल पहले ग्रहण का स्पर्श होगा।

सम्मीलन काल = ३ घड़ी २३ पल — ५२ पल

= २ घड़ी ३१ पल

अर्थात् मध्य रात्रि के २ घड़ी ३१ पल उपरान्त सर्वग्रास ग्रहण का आरंभ होगा अथवा पूरा चन्द्रविम्ब छाया में प्रवेश हो जायगा।

इसी प्रकार उन्मीलन काल = ३ घड़ी २३ पल + ५२ पल

= ४ घड़ी १५ पल, मध्यरात्रि के उपरान्त

और मोक्ष काल = ३ घड़ी २३ पल + ४ घड़ी २० पल

= ७ घड़ी ४३ पल, मध्य रात्रि के उपरान्त

यह समय उज्जैन का मध्य काल है अर्थात् उज्जैन में मध्यम मध्य रात्रि से ५७ पल पहले ग्रहण का स्पर्श, २ घड़ी ३१ पल उपरान्त सम्मीलन, ४ घड़ी १५ पल उपरान्त उन्मीलन और ७ घड़ी ४३ पल उपरान्त मोक्ष होंगे। किसी अन्य स्थान में किस समय स्पर्श सम्मीलन इत्यादि होगा, यह जानने के लिए उस स्थान का देशान्तर काल मध्यमाधिकार श्लोक ६३, ६४ के आधार पर जोड़ना चाहिए यदि स्थान उज्जैन से पूर्व हो और घटाना चाहिए यदि स्थान उज्जैन से पच्छिम हो। ऐसा करने से उस स्थान के मध्यम काल के अनुसार स्पर्श काल, सम्मीलन काल इत्यादि ज्ञात होंगे। यदि यह जानना हो कि उस स्थान में सूर्योदय से कितनी घड़ी पल उपरान्त स्पर्श, सम्मीलन इत्यादि होगा तो मध्यम काल में काल समीकरण का संस्कार करके स्पष्ट काल निकालना होगा और उस दिन की सूर्य की क्रान्ति निकाल कर चर काल का भी संस्कार करना होगा।

इस दिन का काल-समीकरण—

सूर्य का मध्यम भोगांश = प्रायः ४ राशि = १२०°

अयनांश = लगभग २२°४०′

∴ सूर्य का सायन भोगांश = १४२°४०′

इसलिए त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ३४७ के सूत्र (८) अथवा पृ० ३५० के सूत्र (क) के अनुसार काल समीकरण सहज ही निकाला जा सकता है। सूत्र (क) के अनुसार,

काल-समीकरण = ११५·१६५ ज्या (१४२°४०′ + ७८°२४′)

− १४७·६६५ ज्या (२ × १४२°४०′)

= ११५·२ ज्या (१८०° + ४१°४′) − १४८ ज्या १८५°२०′

=−११५·२ ज्या ४१°४′—१४८ ज्या (३६०°−७४°४०′)
=−११५·२×·६५७+१४८×ज्या ७४°४०′
=−११५·२×·६५७+१४८×·६६४४
=−७५·७+१४२·७=६७ असु
=+११ पल

धन का चिह्न यह प्रकट करता है कि इस दिन के किसी स्पष्ट काल में ११ पल जोड़ने से जो आता है वही उस समय का मध्यक काल है। इसलिए इस दिन जब धूप घड़ी के अनुसार रात के १२ बजेंगे तब मध्यम घड़ी में १२ बजकर ११ पल हुआ रहेगा।

प्रातःकाल की सूर्य की क्रान्ति —

मध्य रात्रि के सूर्य का स्पष्ट भोगांश ३ रा २८°३०′·७ अथवा ३ रा २८°३१′ है। परन्तु मध्यम प्रातः काल ६ बजे माना जाता है इसलिए मध्यम प्रातः काल के ४५ घड़ी उपरान्त मध्य रात्रि होती है। सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५७′·५ है। इसलिए ४५ घड़ी में इसकी गति ४३′ के लगभग होती है। इस प्रकार उदयकाल में सूर्य का भोगांश ३ रा २८°३१ − ४३′=३ रा २७°४८′ इसमें अयनांश २२°४०′ जोड़ा तो आया ४ रा २०°२८′। यही सूर्य का उदयकालिक सायन भोगांश है। इसलिए पृष्ठ ३०६ के अनुसार

सूर्य की उदयकालिक क्रान्ति ज्या=ज्या ४ रा २०°२८′×·३९७९
=ज्या ३९°३२′×·३९७९
=·६३३६×·३९७९
=·२५२१

∴ सूर्य की उदयकालिक क्रान्ति=१४°३६′

काशी का अक्षांश२५°२०′ है। इसलिए इस दिन काशी में उदयकालिक सूर्य की चरज्या=स्परे१४°३६′×स्परे २५°२०′
=·२६०५×·४७३४
=·१२३३

∴ चरांश=७°५′

∴चरकाल=७१ पल

यह धनात्मक है क्योंकि क्रान्ति उत्तर है।

उज्जैन से काशी का पूर्व देशान्तर १ घड़ी १२ पल ५० वि० (देखो पृष्ठ ६६) अथवा १ घड़ी १३ पल है।

उज्जैन के स्पर्श काल में काशी का देशान्तर १ घड़ी १३ पल जोड़ने पर काशी के मध्य रात्रि से —५७ पल + १घड़ी १३ पल पर अर्थात् १६ पल पर काशी में ग्रहण का स्पर्श देख पड़ेगा।

परन्तु मध्यम मध्य रात्रि से ११ पल ऊपर स्पष्ट मध्य रात्रि होती है। इसलिए स्पष्ट मध्य रात्रि से १६ पल — ११ पल = ५ पल उपरान्त काशी में ग्रहण का स्पर्श देख पड़ेगा।

इस दिन का चर काल + ७१ पल = + १ घड़ी ११ पल है। इसलिए सूर्योदय से १ घड़ी ११ पल पर धूप घड़ी में ६ बजेगा।

इसलिए सूर्योदय से प्रातः काल के ६ बजे तक	= १ घड़ी ११ पल
प्रातः काल के ६ बजे से मध्य रात्रि तक	= ४५ घड़ी ० पल
मध्य रात्रि से स्पर्श काल तक	= ० घड़ी ५ पल
योग	४६ १६

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार काशी में चन्द्रग्रहण का स्पर्श सूर्योदय से ४६ घड़ी १६ पल के उपरान्त होगा।

काशी में सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ काल इस प्रकार जाना जाता है :—

	घड़ी	पल
उज्जैन की मध्यम मध्य रात्रि से सम्मीलन-काल तक का समय	२	३१
काल-समीकरण घटाया *		—११
उज्जैन की स्पष्ट मध्यरात्रि से सम्मीलन काल तक का समय	२	२०
काशी का पूर्व देशान्तर	= +१	१३
६ बजे प्रातःकाल से मध्यरात्रि तक	= ४५	०
चरकाल	+ १	११
योग	४६	४४

---

* काल-समीकरण यद्यपि धनात्मक है तथापि यहाँ घटाया गया है इसका कारण यह है कि जब स्पष्ट काल ज्ञात रहता है तब उसमें धनात्मक काल-समीकरण जोड़ने से जो आता है वह मध्यम काल होता है परन्तु जब मध्यम काल ज्ञात हो और स्पष्ट काल जानना होता है तब धनात्मक काल समीकरण मध्यम काल से घटाना पड़ता है क्योंकि स्पष्ट काल मध्यम काल से कम होता है।

अर्थात् काशी में सूर्योदय से ४६ घड़ी ४४ पल पर सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ होगा और पूरा चन्द्रविम्ब अन्धकारमय हो जायगा।

स्पर्श काल में स्थित्यर्ध काल का दूना जोड़ देने से मोक्षकाल और सम्मीलन-काल में विमर्दार्ध का दूना जोड़ देने से उन्मीलन काल ज्ञात हो जायँगे।

स्थित्यर्ध=४ घड़ी २० पल

∴ ग्रहण की स्थिति=८ घड़ी ४० पल

स्पर्शकाल ४६ घड़ी १६ पल, सूर्योदय से

∴ मोक्षकाल ५४ घड़ी ५६ पल ''

विमर्दार्ध=५४ पल

∴ विमर्द अथवा सर्वग्रास ग्रहण की स्थिति=१ घड़ी ४४ पल

सम्मीलन-काल सूर्योदय से ४६ ४४ पर

∴ उन्मीलनकाल सूर्योदय से ५१ २८ पर

सब का सार

उपर्युक्त गणना के अनुसार वापूदेव शास्त्री के पत्रा के अनुसार

	घ०	पल	घ०	पल
स्पर्श	४६	१६	४६	८
सम्मीलन	६६	४४	४८	३६
मध्य	५०	३६	५०	४०
उन्मीलन	५१	२८	५२	४३
मोक्ष	५४	५६	५५	११

म० म० बापूदेव शास्त्री के पत्रे में ग्रहण काल के सम्बन्ध में जो समय दिये हैं वे नाविक पञ्चाङ्ग (**Nautical almanac**) से विलकुल मिलते-जुलते हैं। इसलिए ये समय विल्कुल शुद्ध हैं। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाले हुए समय इनसे वहुत भिन्न हैं। इसलिए अब यह देखना है कि इस भिन्नता का कारण क्या है?

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ग्रहण के जो मूलाङ्क आये हैं उनकी तुलना ज्योतिर्गणित से निकाले हुए मूलाङ्कों से करने पर देख पड़ता है कि सूर्य और चंद्रमा के भोगांश दोनों रीतियों के अनुसार प्रायः एकसे हैं परन्तु राहु के भोगांशों में बड़ा अन्तर है जिसके कारण चंद्रमा के शर में महान् अन्तर पड़ जाता है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि यदि राहु का यथार्थ भोगांश नवीन रीति से जानकर चंद्रमा का शर जाना जाय और इसी शर से चंद्र-ग्रहण की गणना की जाय तो क्या आता है।

ज्योतिर्गणित के अनुसार राहु का भोगांश १२०°४′·५ होता है। इस ग्रंथ के अनुसार इस वर्ष का अयनांश २२°४७′ होता है परन्तु सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार १६७६ वि० की मेष संक्रान्ति जिस ममय हुई थी उस समय अयनांश २२°३७′ ३८″·१ था (देखो पृ० २५२)। दो वर्ष में अयनांश की वृद्धि

$$=५८''·६६३३४४ \times २ + ·०००१११ \times ३^२$$

$$=११७'' ३२६७ + ·००१$$

$$= ११७''·३२७७$$

$$=१' ५७''·३३$$

१६८१ वि० की मेष संक्रान्ति से १२४ दिन बाद श्रावण को पूर्णिमा हुई इसलिए १२४ दिन में अयनांश की वृद्धि १६″·६३ होगी। इसलिए श्रावणी पूर्णिमा के दिन अयनांश=२२°३७′ ३८″·१+१′ ५७″·३+१६″·६

$$=२२° ३६' ५५''$$

=२२°४०′ स्वल्पान्तर से

इससे प्रकट है कि ज्योतिर्गणित का मेष विन्दु सूर्य सिद्धान्त के मेष विन्दु से इस वर्ष ७′ आगे था। इसलिए जब ज्योतिर्गणित के अनुसार राहु का भोगांश १२०°४′.५ है तब सूर्य-सिद्धान्त के मेष-विन्दु से स्पष्ट राहु का भोगांश १२०° ११′·५ होगा। राहु के इसी भोगांश से चन्द्रमा का शर जानकर ग्रहण काल जानने से यह पता चलेगा कि केवल राहु की गति में संशोधन कर देने से सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाला हुआ ग्रहण काल यथार्थता से कितना भिन्न है।

पूर्णिमान्त काल का स्पष्ट चंद्रमा सूर्य-सिद्धान्तानुसार २६८°३४′

" राहु दृग्गणितानुसार १२०°११′·५

" राहु से चंद्रमा का अन्तर १७८°२२′.५

दृग्गणित अथवा ज्योतिर्गणित के अनुसार चन्द्रमा का परमशर ५°६′ होता है न कि ४°३०′ जैसा कि सूर्य-सिद्धान्त में लिखा है। इसलिए चन्द्रमा की पूर्णिमान्त-कालिक शरज्या

$$=\frac{\text{ज्या } ५°६' \times \text{ज्या } १७८°२२'·५}{३४३८}$$

$$=\frac{\text{ज्या } ५°६' \times \text{ज्या } १°३७'.५}{३४३८}$$

$$=\frac{३०६ \times ६७·५}{३४३८}$$

$$=८'.७६$$

इसलिए पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र शर भी ८′.७६ ही हुआ। चन्द्र शर के इसी मान को मानैक्य खंड और मानान्तर खंड के साथ रख कर गणना करने से पहले की तरह

ग्रास का परिमाण = ६०′·६३ − ८′·७६ = ५१′·८७

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{\text{६० घड़ी} \times \sqrt{\{(\text{६०·६३} + \text{८·७६})(\text{६०·६३} - \text{८·७६})\}}}{\text{७६५·५}}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \sqrt{\{\text{६९·३९} \times \text{५१·८७}\}}}{\text{७६५·५}} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \text{५९·९९}}{\text{७६५·५}} \text{ घड़ी}$$

= ४ घड़ी ४२ पल

इसलिए ग्रहण स्थिति काल = ९ घड़ी २४ पल

$$\text{विमर्दार्ध} = \frac{\text{६० घड़ी} \times \sqrt{\{(\text{२७·३१} + \text{८·७६})(\text{२७·३१} - \text{८·७६})\}}}{\text{७६५·५}}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \sqrt{\{\text{३६·०७} \times \text{१८·५५}\}}}{\text{७६५·५}} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \text{२५·८६७}}{\text{७६५·५}} \text{ घड़ी}$$

= २ घड़ी १·६५ पल

इसलिए विमर्द अथवा सर्वग्रास स्थिति काल = ४ घड़ी ३ पल के लगभग

	घ.	पल	
पूर्णिमान्त काल =	३	२३	मध्यरात्रि के उपरान्त
स्थित्यर्ध घटाया	− ४	४२	
स्पर्श काल	−१	१९	

ऋण चिह्न प्रकट करता है कि १ घड़ी १९ पल मध्यरात्रि से पहले का समय है।

पहले लिखे हुए सब संस्कार संक्षेप में यों लिखे जाते हैं :—

	घड़ी	पल
स्पर्श काल	−१	१९
काशी का देशान्तर	+१	१३

काल समीकरण	−०	११	
चरकाल	+१	११	
मध्यम प्रातःकाल से मध्यम मध्यरात्रि तक	+४५	०	
काशी के सूर्योदय से स्पर्शकाल का आरम्भ	४५	५४	पर होगा।
पूर्णिमान्त काल	३	२३	मध्यरात्रि के उपरान्त
विमर्दार्ध	−२	१·७	
सम्मीलन काल	१	२१·३	मध्यरात्रि के उपरान्त
काशी का देशान्तर	+१	१३	
काल समीकरण	−०	११	
चरकाल	+१	११	
प्रातःकाल से मध्य रात्रि तक	४५	०	
काशी के सूर्योदय के सर्वग्रास का आरम्भ	४८	३४·३	पर होगा।
विमर्द काल	४	३·४	
∴ काशी के सूर्योदय से उन्मीलन	५२	३३·७	पर होगा

इसी प्रकार स्पर्शकाल में ग्रहण स्थिति काल जोड़ने से काशी के सूर्योदय से ५५ घड़ी १८ पल पर ग्रहण का मोक्ष होगा।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त के राहु के भोगांश की जगह राहु का यथार्थ भोगांश प्रयोग करने से सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ और अन्त यथार्थता के बहुत निकट हो जाता है। इन सब बातों से जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त में राहु का भगण काल बहुत अशुद्ध है। इसकी अपेक्षा ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के अनुसार राहु की गणना बहुत शुद्ध है और यथार्थता के बहुत निकट है।

यह पहले बतलाया गया है कि ग्रहण की गणना करने के लिए सूर्य और चन्द्रमा के लंबन, बिम्ब, दूरी, इत्यादि की जानकारी जितनी सूक्ष्म हो ग्रहण-काल उतना ही शुद्ध आते हैं। यह भी दिखलाया गया है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की जो गति बिम्बमान इत्यादि निकलते हैं वह स्थूल हैं। यदि इन सबका विचार दृग्गणित के अनुसार किया जाय तो ग्रहण के प्रत्यक्षकाल और गणित सिद्ध काल में कुछ भी अन्तर न पड़ेगा। इसलिए कम से कम ग्रहण काल का शुद्ध समय

जानने के लिए अपने सिद्धान्त ग्रन्थों में ऐसे संशोधनों का समावेश करना चाहिए जो दृग्गणित से सिद्ध होते हैं। ऐसे संशोधनों की पूरी जानकारी कराने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे यहां एक वेधशाला ऐसी हो जिससे अर्वाचीन ज्योतिष का पठन-पाठन सुगमतापूर्वक हो सके। मेरी समझ में यह अधर्म है कि हम अपने पंचागों में ग्रहण, शृङ्गोन्नति, ग्रहोदय, ग्रहास्त, इत्यादि की गणना करने के लिए पाश्चात्य देशों में बने हुए नाविक पंचांगों के आश्रित हों परन्तु इनके सिद्धान्तों के पठन-पाठन का स्वतन्त्र प्रवन्ध न करें।

अव संक्षेप में यह दिखलाया जायगा कि ज्योतिर्गणित के अनुसार इस ग्रहण के मूलाङ्क क्या हैं।

पूर्णमान्तकालिक मूलाङ्क

स्पष्ट रवि	११८°५६′·२३
स्पष्ट चन्द्र	२६८°५६′·२३
रविदिन गति	५७′·६
चन्द्र दिन गति	१४°८′·१
राहु	१२०°४′·५
रवि लम्बन	०′·१५
चन्द्र परम लम्बन	५६′·३
चन्द्र विम्व	३२′·४
भूभा विम्व	८७′·०
मानैक्य खंड	५६′·६
मानान्तर खंड	२७′·२
अयनांश	२२°४७′
चन्द्र शर उत्तर	६′·६
प्रातःकाल की सूर्य क्रान्ति	१४°३१′·३

यह पहले वतलाया गया है कि अयनांशों में भिन्नता क्यों है। इस भिन्नता के कारण रवि राहु और चन्द्रमा के भोगांशों में भी ७′ का अन्तर हो जायगा। इन मूलाङ्कों से यदि ग्रहण की गणना की जाय तो नाविक पञ्चांग में दिये हुए समय से २ या ३ पल का अन्तर रह जाता है। इसका कारण यह है कि ऊपर सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियां ही ली गयी हैं जवकि सूक्ष्म गणना के लिये इनका प्रत्येक घड़ी की गति स्पर्श, सम्मीलन, उन्मीलन कालों को जान कर काम लेना चाहिए।

इसी प्रकार चन्द्रमा के शर की भी गणना करनी चाहिए जैसा कि चित्र ९८ के सम्बन्ध में बतलाया गया है। ऐसा करने से गणना का विस्तार बहुत हो जायगा इसलिए वह नहीं दिखलाया जाता।

स्पर्श काल और मोक्ष काल के स्फुट वलनों की गणना—

स्फुट वलन के लिए आक्षवलन और अयन वलन का जानना आवश्यक है। आक्षवलन के लिए चन्द्रमा की तात्कालिक क्रान्ति और नतकाल जानना चाहिए।

क्रान्ति की गणना—

ऊपर बतलाया गया है कि स्थित्यर्थ ४ घड़ी ४२ पल है जिसमें चन्द्रमा १°४′२८″ अथवा १°४′·५ चलता है क्योंकि चन्द्रमा की दैनिक गति ८२३′ है।

पूर्णिमान्त कालिक चन्द्र भोगांश	२९८°३४′
स्थित्यर्ध में चन्द्रमा की गति	१°४′·५
∴ स्पर्शकालिक चन्द्र भोगांश	२९७°२९′·५
और मोक्षकालिक चन्द्र भोगांश	२९९°३८′·५
राहु का भोगांश दोनों कालों में	१२०°११′·५
∴ स्पर्श काल में राहु से चन्द्रमा का अन्तर	१७७°१८′
मोक्ष काल में राहु से चन्द्रमा का अन्तर	१७९°२७′

$$\text{स्पर्शकालिक चन्द्र शर ज्या} = \frac{\text{ज्या } ५°९' \text{ ज्या } १७७°१८'}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{ज्या } ५°९' \text{ ज्या } २°४२'}{३४३८}$$

$$= \frac{३०९ \times १६२}{३४}$$

$$= १४'·६$$

∴ स्पर्शकालिक चन्द्र शर $= १४'·६$

$$\text{मोक्षकालिक चन्द्र शर ज्या} = \frac{\text{ज्या } ५°९' \text{ ज्या } १७९°२७'}{३४३८}$$

$$= \frac{३०९ \times ३३}{३४३८} = ३'.$$

∴ मोक्षकालिक चन्द्र शर $= ३'$

स्पर्शकालिक चन्द्र भोगांश=२६७°२६′·५

अयनांश=२२°४०′

स्पर्शकालिक चन्द्र सायन भोगांश=३२०°६′·५

इसी प्रकार मोक्षकालिक चन्द्र सायन भोगांश=३२२°१८′·५

स्पर्शकालिक चन्द्र मध्यम क्रान्ति ज्या=ज्या २३°२७′ ज्या ३२०°६′·५

=·३६७६×·६४०५

=·२५४६

∴मध्यम क्रान्ति=१४°४६′ दक्षिण

चन्द्र शर=०°१४′·६ उत्तर

∴स्पर्शकाल के चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति=१४°३१′·४ दक्षिण

यह स्पष्टाधिकार श्लोक ५८ के अनुसार है। यदि शुद्ध गणना करनी हो तो पृ० २०२ में बतलायी गयी रीति से काम लेना चाहिए जो विस्तार भय से यहां छोड़ दी जाती है।

इसी प्रकार मोक्षकालिक चन्द्र मध्यम क्रान्ति=१४°५′ दक्षिण

शर = ३′ उत्तर

∴ ,, चन्द्र स्पष्ट क्रान्ति=१४°२′ दक्षिण

नतकाल की गणना—

चन्द्रमा का नतकाल जानने के लिए पहले सूर्य का नतकाल जानना पड़ता है। मध्याह्न काल में सूर्य यामोत्तर वृत्त पर रहता है और मध्य रात्रि काल में भी वह क्षितिज के नीचे यामोत्तर वृत्त पर रहता है इसलिए पृथ्वी की छाया का केन्द्र मध्य रात्रि काल में ठीक यामोत्तर वृत्त पर रहता है क्योंकि पृथ्वी की छाया का केन्द्र सूर्य से ठीक १८०° पर रहता है। इसलिए मध्यरात्रि काल में पृथ्वी की छाया के केन्द्र का नतकाल शून्य होता है। यदि यह जान लिया जाय कि स्पर्शकाल मध्य रात्रि से कितना पहले या पीछे है तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि स्पर्शकाल में पृथ्वी की छाया के केन्द्र का नतकाल कितना पूर्व या पच्छिम है। चन्द्रग्रहण के समय चन्द्रमा पृथ्वी की छाया के बहुत पास रहता है और यह मालूम ही रहता है कि चन्द्रमा पृथ्वी की छाया से कितने अंतर पर है इसलिए चन्द्रमा का नतकाल सहज ही जाना जा सकता है।

		घड़ी	पल
उदयकालिक सूर्य का चरकाल	=	१	११
मध्यम प्रातः काल से मध्य रात्रि तक	=	४५	०

सूर्योदय से मध्यरात्रि तक	=	४६	११
सूर्योदय से स्पर्शकाल का समय	=	४५	५४
मध्य रात्रि से पहले स्पर्शकाल का समय	=	०	१७

इसलिए जो कुछ ऊपर कहा गया है उसके अनुसार स्पर्शकाल के समय पृथ्वी की छाया के केन्द्र का नतकाल १७ पल=१०२ असु है अर्थात् स्पर्श के आरंभ के उपरान्त १७ पल पर पृथ्वी की छाया का केन्द्र ठीक यामोत्तर वृत्त पर आ जावेगा।

		घड़ी	पल
सूर्योदय से मोक्ष का समय	=	५५	१८
,, मध्य रात्रि का समय	=	४६	११
मध्य रात्रि के उपरान्त मोक्ष का समय		९	७

इसलिए मोक्षकालिक पृथ्वी की छाया के केन्द्र का नत काल ९ घड़ी ७ पल या ५४७ पल या ३२८२ असु है।

अब यह देखना है कि स्पर्श काल के समय भूमाकेन्द्र का भोगांश क्या है ?

पूर्णिमान्त कालिक सूर्य का भोगांश	=११८°३४′
स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पल में सूर्य की गति	= ४′·५
∴स्पर्शकालिक सूर्य का भोगांश	=११८°२९′·५
सूर्य से भूभाकेन्द्र का अन्तर	=१८०°०
∴स्पर्शकालिक भूभाकेन्द्र का भोगांश	=२९८°२९′·५
चंद्रमा का भोगांश	=२९७°२९′·५
∴स्पर्श के समय भूमा केन्द्र से चंद्रमा का अंतर	=१°

इसको विषुवकाल में बदलने के लिए स्पष्टाधिकार के श्लोक ५९ से काम लेना चाहिए। चंद्रमा सायन कुम्भ राशि में है जिससे लंका के उदयासु १७९४ [१] हैं (देखो पृष्ठ ३१४) इसलिये १° के उदयासु १७९४÷३०=५९·८=६०

स्पर्शकालिक भूभाकेन्द्र का पूर्व नतकाल	=	१०२ असु
भूभाकेन्द्र से चन्द्रमा का अन्तर पच्छिम की ओर	=	६० असु
स्पर्श कालिक चंद्रमा का नतकाल		४२ असु
	=	४२′
पूर्णिमान्तकालिक सूर्य का भोगांश		=११८°३४′

---

१. नतकाल जानने के लिये लंका के उदयासुओं से काम लेना चाहिये क्योंकि मध्य लग्न का विचार लंका के उदयासुओं से ही किया जाता है, देखो पृष्ठ ३२९-३३०।

स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पल में सूर्य की गति = ४′·५

∴ मोक्षकालिक सूर्य का भोगांश =११८°३८′·५

सूर्य से भूभाकेन्द्र का अंतर =१८०°

∴ मोक्षकालिक भूभाकेन्द्र का भोगांश =२९८°३८′·५

" चंद्रमा का भोगांश =२९९°३८′·५

" भूभाकेन्द्र से चन्द्रमा का अंतर पूर्व की ओर } १°

इसके उदयासु भी पूर्ववत् ६० असु होंगे।

मोक्षकालिक भूभाकेन्द्र का पच्छिम नतकाल =३२८२ असु

भूभाकेन्द्र से चंद्रमा का अंतर पूर्व की ओर = ६० असु

∴ मोक्षकालिक चंद्रमा का नतकाल ३२२२ असु

=३२२२′

=५३°४२′

चंद्रमा की स्पर्शकालीन चर ज्या =स्परे २५°२०′×स्परे १४°३१′·४

=·४७३४×·२५९०

=·१२२६

∴ स्पर्शकालीन चरांश =७°२′

पृष्ठ २९२ के समीकरण (ग) के अनुसार,

नतांश कोटिज्या =(कोज्या ४२′ − ज्या ७°२′) कोज्या २५°२०′ कोज्या १४°३१′·४

= (·९९९९ − ·१२२६)×·९०३८×·९८०६

= ·८७७३×·९०३८×·९६८

= ·७६७५

∴ स्पर्शकालीन नतांश = ३९°५३′

पृष्ठ २७६ के अनुसार,

$$\text{ज्या अग्रा} = \frac{\text{ज्या } १४°३१′४}{\text{ज्या } ३९°५३′ \times \text{कोज्या } २५°२०′} + \text{को स्परे } ३९°५३′ \times \text{स्परे } २५°२०′$$

$$= \frac{·२५०८}{·६४१२\times·९०३८} + १·१९६७\times·४७३४$$

=·४३२८+·५६६५

=·९९९३

∴अग्रा=८७°५४′

∴पूर्व विन्दु से चन्द्रमा का दिगंश =८७°५४′ दक्षिण

और उत्तर विन्दु से ,, =९०°+८७°५४′

=१७७°५४′ दक्षिण

∴ स्परे (ख उ ग)=अग्रा कोटि ज्या × नतांश स्पर्शरेखा

=कोज्या ८७°५४′ × स्परे ३९°५३′

=·०३६६ × ·८३५६

=·०३०६

समप्रोत वृत्त का नतांश=१°४५′

$$\text{ज्या (आक्षवलन)}=\frac{\text{ज्या } २५°२०′ \text{ ज्या } १°४५′}{\text{कोज्या } १४°३१′}$$

$$=\frac{·०१३१}{·९६८}=·०१३५$$

∴आक्षवलन=०°४६′ उत्तर

स्पर्शकालीन चन्द्रमा का भोगांश	२९७°२९′·५
अयनांश	२२°४०′
स्पर्शकालीन चन्द्रमा का सायन भोगांश	३२०°९′·५

इसमें ९०° जोड़ने से चंद्रमा का सायन भोगांश ५०°९′·५ होता है जिसकी क्रान्ति उत्तर होगी। इसलिए आयनवलन भी उत्तर होगा।

∴ पृष्ठ ४८० के सूत्र (२) के अनुसार

$$\text{ज्या (आयनवलन)}=\frac{\text{ज्या } २३°२७′ \times \text{कोज्या } ३२०°९′·५}{\text{कोज्या } १४°३१′·५}$$

$$=\frac{·३९७९ \times ·७६७९}{\text{कोज्या } १४°३१′·५}$$

=·३१५७

∴ आयनवलन=१८°२४′ **उत्तर**

∴ स्पर्शकालीन स्फुटवलन=१८°२४′+०°४६′

=१९°१०′ **उत्तर**

चंद्रमा की मोक्षकालीन चरज्या = स्परे २५°२०′ स्परे १४°२′

= ·४७३४ × ·२४६६

= ·११८३

∴ मोक्षकालीन चरांश = ६°४८′

∴ मोक्षकालीन नतांश कोटिज्या

= (कोज्या ५३°४२′ − ज्या ६°४८′) कोज्या २५°२०′ कोज्या १४२′

= (·५६२० − ·११८३) × ·९०३८ × ·९७०२

= ·४७३७ × ·९०३८ × ·९७०२

= ·४१५४

∴ मोक्षकालीन नतांश = ६५°२७′

ज्या अग्रा = $\frac{\text{ज्या } 14°2'}{\text{ज्या } 65°27' \text{ कोज्या } 25°20'}$ + कोस्परे ६५°२७′ × स्परे २५°२२′

= $\frac{·2425}{·9066 \times ·9038}$ + ·४५६८ × ·४७३४

= ·२९५० + ·२१६३

= ·५११३

∴ अग्र = ३०°४५′

∴ पच्छिम विन्दु से चंद्रमा का मोक्षकालीन दिगंश = ३०°४५′ दक्षिण

∴ स्परे (खउग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्शरेखा

= कोज्या ३०°४५′ स्परे ६५°२७′

= ·८५९५ × २·१८९३

= १·८८१७

∴ समप्रोतवृत्त का नतांश = ६२°१′

∴ ज्या (आक्षवलन) = $\frac{\text{ज्या } 25°20' \text{ ज्या } 62°1'}{\text{कोज्या } 14·2'}$

= $\frac{·4279 \times ·8830}{·9702}$

= $\frac{·3778}{·9702}$ = ·३८९४

∴ आक्षवलन = २२°५५′ दक्षिण

मोक्षकालीन चंद्रमा का भोगांश $=$ २९९°३८′·५

अयनांश $=$ २२°४०′

चंद्रमा का सायन भोगांश $=$ ३२२°१८′·५

इसमें ९०° जोड़ने से सायन भोगांश ५२°·१८′ ·५ होगा जिसकी क्रान्ति उत्तर होती है।

इसलिए आयनवलन उत्तर होगा।

$$\text{ज्या (आयनवलन)} = \frac{\text{ज्या } २३°२७' \text{ कोज्या } ३२२°१८'·५}{\text{कोज्या } १४°२'}$$

$$= \frac{·३९७९ \times \text{कोज्या } ३७°४१'·५}{·९७०२}$$

$$= \frac{·३९७९ \times ·७९१३}{·९७०२}$$

$$= \frac{·३१४९}{·९७०२}$$

$$= ·३२४६$$

∴ आयनवलन $=$ १८°५६′ उत्तर

∴ स्फुटवलन $= -$ २२°५५′ $+$ १८°५६′

$=$ ३°५९′ दक्षिण

इसी प्रकार सम्मीलन, मध्य और उन्मीलन कालों के स्फुटवलन जाने जा सकते हैं।

स्फुटवलनों और ग्रह विम्बों के अंगुलात्मक मान जानने का जो नियम २६वें श्लोक में वतलाया गया है उसकी आवश्यकता परिलेखाधिकार में पड़ेगी इसलिए वहीं इसका उदाहरण भी दिया जायगा।

इस प्रकार चन्द्रग्रहणाधिकार नामक चौथे अधिकार का विज्ञानभाष्य समाप्त हुआ।

पंचम अध्याय

सूर्यग्रहणाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १—किस समय सूर्य के लंबन और नति शून्य होते हैं। श्लोक २-८—लंबन जानने के नियम। श्लोक ९—लंबन का संस्कार देकर असकृत्कर्म से अमावस्यान्त काल निश्चय करना। श्लोक १०-११—नति जानने के नियम। श्लोक १२—नति और चन्द्रमा के शर के योग या अन्तर से नति-संस्कृत-शर जाना जाता है। श्लोक १३—नति-संस्कृत-शर से स्थिति, विमर्द इत्यादि जाना चाहिए। श्लोक १४-१७—स्पर्श और मोक्षकाल के लंबन को जानकर असकृत्कर्म से फिर स्पर्श और मोक्षकाल की गणना करनी चाहिए।]

लंबन और नतिका अभाव कब होता है—

मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न संभवः।
अक्षोदङ्मध्यभक्रान्तिसाम्ये नावनतेरपि ॥१॥

अनुवाद—(१) जब सूर्य त्रिभोन लग्न पर होता है तब उसमें भोगांश-लंबन का अभाव होता है। जब किसी स्थान का उत्तर अक्षांश और त्रिभोन लग्न की उत्तर क्रान्ति समान होते हैं अर्थात् जब सूर्य ख-स्वस्तिक पर रहता है तब उसमें नति अर्थात् शर-लंबन का अभाव होता है।

विज्ञानभाष्य—इस श्लोक के मध्यगत का अनुवाद त्रिभोन लग्न किया गया है यद्यपि पृष्ठ ३२९ में बतलाया गया है कि मध्यलग्न वित्रिभ लग्न अथवा त्रिभोन लग्न से भिन्न होता है। परन्तु यहाँ आचार्य ने त्रिभोन लग्न को मध्य इसलिए लिख दिया कि यह उदय और अस्त लग्नों के मध्य में होता है, यद्यपि एक ही शब्द का प्रयोग दो अर्थों में संदिग्ध होता है। यदि मध्यलग्न का वह अर्थ लिया जाय जो त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक ४८ में माना गया है तो भाव अशुद्ध ठहरता है इसलिये यहाँ मध्य-लग्न का अर्थ त्रिभोन लग्न ही है। यदि सूर्य या कोई ग्रह त्रिभोन लग्न पर हो तो भोगांश-लंबन शून्य होता है। इसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार में विस्तारपूर्वक बतलायी गयी है (देखो पृ० ४१०)। शर-लंबन के सम्बन्ध में भी वहीं बतलाया जा चुका है।

देशकालविशेषेण यथाऽवनतिसंभवः।
लम्बनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते ॥२॥

अनुवाद—(२) पहले श्लोक में बतलायी गई स्थिति से भिन्न दशा में देश कालानुसार जैसी नति होती है और जब सूर्य वित्रिभ लग्न से पूर्व वा पश्चिम होता है तब उसमें जैसा भोगांश-लंबन होता है उसकी चर्चा यहाँ की जाती है।

लग्नं पर्वान्तनाडीभिः कुर्यात्स्वैदयासुभिः ।
तज्ज्याऽन्त्यापक्रमज्याघ्ना लम्बज्याप्तोदयाभिधा ।।३।।
तथा लङ्कोदयैर्लग्नं मध्यसंज्ञं यथोदितम् ।
तत्कान्त्यक्षांशसंयोगो दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।।४।।
शेषं नतांशास्तन्मौर्वी मध्यज्या साऽभिधीयते ।
मध्योदयज्याऽभ्यस्ता त्रिज्याप्ता वर्गितं फलम् ।।५।।
मध्यज्यावर्गतः प्रोज्झ्य दृक्क्षेपः शेषतः पदम् ।
तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषान्मूलं शङ्कुस्स दृग्गतिः ।।६।।

अनुवाद—(३) पर्वान्तकाल अर्थात् अमावस्या के अंतकाल का खण्ड इष्ट स्थान के (राशि के) उदयासुओं से जान कर उसकी ज्या को परमक्रान्ति ज्या से गुणा करके गुणनफल को इष्ट स्थान की लम्ब ज्या या अक्षांश-कोटिज्या से भाग देने पर जो लब्धि आती है उसे उदय या उदयज्या कहते हैं। (४) पर्वान्ति काल में लङ्का के उदयासुओं से पहले कहे हुए के अनुसार मध्यलग्न अथवा दशम लग्न जानकर उसकी क्रान्ति को इष्ट स्थान के अक्षांश में जोड़ दे यदि दोनों की दिशायें एक ही हों। यदि दिशाएँ भिन्न हों तो क्रान्ति और अक्षांश का अन्तर निकाले। (५) जोड़ने या घटाने से जो कुछ आवे वही मध्य लग्न का नतांश है। इसी की ज्या को मध्य ज्या कहते हैं। मध्यज्या को उदयज्या से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या से भाग दे और लब्धि का वर्ग करे। (६) और वर्गफल को मध्य ज्या के वर्ग से घटा और शेष का वर्गमूल निकाले। वर्गमूल निकालने को जो आता है वही दृक्क्षेप कहलाता है। दृक्क्षेप के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग से घटा कर वर्गमूल निकालने से जो आता है वही शंकु या दृग्गति है।

विज्ञानभाष्य—इन चार श्लोकों में जो क्रिया बतलायी [illegible]
उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ४११-४१३ में अच्छी तरह व[illegible]
स्थान के चित्र ७९ से प्रकट होता है कि मध्य लग्न की [illegible]
अक्षांश को कब जोड़ना चाहिये और कब घटाना च[illegible]
की रीति वही है जो पृष्ठ २६५-२६६ में [illegible]

यहाँ लग्न का अर्थ सायन [illegible]

नतांश[illegible]

[illegible]

मध्यलग्नार्कविश्लेषज्या छेदेन विभाजिता ।
रवीन्द्वोर्लम्बनं ज्ञेयं प्राक्पश्चाद्घटिकादिकम् ॥८॥

अनुवाद—(७) स्थूल रूप से दशम लग्न के नतांश की ज्या को दृक्क्षेप और कोटिज्या को दृग्गति कह सकते हैं । एक राशि की ज्या के वर्ग को दृग्गति रूपी जीवों से भाग देने पर जो आता है उसे छेद कहते हैं । (८) त्रिभोन लग्न से सूर्य जितना दूर रहता है उसे विश्लेप या विश्लेपांश कहते हैं । इसकी ज्या को छेद से भाग देने पर सूर्य या चन्द्रमा का पूर्व या पश्चिम लंवन घड़ियों में आ जाता है । यदि सूर्य त्रिभोन लग्न से पूर्व है तो पूर्व लंवन और पश्चिम है तो पश्चिम लंवन होता है ।

विज्ञानभाष्य—दृक्क्षेप और दृग्गति के शुद्ध रूप तो वही हैं जो ६वें श्लोक में बतलाये गये हैं । परन्तु उनके जानने की रीति लम्बी है इसलिये ७वें श्लोक के पूर्वार्ध में छोटी रीति बतलायी गयी है जो स्थूल है । इस छोटी रीति में मध्यलग्न के नतांश को ही त्रिभोन लग्न का नतांश मान लिया गया है क्योंकि इन दोनों में बहुत कम अंतर रहता है । परन्तु इससे स्थूलता अवश्य आ जाती है ।

छेद और विश्लेपांश से सूर्य और चन्द्रमा का भोगांश लंबन आनन की जो रीति यहाँ बतलायी गयी है उसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ४१३ और पृष्ठ ४०५-४०६ में बतलायी गई है ।

मध्यलग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात्प्रविशोधयेत् ।
धनमूनेऽसकृत्कर्म यावत्सर्वं स्थिरीभवेत् ॥९॥

अनुवाद—(९) त्रिभोनलग्न के भोगांश से सूर्य का भोगांश अधिक हो तो सूर्य त्रिभोन लग्न से पूर्व रहता है इसलिए सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश लंवनों के अंतर को अमावस्या के अंतकाल से घटाना चाहिए । परन्तु यदि त्रिभोनलग्न के भोगांश से सूर्य का भोगांश कम हो तो सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश लंबों के अंतर को आमावस्या के अंतकाल में जोड़ना चाहिए । अमावस्या के अंतकाल में भोगांश [illegible] प्रकार संस्कार करने पर जो समय आता है वह भोगांश लम्बन-[illegible] अंतःकाल होता है । इस काल में सूर्य और चन्द्रमा के लम्बनों [illegible] से फिर निकाले और उपर के लम्बन संस्कृत-अमावस्यान्त [illegible] समय आवे उसका फिर लंवन निकाले और इसका [illegible] कर्म तव तक करे जब तक कि समय स्थिर [illegible] कार करने पर अमावस्यान्त काल [illegible] ना चाहिए । ऐसा करने से

विज्ञान भाष्य—असकृत्कर्म से गणना अधिक शुद्ध हो जाती है जैसा पहले बतलाया गया है (देखो पृष्ठ २६९)। जिस समय पूर्व की ओर जाते हुए चन्द्रमा भोगांश सूर्य के भोगांश के समान हो जाता है उसी समय अमावस्या का अंत होता है। इसको गणित सिद्ध अमावस्यान्त कहते हैं। जब सूर्य त्रिभोन लग्न से पूर्व की ओर होता है तब चन्द्रमा लंबन के कारण पूर्व की ओर लटक कर अमावस्या के पहले ही सूर्य के सम्मुख हो जाता है इसलिए जितना दोनों का सापेक्ष लंबन होता है उतना ही पहले स्पष्ट अमावास्या का अंत होता है। इसी करण श्लोक के पूर्वार्ध में गणितसिद्ध अमान्त काल से लंबन घटाने को कहा गया है। इसके प्रतिकूल जब सूर्य त्रिभोन लग्न से पच्छिम होता है तब चन्द्रमा गणितसिद्ध अमावस्यान्त काल में भी सूर्य के सन्मुख नहीं देख पड़ता क्योंकि लंबन के कारण कुछ नीचे पच्छिम की ओर लटक पड़ता है। इसलिए इस समय जितना लंबन होता है उतना ही पीछे स्पष्ट अमावस्यान्त काल होता है इसीलिए यह लंबन जोड़ने से स्पष्ट अमावस्या होती है।

दृक्क्षेपश्शीततिग्मांश्वोर्मध्यभुक्त्यन्तराहतः।
तिथिघ्नत्रिज्यया भक्तो लब्धं साऽवनतिर्भवेत् ॥१०॥
दृक्क्षेपात्सप्ततिहृताद् भवेद्वाऽवनतिः फलम्।
अथवा त्रिज्यया भक्ता सप्तसप्तकसङ्गुणा ॥११॥
मध्यज्यादिग्वशात्तस्या दिग्ज्ञेया दक्षिणोत्तरा।
दिक्साम्ये सेन्दुविक्षेपयुक्ता विश्लेषितान्यथा ॥१२॥

अनुवाद—(१०) चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक गतियों के अतर को दृक्क्षेप से गुणा करके गुणनफल को पन्द्रह-गुणित-त्रिज्या से भाग दे दो। ऐसा करने से जो लब्धि आवेगी वही अवनति या नति या शरलम्बन है। (११) अथवा दृक्क्षेप को उत्तर से भाग देने पर जो लब्धि आती है वह नति होती है अथवा दृक्क्षेप को ४९ से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या से भाग देने पर जो लब्धि आती है वह नति है। (१२) नति मध्यज्या की दिशा के अनुसार उत्तर या दक्षिण दिशा में होती है, अर्थात् यदि मध्यज्या की दिशा खस्वस्तिक से दक्षिण दिशा है तो नति की दिशा भी दक्षिण होगी और यदि मध्य ज्या की दिशा ख-स्वस्तिक से उत्तर है तो नतिकी दिशा उत्तर होगी। यदि चन्द्रमा के शर और नति की दिशायें एक ही हैं तो इनको जोड़ना चाहिये और भिन्न हों तो घटाना चाहिए। ऐसा करने से जो आवे वह नति संस्कृत-चन्द्र-शर या विक्षेप है।

विज्ञानभाष्य—१० और ११ श्लोकों का सार यह है।

$$\text{नति} = \frac{(\text{चन्द्रमा की दैनिक गति-सूर्य की दैनिक गति}) \times \text{दृक्क्षेप}}{१५ \times \text{त्रिज्या}}$$

$$\frac{\text{दृक्क्षे}}{७०} = \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४९}{\text{त्रिज्या}}$$

यहाँ यह ध्यान में रखना चहिए कि त्रिज्या ३४३८ कला के समान होती है। यदि दृक्क्षेप अर्थात् त्रिभोनलग्न के नतांश की ज्या भारतीय रीति से लिखी जायगी तभी त्रिज्या से भाग देने की आवश्यकता पड़ेगी परन्तु यदि दृक्क्षेप का मान आजकल की प्रथानुसार दशमलव भिन्न में हो तो ३४३८ की जगह त्रिज्या का मान १ हो जायगा।

त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ ४०७ में नति का मान यह सिद्ध किया गया है—

शु=लि ज्या त्रा कोज्या श—लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व

यहाँ शरलंवन के लिए भु, ग्रह के परम लम्बन के लिए लि, त्रिभोन लग्न के नतांश के लिए त्रा और ग्रह के शर के लिए श तथा विश्लेपांश के लिए व माने गये हैं।

सूर्य ग्रहण के समय चन्द्रमा का शर अथवा श बहुत कम होता है यदि इसको बहुत छोटा मान लिया जाय तो ज्या श को शून्य और कोज्या श को आजकल की प्रथा के अनुसार १ मानना पड़ेगा। ऐसी दशा में

भु=लि ज्या त्रा

होगा। अर्थात् परम लंबन को त्रिभोन लग्न के नतांश की ज्या या दृक्क्षेप से गुणा करने पर जो आता है वही नति है। श्लोक १० में यही बात बतलायी गयी है। सूर्यग्रहण के समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों की नतियों का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि इन नतियों के अंतर के समान ही चन्द्रमा की सापेक्ष नति होती है इसलिए सूर्य और चन्द्रमा की गतियों के अतर से दृक्क्षेप को गुणा करने को कहा गया है। पृष्ठ ४०९ में यह बतलाया गया है कि ग्रह का परम लंबन उसकी दैनिक गति का पन्द्रहवाँ भाग होता है इसलिए चन्द्रमा का सापेक्ष परम लंबन सूर्य और चन्द्रमा की गतियों का गतियों का पन्द्रहवाँ भाग माना गया है। इस प्रकार दसवें श्लोक की उपपत्ति सिद्ध होती है। अब स्पष्ट है कि इक प्रकार जो नति निकलती है वह स्थूल है। शुद्धतापूर्वक नति का मान जानने के लिए वह सूत्र काम में लाना चाहिए जो पृष्ठ ४०७ में सिद्ध किया गया है।

११वें श्लोक में नति जानने की जो दूसरी रीतियां बतलायी गयी हैं वह पहली ही रीति के दो रूप हैं। चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक रीतियों का अन्तर=७९०·६ – ५९′·१=७३१·५। इसलिए इसका १५वां भाग=४८·७७=४९ स्थूल रूप से। यदि इस मान को पहले सूत्र में उत्थापित किया जाय तो

$$\text{नति} = \frac{४६ \times \text{दृक्क्षेप}}{\text{त्रिज्या}}$$
$$= \frac{४६ \times \text{दृक्क्षेप}}{३४३८}$$
$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{\frac{३४३८}{४६}}$$
$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{७०\frac{८}{४६}}$$
$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{७०}$$

तथा स्थितिविमर्दार्धग्रासाद्यं च यथोदितम् ।
प्रमाणं वलनाभीष्टग्रासादि हिमरश्मिवत् ॥१३॥

अनुवाद—(१३) नति संस्कृत चन्द्र शर से चन्द्रग्रहणाधिकार में बतलाई गई रीति के अनुसार स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध, ग्रास, प्रमाण वलन, अभीष्ट ग्रास इत्यादि अर्थात् सम्मीलन, उन्मीलन, मोक्षकाल इत्यादि जानना चाहिए। इससे जो स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध आवेंगे वे मध्यम स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध कहलाते हैं।

विज्ञान भाष्य—लंबन और नति की क्रिया के बाद सूर्य ग्रहण की गणना उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार चन्द्र ग्रहण की गणना बतलाई गयी है। क्योंकि जैसे चन्द्र ग्रहण में भूछाया छादक और चन्द्रमा छाद्य होता है, वैसे ही सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा छादक और सूर्य छाद्य होता है। छाद्य और छादक का जैसा सम्बन्ध चन्द्र ग्रहण में भी होता है।

स्थित्यर्धोनाधिकात्प्राग्वत्तिथ्यन्ताल्लम्बनं पुनः ।
ग्रासमोक्षोद्भवं साध्यं तन्मध्यहरिजान्तरम् ॥१४॥
प्राक्कपालेऽधिकं मध्याद् भवेत् प्राग्ग्रहणं यदि ।
मौक्षिकं लम्बनं हीनं पश्चार्धे तु विपर्ययात् ॥१५॥
तदा मोक्षस्थितिदले देयं प्राग्ग्रहणे तथा ।
हरिजान्तरजं शोध्यं यद्यैतत्स्याद्विपर्ययात् ॥१६॥
एतदुक्तं कपालैक्ये दिग्भेदे लम्बनैकता ।
स्वे स्वे स्थितिदले योज्या विमर्दार्धेपि चोक्तवत् ॥१७॥

अनुवाद—(१४) श्लोक ९ के अनुसार असकृत्कर्म से जो अमावस्यान्तकाल आवे उसमें १३वें श्लोक के अनुसार जो स्थित्यर्ध आवे उसको घटाकर स्पर्शकाल और जोड़कर मोक्षकाल जाने। फिर स्पर्शकाल और मोक्षकाल के भोगांश लम्बन जानकर ग्रहण के मध्यकाल के भोगांश लंबन से अन्तर निकाले।

(१५) यदि ग्रहण पूर्व कपाल में हो अर्थात् यदि ग्रहण काल में सूर्य का भोगांश त्रिमोन लग्न के भोगांश से अधिक हो तो स्पर्शकाल का लंबन मध्यकाल के लंबन से अधिक होगा और मोक्षकाल का लंबन मध्यकाल के लंबन से कम होगा। परन्तु यदि ग्रहण पच्छिम कपाल में हो अर्थात् ग्रहण काल में सूर्य का भोगांश त्रिभोन लग्न के भोगांश से कम हो तो लंबन का परिमाण उलटे क्रम से होगा अर्थात् स्पर्श-काल का लंबन मध्यकाल के लंबन से कम होगा और मोक्षकाल का लंबन मध्यकाल के लंबन से अधिक होगा।

(१६) दोनों दशाओं में अर्थात् चाहे स्पर्श और मोक्ष पूर्व कपाल में हो चाहे पच्छिम कपाल में, १४वें श्लोक के अनुसार निकाले हुए लंबनों के अन्तर को मोक्ष-स्थित्यर्ध और स्पर्श-स्थित्यर्ध में जोड़कर स्पष्ट स्थित्यर्ध जानना चाहिये। परन्तु यदि १५वें श्लोक में कहे हुए नियम के विपरीत दशा हो अर्थात् यदि पूर्वकपाल में स्पर्श-कालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से कम हो और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से अधिक हो अथवा पश्चिम कपाल में स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से अधिक हो और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से कम हो तो १४वें श्लोक के अनुसार प्राप्त अन्तर को स्पर्श या मोक्ष स्थित्यर्ध से घटाना चाहिये तब स्पष्ट स्थित्यर्ध आता है।

(१७) जब स्पर्श, मध्य और मोक्ष तीनों एक ही कपाल में हों तभी उपर्युक्त लंबनों का अन्तर निकल कर उपर्युक्त क्रिया करनी चाहिए। यदि स्पर्श एक कपाल में हो और मध्य दूसरे कपाल में अथवा मध्य एक कपाल में हो और मोक्ष दूसरे कपाल में तब स्पर्श और मध्यकाल के लंबनों को अथवा मध्य और मोक्ष काल के लंबनों को जोड़कर अपने-अपने स्थित्यर्ध से जोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार स्पष्ट स्थित्यर्ध विमर्दार्ध भी जानना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—यह स्पष्ट है कि ९वें श्लोक के अनुसार आए हुए अमावस्यान्तकाल में अथवा ग्रहण के मध्यकाल में सूर्य और चन्द्रमा के जो लंबन आते हैं वे स्पर्शकाल और मोक्षकाल के लंबन से भिन्न होते हैं क्योंकि स्पर्श और मोक्ष के समय सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की सतत गति के कारण इनके गतांश भिन्न होते हैं और त्रिप्रश्नाधिकार में दिखलाया गया है कि लंबन नतांश पर निर्भर होता है अर्थात् यदि नतांश अधिक हो तो लंबन भी अधिक होता है और नतांश कम हो तो लंबन भी कम होता है (पृष्ठ ३८३)। इसलिये १४वें श्लोक में स्पर्शकाल और मोक्ष-काल के लंबन जानने की आवश्यकता बतलायी गयी है और मध्यकाल के लंबन से अन्तर जानने को बतलाया गया है। यदि स्पर्श और मोक्ष दोनों पूर्वकपाल में हों अर्थात् त्रिलोभन लग्न पर आने के पहले ही ग्रहण का स्पर्श और मोक्ष हो जाय तो

यह स्पष्ट है कि स्पर्श के समय सूर्य या चन्द्रमा का नतांश मध्यकाल के सूर्य या चन्द्रमा के नतांश से अधिक होगा और मोक्ष के शमय कम होगा क्योंकि त्रिलोभन-लग्न ही क्षितिज के ऊपर क्रान्तिवृत्त का सबसे ऊँचा विन्दु है और सूर्य चन्द्रमा उदय होने पर क्रमशः ऊपर उठते जाते हैं अर्थात् इनका नतांश कम होता जाता है इसलिये स्पर्शकाल का नतांश मध्यकाल के नतांश से अधिक और मोक्षकाल का नतांश मध्य-काल के नतांश से कम होता है। परन्तु यदि स्पर्श और मोक्ष दोनों पच्छिम कपाल में हो तो स्पर्श के समय सूर्य का नतांश मध्यमकालीन नतांश से कम होगा और मोक्ष कालीन नतांश मध्यमकालीन नतांश से अधिक होगा क्योंकि पच्छिम कपाल में सूर्य या चन्द्रमा नीचे उतरते जाते हैं इसलिये इनका नतांश बढ़ता जाता है।

स्पर्श काल और मध्यकाल लंबनों का जो अन्तर होता है उसको पूर्व कपाल के मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ने से स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध आता है क्योंकि पहिले जो स्थित्यर्ध निकाला जाता है वह मध्य काल के लंबन के अनुसार होता है परन्दु स्पर्श काल में लंबन कुछ अधिक होता है इसलिये इसके कारण चन्द्रमा के कुछ और नीचे अर्थात् पूर्व की ओर लटक पड़ने से स्पर्श कुछ और पहले देख पड़ता है अर्थात् स्थित्यर्ध का मान बढ़ जाता है। परन्तु मध्य काल की अपेक्षा मोक्षकाल में (पूर्व कपाल में होने के कारण) लंबन कम रहता है इसलिए इन दोनों में जो अन्तर होता है उसको भी मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ने से मोक्षकालीन स्पष्ट स्थित्यर्ध आता है क्योंकि जब मोक्षकालीन लंबन कम होता है तब चन्द्रमा पूर्व की ओर उतना नहीं लटकता जितना मध्य काल में लटकता है इसलिए सूर्य के सम्मुख देर तक रहता है और मोक्षकालिक स्थित्यर्थ भी बढ़ जाता है।

पच्छिम कपाल में लंबन के कारण चन्द्रमा पच्छिम की ओर लटक पड़ता है जिससे उसको सूर्य के सम्मुख आने में कुछ विलम्ब हो जाता है क्योंकि चन्द्रमा की गति सदैव पूर्व पूर्व की ओर होती है और लंबन के कारण जान पड़ता है मानों वह पच्छिम की ओर भी जा रहा है। इसी कारण ग्रहण का मध्यकाल गणितसिद्ध अमावस्यान्त काल से कुछ पीछे होता है। परन्तु चन्द्रमा का स्पर्शकालिक नतांश मध्यकालिक नतांश से कम होता है क्योंकि जिस समय ग्रहण का स्पर्श होता है उससे कुछ देर पीछे ग्रहण का मध्य होता है और इतनी देर में पृथ्वी की दैनिक गति के कारण अथवा प्राचीनो के मत से प्रवाह वायु की गति के कारण सूर्प चन्द्रमा सभी नीचे हो जाते हैं। इसलिए पच्छिम कपाल में स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से नतांश के कम होने के कारण कम होता है जिसका प्रभाव यह होता है जिसका प्रभाव यह होता है कि ग्रहण के स्पर्श करने में उतना विलम्ब नहीं लगता जितना ग्रहण के मध्यकाल में विलम्ब लगता है अर्थात् स्पर्श के समय लंबन के कम होने से

स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध बढ़ जाता है। इसी प्रकार मोक्ष के समय चन्द्रमा का नतांश मध्यकालिक नतांश से अधिक हो जाने के कारण मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से अधिक होता है। इसका प्रभाव यह होता है कि चन्द्रमा देर तक सूर्य के सम्मुख रहता है क्योंकि मोक्ष के समय चन्द्रमा सूर्य से ऊपर देख पड़ता है परन्तु अधिक लंबन के कारण यह ऊपर न जाकर नीचे ही लटका रहता है जिससे मोक्षकाल में भी कुछ विलम्ब हो जाता है अर्थात् स्पष्ट मोक्ष स्थित्यर्ध भी बढ़ जाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि चाहे स्पर्श और मोक्ष दोनों पूर्व कपाल में हों चाहे स्पर्श और मोक्ष दोनों पच्छिम कपाल में हों, प्रत्येक दशा में ग्रहण का समय कुछ बढ़ जाता है अर्थात् स्पर्श कुछ पहले और मोक्ष कुछ देर में होता है। इसलिए स्पर्श और मध्यकाल तथा मध्य और मोक्षकाल के लंबनों में जो अन्तर होता है उसको मध्यम में जोड़ने से स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होता है। स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध को ग्रहण के मध्यकाल में घटाने से प्रत्यक्ष स्पर्श काल तथा मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध को ग्रहण के मध्यमकाल में जोड़ने से प्रत्यक्ष मोक्षकाल होता है।

यहाँ तक तो १६ वें श्लोक के पूर्वार्ध को व्याख्या हुई। इसके उत्तरार्ध का अर्थ समझ में नहीं आता क्योंकि इसमें जिस दशा की गई है वह प्रकृति के विरुद्ध है। पूर्व कपाल में स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से सदैव अधिक रहेगा क्योंकि स्पर्शकालिक नतांश मध्यकालिक नतांश से सदैव अधिक होता है और इसी तर्क से मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से सदैव कम रहता है। इसी प्रकार पच्छिम कपाल में स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से सदैव कम रहेगा और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से सदैव अधिक रहता है। हाँ, यदि ग्रस्तोदय या ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो और बात है। परन्तु ऐसी दशा में विशेष रीति से गणना करनी पड़ेगी और किसी स्थान के लिए केवल यह जानना आवश्यक होगा कि ग्रस्तोदय ग्रहण में मोक्ष कब होता है। पहली दशा में यही विचारना होगा कि सूर्योदय के समय सूर्य का कितना भाग ग्रस्त रहता है और यह ग्रस्त भाग कितनी देर में निकल के बाहर हो जायगा। इस क्रिया के लिए चन्द्रग्रहणाधिकार के श्लोक १८, १६, और २० की सहायता लेनी पड़ेगी। दूसरी दशा में अर्थात् ग्रस्तास्त ग्रहण में यह विचारना होगा कि सूर्यास्त के समय सूर्य का कितना भाग ग्रस्त रहता है और इसके कितने पहले ग्रहण का स्पर्श हुआ। इस क्रिया के लिए भी उन्हीं श्लोकों की सहायता लेनी पड़ेगी।

अब तक जो कुछ कहा गया है वह उस दशा के लिये है जब स्पर्श और मोक्ष एक कला में हों। यदि स्पर्श एक कपाल में हो और मध्य दूसरे कपाल में अथवा मध्य एक कपाल में हो और मोक्ष दूसरे कपाल में तब स्पर्श और मध्य काल के लग्नों को

अथवा मध्य और मोक्षकाल के लंबनों को जोड़ने से जो आवे उसे मध्य स्थित्यर्ध में जोड़ना चाहिए क्योंकि ऐसी दशा में ग्रहण काल बहुत बढ़ जायगा। मान लो कि स्पर्श पूर्व कपाल में और मध्य पच्छिम कपाल में हुआ। यह स्पष्ट है कि ऐसी दशा में ग्रहण का मध्य काल पच्छिम लंबन के कारण कुछ देर में होगा अर्थात् चन्द्रमा हट जाने के कारण सूर्य के सम्मुख कुछ देर में आवेगा। परन्तु स्पर्श के समय चन्द्रमा का लम्बन पूर्व की ओर होगा इसलिये स्पर्श कुछ पहले ही हो जायगा। पहले कारण से ग्रहण का मध्यकाल कुछ पीछे हट जायगा और दूसरे कारण से स्पर्श काल कुछ पहले हो जायगा इसलिये स्पर्श से मध्य काल तक का समय दोनों कारणों से बढ़ जायगा। ऐसी दशा में स्पर्श और मध्यकालिक लंबनों के योग को मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ने से ही स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होगा परन्तु मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध के लिये दोनों लंबनों का अन्तर ही मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ना होगा क्योंकि मध्य काल और मोक्ष काल दोनों पच्छिम कपाल में होंगे केवल स्पर्श ही पूर्व कपाल में होगा। परन्तु यदि स्पर्श और मध्य दोनों पूर्व कपाल में हो और मोक्ष पच्छिम कपाल में हों तो स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध के लिये लंबनों के अंतर को मध्य स्थित्यर्ध में जोड़ना होगा और मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध जानने के लिये लंबनों के योग के मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ना होगा।

यहाँ तक जो रीति स्पर्श और मोक्ष काल जानने के लिए बतलायी गयी है उसी रीति से सम्मीलन और उन्मीलन कालों को भी जानना चाहिए।

उदाहरण—काशी के लिये संवत् १९८२ वि० के माघ कृष्णा अमावस्या के सूर्य ग्रहण की गणना—

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार—

पहले इस दिन के सुर्य, चन्द्रमा, चन्द्रोच्च और राहु को स्पष्ट करना चाहिये। इसलिये कलियुग के आरंभ से इस दिन तक का अहर्गण जानना आवश्यक है।

कलियुग से १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा तक १८३५५४७·५२३६ दिन होते हैं। संवत् १९८१ की श्रावणी पूर्णिमान्त काल से १९८२ के माघ के अमावस्यान्त काल तक १७॥ चान्द्र मास होते हैं क्योंकि इस बीच में कोई मलमास नहीं है। एक चांद्रमास २९·५३०५८८ सावन दिनों के समान होता है। इसलिये

१९८१ की श्रावणी पूर्णिमान्त तक	१८३५५४७·५२३६	दिन
१७ चांद्र मास	= ५०२·०२	दिन
आधा चांद्र मास	= १४·७६५३	दिन

∴ कलियुग से १९८२ की माघी अमावस्या तक १८३६०६४·३०८९

∴ इस दिन की मध्यरात्रि तक का अहर्गण = १८३६०६४

इसको ७ से भाग देने पर शेष ६ बचता है। कलियुग का आरम्भ गुरुवार की मध्यरात्रि में हुआ था इसलिये जिस समय का अहर्गण ऊपर आया है वह बुधवार की मध्यरात्रि का है। परन्तु १९८२ वि० की स्पष्ट माघी अमावस्या गुरुवार को थी इसीलिये उपर्युक्त अहर्गण पूर्णिमान्त गणना से माघ की चतुर्दशी और अमान्त गणना से पौष की चतुर्दशी की मध्यरात्रि का है। इस अमावस्या का अन्त गुरुवार के मध्यान्ह के लगभग हुआ है। इसलिये चतुर्दशी और अमावस्या दोनों की मध्य-रात्रिकाल के चन्द्र, सूर्य इत्यादि को स्पष्ट करना चाहिए। जिस प्रकार पृष्ठ ४८५ में इन ग्रहों की स्थिति जानी गयी है उसी प्रकार यहाँ भी करने से माघ कृष्ण १४ की अर्द्धरात्रि काल में मध्यम स्थिति यह आती है (यदि पूरे भगण न लिखे जायँ)—

सूर्य	=	८ राशि	२९	अंश	३३·१४४	कला
चन्द्रमा	=	८ "	२५	"	४९·६५३	"
चन्द्रोच्च	=	० "	२६	"	९·११६	"
राहु	=	२ "	२३	"	३०·३८९	"

यहाँ चन्द्रोच्च की स्थिति में ३ राशि जोड़ना और राहु की स्थिति को ६ राशि से घटाना चाहिए (देखो पृष्ठ ४८६)।

इसलिये १९८२ वि० के माघ कृष्ण १४ बुधवार की मध्यरात्रि काल में उज्जैन में

सूर्य का मध्यम स्थान	=	८रा	२९°	३३′·१४४
चन्द्रमा का "	=	८	२५	४९′.६५३
चन्द्रोच्च का "	=	३	२६	९′·११६
राहु का "	=	३	६	२९′·६११

सूर्य का मन्दकेन्द्र = सूर्य का मन्दोच्च—सूर्य का मध्यम स्थान

$$= २^{रा}\ १७°१७′·५२ - ८^{रा}\ २९°३३′·१४$$
$$= ५^{रा}\ १७°४४′·३८$$
$$= १\ \text{पाद} + २^{रा}\ १७°४४′·३८$$

∴ दूसरे पाद का गम्य भाग = १२°१५′·६२ = ७३५′·३२

$$\text{सूर्य की स्फुट मन्द-परिधि} = ८४०′ - २०′ \times \frac{\text{भुजज्या } ७३५′·६}{३४३८}$$

$$= ८४०′ - २०′ \times \frac{७३०}{३४३८}$$

$$= ८४०′ - ४′ = ८३६′$$

$$\therefore \text{ भुजफल} = \frac{८३६ \times ७३०}{२१६००}$$

$$= २८'\cdot२५४$$

यही सूर्य का मन्द फल है। यह धनात्मक है क्योंकि मन्द केन्द्र अजादि है (देखो पृष्ठ १५४)। इसलिये बुधवार को मध्यरात्रि का स्पष्ट सूर्य

$$= ८ \text{ रा } २९^\circ३३'\cdot१४४ + २८'\cdot२५४$$

$$= ९ \text{ रा } ०^\circ \; १'\cdot३९८$$

$$\text{सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति * } = ५९'८'' + \frac{८३६ \times २१९ \times ५९'८}{२१६०० \times २२५}$$

$$= ५९'८'' + २'१३''\cdot६$$

$$= ६१'२१''\cdot६ = ६१'\cdot३६$$

चन्द्रमा का मंद केन्द्र = चन्द्र मन्दोच्च — मध्यम चन्द्र

$$= ३ \text{ रा } २६^\circ९'\cdot११६ - ८ \text{ रा} २५^\circ४९'\cdot६५३$$

$$= ७ \text{ रा } ०^\circ१९'\cdot४६३$$

$$= २ \text{ पाद} + १ \text{ रा } ०^\circ \; १९'\cdot४६३$$

$$= २ \text{ पाद} + ३०^\circ१९'\cdot४६३$$

$$\therefore \text{ तीसरे पाद का गत भाग} = ३०^\circ१९'\cdot४६$$

$$= १८१९'\cdot५$$

$$\text{चन्द्रमा की स्फुट मन्द-परिधि} = ३२^\circ - २०' \times \frac{\text{भुज ज्या } १८१९'\cdot५}{३४३८}$$

$$= ३२^\circ - २०' \times \frac{१७३५\cdot५५}{३४३८}$$

$$= ३२^\circ - १०'$$

$$३१^\circ५०' = १९१०'$$

$$\therefore \text{ भुजफल} = १९१० \times \frac{१७३५\cdot५५}{२१६००}$$

$$= १५३'\cdot४६८$$

$$= २^\circ३३'\cdot४६८$$

यही चंद्रमा का मन्दफल है। यह ऋणात्मक है क्योंकि चन्द्र-केन्द्र तुलादि है। इसलिये बुधवार की मध्यरात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा

* देखो पृष्ठ १५७

$=$ ८रा २५° ४६′·६५३ $-$ २°३३′·४६८

$=$ ८रा २३° १६′·१८५

स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमा से प्रकट है कि बुधवार की मध्य रात्रि को चन्द्रमा सूर्य से ७ अंश के लगभग पच्छिम है इसलिये अमावस्या अगले दिन होगी। यह जानने के लिये कि अमावस्या कब होगी, चन्द्रमा की स्पष्ट गति जाननी चाहिये। चतुर्दशी की मध्यरात्रि का मध्यम चन्द्र $=$ ८रा २५° ४६′·६५३

दैनिक मध्यमगति $=$ १३°१०′·५८३

अमावस्या की मध्यरात्रि का मध्यम चंद्र $=$ ९रा ९° ०′·२३६

चतुर्दशी की मध्यरात्रि का चन्द्रोच्च $=$ ३रा २६° ९′·११६

एक दिन की गति ६′·६८३

अमावस्या की मध्यरात्रि का चन्द्रोच्च $=$ ३रा २६° १५′·७९९

∴ अमावस्या की मध्यरात्रि का चन्द्र मन्द केन्द्र

$=$ ३रा २६°१५′·७९९ $-$ ९रा९°०′·२३६

$=$ ६रा १७°१५′·५६३

$=$ २ पाद $+$ १७°१५′·६

∴ तीसरे पाद का गत भाग $=$ १७°१५′·६ $=$ १०३५′·६

∴ चन्द्रमा की स्फुट मन्द परिधि $=$ ३२° $-$ २०′ $\times$ $\frac{\text{भुज ज्या } १०३५\cdot६}{३४३८}$

$=$ ३२° $-$ २०′ $\times$ $\frac{१०१९\cdot६}{३४३८}$

$=$ ३२° $-$ ६′

$=$ १९१४′

∴ भुजफल $=$ १९१४ $\times$ $\frac{१०१९\cdot६}{२१६००}$ $=$ ९०′·३४८ $=$ १°३०′·३४८

∴ मन्दफल $=$ १°३०′·३४८

∴ अमावस्या की मध्यरात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा

$=$ ९रा९°०′·२३६ $-$ १°३०′·३४८

$=$ ९रा७°२९′·८८८

∴ चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति $=$ ९रा७°२९′·८८८ $-$ ८रा२३°१६′·१८५

$=$ १४°१३′·७०३ $=$ ८५३′·७०३

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति= ६१′·३६

चन्द्रमा और सूर्य की दैनिक गतियों का अन्तर=१३°१२′·३४३

=७९२′·३४३

मध्यरात्रि का स्पष्ट सूर्य=९रा०°१′·३९८

,, ,, चन्द्रमा=८रा २३°१६′·१८५

दोनों का अन्तर =६°४५′·२१३=४०५′·२१३

सूर्य और चन्द्रमा में ७९२′·३४३ का अन्तर ६० घड़ियों में होता है इसलिये ४०५′·२१३ का अन्तर $\frac{४०५·२१३ \times ६०}{७९२·३४३}$ घड़ियों में होगा जो ३० घड़ी ४१·१ पल के समान है। इसलिये उज्जैन में माघी अमावस्या का अन्त बुधवार की मध्य रात्रि से ३० घड़ी ४१·१ पल उपरान्त अथवा गुरुवार के मध्यम ६ बजे प्रातःकाल से १५ घड़ी ४१·१ पल पर हुआ।

काशी उज्जैन से १ घड़ी १२·८ पल पूर्व है (देखो पृष्ठ २५१) इसलिये काशी में गुरुवार के मध्यम ६ बजे प्रातःकाल से १६ घड़ी ५३.९ पल पर अमावस्या का अन्त हुआ।

अब अमावस्यान्तकालिक सूर्य, चन्द्रमा और राहु को स्पष्ट करना चाहिये।

६० घड़ी में सूर्य की स्पष्ट गति=६१′·३६

∴३० ,, ,, =३०′·६८

३० पल में सूर्य की गति=३०″·६८= ·५११३ कला

१० पल में सूर्य की गति = ·१७०४

१ ,, ,, = ·०१७०

·१ ,, ,, = ·००१७

∴३० घड़ी ४१·१ पल में सूर्य की गति=३१′·३८०

बुधवार की मध्यरात्रि का स्पष्ट सूर्य=९रा०° १′·३९८

∴अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य=९रा०°३२′·७७८

६० घड़ी में चन्द्रमा की स्पष्ट गति = १४°१३′·७०३

३० ,, ,, = ७°६′·८५१५

३० पल में ,, = ७′·११४२

१० ,, ,, = २·३७१४

१ ,, ,, = ·२३७१

·१ ,, ,, = ·०२३७

३० घड़ी ४१·१ पल में ,, = ७°१६′·५९८

बुधवार की मध्य रात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा	= ८रा२३°१६′·१८५
अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट चन्द्रमा	= ९रा०°३२′·७८३
६० घड़ी में राहु की गति	= ३′११″ = ३′·१८३३
३० ,, ,,	= १·५९१६
३० पल में ,,	= ·०२६५
१० ,, ,,	= ०·००८८
१ ,, ,,	= ·०००९
∴ ३० घड़ी ४१ पल में राहु की गति	= १′·६२८
बुधवार की मध्यरात्रि का राहु	= ३रा६°२९′·६११
∴ अमावस्यान्तकालिक राहु	= ३रा६°२८′·०

सूर्य विम्व का स्फुट व्यास $= \frac{६५०० \times ६१·३६}{५९·१३३}$ योजन[1]

चन्द्र विम्व का स्फुट व्यास $= \frac{४८० \times ८५३·७०३}{७९०·५८३}$ योजन

चन्द्र कक्षा में सूर्य विम्व का स्फुट व्यास

$$= \frac{६५०० \times ६१·३६}{५९·१३३} \times \frac{४३२००००}{५७७५३३३६} \text{ योजन}^{1}$$

$$= \frac{६५०० \times ६१·३६ \times ४३२००००}{५९·१३३ \times ५७७५३३३६ \times १५}$$

$$= ३३'·६३४$$

चन्द्रमा का स्फुट व्यास कलाओं में

$$= \frac{४८० \times ८५३·५०३}{७९०·५८३} \times \frac{१}{१५}$$

$$= ३४'·५५५$$

काशी में सूर्योदय का समय—

पहले यह जानना आवश्यक है कि काशी में सूर्योदय काल में सूर्य की क्रान्ति क्या थी। यह तो प्रकट ही है कि सूर्योदय काल में सूर्य का निरयन भोगांश स्थूलतः ९रा०°१५′ के लगभग है अर्थात् सूर्य मकर राशि के आदि विन्दु से १५′ के लगभग पूर्व है इसलिए इसकी क्रान्ति पृष्ठ ४७० की सारणी के अनुसार २१°३२′·७ से कुछ

१. देखो चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक २

हो कम होगी और दक्षिण होगी । काशी में इसका चरांश १०°४७′ के लगभग होगा और चरकाल १ घड़ी ४७·८ पल होगा । इसलिए काशी में स्पष्ट सूर्योदय ६ बजकर १ घड़ी ४७·८ पल पर होगा ।

काल समीकरण—इस दिन का मध्यम सायन भोगांश जानने के लिए मध्यरात्रि के मध्यम सूर्य में १५′ जोड़ देने से प्रातःकालिक मध्यम निरयन भोगांश होता है ८^रा^२६°४८′ के लगभग । इसमें यदि अयनांश २२°४१′ जोड़ा जाय तो मध्यम सायन भोगांश होता है ६^रा^२२°२६=२६२°२६′,

∴ काल-समीकरण=२३′·१७ ज्या २६२°२६′+११२′·८३ कोज्या २६२°२६′
—१४८′ ज्या २×२६२°२६′
=२३′·१७ (—ज्या ६७°३१′)
+११२′.८३ कोज्या ६७°३१′
—१४८ ज्या ५८४°५८′[१]
=—२३′१·७×·६२४०+११२′·८३×·३८२४
—१४८′ (—·७०६७)
=२१·४+४३·२+१०४·६
=१२६·४ असु
=+२१·१ पल

काशी में सूर्योदय का स्पष्ट काल=६ बजकर १ घड़ी ४७·८ पल
काल समीकरण= +२१·१ पल

∴काशी में सूर्योदय का मध्यकाल=६ बजकर २ घड़ी ८·६ पल
परन्तु अमावस्यांत का मध्यकाल=६ बजकर १६ घड़ी ५३·६ पल
∴ सूर्योदय से अमावस्यांत तक का समय=१४ घड़ी ४५ पल
अर्थात् सूर्योदय से १४ घड़ी ४५ पल पर काशी में अमावस्या का अन्त हुआ ।

अब यदि अमावस्यान्तकालिक सूर्य से १४ घड़ी ४५ पल की सूर्य की गति घटा दी जाय तो सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य ज्ञात हो जायगा जिससे सूर्य की उदयकालिक क्रान्ति, चर इत्यादि शुद्धतापूर्वक जाने जा सकते हैं ।

१· ५८४° ५८′=३६०°+१८०°+४४°५८′
∴ ज्या ५८४°५८′=ज्या (१८०°+४४°५८)=—ज्या ४४°५८′=—·७०६७

सूर्य की ६० घड़ी की गति=६१′·३६

∴ १५ " = १५′·३४

और १५ पल की " =०′·२५६

∴ १४ घड़ी ४५ पल की गति =१५′·०८४

अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य=९रा०°३२′·७७८

∴ काशी के सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य=९रा०°१७′·६९४

=९रा०°१७′·७ के लगभग

∴ काशी के सूर्योदय के सूर्य का सायन भोगांश

=९रा२२°५८′·७=९रा२२°५९′

सूर्य की क्रान्तिज्या= (ज्या ९रा२२°५९′ × ·३९७९) / १ (देखो पृष्ठ ३०६)

=−ज्या ६७°१′ × ·३९७९

=−·९२०६ × ·३९७९ = −·३६६३

∴ दक्षिण क्रान्ति=२१°२९′

काशी की उदयकालिक चरज्या=स्परे २१°२९′ स्परे २५°२०′

=·३९३६ × ·४७३४=१८६३

चरांश=१०°४४′

चरकाल=६४४ असु=१०७·३ पल=१ घड़ी ४७·३ पल

इसलिये काशी में स्पष्ट सूर्योदय=६ बजकर १ घड़ी ४७·३ पल पर हुआ।

काल समीकरण =२१·१″

∴ काशी में सूर्योदय का मध्यकाल=६ बजकर २ घड़ी ८·४ पल

परन्तु अमावस्यान्त काल=६ बजकर १६ घड़ी ५३·९ पल

∴ सूर्योदय से अमावस्यान्त काल तक का समय=१४ घड़ी ४५·५ पल

सूर्योदय से मध्यान्ह का समय =१५ घड़ी—चरकाल

=१३ घड़ी १२·७ पल

∴ अमावस्यान्त का नतकाल (पच्छिम)=१ घड़ी ३२·८ पल

अमावस्यान्त काल का उदय लग्न त्रिभोन लग्न, और मध्यलग्न, सूर्य सिद्धान्तानुसारः—

सायन राशियों के काशी के उदयासु (पृष्ठ ३१४ की तरह)

मेष	१३४५	असु	मीन
वृष	१५२५	”	कुम्भ
मिथुन	१८२१	”	मकर
कर्क	२०४१	”	धनु
सिंह	२०६३	”	वृश्चिक
कन्या	२००५	”	तुला

अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य $= 9^{रा} 0° 32'.8$

$= 22° 41'$

∴ अमावस्यान्तकालिक सायन सूर्य $= 9^{रा} 23° 13'.8$

$= 9^{रा} 23\ 14'$

मकर राशि के भोग्यांश $= 6° 46' = 406'$

काशी में मकर राशि के उदयासु $= 1821$

१८०० : ४०६ :: १८२१ : मकर के भोग्यासु

$$\text{मकर के भोग्यासु} = \frac{406 \times 1821}{1800} = 411$$

सूर्योदय से अमावस्यान्त तक का समय $= 14$ घड़ी 45.5 पल

$= 885.5$ पल

$= 5313$ असु

मकर के भोग्यासु	=४११
कुम्भ के उदयासु	१५२५
मीन ”	१३४५
मेष ”	१३४५
योग	४६२६

इस योग को ५३१३ असुओं से घटाने पर ६८७ असु शेष होते हैं। यही वृष लग्न के गतासु हैं परन्तु वृष के उदयासु १५२५ हैं।

१५२५ : ६८७ :: १८०० : वृष के गतांश

$$\therefore \text{सायन वृष लग्न के गतांश } \frac{687 \times 1800}{1525} = 811 \text{ कला} = 13° 31'$$

∴ सायन उदय लग्न $30° + 13° 31' = 43° 31'$

∴ अमावस्यान्तकालिक सायन त्रिभोन लग्न $= 43° 31' - 90°$

$= 360° + 43° 31' - 90$

$= 313° 31'$

अमावस्यान्तकालिक सूर्य सायन मकर राशि में है जिसके लङ्का में उदयासु १६३१ हैं (देखो पृष्ठ ३१४)। इसलिये सायन मकर राशि १६३१ असुओं में किसी स्थान के यामोत्तरवृत्त का उल्लंघन करता है (देखो त्रि० श्लो० ४८ और पृ० ३३०)। अमावस्यान्तकाल में सूर्य का पच्छिम नत १ घड़ी ३२·८ पल =९२·८ पल =५५७ असु।

जब १६३१ असुओं में मकर राशि का ३० अंश या १८०० कला यामोत्तर वृत्त को उल्लंघन करता है तब ५५७ असुओं में $\frac{५५७ \times १८००}{१६३१}$ कला=५१६ कला =८°३९′ करेगा। इसलिये सूर्य से मध्य लग्न ८°३९′ पूर्व है जिसे सूर्य के भोगांश में जोड़ने पर मध्य लग्न का ज्ञान होगा। परन्तु इतना जोड़ने पर कुंभराशि मध्य लग्न में हो जाती है इसलिए उत्तम यह है कि पहिले देखा जाय कि मकर राशि कितने समय में उल्लंघन करती है और जितना समय शेष रह जाय उतने में कुम्भ राशि कितना चलती है।

अमावस्यान्तकालिक सायन सूर्य ९ रा २३° १४′ है इसलिये मकर का ६°४६′ भोग्यांश है जो ४०६′ के समान है।

१८०० : ४०६ :: १६३१ : मकर के भोग्यासु

$$\therefore \text{मकर के भोग्यासु} = \frac{४०६ \times १६२१}{१८००} = ४३५\cdot५ \text{ असु}$$

परन्तु नतकाल ५५७ असु है इसलिये कुम्भ के गतासु = १२१·५ असु। कुम्भ के लंका के उदयासु १७९४ हैं, इसलिये

१७९४ : १२१·५ :: १८०० : कुम्भ के गतांश

$$\therefore \text{कुम्भ के गतांश} = \frac{१२१\cdot५ \times १८००}{१७९४} = १२२ \text{ कला} = २°\ २′$$

∴ अमावस्यान्त काल में कुम्भ राशि का २° २′ मध्यलग्न है। अर्थात् मध्यलग्न का सायन भोगांश=१° रा २° २′

$$\text{उदयज्या} = \frac{\text{लग्नज्या} \times \text{परम क्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या } ४३°३१′ \times \text{ज्या } २३°\ २७′}{\text{ज्या } (९० - २५°२०\cdot०′)}$$

$$= \frac{\cdot६८८६ \times \cdot३९७९}{\cdot९०३८} = ३०३२$$

$$\therefore \text{उदय लग्न की अग्रा} = १७°३९′$$

मध्य लग्न का सायन भोगांश=१०रा २° २′=३०२°२′

∴ मध्य लग्न की क्रान्ति ज्या=ज्या ३०२°२′ × ज्या २३°२७′

=− ज्या ५७°५८′ × ज्या २३°२७′

=− ·८४७७ × ·३९७९

=− ·३३७३

∴ दक्षिण क्रान्ति =१९°४३′

काशी का उत्तर अक्षांश =२५° २०′

∴ मध्य लग्न का नतांश =४५° ३′

पृष्ठ ४१३ के प्रथम समीकरण के अनुसार,

त्रिभोन लग्न की नतांश ज्या=कोज्या १७°३९′ × ज्या ४५°३′

=·९५२९ × ७०७७

अथवा दृक्क्षेप=·६७४४

∴ त्रिभोन लग्न का नतांश=४२°२४′

दृग्गति=त्रिभोन लग्न की उन्नतज्या

=ज्या (९०° − ४२°२४′)

=ज्या ४७°३६′

=ज्या ·७३८५

यहाँ ज्या और कोटिज्या की दशमलव सारणी के अनुसार जिसमें त्रिज्या १ मानी गयी है दृग्गति की गणना की गयी है। यदि यह सारणी न हो तो पृष्ठ ४१३ में जो रीति बतलायी गई है उसी से काम लेना चाहिये। दि लघु रिक्त सारिणी से काम लिया जाय तो और भी सुविधा होगी। त्रिभोन लग्न का नतांश जानने की भी सारणी बनायी जा सकती है जिससे सुगमतापूर्वक काम लिया जा सकता है। पृष्ठ ३२८ में तथा और स्थानों में बतलाया गया है कि किसी राशि के प्रत्येक अंश समान काल में उदय नहीं होते इसलिये यदि अनुपात से काम लिया जायगा तो राशि के उदय-विन्दु का ज्ञान स्थूल रहेगा। ऐसी दशा में ऊपर बतलायी गयी रीति से जो त्रिभोन लग्न आवेगा उसमें भी स्थूलता रहेगी क्योंकि क्रान्तिवृत्त के उदय-विन्दु से ९० अंश घटाने पर त्रिभोन लग्न आता है। इसलिये आवश्यक है कि सूर्यग्रहण की गणना के लिये क्रान्तिवृत्त के उदय-विन्दु अथवा उदय लग्न का ज्ञान शुद्धतापूर्वक किया जाय। इसी विचार से नीचे की रीति लिखी जाती है।

विषुवकाल—जिस क्षण वसंत-सम्पात-विन्दु या सायन मेष किसी स्थान के पूर्वक्षितिज पर आता है उस क्षण से किसी इष्ट काल तक के समय को विषुवकाल कहते हैं। पृष्ठ ३१८ - १९ में बतलाया गया है कि प्रयाग में अयन भाग के

उदयासु कैसे जाने जाते हैं। वहाँ अयन भाग के उदयासु १००५ बतलाये गये हैं। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि प्रयाग में जिस समय निरयन मेष का आदि विन्दु क्षितिज वृत्त पर आता है उस समय विषुवकाल १००५ असु के समान होता है। इसी प्रकार जिस समय प्रयाग में निरयन वृष का आदि विन्दु पूर्व क्षितिज पर आता है उस समय विषुवकाल २४७० असु के समान होता है। इससे प्रकट है कि यदि जानना हो कि किसी स्थान में किस समय विषुवकाल क्या होता है तो पहले तो उस समय का उदयलग्न जानना चाहिये फिर उदय लग्न का विषुवांश और चरांश जानकर दोनों का अन्तर निकालना चाहिये। यही अन्तर उस समय का विषुवकाल होता है।

इसी प्रकार यदि किसी समय का विषुवकाल ज्ञात हो तो उस समय का उदय लग्न भी जाना जा सकता है। परन्तु ऊपर की विलोम रीति से यह काम उतना सुगम नहीं है। इसलिये विषुवकाल से उदय लग्न और उदय लग्न से विषुव काल सीधे ही जानने की रीतियाँ यहाँ लिखी जाती हैं:—

उदयकाल की अग्रा—नवीन रीति से :

चित्र ६१ से स्पष्ट है कि गोलीय त्रिभुज का व पू में,

$$\frac{\text{ज्या पू का}}{\text{ज्या} \angle \text{का व पू}} = \frac{\text{ज्या व का}}{\text{ज्या} \angle \text{व पू का}}$$

यहाँ पू का उदय लग्न का की अग्रा है, $\angle$ का व पू परम क्रान्ति है, व का उदय लग्न का सायन भोगांश है और $\angle$ व पू का $=$ १८०° $-$ $\angle$ व पू द $=$ १८०° $-$ इष्ट स्थान का लंबांश

$$\therefore \text{ज्या} \angle \text{व पू का} = \text{ज्या (१८०° − लम्बांश)}$$
$$= \text{ज्या लम्बांश}$$
$$= \text{कोटिज्या अक्षांश}$$

$$\therefore \text{ज्या पू का} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ज्या सायन भोगांश}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}$$

यह भी उदयकालिक अग्रा जानने का एक सूत्र है जो पृष्ठ २६७ के सूत्र और पृष्ठ २७२ के सूत्र (३) के मेल से भी प्राप्त हो सकता है। इसी सूत्र से सूर्य की उदयकालिक अग्रा इस प्रकार जानी जा सकती है।

माघी अमावस्या के सूर्योदय के सूर्य का सायन भोगांश

$$= \text{८}^{\text{रा}}\text{२२°५६}'$$
$$= \text{२६२°५६}'$$

काशी का अक्षांश $=$ २५°२०′

$$\text{ज्या पूका} = \frac{\text{ज्या } २३^\circ\ २७' \times \text{ ज्या } २९२^\circ ५९'}{\text{कोज्या } २५^\circ २०'}$$

परन्तु ज्या २९२°५९′ = − ज्या (३६०° − २९२°५९′)

= − ज्या ६७°१′

ऋणात्मक चिन्ह यह प्रकट करता है कि उदयकालिक अग्रा पू का पूर्व बिन्दु से दक्षिण है। इसलिए

$$\text{ज्या पू का} = \frac{\text{ज्या } २३^\circ २७' \times \text{ज्या } ६७^\circ १'}{\text{कोज्या } २५^\circ २०^\circ}$$

लरिज्या पूका = लरिज्या २३°२७′ + लरिज्या ६७°१′ − लरिकोज्या २५°२०′

= ९.५९९९ + ९.९६४१ − ९.९५६१

= ९.६०७९

∴ पूका = २३°५५′

इसी की ज्या सूर्योदय काल की उदय ज्या या अग्रा ज्या भी कहलाती है। इसी की सहायता से सूर्योदय का विषुवकाल जानना चाहिये।

सूर्योदय का विषुवकाल—यदि गोलीय त्रिभुजक कोणों आ, इ, उ, अक्षरों से और इनके सामने के भुजों को क्रमशः अ, ई, ऊ, अक्षरों से प्रकट किया जाय तो गोलीय त्रिकोणमिति से प्रकट है कि

$$\text{स्परे } \frac{\text{ऊ}}{२} = \frac{\text{ज्या } \frac{१}{२} (\text{अ} + \text{इ})}{\text{ज्या } \frac{१}{२} (\text{अ} - \text{इ})} \times \text{स्परे (आ − ई)}$$

सूर्य का सायन भोगांश २९२°५९′ अथवा १८०° + ११२°५९ है जिसका यह अर्थ है कि शरद् संपात विन्दु से सूर्य ११२°५९ पूर्व है। विपुव संपात के उदय काल से शरद् सम्पात के उदय काल तक ३० घड़ी होती है। इसलिए शरद् संपात का विपुवकाल ३० घड़ी या १८०° होता है। इसलिये यदि यह मालूम हो जाय कि शरद् सम्पात से ११२°५९′ का उदय काशी में कितनी देर में होता है तो इस विन्दु का भी विपुवकाल जाना जा सकता है। ऐसी दशा में चित्र ६२ के गोलीय त्रिभुज श का पू का भुज श का ११२°५९′, पू का २३°५५′ ∠श पू का = काशी का लम्वांश = ९०° − २५°२०′ = ६०°४०′, श पू = श का का विपुवकाल इसलिये गोलीय त्रिकोणमिति के ऊपर दिये हुए सूत्र के अनुसार,

* देखो Todhunter और Leathem की Spherical Trigonometry पृष्ठ ७५

$$\text{स्परे}\frac{\text{श पू}}{\text{२}}=\frac{\text{ज्या }\tfrac{१}{२}\text{ (}\angle\text{श पू का}+\angle\text{पू श का}}{\text{ज्या }\tfrac{१}{२}\text{ (}\angle\text{श पू का}-\angle\text{पू श का}}\times$$

$$\text{स्परे }\tfrac{१}{२}\text{ (श का—पू का)}$$

$$=\frac{\text{ज्या }\tfrac{१}{२}\text{ (६४°४०'+२३°२७')}}{\text{ज्या }\tfrac{१}{२}\text{ (६०°४०'—२३°२७')}}\times$$

$$\text{स्परे }\tfrac{१}{२}\text{ (११२° ५९'—२३°५५')}$$

$$=\frac{\text{ज्या ४४°३.'५}}{\text{ज्या २०°३६'·५}}\text{ स्परे४४°३२'}$$

$$\therefore\ \text{लरिस्परे}\frac{\text{श पू}}{\text{२}}=\text{लरिज्या ४४°३'.५—लरिज्या २०°३६'.५}+$$

$$\text{लरि स्परे ४४°३२'}$$

$$=\text{९.८४२३}-\text{९.५४६५}+\text{९.९९२९}$$

$$=\text{१०.२८८७}$$

$$\therefore\frac{\text{श पू}}{\text{२}}=\text{६२°४७'}$$

$$\therefore\text{श पू}=\text{१२५°३४'}$$

$$=\text{२० घड़ी ५५·७ पल}$$

अमावस्यान्त का विषुवकाल:—जिस क्षण शरद-सम्पात बिंदु पूर्व क्षितिज पर आवेगा उससे २० घड़ी ५५·७ पल उपरान्त सूर्य क्षितिज पर आवेगा जब इसका सायन भोगांश शरद-सम्पात से ११२°५९' होगा[१]। परन्तु वसंत-सम्पात से शरद-सम्पात का विषुव काल ३० घड़ी होता है इसलिए माघी अमावस्या के सूर्योदय के समय विषुवकाल ५० घड़ी ५५·७ पल है। यह नाक्षत्र मान में है। परन्तु सूर्योदय से अमावस्यान्त काल का समय १४ घड़ी ४५ पल है। यह सावन मान में है जो नाक्षत्र मान के १४ घड़ी ४७·५ पल के लगभग है। (देखो पृष्ठ ३२६)। इसलिए,

सूर्योदय के समय विपुवकाल=५० घड़ी ५५·७ पल
सूर्योदय से अमावस्यान्त का नाक्षत्र काल=१४ " ४७·५ पल
∴ अमावस्यान्त के समय विपुव काल=६५ घड़ी ४३·२ पल
= ५ घड़ी ४३·२ पल
=३४°१९'

---

१. यह बात उस रीति से भी जानी जा सकती है जो पृष्ठ ३१४-१५ में बतलायी गयी हैं।

विषुवकाल से उदयलग्न और अग्रा जानना—अब यह जानना है कि जब विषुवकाल ३४°१६′ है तब उदयलग्न का सायन भोगांश क्या है? यह चित्र ६० की सहायता से सहज ही जाना जा सकता है जहाँ व पू=३४°१६,′ ∠ का व पू=परमक्रान्ति=२३°२७′ और ∠ व पू का=१८०°—∠व पू द=१८०°—लम्बांश=१८०°−६४°४०′=११५°२०′

यदि गोलीय त्रिभुज के तीन कोण अ, इ, उ अक्षरों से और इनके सामने के भुज क्रमशः आ, ई, ऊ अक्षरों से प्रकट किये जाँय तो गोलीय त्रिकोणमिति के दो सूत्र[1] इस प्रकार प्रकट किये जा सकते हैं :—

$$\text{स्परे } \tfrac{1}{2}\,(\text{आ}+\text{ई})=\frac{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(\text{आ}-\text{इ})}{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(\text{आ}+\text{इ})}\times \text{स्परे}\frac{\text{ऊ}}{2}$$

$$\text{स्परे } \tfrac{1}{2}\,(\text{आ}-\text{ई})=\frac{\text{ज्या } \tfrac{1}{2}\,(\text{अ}-\text{इ})}{\text{ज्या } \tfrac{1}{2}\,(\text{अ}+\text{इ})}\times \text{स्परे }\frac{\text{ऊ}}{2}$$

इन दोनों सूत्रों के सहारे से आ और ई दोनों के मान जाने जा सकते हैं। इस प्रकार चित्र ६० के गोलीय त्रिभुज व पू का से

$$\text{स्परे } \tfrac{1}{2}\,(\text{व का}+\text{का पू})=\frac{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(\angle\text{व पू का}-\angle\text{का व पू})}{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(\angle\text{व पू का}+\angle\text{का व पू})}\times\text{स्परे }\frac{\text{व पू}}{2}$$

$$=\frac{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(११५^\circ२०'-२३^\circ२७')}{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(११५^\circ२०'+२३^\circ२७')}\times \text{स्परे }\frac{३४^\circ१६'}{2}$$

$$=\frac{\text{कोज्या } ४५^\circ५६'\cdot५}{\text{कोज्या } ६९^\circ२३'\cdot५}\times\text{स्परे } १७^\circ८'\cdot५$$

$$\therefore \text{लरिस्परे } \tfrac{1}{2}\,(\text{व का}+\text{का पू})=\text{लरि कोज्या } ४५^\circ५६'\cdot५+\text{लरि स्परे } १७^\circ८'\cdot५-\text{लरि कोज्या } ६९^\circ२३'\cdot५$$

$$=९\cdot८४२२+९\cdot४८९६-९\cdot५४६४$$

$$=९\cdot७८५४$$

$$\therefore\frac{\text{व का}+\text{का पू}}{2}=३१^\circ२३'$$

---

१. देखो **Todnunter** और **Leathem** की **Spherical Trigonometry** पृष्ठ ७४

$\therefore$ व का + का पू = ६२°४६′ .... (१)

इसी तरह, दूसरे सूत्र से,

स्परे $\frac{१}{२}$ (व का − का पू) = $\frac{\text{ज्या } ४५°५६′·५}{\text{ज्या } ६६°२३·५′}$ × स्परे १७°६′·५

$\therefore$ लरि स्परे $\frac{\text{व का} - \text{का पू}}{२}$ = लरि ज्या ४५°५६′५

+ लरि स्परे १७°६′·५ − लरि ज्या ६६°२३′·५

= ६·८५६५ + ६·४८८६ − ६·६७१३

= ६·३७४८

$\therefore \frac{\text{व का} - \text{का पू}}{२}$ = १३°२०′

$\therefore$ व का − का पू = २६°४०′ .... (२)

समीकरण (१) और (२) को जोड़ने से,

२ व का = ८६°२६′

$\therefore$ व का = ४४°४३′

और समीकरण (२) को समीकरण (१) से घटाने पर,

२ का पू = ३६°६′

$\therefore$ का पू = १८°३′

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ऊपर के दो सूत्रों की सहायता से यदि विषुव-काल ज्ञात हो तो किसी समय का उदय लग्न और अग्रा दोनों सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए,

अमावस्यान्त काल का सायन उदय लग्न = ४४°४३′

और उदयन लग्न की उत्तर अग्रा = १८°३′

पृष्ठ ५२४ में सायन लग्न ४३°३१′ और पृष्ठ ५२४ में उदय लग्न की अग्रा १७°३६′ आयी है जो नवीन रीति से प्राप्त अंकों से बहुत भिन्न हैं। इसका कारण यही है कि वहाँ उदय लग्न अनुपात के द्वारा जाना गया है जो स्थूल है।

जब सायन लग्न ४४°४३′ है तब त्रिभोन लग्न

= ४४°४३′ − ६०°

= ३६०° + ४४°४३′ − ६०°

$\therefore$ अमान्तकालिक त्रिभोन लग्न = ३१४°४३′

अमान्त काल का मध्यलग्न जानना—अमान्तकाल में जो विषुवकाल आया है उससे १५ घड़ी अथवा ६०° कम उसी समय के मध्यलग्न का विषुवकाल

होगा क्योंकि विषुवद्वृत्त का जो विंदु यामोत्तर-वृत्त पर होता है वही मध्य लग्न का विषुवकाल और विषुवद्वृत्त का जो विन्दु पूर्व क्षितिज पर होता है वही उदय लग्न का विषुवकाल होता है। परन्तु विषुवद्वृत्त के इन दोनों विन्दुओं का अन्तर १५ घड़ी या ९०° के समान होता है।

चित्र ६३ में यदि व पू को ३४°१९,′ व का को ४४°४३′ तथा यामोत्तर वृत्त और विषुवद् वृत्त के सामान्य विन्दु को च मान लिया जाय तो च व म गोलीय त्रिभुज के व म का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि

च व=च पू−व पू=९०°−३४°१९′=५५°४१′

∠च व म=२३°२७′

और ∠व च म=९०°। क्योंकि यह विषुवद्वृत्त और यामोत्तरवृत्त के बीच का कोण है, इसलिए नेपियर के पहले नियम के अनुसार (देखो पृष्ठ १२५),

कोज्या २३°२७′=स्परे ५५°४१′×को स्परे व म

$$=\frac{\text{स्परे ५५°४१′}}{\text{स्परे व म}}$$

$$\therefore \text{स्परे व म}=\frac{\text{स्परे ५५°४१′}}{\text{कोज्या २३°२७′}}$$

∴ लरि स्परे व म=लरि स्परे ५५°४१′−लरि कोज्या २३°२७′

=१०·१६५८−९·९६२५=१०·२०३३

∴ व म=५७°५७′

∴ सायन मध्यलग्न=३६०°−५७°५७′

=३०२°३′

यह ५२४ पृष्ठ में आये हुए सायन मध्यलग्न से केवल १′ बड़ा है। इसका यह अर्थ हुआ कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार जो मध्यलग्न आया है वह बिलकुल ठीक है। इसका कारण यह है कि मध्यलग्न और सूर्य बहुत पास हैं यदि मध्यलग्न से सूर्य दूर होता तो इसमें भी अन्तर पड़ता।

त्रिभोनलग्न का नतांश जानना—

मध्य लग्न का नतांश सूर्य-सिद्धान्त की रीति से ४५°३′ आया है (देखो पृष्ठ ५२५)। यह रीति बिलकुल शुद्ध है। इससे त्रिभोन लग्न की नतांशज्या या दृक्क्षेप जानने की जो विधि पृष्ठ ४१३ में बतलायी गयी है उसके अनुसार त्रिभोन लग्न का नतांश ४२°१८′ होता है यदि उदय लग्न की अग्रा नवीन रीति से १८°३′ मानी जाय। परन्तु यह बहुत स्थूल है। इसलिये गोलीय त्रिभुज म ख वि (चित्र ६३)

से ख वि का मान सीधे ही निकालना उचित होगा। यहाँ ख वि वित्रिभ लग्न या त्रिभोन लग्न का नतांश है, म ख मध्य लग्न का नतांश है और म वि मध्य लग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर है जो ३१४°४३′ − ३०२°३′ अथवा १२°४०′ के समान है और ∠ म वि ख = ९०°, इसलिए नेपियर के दूसरे नियम के अनुसार,

$$\text{कोज्या म ख} = \text{कोज्या ख वि} + \text{कोज्या म वि}$$

$$\therefore \text{कोज्या ख वि} = \frac{\text{कोज्या म ख}}{\text{कोज्या म वि}} = \frac{\text{कोज्या ४५°३′}}{\text{कोज्या १२°४०′}}$$

$$\therefore \text{लरि कोज्या ख वि} = \text{लरि कोज्या ४५°३′} - \text{लरि कोज्या १२°४०′}$$

$$= \text{९·८४९१} - \text{९·९८९३} = \text{९·८५९८}$$

$$\therefore \text{ख वि} = \text{४३°३६′}$$

$\therefore$ त्रिभोन लग्न का नतांश = ४३°३६′

यह जानने की दूसरी रीति भी है जो उसी गोलीय त्रिभुज के ∠म वि ख और म ख की सहायता से नेपियर के दूसरे नियम पर आश्रित है। दोनों रीतियों से त्रिभोन लग्न का नतांश अभिन्न होता है। इसलिए सूर्य-सिद्धान्त के पृष्ठ ४१३ में बतलायी गयी रीति की अपेक्षा यही मान्य होनी चाहिए।

दृक्क्षेप = त्रिभोन लग्न की नतांश ज्या = ज्या ४३°३६′ = ·६८९६

दृग्गति = त्रिभोन लग्न की उन्नतांश ज्या = कोज्या ४३°३६′ = ·७२४२

$$\text{छेद} = \frac{1}{\text{४ दृग्गति}} = \frac{1}{\text{४} \times \text{·७२४२}}$$

अमान्तकालिक त्रिभोन लग्न = ३१४°४३′ (पृष्ठ ५३०)

अमान्तकालिक सायन सूर्य = २९३°१४′ (पृष्ठ ५२४)

$\therefore$ अमान्त कालिक विश्लेषांश = २१°२९′

$$\therefore \text{सूर्य या चन्द्रमा का लंबन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$$

$$= \text{४} \times \text{·७२४२} \times \text{ज्या २१°२९′}$$

$$= \text{४} \times \text{·७२४२} \times \text{·३६६२}$$

$$= \text{१·०६०८ घड़ी}$$

$$= \text{१ घड़ी ३·६५ पल}$$

यह पच्छिम लम्बन है क्योंकि त्रिभोन लग्न से सूर्य पच्छिम है। इसलिए इसको अमावस्यान्त काल में जोड़ने पर भोगांश-लंबन-संस्कृत-अमावस्यान्त काल आवेगा।

सूर्योदय से अमावस्यान्त का समय = १४ घड़ी ४५ पल

पच्छिम भोगांश लंबन = १ घड़ी ३·६ पल

∴ सूर्योदय से लंवन-संस्कृत-अमावस्यान्त काल = १५ घड़ी ४८.६ पल

अर्थात् लंवन के कारण चन्द्रमा सूर्य के सामने सूर्योदय से १५ घड़ी ४८·६ पल पर आवेगा। यह भी विल्कुल शुद्ध नहीं है, इसलिए असकृत्कर्म करना आवश्यक है अर्थात् अव यह देखना चाहिए कि सूर्योदय से १५ घड़ी ४८·६ पल पर क्या लंबन होता है। इस काल के लिए इस समय का उदय लग्न, त्रिभोन लग्न, मध्य लग्न इत्यादि जानना चाहिए जिसके लिए वही क्रिया फिर दुहरानी पड़ेगी जो पृष्ठ ५२८ से अव तक दिखलाई गई है।

१५ घड़ी ४८·६ पल (सावन) = १५ घड़ी ५१·१ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदय का विषुव काल = ५० घड़ी ५५·७ पल (पृष्ठ ५२८)

∴ लंवन-संस्कृत-अमावस्यान्त के समय विषुव काल

= ६ घड़ी ४६·८ पल

= ४०°४१′ के लगभग

पृष्ठ ५२९ के समीकरणों में ३४°१९ की जगह ४०°४१′ रख कर सरल करने से इस समय की उदय लग्न और अग्रा आ जायगी क्योंकि और गुणक सामान्य हैं। इसलिए

लरि स्परे $\frac{1}{2}$ (व का + का पू) = लरि कोज्या ४५°५६′·५ + लरि स्परे २०°२०′·५ − लरि कोज्या ६९°२३′·५

= ९·८४२२ + ९·५६९१ − ९·५४६४

= ९·८६४९

$$\therefore \frac{\text{व का} + \text{का पू}}{२} = ३६°१४′$$

व का + का पू = ७२°२८′ ....(३)

लरि स्परे $\frac{1}{2}$ (व का − का पू) = लरि ज्या ४५°५६′·५ + लरि स्परे २०°२०′·५ − लरि ज्या ६९°२३′·५

= ९·८५६५ − ९·५६९१ − ९·९७१३

= ९·४५४३

$$\therefore \frac{\text{व का} - \text{का पू}}{२} = १५°५३′$$

∴ व का − का पू = ३१°४६′ ....(४)

समीकरण (३) और (४) से,

व का = ५२°७′

का पू = २०°२१′

∴ सूर्योदय से १५ घड़ी ४८·६ पल पर उदय लग्न ५२°७′ और अग्रा २०°२१′ है।

∴ इस समय त्रिभोन लग्न=५२°७′−९०°=३२२°७′

और विषुवकाल=४०°४१′

∴ पृष्ठ ५३० की तरह च व=९०°−४०°४१′=४९°१९′

∴ स्परे व म $=\frac{\text{स्परे } ४९°१९′}{\text{कोज्या } २३°२७′}$

∴ लरि स्परे व म=लरि स्परे ४९°१९′−लरि कोज्या २३°२२′

=१०.०६५७−९.९६२५=१०.१०३२

∴ व म=५१°४५′

∴ सायन मध्य लग्न=३६०°−५१′४५′=३०८°१५′

मध्य लग्न की क्रान्तिज्या=३०८°१५′×ज्या २३°२७′

=−ज्या ५१°४५′×ज्या २३°२७′

∴ लरि क्रान्ति ज्या=९.८९५०+९·५९९९=९·४९४९

∴ मध्यलग्न की दक्षिण क्रान्ति=१८°१३′

काशी का उत्तर अक्षांश =२५°२०′

∴ मध्य लग्न का नतांश =४३°३३′

मध्य लग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर=३२२°७′−३०८°१५′

=१३°५२′

∴ त्रिभोन लग्न के नतांश की कोटिज्या $=\frac{\text{कोज्या } ४३°३३′}{\text{कोज्या } १३°५२′}$

∴ लरि नतांश कोज्या=लरि कोज्या ४३°३३′−लरि कोज्या १३°५२′

=९.८६०२−९.९८७२=९.८७३०

त्रिभोन लग्न का नतांश=४१°४३′

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति=६१′.३७

∴ सूर्य की एक घड़ी की गति=१′·०२३

सूर्य की ३ पल की गति=·०५१

∴ सूर्य की एक घड़ी ३ पल की गति=१′.०७

अमान्तकालिक सायन सूर्य=२९३°१४′

∴ लम्बन-संस्कृत-अमान्तकालिक-सूर्य=२९३°१५′

त्रिभोन लग्न=३२२°७′

सायन सूर्य=२९३°१५′

∴ विश्लेपांश $=२८°५२'$

दृग्गति=त्रिभोन लग्न की नतांश कोटिज्या

=कोज्या $४१°४३'$

∴ छेद $=\frac{१}{४\ \text{दृग्गति}}=\frac{१}{४\ \text{कोज्या}\ ४१°४३'}$

∴ सूर्य का लंबन $=\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

$=४$ कोज्या $४१°४३'$ ज्या $२८°५२'$

$=४\times.७४६४\times.४८२८$ घड़ी

$=१.४४२$ घड़ी

$=१$ घड़ी २६.५ पल

सूर्योदय से अमावस्यान्त का समय=१४ घड़ी ४५ पल

सूर्य का लंबन =१ घड़ी २६.५ पल

∴ द्वितीय लंबन-संस्कृत-अमावस्यान्त-काल

=१६ घड़ी ११.५ पल

इस समय का त्रिभोन लग्न जानकर फिर लंबन जानना चाहियेः—

१६ घड़ी ११.५ पल (सावन)=१६ घड़ी १४.२ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदय का विषुवकाल=५० घड़ी ५५.७ पल

∴ द्वितीय लंबन-संस्कृत-अमान्त-काल का विषुवकाल

=७ घड़ी ९.९ पल

$=४३°$ के लगभग

∴ लरिस्परे $\frac{१}{२}$ (व का+का पू)=लरिकोज्या $४५°५६'.५$+लरिस्परे $२१°३०'$

−लरिकोज्या $६९°२३'.५$

$=९.८४२२+९.५९५४-९.५४६४$

$=९.८९१२$

∴ $\frac{\text{व का}+\text{का पू}}{२}=३७°५४'$

∴ व का+का पू $=७५°४८'$

लरि स्परे $\frac{१}{२}$ (व का−का पू)=लरि ज्या $४५°५६'.५$+लरि स्परे

$२१°३०'$−लरि ज्या $६९°२३'.५$

$=९.८५६५+९.५९५४-९.९७१३$

$=९.४८०६$

$\therefore \dfrac{\text{व का}-\text{का पू}}{२} = १६^\circ ४९'\cdot ५$

$\therefore$ व का--का पू$=३३^\circ ३९'$

$\therefore$ व का$=५४^\circ ४३'\cdot ५$

और का पू$=२१^\circ ४'\cdot ५$

$\therefore$ सूर्योदय से १६ घड़ी ११·५ पल पर उदय लग्न $५४^\circ ४३'\cdot ५$ और अग्रा $२१^\circ ४'\cdot ५$

$\therefore$ इस समय त्रिभोन लग्न$=५४^\circ ४३'\cdot ५ - ९०^\circ = ३२४^\circ ४३'.५$

और इस समय विषुवकाल$=४३^\circ$

$\therefore$ च व$=९०^\circ - ४३^\circ = ४७^\circ$

$\therefore$ स्परे व म$= \dfrac{\text{स्परे } ४७^\circ}{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}$

$\therefore$ लरि स्परे व म$=$लरि स्परे $४७^\circ -$ लरि कोज्या $२३^\circ २७'$

$= १०.०३०३ - ९.९६२५ = १०.०६७८$

$\therefore$ व म$=४९^\circ २७'$

$\therefore$ सायन मध्यलग्न$=३६०^\circ - ४९^\circ २७' = ३१०^\circ ३३'$

$\therefore$ मध्यलग्न की क्रान्ति ज्या$=$ज्या $३१०^\circ ३३' \times$ ज्या $२३^\circ २७'$

$= -$ ज्या $४९^\circ २७' \times$ ज्या $२३^\circ २७'$

लरि क्रान्तिज्या$=९.८८०७ + ९.५९९९ = ९.४८०६$

$\therefore$ क्रान्ति$=१७^\circ ६६'$ दक्षिण

काशी का अक्षांश$=२५^\circ २०'$

मध्यलग्न का नतांश$=४२^\circ ५६'$

मध्य लग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर$=३२४^\circ ४३'\cdot ५ - ३१०^\circ ३३'$

$=१४^\circ १०'\cdot ५$

$\therefore$ त्रिभोन लग्न की नतांश कोटि ज्या$= \dfrac{\text{कोज्या } ४२^\circ ५६'}{\text{कोज्या } १४^\circ १०'\cdot ५}$

$\therefore$ लरि नतांश कोटिज्या$=$लरि कोज्या $४२^\circ ५६' -$ लरि कोज्या $१४^\circ १०'.५$

$= ९\cdot ८६४६ - ९\cdot ९८६५ = ९\cdot ८७८१$

$\therefore$ त्रिभोन लग्न का नतांश$=४०^\circ ५७'$

सूर्य की १ घड़ी की गति $= १'\cdot ०२३$

सूर्य की २० पल की गति $= \cdot ३४१$

५ ,, = ·०८५
१ ,, = ·०१७
·५ ,, = ·००६

∴ १ घड़ी २६·५ पल की गति = १′·५

अमान्तकालिक सायन सूर्य =२६३°१४′

१ घड़ी २६·५ पल की गति =१′·५

द्वितीय-लंबन-संस्कृत-अमान्तकाल का सूर्य=२६३°१५′·५

त्रिभोन लग्न=३२४°४३′·५

∴ विश्लेषांश=३१°२८′

दृग्गति=त्रिभोन लग्न की नतांश कोटि ज्या=कोज्या ४०°५७′

∴ छेद= $\frac{१}{४ दृग्गति} = \frac{१}{४ \text{ कोज्या } ४०°५७′}$

∴ लंबन= $\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

= ४ कोज्या ४०°५७′ × ज्या ३१°२८′

= ४ × ·७५५३ × ·५२२०

= १ घड़ी ३४·६ पल

सूर्योदय से अमान्तकाल तक का समय=१४ घड़ी ४५ पल

तीसरी वार का लंबन=१ घड़ी ३४·६ पल

∴ तृतीय-लंबन-संस्कृत-अमान्तकाल=१६ घड़ी १६·६ पल

इस प्रकार पहले लंबन से अमावस्यान्त काल १५ घड़ी ४८·६ पल पर, दूसरे लंबन के १६ घड़ी ११·५ पल पर और तीसरे लंबन से १६ घड़ी १६·६ पल पर होता है। इससे प्रकट है कि पिछले अमावस्यान्त कालों में केवल ८ पल का अन्तर है। यदि दो तीन बार और संस्कार किया जाय तो अन्तर शून्य हो जायगा। उस दशा में जो अमावस्यान्त काल आवेगा वही शुद्ध अमावस्यान्त होगा। अनुमान से जान पड़ता है कि जो अमावस्यान्त काल तीसरी वार आया है उससे शुद्ध अमावस्यान्त केवल दो या तीन पल अधिक होगा। इसलिए दो तीन पल के लिए दो तीन बार और संस्कार करने में झंझट के सिवा विशेष लाभ नहीं है। इसलिए मान लिया जाता है कि लंबन-संस्कृत-शुद्ध-अमावस्यान्त काल सूर्योदय से १६ घड़ी २० पल पर है। यही सूर्यग्रहण का मध्यकाल समझना चाहिए। यहाँ तक ६वें श्लोक की क्रिया समाप्त हुई।

नति—

१० वें श्लोक में बतलाया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा की मध्य गतियों के

अंतर को दृक्क्षेप से गुणा करना चाहिए। परन्तु मेरी समझ में यदि स्पष्ट गतियों के अंतर से गुणा किया जाय तो अधिक शुद्धता होगी।

सूर्य और चंद्रमा की दैनिक गतियों का अंतर=७६२′·३४३

दृक्क्षेप अथवा त्रिभोनलग्न की नतांशज्या=ज्या४०°५७′

$$\therefore \text{नति}\ \frac{७६२'\cdot३४३ \times \text{ज्या}\ ४०°५७'}{१५} = \frac{७६२'\cdot४३ \times \cdot६५५४}{१५} = ३४'\cdot६२$$

यहाँ त्रिज्या से भाग देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ज्या का मान दशमलव भिन्न लिया गया है। यह दक्षिण है क्योंकि मध्यलग्न का नतांश दक्षिण है।

चंद्रमा की ६० घड़ी की गति=१४°१३″·७

चन्द्रमा की १ घड़ी की गति= १४′१३″·७

" ३० पल "= ७′ ६″·९

" ५ "= १′ ११″·१

∴ चन्द्रमा की १ घड़ी ३५ पल की गति=२२′३१·७″=२२′·५

गणित-सिद्ध अमावस्यान्तकालिक चंद्रमा=९$^{रा}$०°३२′·८

∴ लंबन-संस्कृत-अमावस्यान्तकालिक चंद्रमा=९$^{रा}$०°५५′·३

" " राहु=३$^{रा}$६°२८′·०

राहु से चंद्रमा का अन्तर =५$^{रा}$२४°२७′·३

=१७४°२७′·३

$$\therefore \text{चन्द्रशर की ज्या} = \frac{\text{ज्या}\ १७४°२७'\cdot३ \times \text{ज्या}\ ४°३०'}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{ज्या}\ ५°३२'\cdot७ \times \text{ज्या}\ ४°३०'}{३४३८}$$

$$= \frac{३३२\cdot७ \times २७०}{३४३८}$$

$$= २६'\cdot१३$$

यह उत्तर शर है क्योंकि राहु से चंद्रमा आगे हैं परन्तु ६ राशि से कम दूर है।

∴ नति संस्कृत चंद्रशर=−३४′·६२+२६′·१३=−८′·४९

अर्थात् नति संस्कृत दक्षिण चंद्रशर=८′·४९

चंद्रकक्षा में सूर्य बिम्ब का स्फुट व्यास=३३′·६३४

चंद्रमा का स्फुट व्यास =३४′·५५५

छाद्य अथवा सूर्य का व्यासार्ध $=१६'.८१७$
छादक अथवा चन्द्रमा का व्यासार्ध $=१७'.२७८$
∴ मानैक्य खंड $=३४'.१०$
और मानान्तर खंड $=०'.४६$

ग्रास का परिमाण = मानैक्यखंड − नति संस्कृत चंद्रशर

$$=३४'.१-८'.४९$$
$$=२५'.६१$$

यह चन्द्रविम्ब के व्यास से छोटा है इसलिए सर्वग्रास ग्रहण न लगेगा वरन् खंड ग्रहण लगेगा। (देखो पृष्ठ ४६० और श्लोक ११ चं० ग्र०)

पृष्ठ ४६९ के अनुसार

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{\{(३४.१+८.४९)(३४.१-८.४९)\}}}{७९२.३४३}$$

$$=\frac{६० \times \sqrt{\{४२.५९ \times २५.६१\}}}{७९२.३४३}$$

$$=\frac{६० \times \sqrt{१०९०.७३}}{७९२.३४३}$$

$$=\frac{६० \times ३३.०२६}{७९२.३४३}$$

$$=\frac{१९८१५६०}{७९२३४}\text{ घड़ी}$$

$$=२ \text{ घड़ी } ३०.०६ \text{ पल}$$
$$=२ \text{ घड़ी } ३० \text{ पल}$$

∴ स्पर्शकाल $=१६$ घड़ी २० पल $-$ २ घड़ी ३० पल
$=१३$ घड़ी ५० पल

अर्थात् काशी में सूर्योदय से १३ घड़ी ५० पल पर ग्रहण का स्पर्श होगा। परन्तु यह स्थूल है। सूक्ष्म गणना करने के लिए इस समय का भी लंबन और नति फिर निकाल कर स्थित्यर्ध इत्यादि जानना चाहिए जैसा कि श्लोक १४—१७ में बतलाया गया है।

१३ घड़ी ५० पल (सावन) $=१३$ घड़ी ५२.३ पल (नाक्षत्र)
सूर्योदय का विषुवकाल $=५०$ घड़ी ५५.७ पल
∴ स्पर्शकाल के समय विषुवकाल $=४$ घड़ी ४८ पल
$=२८^\circ ४८'$

∴ लरि स्परे १/२ (व का+का पू)=लरि कोज्या ४५°५६′·५+लरि स्परे १४°२४′−लरि कोज्या ६६°२३′·५

=९·८४२२+९·४०९५−९·५४६४

=९.७०५३

∴ स्परे १/२ (व का+का पू)=२६°५४′

∴ व का+का पू०)=५३°४८′

लरि स्परे १/२ (व का−का पू) =९.८५६५+९.४०९५−९.९७१३

=९.२९४७

∴ १/२ (व का−का पू) =११°९′

∴ व का−का पू =२२°१८′

∴ व का =३८°३′

और का पू =१५°४५′

∴ सूर्योदय से १३ घड़ी ५० पल पर उदय लग्न ३८°३′ और अग्रा १५°४५′ है।

∴ इस समय त्रिभोन लग्न=३८°३′−९०°=३०८°३′

और " विषुवकाल =२८°४८′

पृष्ठ ५३२ की तरह च व =९०°−२८°४८′=६१°१२′

∴ स्परे व म = स्परे ६१°१८′ / कोज्या २३°२७′

∴ लरि स्परे व म=लरि स्परे ६१°१२′−लरि कोज्या २३°२७′

=१०·२५९८—९·९६२५=१०·२९७३

∴ व म =६३°१४′

∴ सायन मध्य लग्न =३६०°−६३°१४′=२९६°५६′

मध्य लग्न की क्रान्ति ज्या =ज्या २९६°४६′×ज्या २३°२७′

=−ज्या ६३°१४′×ज्या २३°२७′

∴ लरि क्रान्तिज्या =९.९५०८+९.५९९९=९.५५०७

∴ मध्यलग्न की दक्षिणी क्रान्ति=२०°४९′

काशी का उत्तर अक्षांश =२५°२०′

∴ मध्य लग्न का नतांश =४६°९′

मध्यलग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर=३०८°३′−२९६°४६′

=११°१७′

∴ त्रिभोन लग्न के नतांश की कोटिज्या= कोज्या ४६°९′ / कोज्या ११°१७′

∴ लरि नतांश कोटिज्या = लरि कोज्या ४६°६′ — लरि कोज्या ११°१७′

= ९·८४०६ — ९·९९१५ = ९·८४९१

∵ त्रिभोन लग्न का नतांश = ४५°३′

दृग्गति = त्रिभोन लग्न की नतांश कोटि ज्या = कोज्या ४५°३

∴ छेद = $\frac{१}{४ \text{ कोज्या } ४५°३′}$

सूर्योदय से १४ घड़ी ४५.५ पल पर स्पष्ट सायन सूर्य = ९रा २३°१४′

५५ पल की सूर्य की गति = १′

∴ १३ घड़ी ५० पल पर अथवा स्पर्शकालिक सूर्य = ९रा २३°१३′

= २९३°१३′

त्रिभोन लग्न = ३०८°३′

विश्लेषांश = १४°५०′

लंबन = $\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

= ज्या १४°५०′ × ४ × कोज्या ४५°३′

= ४ × ·२५६० × ·७०६५

= ·७२३५ घड़ी

= ४३.४ पल = ४३ पल

मध्य ग्रहणकाल का लंबन = १ घड़ी ३५ पल

∴ दोनों का अन्तर = ५२ पल

इसलिए १६वें श्लोक के पूर्वार्ध के अनुसार

स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध = प्रथम स्थित्यर्ध + ५२ पल

= २ घड़ी ३० पल + ५२ पल

= ३ घड़ी २२ पल

इसलिए सूर्योदय से स्पर्शकाल तक का समय

= सूर्योदय से मध्यग्रहण का समय — ३ घड़ी २२ पल

= १६ घड़ी २० पल − ३ घड़ी २२ पल

= १२ घड़ी ५८ पल

∴ काशी में सूर्योदय से १२ घड़ी ५८ पल पर ग्रहण का स्पर्श होगा। इसी प्रकार स्पष्ट मोक्ष स्थित्यर्ध भी जान लेना चाहिये।

इस गणना से स्पष्ट है कि काशी में सूर्यग्रहण का स्पर्श और मोक्ष दोनों देख पड़ेगा। परन्तु यह बात काशी में एकत्र हुए किसी मनुष्य को नहीं देख पड़ी जैसा कि लोगों का अनुभव है। इसका कारण यह है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार जो मूलाङ्क आये हैं वे बहुत स्थूल हैं। इसी कारण यद्यपि लग्न के नतांश इत्यादि के जानने की रीति बिल्कुल बदल दी गयी है तो भी सूक्ष्मता नहीं आ सकी। इन मूलाङ्कों में सबसे बड़ी अशुद्धि राहु के मूलाङ्क में है जैसा कि चन्द्रग्रहणाधिकार में बतलाया गया है।

राहु का मूलाङ्क लेने पर क्या दशा होती है ?

१६२६ ई० के नाविक पंचांग के अनुसार ११ जनवरी सोमवार को ग्रीनविच के मध्यम मध्याह्नकाल में सायन राहु का स्थान ११५°.७५०५ था। इस समय काशी में मध्याह्नोपरान्त १३ घड़ी ५० पल ३१ विपल हुआ था (देखो पृष्ठ २५१), जो मध्यम प्रातःकाल से २८ घड़ी ५०.५ पल होता है। इस समय से माघी अमावस्या के अन्त तक अर्थात् गुरुवार के मध्यम प्रातःकाल के १६ घड़ी ५४ पल तक २ दिन ४८ घड़ी ३·५ पल होता है। इतने समय में राहु की गति इस प्रकार निकली:—

१ दिन की गति	=०°.०५२६५
२ ,,	=०°.१०५६२
३० घड़ी की गति	=०°.०२६४८
१५ ,,	=०.०१३२४
३ ,,	=०.००२६५
३ पल की गति	=०.००००४
योग	=०.१४८३

यह घटाने पर सायन राहु का स्थान हुआ, ११५·६०२२

=११५°३६′·१

परन्तु अयनांश	=२२°४१′
∴ राहु का निरयन भोगांश (अमावस्यान्त काल में)	=६२°५५′
चन्द्रमा का निरयन ,,	=२७०°३३′
∴ राहु से चन्द्रमा का अन्तर	=१७७°३८′

यदि चन्द्रमा का परमशर ४°३०′ की जगह ५°८′४२″ माना जाय (देखो पृ० ७५) तो

चन्द्रशर ज्या = ज्य १७७°३८′ × ज्या ५°८′४२″

= ज्या २°२२′ × ज्या ५°८′४२″

= ·०४१३ × ·०८९७

= ·००३७

∴ चन्द्रशर = १२′४०″ उत्तर = १२′·६७ उत्तर

= ३४·६२ दक्षिण

∴ नति संस्कृति चंद्रशर = २१′·९५ दक्षिण

∴ ग्रास का परिमाण = मानैक्य खंड − नति संस्कृति चन्द्रशर

= ३४′·१ − २१′·९५

= १२′·१५

इस प्रकार यहाँ भी सिद्ध होता है कि यदि राहु का भोगांश ठीक-ठीक लिया जाय तो भी ग्रास का परिमाण १२′·१५ होता है अर्थात् ग्रहण का स्पर्श और मोक्ष काशी में देखा जा सकता है परन्तु यह भी अनुभव में नहीं आया। इसलिए अब यह देखना है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा के लंवन, नति और स्फुट व्यास इत्यादि दृग्गणित के अनुसार और नवीन रीतियों से निकाले जाँय तो क्या अन्तर पड़ता है।

नाविक पंचांग के अनुसार :—

अमावस्यान्त काल में चन्द्रमा का क्षितिज लंबन = ६१′१२″ = ६१′·२

चंद्रमा का उत्तर शर = ७′३६″ = ७′·६

" " व्यासार्ध = १६′४०″·६ = १६′·६८

सूर्य का व्यासार्ध = १६′१७″·२ = १६′·२९

त्रिभोन लग्न और मध्यलग्न वही माने जाते हैं जो पहले निकाले गये हैं। (पृष्ठ ५३६)

पृष्ठ ४०७ के सूत्र (च) के अनुसार

भु = लि ज्या त्रा कोज्या श — लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व

जहाँ त्रा त्रिभोन लग्न का नतांश, लि चन्द्रमा का क्षितिज लंबन, श चन्द्रमा का शर, व विश्लेषांश और भु नति है।

∴ नति = ६१′·२ ज्या ४०°५७′ कोज्या ७′·६ − ६१′·२ कोज्या ४०°५७′ × ज्या ७′·६ × कोज्या ३१°२८′

= ६१′·२ × ·६५५४ × ·९९९९ − ६१′·२ × ·७५५३ × ·००२२ × ·८५२९

= ६१′·२(·६५५४ × ·९९९९ − ·७५५३ × ·८५२९ × ·००२२)

= ६१·२(·६५५३३४९ − ·००१४१७२)

=४०·०२

चन्द्रशर उत्तर=७′·६

∴ नति संस्कृति चन्द्रशर=३२′·४२

मानैक्यखंड=१६′·६८+१६′·२९=३२′·९७

∴ ग्रास का परिमाण=३२′·९७−३२′·४२=०′·५५

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि यदि राहु, चन्द्रमा और सूर्य के व्यास, लंबन और नति नवीन गणनानुसार लिये जाँय तो ग्रास १ कला से भी कम होता है जो उद्योग करने पर भी नहीं देखा जा सकता है। यही बात अनुभव से भी सिद्ध होती है। इसलिए ग्रहण की गणना के लिए हमें अपने सिद्धान्त ग्रंथों में दृग्गणित के अनुसार सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है।

सूर्य-ग्रहणाधिकार का विज्ञान भाष्य समाप्त।

षष्ठम अध्याय

परिलेखाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १—परिलेख का प्रयोजन। श्लोक २-१२—स्पर्श, मोक्ष और मध्यकाल के ग्रहणों का परिलेख खींचने की रीति। श्लोक १३—कितना भाग ग्रस्त होने पर ग्रहण देखना सम्भव है। श्लोक १४-१६—ग्राहक का मार्ग खींचने की रीति। श्लोक १७-१६—किसी इष्टकाल में ग्रहण का परिलेख खींचने की रीति। श्लोक २०-२१—सर्वग्रास ग्रहण के आरंभ काल का परिलेख खींचने की श्लोक २२—सर्वग्रास ग्रहण के अंतकाल का परिलेख खींचने की रीति। श्लोक २३—किस प्रकार के चंद्रग्रहण में चन्द्रमा का रंग काला, भूरा, इत्यादि होता है। श्लोक २४—परिलेख खींचने की रीति किसको बतलानी चाहिए।]

इस अध्याय का नाम किसी-किसी प्रति में छेद्यकाधिकार भी है। दोनों का अर्थ एक है। छेद्यक की तुलना में परिलेख सरल है, इसलिए यहाँ परिलेखाधिकार ही लिखा गया है।

प्रयोजन—

न छेद्यकमृते यस्मात्क्षेपा ग्रहणयोः स्फुटाः।
ज्ञायन्ते तत्प्रवक्ष्यामि छेद्यकज्ञानमुत्तमम् ॥१॥

अनुवाद—(१) छेद्यक, परिलेख या चित्र के विना सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों के भेद का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता कि विम्ब की किस दिशा से ग्रहण का आरंभ, किस दिशा से मोक्ष तथा कितना ग्रास होगा। इसलिए छेद्यक बनाने का उत्तम ज्ञान मैं कहता हूँ।

परिलेख खींचने की रीति—

सुसाधितायामवनौ विन्दुं दत्वा ततो लिखेत्।
सप्तवर्गाङ्गुलेनादौ मण्डलं वलनाश्रितम् ॥२॥
ग्राह्यग्राहकयोगार्धं सम्मितेन द्वितीयकम्।
मण्डलं तत्समासाख्यं ग्राह्यार्धेन तृतीयकम् ॥३॥
याम्योत्तरा प्राच्यपरा साधनं पूर्ववद् दिशाम्।
प्रागिन्दोर्ग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽर्कस्य विपर्ययात् ॥४॥

यथादिशं प्राग्ग्रहणं वलनं हिमदीधितेः ।
मौक्षिकं तु विपर्यस्तं विपरीतमिदं रवेः ॥५॥
वलनाग्रान्नयेन्मध्यं सूत्रं तद्यत्र संस्पृशेत् ।
तत्समासे ततो देयौ विक्षेपौ ग्रासमौक्षिकौ ॥६॥
विक्षेपाग्रात् पुनस्सूत्रं मध्यविन्दुं प्रवेशयेत् ।
तद्ग्राह्यवृत्तासंस्पर्शे ग्रासमोक्षौ विनिर्दिशेत् ॥७॥
नित्यशोऽर्कस्य विक्षेपाः परिलेखे यथादिशम् ।
विपरीतं शशाङ्कस्य तद्वशादथ मध्यमम् ॥८॥
वलनं प्राङ्मुखं नेयं तद्विक्षेपैकता यदि ।
भेदे पश्चान्मुखं नेयम् इन्दोर्भानो विपर्ययात् ॥९॥
वलनाग्रात्पुनस्सूत्रं मध्यविन्दुं प्रवेशयेत् ।
मध्यात्सूत्रेण विक्षेपं वलनाभिमुखं नयेत् ॥१०॥
विक्षेपाग्राल्लिखेद्वृत्तं ग्राहकार्धेन तेन यत् ।
ग्राह्यवृत्तं समाक्रान्तं तद्ग्रस्तं तमसा भवेत् ॥११॥
छेद्यकं लिखितं भूमौ फलके वा विपश्चिता ।
विपर्ययो दिशां ग्राह्यः पूर्वापर कपालयोः ॥१२॥

अनुवाद— (२) अच्छी तरह शोधी हुई समतल भूमि पर एक विन्दु स्थिर करके और उसी को केन्द्र मानकर ४९ अंगुल के व्यासार्ध का एक वृत्त खींचो । इसे वलनाश्रित वृत्त कहते हैं । (३) उसी केन्द्र से एक दूसरा वृत्त भी खींचो जिसका व्यासार्ध छाद्य और छादक विम्बों के व्यासार्धों के योग के अर्थात् मानैक्यखंड के समान हो । इस वृत्त को समास वृत्त कहते हैं । इसी तरह उसी केन्द्र से एक तीसरा वृत्त भी खींचो जिसका व्यासार्ध उस ग्रह के बिम्ब के व्यासार्ध के समान हो जिस पर ग्रहण लगता है । (४) इसी विन्दु से होती हुई उत्तर-दक्षिण-रेखा तथा पूर्व-पश्चिम-रेखा पहले (त्रिप्रश्नाधिकार श्लो० ३, ४ में) बतलाई हुई रीति के अनुसार खींचो । चन्द्रग्रहण में स्पर्श पूर्व दिशा से और मोक्ष पश्चिम दिशा से होते हैं परन्तु सूर्यग्रहण में इसके विपरीत होता है अर्थात् सूर्यग्रहण में स्पर्श पच्छिम से और मोक्ष पूर्व से होता है । (५) चंद्रग्रहण में चंद्रमा के स्पर्शकालिक स्फुट वलन की ज्या जितनी हो पूर्व विन्दु से उतने ही अंतर पर और उसी दिशा में जिस दिशा का स्फुट वलन हो केन्द्र से वलनाश्रित वृत्त तक एक रेखा खींचो । इसी प्रकार चन्द्रमा के मोक्षकालिक स्फुट-वलन की ज्या जितनी हो, पच्छिम विन्दु से उतने ही अन्तर पर परन्तु स्फुटवलन की दिशा की विपरीत दिशा में केन्द्र से वलनाश्रित वृत्त तक एक दूसरी रेखा खींचो । सूर्यग्रहण में उपर्युक्त रेखाओं की दिशाओं का क्रम उनके विपरीत होता है जो

चन्द्रग्रहण में वतलायी गयी हैं। इन रेखाओं को वलनाग्र रेखा कहते हैं और यह रेखाएँ वलनाश्रित वृत्त को जहाँ काटती हैं उसे वलनाग्र विन्दु कहते हैं। (६) वलनाश्रित वृत्त पर (५वें श्लोक के अनुसार) स्पर्श और मोक्षकाल के जो वलनाग्र विन्दु वनाये जाते हैं उनसे केन्द्र तक जो रेखाएँ जाती हैं वे समास वृत्त को जिन विन्दुओं पर काटती हैं उनसे चन्द्रमा के स्पर्शकालिक और मोक्षकालिक शरों के अंतर पर केन्द्र से समास वृत्त तक रेखाएँ खींचो। यह रेखाएँ समास वृत्त को जहाँ काटती हैं उन विन्दुओं का विक्षेपाग्र विन्दु कहते हैं। (७) इन विक्षेपाग्र विन्दुओं से केन्द्र तक जो रेखाएँ जाती हैं ग्राह्य विम्व को जिन विन्दुओं पर काटती हैं उन्हीं को क्रमानुसार स्पर्शविन्दु और मोक्ष विन्दु कहते हैं।

(८) सूर्य ग्रहण के परिलेख में विक्षेपाग्र विन्दु उसी दिशा में वनाओ जिस दिशा में चन्द्रमा का शर हो परन्तु चन्द्रग्रहण के परिलेख में विक्षेपाग्र विन्दु की दिशा चन्द्रमा के शर की दिशा के विपरीत होती है। इसी के अनुसार मध्य ग्रहण काल का भी विक्षेपाग्र विन्दु वनाओ।

(९) चन्द्रग्रहण के मध्यकाल के परिलेख में यदि मध्यकाल के स्फुटवलन और विक्षेप की दिशाएं एक हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण-रेखा के पूर्व में वनाना चाहिए। परन्तु यदि स्फुटवलन और विक्षेप की दिशाएं भिन्न हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा के पच्छिम में वनाना चाहिए। यदि विक्षेप की दिशा दक्षिण हो तो उत्तर विन्दु से पूर्व वा पच्छिम वलनाग्र विन्दु वनाना चाहिए। परन्तु यदि विक्षेप की दिशा उत्तर हो तो दक्षिण विन्दु से पूर्व या पच्छिम वलनाग्र विन्दु वनाना चाहिए। सूर्यग्रहण के मध्यकाल के परिलेख में इसके विपरीत करना चाहिए अर्थात् यदि वलन और विक्षेप दोनों की दिशाएँ एक हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा से पच्छिम की ओर और यदि दोनों की दिशाएँ भिन्न हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा से पूर्व की ओर वनाना चाहिए। परन्तु यदि विक्षेप की दिशा दक्षिण हो तो दक्षिण विन्दु से और उत्तर हो तो उत्तर विन्दु से पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र विन्दु होना चाहिए।

(१०) मध्यग्रहण के वलनाग्र विन्दु से केन्द्र तक एक रेखा खींचो। इसी रेखा पर वलनाग्र विन्दु की दिशा में केन्द्र से विक्षेप के अंतर पर एक विन्दु वनाओ, इसी को मध्यकाल का विक्षेपाग्र विन्दु कहते हैं।

(११) विक्षेपाग्र विन्दु को केन्द्र मानकर ग्राहक या छादक के व्यासार्ध के समान त्रिज्या से एक वृत्त वनाओ। यह वृत्त छाद्य विम्द को (चन्द्रग्रहण में चंद्र विम्व और सूर्य-ग्रहण में सूर्य विम्व को) जहाँ तक ढक लेता है उतना ही ग्रहण का परम ग्रस्त भाग होता है।

(१२) ज्योतिषी को चाहिए कि समतल भूमि पर अथवा फलक (काठ के तख्ते) पर परिलेख बनावे। पूर्व कपाल में दिशाओं का जो क्रम रहता है उसके विपरीत पच्छिम कपाल में होना चाहिए अर्थात् पूर्व कपाल में जहां लब्ध क्रम—पूर्व, दक्षिण, पच्छिम और उत्तर दिशाएँ होंगी वहां पच्छिम कपाल में क्रमानुसार पच्छिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशाएं होंगी।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में ग्राह्य बिम्ब को स्थिर मानकर उसके जितने अंतर पर और जिस दिशा में ग्राहक का केन्द्र ग्रहण के स्पर्श, मध्य और मोक्ष काल में होता है उसको रेखागणित की सहायता से जानने की रीति बतलायी गयी है। चंद्रग्रहण में चन्द्रमा ग्राह्य और भूछाया ग्राहक होती है। सूर्य ग्रहण में सूर्य ग्राह्य और चन्द्रमा ग्राहक होता है। अब श्लोकों के क्रम से प्रत्येक रीति की व्याख्या की जाती है :—

श्लोक २—चंद्रग्रहणाधिकार श्लोक २४-२५ तथा पृष्ठ ४७५-४८० में बतलाया गया है कि स्फुटवलन क्या है और इससे क्रान्तिवृत्त का ज्ञान कैसे होता है। वहाँ यह भी बतलाया गया है कि स्फुटवलन की ज्या को ७० से भाग देने पर इसकी ज्या का परिमाण अंगुलों में आ जाता है। इस प्रकार त्रिज्या का मान ४९ अंगुल के लगभग होता है क्योंकि त्रिज्या ३४३८ कलाओं की होती है जिसको ७० से भाग देने पर लब्धि ४९·१ आती है जिसे पूर्णाङ्कों में ४९ ही समझना चाहिए। इसीलिए इस श्लोक में ४९ अंगुल के व्यासार्ध का वलनाश्रित वृत्त खींचने की रीति बतलायी गयी है। इस वृत्त से स्फुटवलन बतलानेवाली रेखा सहज ही खींची जा सकती हैं। भास्कराचार्य तथा अन्य आचार्यों ने वलनाश्रित वृत्त के खींचने का नियम नहीं बतलाया है। उन्होंने केवल इतना लिखा है कि समासवृत्त पर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चिन्ह बनाकर स्फुटवलन के परिमाण का कोण दिशा के अनुसार बना लेना चाहिए।

श्लोक ३—इस श्लोक में समासवृत्त और जिस ग्रह में ग्रहण लगता है उसके बिम्ब का वृत्त अर्थात् ग्राह्य-बिम्ब वृत्त के खींचने की बात है। पर यह स्पष्ट नहीं बतलाया गया है कि इसका परिमाण क्या होना चाहिए। यदि ७० कलाओं का एक अंगुल माना जायगा तो समास-वृत्त और ग्राह्य-बिम्ब-वृत्त बहुत छोटे होंगे क्योंकि ग्राह्य-बिम्बवृत्त का व्यासार्ध १६ कला अथवा एक अंगुल के चौथे भाग से भी कम होता है और समास-वृत्त का व्यासार्ध १ अंगुल के लगभग होता है। इसलिए इन वृत्तों के लिए ७० कलाओं का एक अंगुल मानते में सुविधा नहीं होगी। ऐसी दशा में चंद्रग्रहणाधिकार के २६ वें श्लोक में जिस अंगुल की चर्चा है उसे काम में लाना चाहिये।

परन्तु उसमें अंगुल का जो मान दिया गया है वह उन्नत काल के अनुसार बदलता हुआ बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ४८१)। परन्तु मैं समझता हूँ कि यदि अंगुल का परिमाण सदा ३ कला का माना जाय तो विशेष हानि नहीं हो सकती क्योंकि जैसा पृष्ठ ४८२ में बतलाया गया है वर्तन के कारण सूर्य या चन्द्रबिम्ब के आकारों में उदय या अस्त काल में ही अधिक अन्तर देख पड़ता है। अन्य समय में यह अन्तर इतना कम होता है कि उस पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती। इसलिए यहां मैं ३ कला का एक अंगुल मानना सुगम समझता हूँ, इसमें कुछ संस्कार करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

श्लोक ४—इसके पूर्वार्द्ध में यह बतलाया गया है कि जिस विन्दु को केन्द्र मानकर वलनाश्रित वृत्त, समास-वृत्त और ग्राह्यबिम्ब-वृत्त खींचने को कहा गया है उसी विन्दु से उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पच्छिम रेखाएं त्रि० प्र०-श्लोक २-४ तथा चित्र ४४ के अनुसार खींचना चाहिए। उत्तरार्ध में यह बतलाया गया है कि चन्द्रग्रहण में स्पर्श चन्द्र-विम्ब के पूर्व भाग में होता है और मोक्ष पच्छिम भाग में होता है; परन्तु सूर्यग्रहण में स्पर्श सूर्य-विम्ब के पच्छिम भाग में होता है और मोक्ष पूर्व भाग में होता है। इसका कारण स्पष्ट है। चन्द्रमा आकाश में पूर्व की ओर चलता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा करता है इसलिए जिस समय वह पृथ्वी की छाया में प्रवेश करने लगता है उस समय उसका पूरव वाला भाग ही पहले पहल छाया में घुसता है। इसी प्रकार चंद्र विम्ब का पच्छिम वाला भाग ही मोक्ष के समय छाया से अलग होता है। परन्तु सूर्य ग्रहण में चन्द्रविम्ब पच्छिम से पूर्व की ओर बढ़ता हुआ सूर्य विम्ब को ढक लेता है इसलिए स्पर्श के समय सूर्य विम्ब का पच्छिम वाला भाग ढकने लगता है और मोक्ष के समय सूर्य विम्ब का पूर्व वाला भाग चन्द्र बिम्ब से अलग होता है।

श्लोक ५—चंद्रग्रहण के स्पर्शकाल में चंद्रमा के स्फुटवलन की जो दिशा होती है पूर्व विन्दु से उसी दिशा में स्फुटवलन के अंतर पर वलनाश्रित वृत्त पर चिह्न करना चाहिए। परन्तु मोक्षकाल में स्फुट वलन की जो दिशा हो उसके विरुद्ध दिशा में पच्छिम विन्दु से यह चिह्न करना चाहिए। इन चिन्हों को वलनाग्र-विन्दु कहते हैं। मोक्ष काल में दिशा के उलट देने का कारण पृष्ठ ४७६ के चित्र १०१ के स्पष्ट हो जाता है। वहां यह दिखलाया गया है कि ग्रह के प्राची अर्थात् पूर्व बिन्दु से जिस समय क्रान्तिवृत्त उत्तर की ओर होता है उसी समय प्रतीची अर्थात् पच्छिम विन्दु से क्रान्तिवृत्त दक्खिन की ओर है। इसलिए जिस समय स्फुटवलन की दिशा उत्तर कही जाती है उस समय वह पूर्व विन्दु से उत्तर की ओर होती है न कि पच्छिम विन्दु से। परन्तु स्फुट वलन की जो दिशा चन्द्रग्रहणाधिकार के २४-२५ श्लोकों से सिद्ध होती है वह पूर्व विन्दु से ही समझी जाती है इसलिए उस नियम

के अनुसार मोक्षकालिक वलन को जो दिशा आती है वह पूर्व विन्दु के ही अनुसार आती है परन्तु चन्द्रग्रहण में मोक्ष पश्चिम विन्दु की ओर होता है इसलिए इस विन्दु से स्फुटवलन का कोण बनाने के विए अथवा क्रान्तिवृत्त की दिशा जानने के लिए स्फुटवलन की दिशा उलट दी जाती हैं।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसके विपरीत सूयंग्रहण में करना चाहिए। अर्थात् स्पर्श काल में स्फुटवलन की जो दिशा हो उसके विपरीत दिशा में पच्छिम विन्दु से वलनाग्र विन्दु बनाना चाहिए, परन्तु मोक्ष काल में पूर्व बिन्दु से स्फुटवलन की दिशा में ही वलनाग्र बिन्दु बनाना चाहिए। इसका कारण स्पष्ट है। सूर्यग्रहण में स्पर्श सूर्यबिम्ब के पच्छिम की ओर और मोक्ष पूर्व की ओर होता है। परन्तु पच्छिम की ओर स्फुटवलन की दिशा उलट जाती है जैसा ऊपर कहा गया है। इसलिए सूर्यग्रहण में स्पर्शकालिक वलन की दिशा को उलटना पड़ता है परन्तु मोक्षकालिक वलन की दिशा में कोई फेरफार नहीं करना पड़ता।

श्लोक ६-८—वलनाग्र विन्दु से जो रेखा वलनाश्रित वृत्त अथवा समासवृत्त था ग्राह्यविम्ब के केन्द्र तक खींची जाती है उससे केवल यह जाना जा सकता है कि क्रान्तिवृत्त की दिशा क्या है। सूयंग्रहण में ग्राह्यविम्ब सूर्य ही होता है और सूर्य सदैव क्रान्तिवृत्त पर रहता है इसलिए केन्द्र से वलनाग्र विन्दु तक जानेवाली रेखा क्रान्तिवृत्त ही समझी जा सकती है। परन्तु चन्द्रग्रहण में ग्राह्यविम्ब चन्द्रमा होता है और चन्द्रमा क्रान्ति वृत्त से अपने शर के समान अन्तर पर उत्तर या दक्षिण होता है इसलिए चन्द्र बिम्ब के केन्द्र से वलनाग्र विन्दु तक जाने वाली रेखा क्रान्तिवृत्त कदापि नहीं हो सकती। यह इसके समानान्तर होती है। चाहे सूर्यग्रहण हो चाहे चन्द्रग्रहण, दोनों दशाओं में छादक का केन्द्र वलनाग्र विन्दु से केन्द्र तक जाने वाली रेखा पर नहीं होता क्योंकि सूर्यग्रहण में छादक चन्द्रमा होता है जो क्रान्तिवृत्त पर नहीं चलता और चन्द्रग्रहण में छादक भूछाया होती है जो चंद्रमा की कक्षा में नहीं चलती इसलिए स्पर्श या मोक्ष काल में छादक के केन्द्र का पता लगाने के लिए उस विन्दु से जहाँ वलनाग्र रेखा समास-वृत्त को काटती है चन्द्र-विक्षेप के अन्तर पर समास-वृत्त तक केन्द्र से एक रेखा खींचते हैं। यह रेखा समास-वृत्त को जहाँ काटती है उसे विक्षेपाग्र विंदु कहते हैं। स्पर्श या मोक्ष के समय छादक का केन्द्र इसी विन्दु पर होता है। इसलिए यदि इस विन्दु को केन्द्र मानकर छादक के व्यासार्ध से एक वृत्त खींचा जाय तो यह ग्राह्यविम्ब को जहाँ स्पर्श करेगा वहीं ग्रहण का स्पर्श या मोक्ष होगा। विक्षेपाग्र विन्दु से केन्द्र तक जो रेखा खींची जाती है उससे भी स्पर्श या मोक्ष का स्थान जाना जा सकता है क्योंकि जिस विन्दु पर छादक और छाद्य बिम्ब स्पर्श करते हैं उसी विन्दु पर विक्षेपाग्र विन्दु से केन्द्र तक

खींची जाने वाली रेखा भी ग्राह्य विम्ब को काटती है (देखो पृष्ठ ४६७ चित्र १००)। इस चित्र में च को ग्राह्य विम्ब का केन्द्र समझ लिया जाय तो च से क्रान्तिवृत्त छ प के समानान्तर जो रेखा खींची जायगी वह केन्द्र से वलनाग्र विन्दु तक जानेवाली रेखा कही जा सकती है। भूछाया छ से इस रेखा का जो अंतर होता है वह च के शर के समान होता है। च को केन्द्र मानकर च छ के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वही समासवृत्त होगा। च से जानेवाली वलनाग्र रेखा समास वृत्त को जहाँ काटेगी वहाँ से च छ का अंतर भी चन्द्रमा के शर के समान होगा। इस प्रकार सातवें श्लोक में वतलाये गये नियम की उपपत्ति सिद्ध हुई।

छठें श्लोक में यह नहीं वतलाया गया है कि वलनाग्र रेखा की किस दिशा में विक्षेपाग्र रेखा खींचनी चाहिए। यह ८वें श्लोक में वतलाया गया है। सूर्य-ग्रहण में विक्षेपाग्र रेखा उसी दिशा में खींचनी चाहिए जिस दिशा में चन्द्रमा का शर हो अर्थात् यदि चन्द्र शर की दिशा उत्तर हो तो विक्षेपाग्र रेखा भी वलनाग्र रेखा से उत्तर होनी चाहिए, और यदि चन्द्र शर दक्खिन हो तो विक्षेपाग्र रेखा वलनाग्र रेखा से दक्खिन खींचनी चाहिए। इसका कारण चित्र १०० पृष्ठ ४६७ से स्पष्ट है। यदि इस चित्र में छ को सूर्य विम्ब का केन्द्र[1] मान लिया जाय और क्रान्तिवृत्त छ प को चन्द्र की कक्षा च प से उत्तर में मान लिया जाय तो चन्द्र शर दक्खिन होता है। ऐसी दशा में चन्द्रमा सूर्यविम्ब को ऐसे विन्दु पर स्पर्श करता है जो सूर्य विम्ब के दक्षिणार्ध में है। अर्थात् जब चन्द्रशर दक्खिन होता है तव चन्द्रमा सूर्य-विम्ब को दक्षिण की ओर स्पर्श करता है। इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि यदि चन्द्रमा का शर उत्तर हो तो यह सूर्यविम्ब को उत्तर की ओर स्पर्श करेगा।

परन्तु चन्द्रग्रहण में इसके विपरीत होता है। यह भी इसी चित्र से स्पष्ट होता है, यदि छ को भूछाया का केन्द्र मान लिया जाय। चित्र में चन्द्रशर दक्खिन दिखलाया गया है। ऐसी दशा में भूछाया चन्द्रविम्ब को ऐसे विन्दु पर स्पर्श करती है जो चन्द्र बिम्ब के उत्तर की ओर है। इसी प्रकार यदि चंद्रशर उत्तर हो तो सिद्ध हो सकता है कि भूछाया चन्द्रबिम्ब को दक्षिण की ओर स्पर्श करेगी। इसलिये यह नियम हो गया कि चन्द्रग्रहण में स्पर्शविन्दु की दिशा चन्द्र शर की दिशा के विपरीत होनी चाहिये अर्थात चंद्रग्रहण में विक्षेपाग्र रेखा वलनाग्र रेखा से उस दिशा में खींचनी चाहिये जो चन्द्रशर की दिशा के विपरीत हो।

---

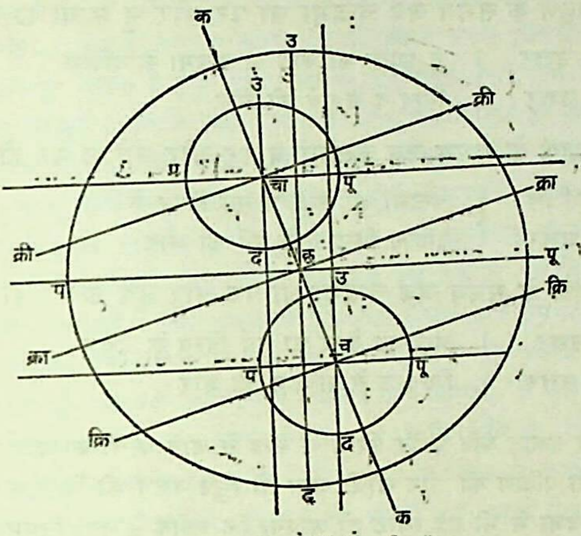
१. यदि छ को सूर्य विम्ब का केन्द्र तथा इसके वृत्त को सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो इसी चित्र से सूर्यग्रहण के सम्वन्ध की सारी बातें जानी जा सकती है।

मोक्ष काल के विक्षेप की दिशा भी इसी नियम के अनुसार निश्चय करनी चाहिये। यदि चन्द्रशर की दिशा दक्षिण हो तो चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा का मोक्ष चन्द्र विम्ब के उत्तरार्ध में होता है जैसा कि उपर्युक्त चित्र में चन्द्रमा को ची स्थिति में दिखलाया गया है। परन्तु सूर्यग्रहण में सूर्य का मोक्ष सूर्यविम्ब के दक्षिणार्ध में होता है। इसी प्रकार यदि चन्द्रशर की दिशा उत्तर हो तो चन्द्रमा का मोक्ष चन्द्रविम्ब के दक्षिणार्ध में और सूर्य का मोक्ष सूर्य विम्ब के उत्तरार्ध में होता है।

मध्य ग्रहण काल में भी विक्षेप की दिशा इसी नियम से निश्चय की जा सकती है। उसी चित्र से यह प्रकट है कि जब चन्द्र शर दक्षिण होता है तब चन्द्र ग्रहण के मध्य काल में भू छाया का केन्द्र चन्द्र-विम्ब से उत्तर होता है परन्तु सूर्य ग्रहण के मध्य काल में चन्द्रमा सूर्य-विम्ब के केन्द्र से दक्षिण होता है। इसी प्रकार जब चंद्र शर उत्तर होता है तब चंद्र ग्रहण के मध्य काल में भू छाया का केन्द्र विम्ब से दक्षिण होता है और सूर्य ग्रहण के मध्य काल में चंद्रमा सूर्य विम्ब के केन्द्र से उत्तर होता है।

श्लोक ६—चन्द्रमा के मध्यग्रहणकाल में यदि चन्द्रशर और स्फुट वलन की दिशा एक हो तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा से पूर्व बनाना चाहिये परन्तु यदि इनकी दिशाओं में भिन्नता हो अर्थात् स्फुटवलन उत्तर और चन्द्रशर दक्षिण हो अथवा स्फुटवलन दक्षिण और चन्द्रशर उत्तर हो तो वलनाग्र विन्दु उत्तर दक्षिण रेखा से पच्छिम होना चाहिये। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि चन्द्रशर दक्षिण हो तो उत्तर विन्दु के पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र विन्दु बनाया जाय और यदि चन्द्रशर उत्तर हो तो दक्षिण-विन्दु से पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र-विन्दु बनाया जाय।

परन्तु सूर्य-ग्रहण के मध्यकाल का परिलेख खींचने के लिए ऊपर जो कुछ चन्द्रग्रहण के सम्बन्ध में कहा गया है उसके विपरीत होना चाहिये। अर्थात् यदि चन्द्रशर और स्फुटवलन की दिशा एक हो तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा से पच्छिम की ओर और यदि इनकी दिशाओं में भिन्नता हो तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्खिन रेखा से पूर्व की ओर होना चाहिये। साथ ही साथ यह भी ध्यान रहे कि यदि चन्द्रशर दक्खिन हो तो दक्खिन-विन्दु से पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र विन्दु बनाया जाय और यदि चन्द्रशर उत्तर हो तो उत्तर विन्दु से पूर्व या पच्छिम वलनाग्र विन्दु बनाया जाय। चित्र १०२ से इसका ठीक ठीक ज्ञान सहज ही हो सकता है। चन्द्रग्रहण के सम्बन्ध में जो भूछाया है वही सूर्यग्रहण के सम्बन्ध में सूर्य विम्ब समझ लेने से यही चित्र चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण दोनों के लिए काम दे सकता है।



चित्र नं० १०२

छ=भू छाया या सूर्य विम्ब का केन्द्र।

च=चन्द्र विम्ब का केन्द्र जब चन्द्रशर दक्षिण है।

चा=चन्द्र विम्ब का केन्द्र जब चन्द्रशर उत्तर है।

पू=उस विम्ब का पूर्व विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

प=उस विम्ब का पच्छिम विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

उ=उस विम्ब का उत्तर विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

द=उस विम्ब का दक्षिण विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

क्राक्रा=क्रान्तिवृत्त

कक=कदम्वप्रोत वृत्त

क्रिक्रि या क्रिक्री चन्द्रमा के केन्द्र से जाता हुआ क्रान्तिवृत्त के समानान्तर वृत्त

इस चित्र में स्फुटवलन उत्तर की ओर दिखलाया गया है। इसलिए प्रत्येक विम्ब के केन्द्र से जाती हुई पू प रेखा के पू विन्दु से क्रान्तिवृत्त क्र क्रा उत्तर की ओर है। इस चित्र से नीचे लिखी वातें स्वयम्सिद्ध हैं :—

(१) चन्द्र ग्रहण के समय जव चन्द्रमा च पर और भू छाया छ पर हो—

चन्द्र शर दक्षिण स्फुटवलन उत्तर	भू छाया का केन्द्र छ चन्द्रमा के उत्तर विन्दु उ से पच्छिम की ओर

(२) चन्द्रग्रहण के समय जब चन्द्रमा चा पर और भू छाया छ पर हो —

चन्द्र शर उत्तर	भू छाया का केन्द्र छ चन्द्रमा के दक्षिण
स्फुटवलन उत्तर	विन्दु द से पूर्व की ओर

(३) सूर्य ग्रहण के समय जब चन्द्रमा च पर और सूर्य छ पर हो—

चन्द्र शर दक्षिण	चन्द्रमा का केन्द्र च सूर्य विम्ब के
स्फुटवलन उत्तर	दक्षिण विन्दु द से पूर्व की ओर

(४) सूर्यग्रहण के समय जब चन्द्रमा धा पर और सूर्य छ पर हो—

चन्द्र शर उत्तर	चन्द्र का केन्द्र चा सूर्य विम्ब के उत्तर
स्फुटवलन उत्तर	विन्दु उ से पच्छिम की ओर

इसी प्रकार यदि प्रत्येक विम्ब के केन्द्र से जाने वाली क्रा क्रा रेखा पू प रेखा के पू विन्दु से दक्षिण की ओर खींची जाय तो स्फुट वलन की दिशा दक्खिन की ओर होगी। इस दशा में भी यह स्पष्ट हो जायगा कि श्लोक ९ का नियम विलकुल ठीक उतरता है। चित्र खींचते समय इस बात का ध्यान रहना आवश्यक है कि छ से च वा च को जाने वाली रेखा क्रान्तिवृत्त से समकोण पर अथवा कदम्वप्रोत वृत्त पर हो।

श्लोक १०—जब श्लोक ९ के अनुसार मध्य ग्रहण काल का वलनाग्र विन्दु जान लिया जाय तव केवल यह जानना रह जाता है कि इस वलनाग्र विन्दु से ग्राह्य विम्ब के केन्द्र तक जाने वाली रेखा के किस विन्दु पर ग्राहक का केन्द्र है। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि मध्य ग्रहण काल में ग्राह्य और ग्राहक विम्बों के केन्द्रों का अन्तर चन्द्रमा के शर के समान होता है। इसलिये ग्राह्य विम्ब के केन्द्र से वलनाग्र विन्दु की दिशा में चन्द्रशर के अन्तर पर ग्राहक का केन्द्र नाप कर स्थिर कर लेना चाहिए।

श्लोक ११—ग्राहक के इसी केन्द्र पर ग्राहक विम्ब के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वही ग्राहक का विम्ब सूचित करेगा। यह वृत्त ग्राह्य विम्ब का जितना भाग ढक लेगा वही विम्ब का ग्रस्त भाग होगा। यदि ग्राह्य का पूरा विम्ब ग्राहक वृत्त से ढक जायगा तो सर्वग्रास ग्रहण लगेगा, नहीं तो खंडग्रास ग्रहण होगा। इसकी उपपत्ति पृष्ठ ४६१ के चित्र ६६ के सम्वन्ध में बतलायी जा चुकी है।

श्लोक १२—इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि समतल भूमि पर अथवा काठ या किसी अन्य वस्तु की तख्ती पर परिलेख खींचा जा सकता है। फलक की जगह काग़ज़ भी आजकल सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है।

इस श्लोक के उत्तरार्ध में यह बतलाया गया है कि पूर्व कपाल के परिलेख में दिशाओं का जो क्रम हो पच्छिम कपाल के परिलेख में उसके विपरीत होना चाहिये। परन्तु यह बात समझ में नहीं आती क्योंकि यदि ग्रहण का स्पर्श पूर्व कपाल में हो और मोक्ष पच्छिम कपाल में, जैसा कि प्रायः होता है, तो एक ही ग्रहण के स्पर्शकाल या सम्मीलन काल का परिलेख उन्मीलन या मोक्षकाल के परिलेख से भिन्न होना चाहिये। परन्तु ऐसी बात न तो व्यवहार में सुविधाजनक है और न बहुत आवश्यक ही है। इनके सिवा अगले श्लोकों में सम्मीलन और उन्मीलन की दिशाएँ जानने की जो रीतियाँ बतलायी गयी हैं वे तभी सम्भव हैं जब एक ही परिलेख से काम लिया जाय। अन्य आचार्यों ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। केवल ब्रह्म स्फुट सिद्धांत के ग्रहणोत्तराध्याय के श्लोक[1] २६ में यह लिखा हुआ है कि फलक पर यदि परिलेख बनाया जाय तो इस पर जो दिशाएँ अंकित की जायँगी वे भूमि के परिलेख की दिशाओं के विपरीत होंगी। इसका कारण यह है कि भूमि के परिलेख में दिशाओं का क्रम वह है जो त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक १-४ में बतलाया गया है। परन्तु फलक के परिलेख में यह सुविधा भी होती है कि उसको हम ग्राह्य विम्ब की ओर उलट कर रख सकते हैं और स्पर्श या मोक्ष विन्दु की दिशा का ज्ञान सहज ही कर सकते हैं। ऐसी दशा में फलक पर हमारे बायें हाथ की ओर पूर्व, दाहिने हाथ की ओर पच्छिम, ऊपर की ओर उत्तर और नीचे की ओर दक्खिन होगा। परन्तु भूमि के परिलेख में हमारे दाहिने हाथ की ओर पूरब, बायें हाथ की ओर पच्छिम, उत्तर की ओर उत्तर और दक्षिण की ओर दक्षिण होता है।

सूर्य-सिद्धान्त के टीकाकारों ने तो यही लिखा है कि पूर्व या पच्छिम कपाल के भेद से दिशाओं के क्रम में भिन्नता कर देनी चाहिये। परन्तु मुझे इसके कारण का ज्ञान अभी तक नहीं हुआ इसलिए मैं इसका अर्थ पद्धति के विरुद्ध जैसा कि ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त में बतलाया गया है करता हूँ। आशा है इस पर कोई सज्जन अपना मत प्रकट करेंगे और इसका कारण बतलाने की कृपा करेंगे।

ग्रहण देखना कब सम्भव है :—

स्वच्छत्वात्षोडशांशोऽपि ग्रस्तश्चन्द्रस्य दृश्यते।
लिप्तात्रयमपि ग्रस्तं तीक्ष्णत्वान्न विवस्वतः ॥१३॥

---

१. प्राच्यपरे विपरीते विपरीतं मध्यवलनमर्केन्द्वोः।
पूर्ववदन्तत् सर्वं फलके स्वे ग्रहण परिलेखाः ॥ २६ ॥

जिसकी टीका सुधाकरजी इस प्रकार करते हैं—फल के प्राच्यपरे विपरीते कार्ये। भूमौ यः प्राग्विन्दुः पश्चिम विन्दुश्च फलके पश्चिम विन्दुः प्राग्विन्दुः कार्य इति। अर्केन्द्वोर्मध्यवलनं यथादिशमागतं विपरीतं कार्यम्।

अनुवाद—(१३) चन्द्रमा का १२वाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छता के कारण देखा जा सकता है परन्तु सूर्य की तीन कला भी ग्रस्त हो तो सूर्य की तीक्ष्णता के कारण नहीं देख पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इसका अर्थ करने में टीकाकारों ने बड़ा मत-भेद प्रकट किया है। आचार्य रंगनाथ जी, तथा उनके अनुयायी माधव पुरोहित जी और पंडित इन्द्र-नारायण द्विवेदी जी यह अर्थ लगाते हैं कि चन्द्रमा का १२ वाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छता के कारण नहीं देख पड़ता। परन्तु यह अर्थ मेरी समझ में ठीक नहीं जंचता। स्वच्छता का अर्थ तीक्ष्णता नहीं लिया जा सकता। स्वच्छता के शब्द से ही यह बोध होता है कि चन्द्रमा की ज्योति स्वच्छ या स्पष्ट होती है इसलिए बारहवाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छतापूर्वक स्पष्ट देखा जा सकता है। जैसा अर्थ मैंने ऊपर लिखा है वैसा ही अर्थ श्री विज्ञानानन्द स्वामी ने अपने बंगला अनुवाद के पृष्ठ २०३ पर किया है।

इस सम्बन्ध में भास्कराचार्य[1], ब्रह्मगुप्त इत्यादि ने लिखा है कि चंद्रमा के १६वें भाग से कम ग्रहण हो तो नही देखा जा सकता और सूर्य के १२वें भाग से कम ग्रहण हो तो नही देखा जा सकता। इससे भी सूर्य-सिद्धान्त के पूर्वोक्त श्लोक का अर्थ वही ठीक जान पड़ता है जो मैंने किया है। ब्रह्मगुप्त जी ने स्वच्छता का शब्द इसी अर्थ में प्रयोग किया है जैसा कि इनके अवतरणों से प्रकट होता है।

छादक के केन्द्र का मार्ग खींचना—

स्वसंज्ञिताः त्रयः कार्या विक्षेपाग्रेषु विन्दवः।
तत्र प्राङ्मध्ययोर्मध्ये तथा मौक्षिक मध्ययोः ॥१४॥
लिखेन्मत्स्यौ तयोर्मध्यमुखपुच्छविनिर्गतम्।
प्रासार्य सूत्र द्वितयं तयोर्यत्र युतिर्भवेत् ॥१५॥
सूत्रेण विलिखेद्वृत्तं तत्र विन्दुत्रयं स्पृशन्।
स पन्था ग्राहकस्योक्तः तेनाऽसौ सम्प्रयास्यति ॥१६॥

---

१. इन्दोर्भागः षोडसः खण्डितोऽपि तेजः पुञ्जच्छन्नभावान्न लक्ष्यः।
तेजस्तैक्ष्ण्यात् तीक्ष्णगोर्द्वादशांशो नादेश्योतोऽल्पोग्रहो बुद्धि मद्भिः ॥३७॥
—सिद्धान्त शिरोमणि, गणिताध्याय चन्द्रग्रहणाधिकार

वलनादि शशिवदन्यद् ग्रहणं तैक्ष्ण्याद्रवेरनादेश्यम्।
द्वादशभागादूनं स्वच्छत्वात् षोडशादिन्दोः ॥२०॥
—ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त; सूर्यग्रहणाधिकार

अनुवाद—(१४) स्पर्श, मध्य और मोक्षकाल में ग्राहक का केन्द्र जहाँ-जहाँ होता है उन विन्दुओं का पता विक्षेपाग्र विन्दुओं से ही लगाया जाता है। इन तीन विन्दुओं में से स्पर्श और मध्य विन्दुओं से तथा मध्य और मोक्ष विन्दुओं से (१५) मत्स्य बनावे। प्रत्येक मत्स्य को दो समान भागों में विभाजित करने वाली और उसके मुख और पुच्छ से होकर निकलने वाली रेखाएँ बढ़ाने पर जिस विन्दु पर मिलती हैं (१६) उसको केन्द्र मानकर एक ऐसा धनु बनावे जो पूर्वोक्त तीन विन्दुओं को स्पर्श करे तो इसी धनु पर ग्रहणकाल में छादक के केन्द्र का मार्ग होता है।

विज्ञान भाष्य—यदि दो बिन्दुओं में से प्रत्येक को केन्द्र मानकर दूसरे बिन्दु की दूरी पर दो धनु खींचे जाँय तो उनके बीच में जो क्षेत्र बनता है वह मछली के आकार का होता है। ऐसे आकार को तिमि या मत्स्य कहा जाता है (देखो पृष्ठ २२३) इसी प्रकार का मत्स्य बनाने का नियम १४वें श्लोक में बतलाया गया है। स्पर्श और मध्यकाल के छादक के केन्द्रों से तथा मध्य और मोक्षकाल के छादक के केन्द्रों से जो दो मत्स्य बनाए जाते हैं उनकी सामान्य जीवाएँ (common chords) बढ़ाने पर जिस बिन्दु पर मिलती हैं उसको छादक के केन्द्र के मार्ग का केन्द्र माना गया है और इसी केन्द्र से छादक के केन्द्रों को स्पर्श करने वाला धनु छादक के केन्द्र का मार्ग माना गया है। यह त्रिप्रश्नाधिकार के ४१वें श्लोक के भाभ्रम-रेखा के खींचने के नियम की तरह है, और उसी प्रकार स्थूल भी है। इस नियम से छादक के केन्द्र का जो मार्ग सिद्ध होता है उससे यथार्थ मार्ग का अंतर बहुत कम होता है। इसलिए आगे लिखे हुए श्लोकों के अनुसार इससे जो काम लिया जाता है वह व्यवहार के लिए पर्याप्त शुद्ध है।

किसी इष्टकाल में ग्रहण का परिलेख खींचना—

ग्राह्यग्राहकयोगार्धात्प्रोज्झ्येष्टग्रासमागतम्।
अवशिष्टाङ्गुलसमां शलाकां मध्यविन्दुतः ॥१७॥
तमोमार्गोन्मुखीं दद्याद्ग्रसतः प्रग्रहाश्रितम्।
विमुञ्चतो मोक्षदिशं ग्राहकाध्वानमेव वा ॥१८॥
स्पृशेद्यत्र ततो वृत्तं ग्राहकार्धेन संलिखेत्।
तेन ग्राह्यं यदाक्रान्तं तत्तदा ग्रासमादिशेत् ॥१९॥

अनुवाद—(१७) गणित से जाने गये इष्टकाल के ग्रास को मानैक्य खंड से घटाने पर जो शेष आवे उसके अंगुल बनाकर इसी के समान एक शलाका अथवा सीधी लकड़ी लेकर परिलेख के केन्द्र से (१८) यदि इष्टकाल ग्रहण के मध्यकाल से पहले हो तो स्पर्श विन्दु की ओर और यदि इष्टकाल मध्यकाल के उपरान्त हो तो मोक्ष विन्दु

की ओर छादक के केन्द्र के मार्ग पर रखो और देखो कि जब शलाका का एक सिरा केन्द्र पर है तब इसका दूसरा सिरा छादक के केन्द्र के मार्ग को कहाँ छूता है, (१९) जहाँ छूवे वहीं इष्टकाल में छादक का केन्द्र होगा। इसी विन्दु को केन्द्र मानकर छादक के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वही इष्टकाल में छादक का बिम्ब होगा। यह छाद्य विम्ब को जितना ढक लेगा उतना ही भाग इष्टकाल में ग्रस्त होगा और इस समय का जो परिलेख होगा वही इष्ट ग्रास का परिलेख होगा।

विज्ञान भाष्य—यह काम आजकल परकार की सहायता से सहज ही हो सकता है। इन तीन श्लोकों का सार यह है कि जब हमें चन्द्रग्रहणाधिकार के श्लोक १८-२० के अनुसार इष्ट काल का ग्रास ज्ञात हो जाय तब इसका परिलेख कैसे खींचना चाहिए। पृष्ठ ४६१ के चित्र ६६ के संबंध में बतलाया गया है कि चन्द्रमा का ग्रस्त भाग ज झ=छझ+चज—च छ=मानैक्यार्ध—चन्द्रमा के केन्द्र से भूछाया के केन्द्र का अंतर। इसलिए यदि मानैक्यार्ध से ग्रस्त भाग घटाया जाय तो छादक और छाद्य के केन्द्रों की दूरी ज्ञात हो सकती है। जब यह दूरी जान ली गयी और छाद्य का केन्द्र तथा छादक का मार्ग ज्ञात ही है तब छादक का स्थान जान लेना कुछ कठिन नहीं है। यदि परकार के दोनों भुजों की नोकों की दूरी छादक और छाद्य के केन्द्रों की दूरी के समान कर ली जाय और छाद्य के केन्द्र को केन्द्र मानकर एक धनु खींचा जाय तो यह छादक के मार्ग को दो बिन्दुओं पर काटेगा। जो विन्दु मध्यविन्दु से स्पर्शविन्दु की ओर होता है वहाँ छादक मध्यकाल के पहले रहता है और जो विन्दु मध्यविन्दु से मोक्ष विन्दु की ओर होता है वहाँ छादक मध्यकाल के पीछे रहता है। इस विन्दु को जानकर छादक के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वह छाद्य को जहाँ तक ढक लेगा वही ग्रस्त भाग होगा। इस प्रकार किसी इष्टकाल का परिलेख सहज ही खींचा जा सकता है।

सर्वग्रास ग्रहण के आरंभ या अंत का परिलेख खींचने की रीति—

मानान्तरार्धकमितां शलाकां ग्रासदिङ्मुखीम्।
निमीलनाख्यां दद्यात्सा तन्मार्गे यत्र संस्पृशेत् ॥२०॥
ततो ग्राहकखण्डेन प्राग्वन्मण्डलमालिखेत्।
तद्ग्राह्यमण्डलयुतिर्यत्र तत्र निमीलनम् ॥२१॥
एवमुन्मीलने मोक्षदिङ्मुखं संप्रसारयेत्।
विलिखेन्मण्डलं प्राग्वदुन्मीलनमथोक्तवत् ॥२२॥

अनुवाद—(२०) परिलेख के केन्द्र से अर्थात् ग्राह्य विम्ब के केन्द्र से मानान्तर खंड के समान एक शलाका छादक के मार्ग पर स्पर्शविन्दु की ओर इस प्रकार रखे

कि शलाका का एक सिरा केन्द्र पर और दूसरा सिरा छादक के मार्ग को स्पर्श करे। इसी स्थान पर सम्मीलन के समय छादक का केन्द्र होता है। (२१) इसको केन्द्र मानकर ग्राहक के विम्बार्ध के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वह ग्राह्य विम्ब के जिस विन्दु पर स्पर्श करेगा उसी स्थान पर सम्मीलन का आरम्भ होगा। (२२) इसी प्रकार मानान्तर खंड के समान शलाका को मोक्ष विन्दु की ओर रक्खा जाय तो शलाका का सिरा छादक के मार्ग को जहाँ स्पर्श करेगा उस विन्दु को केन्द्र मानकर ग्राहक के व्यासार्ध के समान त्रिज्या से जो वृत्त खींचा जायगा वह ग्राह्य विम्ब को जहाँ स्पर्श करेगा वहीं उन्मीलन होगा अर्थात् इसी विन्दु से सर्वग्रास ग्रहण का अंत होगा।

विज्ञान भाष्य—इसकी व्याख्या करने की वहुत आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह चित्र १०० से स्वयम् स्पष्ट है। सम्मीलन या उन्मीलन काल के समय छाद्य और छादक के केन्द्रों का अंतर मानान्तर खंड के समान होता है। इसलिए जब हमें छाद्य का केन्द्र, छादक का मार्ग तथा छाद्य, और छादक के केन्द्रों का अंतर ज्ञात है तब छादक का केन्द्र स्थिर करना कठिन नहीं हो सकता। हाँ, इतना ध्यान रखना चाहिए कि जब हमें सम्मीलन काल का परिलेख खींचना हो तब स्पर्श की दिशा में और जब उन्मीलन काल का परिलेख खींचना हो तब मोक्ष की दिशा में शलाका रखनी चाहिए। यह काम भी आजकल परकार से सहज ही लिया जा सकता है। परकार की दोनों नोकों का अंतर मानान्तर खंड के समान करके इसकी एक नोक को केन्द्र पर रखकर दूसरी नोक से एक धनु खींचे जो छादक के मार्ग को दो विन्दुओं पर काटेगी। जो विन्दु स्पर्श की ओर होगा वहीं सम्मीलन काल में छादक का केन्द्र होगा और जो विन्दु मोक्ष की ओर होगा वहीं उन्मीलन काल में छादक का केन्द्र होगा। जब छादक का केन्द्र स्थिर कर लिया गया तब छादक के विम्बार्ध के समान त्रिज्या से वृत्त खींचकर सर्वग्रास ग्रहण के आरंभ और अंत का स्थान जान लेना कुछ भी कठिन नहीं होता।

ग्राह्य विम्ब का रंग कैसा होता है—

अर्धादूनं च धूम्रं स्यात्कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
विमुञ्चतः कृष्णधूम्रं कपिलं सकलग्रहे॥२३॥

अनुवाद—(२३) जब चन्द्र विम्ब का आधे से कम भाग ग्रस्त होता है तब ग्रस्त भाग का रंग धुएँ की तरह होता है। आधे से अधिक ग्रस्त होने पर ग्रस्त भाग काला देख पड़ता है। जब चन्द्र विम्ब का बहुत सा भाग ग्रस्त हो जाता है और थोड़ा ही सा बचा रहता है तब ग्रस्त भाग का रंग लाली लिये हुए काला होता है। परन्तु

सर्वग्रास ग्रहण का रंग लाली हुए भूरा होता है। (सूर्यग्रहण में सूर्य के ग्रस्त भाग का रंग सदैव काला होता है।)

विज्ञान भाष्य—जब तक चन्द्रमा का प्रकाश तेज रहता है तब तक इसकी तुलना में ग्रस्त भाग का रंग धूम्र या काला देख पड़ता है। परन्तु जब चन्द्रमा का थोड़ा ही सा भाग बचा रहता है तब इसका प्रकाश तेजरहित हो जाता है। इसलिए ग्रस्त भाग का रंग कुछ-कुछ लाल भी देख पड़ता है। लाली का कारण यह है कि सूर्य का सूक्ष्म प्रकाश वायुमंडल से वर्तित होकर चन्द्र बिम्ब पर पड़ता है इसलिए काले ग्रस्त भाग पर कुछ लाली आ जाती है। जिस समय पूरा चन्द्र बिम्ब छाया में आ जाता है उस समय चन्द्र बिम्ब काला न होकर लाली लिए हुए भूरा देख पड़ता है। इसका कारण भी सूर्य का वर्तित प्रकाश है जो पृथ्वी के वायुमण्डल से घूमकर चन्द्रमा पर पड़ता है। यदि वायुमण्डल न होता तो चन्द्रमा के ग्रस्त भाग का रंग भी सदैव काला ही होता जैसा कि ग्रस्त सूर्य का रंग होता है।

वायुमण्डल के वर्तन के कारण कभी-कभी एक आश्चर्यजनक घटना और भी देख पड़ती है। उदय या अस्त काल में जब ग्रहण लगता है तब कभी-कभी चमकते हुए सूर्य की उपस्थिति में ग्रस्त चन्द्रमा देख पड़ता है जिससे एक ओर चन्द्रमा में ग्रहण लगा रहता है और दूसरी ओर सूर्य अपने तेज से पृथ्वी को प्रकाशमान किये रहता है। ऐसी[1] घटनाएँ सन् १६६६, १६६८ और १७५० ईस्वी में देख पड़ी थीं।

परिलेख खींचने का रहस्य गुप्त रखना चाहिए—

रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्यचित्।
सुपरीक्षितशिष्याय दातव्यं ज्ञानमुत्तमम् ॥२४॥

अनुवाद—(२४) परिलेख खींचने की विद्या देवताओं की गोप्य वस्तु है। यह विद्या ऐसे-वैसे आदमी को न बतलानी चाहिए। अच्छी तरह परीक्षा किये हुए शिष्य को यह उत्तम विद्या बतलानी चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इसका सार यही जान पड़ता है कि परिलेख खींचने की रीति सुगमतापूर्वक समझ में नहीं आ सकती इसलिए जो इसके तत्व को अच्छी तरह नहीं समझ सकता उसको बतलाने से कोई लाभ नहीं है। इस विद्या का अधिकारी वही शिष्य हो सकता है जो इसके रहस्य को समझ सकता है।

परिलेखाधिकार नामक छठें अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ।

---

१. देखो Parker's Astronomy, page 171.

अब चन्द्रग्रहण का परिलेख खींचने का एक उदाहरण देकर यह बतलाया जायगा कि पाश्चात्य अर्वाचीन ज्योतिषी सूर्य-ग्रहण की गणना कैसे करते हैं और यह कैसे मालूम करते हैं कि भूभाग के किन किन स्थानों में सर्वग्रास ग्रहण देख पड़ता है तथा किन-किन स्थानों में कितना ग्रास देख पड़ता है। इसके उपरान्त संक्षेप में यह भी बतलाया जायगा कि खाल्दिया और यूनान देश वाले ग्रहण की गणना कैसे करते थे। सूर्य-ग्रहण का परिलेख खींचने का उदाहरण विस्तारभय से छोड़ दिया जाता है।

उदाहरण—संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा के चंद्रग्रहण का परिलेख खींचना—

यह तो प्रकट ही है कि परिलेख खींचने के लिए तात्कालिक स्फुटवलन और चन्द्रमा के शर के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है और छादक ग्रह के केन्द्र का मार्ग खींचने के लिए स्पर्शकाल, मध्यकाल और मोक्षकाल के स्फुटवलनों और चंद्र-शरों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इनमें से स्पर्श और मोक्षकाल के स्फुटवलनों की गणना चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ४९९-५०५ में की गयी है। इसलिए अब ग्रहण के मध्यकाल के स्फुटवलन की गणना भी कर लेनी चाहिये।

आक्षवलन की गणना

चन्द्रमा का पूर्णिमान्तकालिक शर = ८·७६ अथवा ८·८ कला (पृष्ठ ४९५)

पूर्णिमान्तकालिक चंद्र-भोगांश २९८°३४′ (पृष्ठ ४९५)

अयनांश २२°४०′ (पृष्ठ ४९८-४९९)

पूर्णिमांतकालिक चन्द्र सायनभोग ३२१°१४′

पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र मध्यम क्रान्तिज्या

= ज्या २३°२७′ ज्या ३२१°१४′

= ·३९७९ × ज्या ३८°४६′

= ·३९७९ × ·६२६१

= ·२४९१

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र माध्यम क्रान्ति = १४°२५′·३ दक्षिण

" " शर ८′·८ उत्तर

∴ " " स्पष्ट क्रान्ति = १४°१६′·५ दक्षिण

काशी के सूर्योदय से स्पर्शकाल तक का समय	= ४५ घड़ी	५४ पल
स्थित्यर्ध	= ४ "	४२ "
सूर्योदय से ग्रहण के मध्यकाल का समय	= ५० "	३६ "
सूर्योदय से मध्यरात्रि का समय (पृष्ठ ५००)	= ४६	११
मध्यरात्रि के उपरान्त ग्रहण का मध्यकाल	= ४ "	२५ "

इसलिए ग्रहण के मध्यकाल में पृथ्वी की छाया के केन्द्र का पच्छिम नतकाल ४ घड़ी २५ पल अथवा २६५ पल या १५९० असु हुआ। यही मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमा का भी नतकाल हुआ क्योंकि इस समय भूछाया और चन्द्रमा के केन्द्रों के भोगांश समान होते हैं। इसलिए

मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमा का नतकाल=१५९० असु=१५९०′=२६°३०′

चन्द्रमा की मध्यग्रहणकालिक चर ज्या=स्परे२५°२०′ स्परे १४°१६′·५

=·४७३४ × ·२५४४

=·१२०४

∴ मध्यग्रहणकालिक चरांश =६°५५′

पृष्ठ २९२ के समीकरण (ग) के अनुसार, मध्यकाल के चन्द्रमा की नतांश कोटिज्या

=(कोज्या २६°३०′ − ज्या ६°५५′)

× कोज्या २५°२०′ × कोज्या १४°१६′·५

=(·८९४९ − ·१२०४) × ·९०३८ × ·९६९१

=·७७४५ × ·९०३८ × ·९६९१

=·६७८४

∴ मध्यग्रहणकालिक नतांश=४७°१७′

पृष्ठ २७६ के अनुसार,

$$\text{ज्या अग्रा} = \frac{\text{ज्या } १४°१६'·५}{\text{ज्या } ४७°१७' \times \text{कोज्या } २५°२०'}$$

$$+ \text{कोस्परे } ४७°१७' \times \text{स्परे } २५°२०''$$

$$= \frac{·२४६५}{·७३४७ \times ·९०३८} + ·९२३३ \times ·४७३४$$

=·३७१२ + ·४३७१

=·८०८३

∴ अग्रा=५३°५६′

∴ पच्छिम विन्दु से चन्द्रमा का मध्यग्रहणकालीन दिगंश=५३°५६′ दक्षिण

∴ चित्र १०१ के अनुसार,

स्परे (ख उ ग)=अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्शरेखा

=कोज्या ५३°५६′ स्परे ४७°१७′

=·५८८७ × १·०८३१

=·६३७६

∴ ख उ ग = ३२°३१′

∴ मध्यकालिक चन्द्रमा के समप्रोतवृत्त का नतांश = ३२°३१′

$$∴ ज्या (आक्षवलन) = \frac{ज्या\ ३२°३१′ \times ज्या\ २५°२०′}{कोज्या\ १४°१६′·५}$$

$$= \frac{·५३७५ \times ·४२७६}{·९६९१}$$

$$= \frac{·२३००}{·९६९१}$$

$$= ·२३७३$$

∴ आक्षवलन = १३°४४′ दक्षिण, क्योंकि चन्द्रमा पच्छिम कपाल में है।

मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमा का सायन भोगांश = ३२१°१४′

इसमें ९०° जोड़ने पर चन्द्रमा का सायन भोगांश = ५१°१४′ जिसकी क्रान्ति उत्तर होगी इसलिए आयनवलन उत्तर होगा।

$$ज्या (आयनवलन) = \frac{ज्या\ २३°२७′ \times ज्या\ ५१°१४′}{कोज्या\ १४°१६.′५}$$

$$= \frac{·३९७९ \times ·७७९७}{·९६९१}$$

$$= \frac{·३१०२}{·९६९१}$$

$$= ·३२०१$$

∴ आयनवलन = १८°४०′ उत्तर

इसलिए मध्यग्रहणकालिक स्फुटवलन = १३°४४′ दक्षिण + १८°४०′ उत्तर

= ४°५६′ उत्तर

इसलिए स्पर्श, मध्य और मोक्षकाल के परिलेख के आवश्यक अङ्क यह हुए :—

स्पर्शकाल सम्बन्धी—

स्फुटवलन = १९°१०′ उत्तर (पृष्ठ ५०४)

$$∴ ज्या\ १९°१०′ = ११२८′ = \frac{११२८}{७०} = १६\ अंगुल$$

चन्द्रशर = १४·′६ उत्तर (पृष्ठ ५००)

$$= \frac{१४·६}{३} अंगुल = ४·८७\ अंगुल$$

मध्यकाल सम्बन्धी—

स्फुटवलन=४°५६′ उत्तर

∴ ज्या स्फुटवलन=ज्या ४°५६′=२९६′=$\frac{२९६}{७०}$=४·२३ अंगुल

चन्द्रशर=८′·८ उत्तर (पृष्ठ ४९५)

=$\frac{८·८}{३}$=२·९३ अंगुल

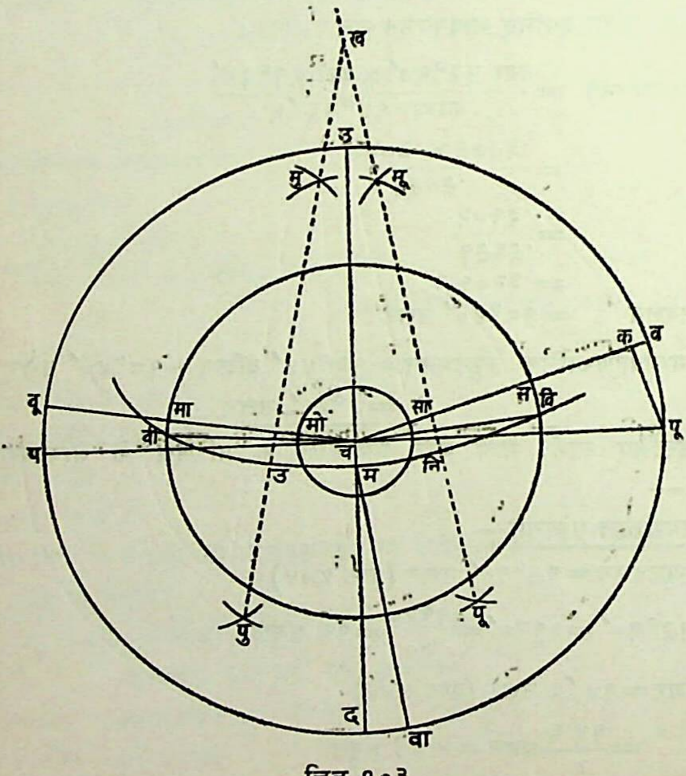
मोक्ष काल सम्बन्धी—

स्फुटवलन=३°५९′ दक्षिण (पृष्ठ ५०५)

∴ ज्या ३°५९′=२३९′=$\frac{२३९}{७०}$=३·४ अंगुल

चन्द्रशर = ३′ उत्तर (पृष्ठ ५००)

= १ अंगुल



चित्र १०३

उ पू द प=वलनाश्रित वृत्त

उ, पू, द, प,=उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पच्छिम विन्दु

स वि वी मा=समासवृत्त जिसका व्यासार्ध मानैक्य खंड के समान है।

सबसे छोटा वृत्त=चन्द्रविम्ब

च=चन्द्रविम्ब, समास वृत्त और वलनाश्रित वृत्त का केन्द्र

च व=वलनाग्र रेखा अथवा वलनाश्रितवृत्त की त्रिज्या जिसका पूर्व विन्दु से अन्तर स्पर्शकाल के स्फुट वलन की ज्या पू क के समान है

पू च व=स्पर्शकालिक वलन

व=स्पर्शकाल का वलनाग्र विन्दु

स=स्पर्शकाल की वलनाग्र रेखा और समासवृत्त का युतिविन्दु

स वि=स्पर्शकालिक चन्द्रविक्षेप या शर। यह वलनाग्र रेखा के दक्षिण की ओर खींचा गया है क्योंकि चन्द्रशर उत्तर है और यह परिलेख चन्द्रग्रहण का है (श्लोक ८)

वि=स्पर्शकालिक विक्षेपाग्र विन्दु अथवा स्पर्शकालिक भूछाया का केन्द्र

वि च=स्पर्शकालिक विक्षेपाग्र-रेखा

सा=विक्षेपाग्र रेखा और चन्द्रविम्ब का युति-विन्दु अथवा ग्रहण का स्पर्श विन्दु

द च वा=मध्यग्रहणकालिक वलन

च वा=मध्यग्रहणकालिक वलनाग्र रेखा (श्लोक ९)

च म =च वा रेखा पर मध्यग्रहणकालिक चन्द्र विक्षेप (श्लोक १०)

म=मध्य ग्रहण काल में भूछाया का केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछाया के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जाता है उसी से मध्यकालिक या परम ग्रास का परिमाण जाना जाता है।

प च वू=मोक्षकालिक वलन

च वू=मोक्षकालिक वलनाग्र रेखा

मा=मोक्ष काल की वलनाग्र रेखा और समास वृत्त का युतिविन्दु

मा वी=मोक्षकालिक चन्द्र विक्षेप। यह भी वलनाग्र रेखा के दक्षिण की ओर खींचा गया है

च वी=मोक्षकालिक विक्षेपाग्र रेखा

मी=मोक्षकालिक विक्षेपाग्र रेखा और समासवृत्त का युतिविन्दु अथवा ग्रहण का मोक्षविन्दु

वी=मोक्षकालिक भूछाया का केन्द्र

मु, पु=मध्य ग्रहण तथा मोक्षकाल के भूछाया के केन्द्रों म और वी पर खींचे हुए मत्स्य के मुख और पुच्छ विन्दु

मू पू =मध्य ग्रहण तथा स्पर्शकाल के भूछाया के केन्द्रों म और वि पर खींचे हुए मत्स्य के मुख और पुच्छ विन्दु

ख=मु पु और मू पू का युति-विन्दु

वि म वी=ख को केन्द्र और ख वि को त्रिज्या मानकर खींचा हुआ धनु जो ग्रहण काल में भूछाया के केन्द्र का मार्ग है (श्लोक १४-१६)

च नि अथवा च उ=मानान्तर खंड

नि=निमीलन या सम्मीलन काल में भूछाया का केन्द्र। इसको केन्द्र मान कर भूछाया के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जाता है वह चन्द्रविम्ब को जिस विन्दु पर स्पर्श करता है वहीं सर्वग्रास ग्रहण का आरंभ होता है। (श्लोक २०-२१)

उ=उन्मीलन काल में भूछाया केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछाया के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जाता है वह चन्द्र-विम्ब को जिस विन्दु पर स्पर्श करता वहीं सर्वग्रास का अन्त होता है। (श्लोक २२)

सब के लिए (देखो पृष्ठ ४६०)

भू भा का व्यासार्ध=४३′·६७=$\frac{४३·६७}{३}$=१४·६६ अंगुल

चन्द्रविम्ब का व्यासार्ध=१६′·६६=१६·६६÷३=५·५५ अंगुल

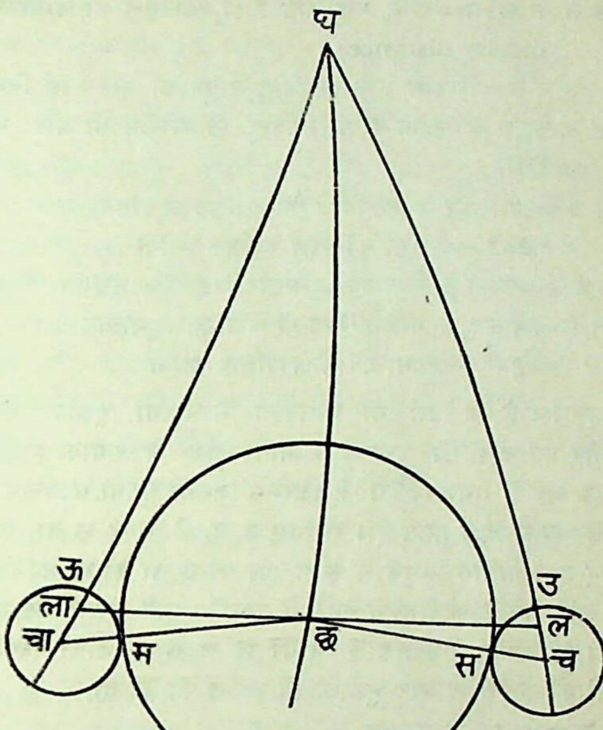
मानैक्य खंड=६०′·६३=६०·६३÷३=२०·२१ अंगुल

मानान्तर खंड=२७′·३१=२७·३१÷३= ६·१ अंगुल

यहाँ मैंने विम्बों या शरों का अंगुलात्मक परिमाण जानने के लिए प्रत्येक को ३ से भाग दिया है और ३ कला का अंगुल समझा है जैसा कि ऊपर श्लोक ३ के विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है। इस परिलेख में वलनाश्रित वृत्त का एक अंगुल १ मिलीमीटर के समान लिया जाता है और अन्य वृत्तों या शरों के खींचने के लिए एक अंगुल डेढ़ मिलीमीटर के समान माना जाता है।

अर्वाचीन रीति से स्पर्शविन्दु की दिशा की गणना—

पाश्चात्य ज्योतिषी समप्रोत वृत्त की दिशा से स्पर्शविन्दु की दिशा की गणना नहीं करते वरन् ध्रुवप्रोत वृत्त की दिशा से स्पर्श या मोक्ष विन्दु की दिशा की गणना करते हैं। इसलिए इनकी गणना में स्फुटवलन के जानने की आवश्यकता नहीं पड़ती। नीचे संक्षेप में यह रीति भी वतला दी जाती है :—



चित्र १०४

छ=भू छाया का केन्द्र

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

च=स्पर्शकाल में चन्द्रमा का केन्द्र

चा=मोक्षकाल में चन्द्रमा का केन्द्र

स =स्पर्शविन्दु

म=मोक्ष विन्दु

च उ ध=स्पर्श काल के चन्द्रमा के केन्द्र का ध्रुवप्रोत वृत्त

चा ऊ ध=मोक्षकाल के ,, ,, ,,

उ=स्पर्शकाल के चन्द्रबिम्ब का उत्तर विन्दु

ऊ=मोक्षकाल के ,, ,,

छ ल या छ ला = छ से चन्द्र केन्द्र के ध्रुवप्रोतवृत्त का लम्बान्तर (Perpendicular distance)

∠ उ च स = चन्द्रमा के उत्तर विन्दु से पूर्व की ओर स्पर्श विन्दु की दिशा

∠ ऊ चा म = चन्द्रमा के उत्तर विन्दु से पच्छिम की ओर मोक्ष विन्दु की दिशा

च ध = स्पर्शकाल में चन्द्रविम्ब के केन्द्र का ध्रुवांतर

= ९०° — चन्द्रमा की स्पर्श कालिक क्रान्ति

छ ध = भूछाया के केन्द्र का ध्रुवान्तर = ९०° — भूछाया की क्रान्ति

चा ध = मोक्षकाल में चन्द्रविम्ब के केन्द्र का ध्रुवान्तर

= ९०° — चंद्रमा की मोक्षकालिक क्रान्ति

यह स्पष्ट है कि स्पर्श या मोक्षकाल में चन्द्रमा भूछाया के बहुत निकट रहता है और इन दोनों की दूरी च छ मानैक्यखंड के समान होती है जिसका परिमाण एक अंश के लगभग होता है इसलिए इसकी तुलना में चन्द्रमा या भूछाया का ध्रुवान्तर छ ध बहुत होता हैं। इसलिए छ ल, छ च या छ ला, छ चा धनु को सीधी रेखाएँ तथा गोलीय त्रिभुज च छ ल या चा छ ला को सरल त्रिभुज (Plane triangle) मान लेने में कोई हानि नहीं हो सकती। इसी तर्क से छ ध को ल ध के समान माना जा सकता है क्योंकि च ध पर छ ल लम्ब खींचा गया है। इसलिये यदि चन्द्रमा की क्रान्ति क और भूछाया की क्रान्ति का हो तो,

च ल = च ध — ध ल = च ध — छ ध

यदि चन्द्रमा और भूछाया दोनों की क्रान्तियाँ उत्तर हों तो,

च ध — छ ध = (९०° — क) — (९०° — का) = का — क

और यदि दोनों की क्रान्तियां दक्खिन हों तो,

च ध — छ ध = (९०° + क) — (९०° + का)

= क — का = — का — (— क)

अर्थात् दोनों दशाओं में च ल का परिमाण जानने के लिए भूछाया की क्रान्ति से चन्द्रमा की क्रान्ति घटानी चाहिए। यह याद रखना चाहिएं कि उत्तर क्रान्ति धनात्मक और दक्षिण क्रान्ति ऋणात्मक लिखी जाय।

∴ कोज्या उ च स = कोज्या ल च छ

$$= \frac{\text{च ल}}{\text{च छ}} = \frac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

$$= \frac{\text{भूछाया की क्रान्ति} - \text{चन्द्रमा की क्रान्ति}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

इसी प्रकार मोक्ष काल में;

कोज्या ऊ चा म = कोज्या ऊ चा छ

$$= \frac{\text{चा ला}}{\text{च छ}} = \frac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

यहाँ इतना स्मरण रखना आवश्यक है कि जब चन्द्रमा भूछाया से उत्तर होगा तब कोण उ च स या ऊ चा म ६०° से बड़ा होगा इसलिए इसकी कोटिज्या ऋणात्मक होगी। परन्तु जब चन्द्रमा भूछाया से दक्षिण होगा तब कोण उ च स या ऊ चा म ६०° से छोटा होगा और इसकी कोटिज्या धनात्मक होगी। चन्द्रमा भूछाया से उत्तर तब होता है जब चन्द्रमा की उत्तर क्रान्ति भूछाया की उत्तर क्रान्ति से अधिक होती है अथवा चन्द्रमा की दक्षिण क्रान्ति भूछाया की दक्षिण क्रान्ति से कम होती है। इसके विपरीत दशा में चन्द्रमा भूछाया से दक्षिण होता है।

उदाहरण—अर्वाचीन रीति से उपर्युक्त चन्द्रग्रहण के स्पर्श और मोक्ष विन्दुओं की दिशाएँ जानना—

चन्द्रमा की स्पर्शकालिक क्रान्तियाँ ज्ञात ही हैं। इसलिए भूभा केन्द्र की स्पर्शकालिक और मोक्षकालिक क्रान्तियाँ जान लेनी चाहिए।

भूभा का स्पर्शकालिक भोगांश = २६८°२६′·५

अयनांश = २२°४०′

∴ भूभा का स्पर्शकालिक सायन भोगांश = ३२१°६′·५

∴ भूभा की स्पर्शकालिक क्रान्तिज्या = ज्या २३°२७′ × ज्या ३२१°६′·५

= ज्या २३°२७′ × ज्या (३६०° − ३८°५०′·५)

= − ज्या २३°२७′ × ज्या ३८°५०′·५

= − ज्या ·३६७६ × ·६२७१

= − ज्या ·२४६६

∴ भूभा की स्पर्शकालिक क्रान्ति = १४°२७′·३; दक्षिण भूभा का मोक्षकालिक भोगांश = २६८°३८′·५

अयनांश = २२°४०′

भूभा का मोक्षकालिक सायन भोगांश = ३२१°१८′·५

∴ भूभा की मोक्षकालिक क्रान्तिज्या = ज्या २३°२७′ × ज्या ३२१°१८′·५

= ज्या २३°२७′ × ज्या (३६०° − ३८°४१′·५)

= − ज्या २३°२७′ × ज्या ३८°४१′·५

$$= -\text{३६७६} \times \text{·६२५१}$$
$$= -\text{.२४८७}$$

∴ भूभा की मोक्षकालिक क्रान्ति = १४°२४′ दक्षिण

$$\text{इसलिए कोज्या उ च स} = \frac{\text{भूछाया की क्रान्ति} - \text{चन्द्रमा की क्रान्ति}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

$$= \frac{-\text{१४°२७′·३} - (-\text{१४°३१′·४})}{\text{६०·६३}}$$

$$= \frac{+\text{४·१}}{\text{६०·६३}} = +\text{·०६७६}$$

∴ उ च स = ८६°७′

अर्थात् चन्द्र बिम्ब के उत्तर विन्दु से ८६°७′ पूर्व की ओर ग्रहण का स्पर्श होगा।

$$\text{कोज्या ऊचाम} = \frac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

$$= \frac{-\text{१४°२४′} - (-\text{१४°२′})}{\text{६०·६३}}$$

$$= \frac{-\text{२२′}}{\text{६०·६३}} = -\text{·३६२९}$$

यह मान ऋणात्मक है। इसलिए ऊ चा म कोण ९०° से अधिक है इसलिए जिस कोण की कोटिज्या ·३६२९ है उसको १८० से घटाने पर ऊचाम का मान निकलेगा।

कोटि ज्या ६८°४३′ = ·३६२९

∴ ऊ चा म = १८०° − ६८°४३′ = १११°१७′

अर्थात् चन्द्र विम्ब के उत्तर विन्दु से १११°१७′ पश्चिम की ओर ग्रहण का मोक्ष होगा। नाविक पंचांग के अनुसार ग्रहण का स्पर्श उत्तर विन्दु से ८४° पूर्व और मोक्ष उत्तर विन्दु से ११०° पच्छिम बतलाया गया है। इस अंतर का कारण यह है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार क्रान्ति निकालने की रीति कुछ स्थूल है।

चन्द्रग्रहण का परिलेख खींचने की रीति बतलाने के बाद विचार था कि संक्षेप में अर्वाचीन रीति से सूर्यग्रहण की गणना की रीति जिसे बेसेलियन रीति कहते हैं लिखूँ परन्तु इस समय दो पुस्तकों के[१] अभाव से तथा कई विघ्न-बाधाओं

---

१. इन पुस्तकों के नाम (१) Chauvenet's Manual of Spherical and Practical Astronomy Vol. I और (2) Loomi's Introduction to Practical Astronomy हैं। पहली पुस्तक में यह विषय बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। यह दोनों पुस्तकें इलाहाबाद की पब्लिक लाइब्रेरी में हैं परन्तु इस समय वार्षिक निरीक्षण के कारण अप्राप्य हैं।

के कारण समयाभाव से भी यह इच्छा अभी पूरी नहीं हो सकती। आशा है कि पुस्तक समाप्त होने पर परिशिष्ट में यह विषय अच्छी तरह समझाया जा सकेगा।

इस समय ग्रहण के सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें और लिखकर यह अध्याय पूरा कर दिया जायगा।

पृष्ठ ४५७-५८ में बतलाया गया है कि जब सूर्य चन्द्रमा के किसी पात, राहु या केतु के पास होता है तभी अमावस या पूर्णमासी के दिन सूर्य या चन्द्रग्रहण सम्भव है। इसलिए यह सिद्ध है कि ग्रहण का फेरा सूर्य और चन्द्रमा के पात की गतियों पर अवलम्बित है। यदि चन्द्रमा का पात अचल होता तो सूर्य दोनों पातों के निकट वर्ष में दो बार एक ही महीने में पहुँचता जिससे ग्रहण लगने के महीने और तिथि स्थिर रहते। परन्तु चन्द्रमा का पात प्रतिदिन ३′१०″·६४ पच्छिम की ओर चलता है जब कि सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′८″·३३ पूर्व की ओर है। इसलिए प्रति दिन सूर्य चन्द्रपात से ६२′१८′·९७ अथवा ६२′१९″ दूर होता जाता है। प्रतिदिन इतना दूर होते-होते सूर्य फिर उसी पात के पास ३६०° ÷ ६२′१९″ = १२९६००० ÷ ३७३९ = ३४६·६२ दिन में पहुँचता है। दूसरे पात के पास पहुँचने में इसका आधा समय १७३·३१ दिन लगता है। यदि अमावस या पूर्णमासी के फेरे भी इतने ही दिन में पूरे होते तो प्रत्येक ३४६·६२ या १७३·३१ दिन के उपरान्त ग्रहण देख पड़ते। परन्तु चान्द्रमास का मध्यममान २९·५३०५९ दिन है जो ११ महीने में ३२४·८३६४७ दिन और १२ महीने में ३५४·३६७०५ दिन के समान है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ग्रहण का फेरा ३४६·६२ दिन में नहीं पड़ सकता।

परन्तु २२३ चान्द्रमास में २२३ × २९·५३०५९ दिन अथवा ६५८५·३२ दिन होते हैं और ३४६·६२ दिन के १९ फेरे में १९ × ३४६·६२ = ६५८५·७८ दिन होते हैं इसलिए ग्रहणों का फेरा अर्थात् ग्रहण-चक्र ६५८५·३२ दिनों का होता है। इतने दिनों के बाद उसी प्रकार के ग्रहण फिर आरंभ होते हैं। इसलिए इस अवधि को ग्रहणचक्र कहा जा सकता है। हमारे प्राचीन ज्योतिष में इस चक्र की चर्चा नहीं है। पाश्चात्य ज्योतिष में इसका नाम सरोस (Saros) है और इसे खाल्दिया निवासियों ने विक्रमी संवत् के आरम्भ से साढ़े छः सौ वर्ष पूर्व निश्चय किया था।

इस ग्रहण चक्र से खाल्दिया वालों को ग्रहणों का पता लगाने में बड़ी सुविधा होती थी क्योंकि बिना लम्बी-चौड़ी गणना किये ही केवल ६५८५.३२ दिनों की ग्रहणों की सारणी से यह सहज ही जान लेते थे कि भविष्य में ग्रहण कब लगेगा। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि यह चक्र (युग) सूर्य, चन्द्रमा और राहु की मध्यम गतियों के अनुसार निकाला गया है इसलिए इसमें थोड़ी सी स्थूलता है। दूसरे,

यह युग पूरे ६५८५ दिनों का नहीं है वरन् सात-आठ घंटे अधिक है। इसका यह फल होता है कि उसी स्थान में और उसी समय वही ग्रहण कभी देख पड़ेगा और कभी नहीं। जैसे प्रयाग में सूर्यास्त के समय चन्द्रग्रहण देख पड़ा तो दूसरी वार ६५८५ दिनों के बाद सूर्यास्त से सात आठ घंटे बाद कोई २ बजे रात को यही चन्द्र-ग्रहण फिर देख पड़ेगा। परन्तु तीसरी बार यह ग्रहण उस समय लगेगा जव प्रयाग में सूर्योदय हो चुका रहेगा। इसलिए यह प्रयाग में नहीं देख पड़ेगा परन्तु प्रयाग के पश्चिम उस स्थान में जहाँ ग्रहण के समय रात्रि रहेगी देख पड़ेगा।

एक सौर वर्ष में ३६५·२५८७६ दिन होते हैं। इसलिए १८ वर्षों में ६५७४·६५७७ दिन हुए जो ग्रहण चक्र से केवल १०·६६ दिन कम है। इसलिए प्रकट है कि यदि ग्रहण चक्र का आरंभ मेष संक्रान्ति के दिन हुआ तो दूसरे चक्र का आरम्भ मेष संक्रान्ति से १०·६६ दिन उपरान्त होगा और तीसरे चक्र का आरंभ मेष संक्रान्ति से २१·३२ दिन पर होगा।

एक पात पर कितने ग्रहण हो सकते हैं—एक चान्द्रमास में २९·५३ दिन होते हैं इसलिए एक पक्ष में १४·७६५ दिन हुए। ऊपर वतलाया गया है कि १ दिन में सूर्य राहु से ६२′१९″ दूर होता है। इसलिए एक पक्ष में १४·७६५ × १°२′ १९″ = १५°२०′ ६″ दूर होता है। यदि पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा पात पर हो तो इस दिन सर्वग्रास चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा। इसी समय सूर्य दूसरे पात पर होगा इसलिए इससे एक पक्ष पहले और पीछे दोनों अमावसों पर सूर्य दूसरे पात से १५°२०′ आगे पीछे रहेगा जो सूर्य ग्रहण की महत्तम सीमा १८°·५ से कम है। इसलिए इन दोनों अमावसों में खंड सूर्य-ग्रहण हो सकता है (देखो पृष्ठ ४६३-६४)। इस प्रकार एक चान्द्रमास में अधिक से अधिक तीन ग्रहण हो सकते हैं जबकि सूर्य एक पात से १५°२०′ आगे पीछे होता है। परन्तु ऐसे तीनों ग्रहण एक ही स्थान से बहुत कम देख पड़ते हैं।[१]

---

१. महाभारत में एक पक्ष में दो ग्रहणों की चर्चा इस प्रकार है :—

चतुर्दशीं पंचदशीं भूतपूर्वा च षोडशीं। इमां तु नाभिजानेहममावस्यां त्रयोदशीं॥
चन्द्रसूर्याविुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीं॥३२॥ भीष्म पर्व अध्याय ३

यहाँ एक पक्ष में दो ग्रहणों की ही चर्चा नहीं है वरन् यह भी है कि एक पक्ष १३ दिन का हो गया है। इस पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि १४·१५ और १६ दिन के पक्ष तो देखे गये हैं परन्तु १३ दिनों का पक्ष अभी तक नहीं सुना गया। इस पर स्व० शंकरवालकृष्ण दीक्षित ने अपने भारतीय ज्योतिषशास्त्र के पृष्ठ ११४-११५ पर अच्छा विवेचन किया है और वतलाया है कि पूर्णमासी के चन्द्र-

यदि अमावस्या के दिन सूर्य पात पर हो तो इस दिन सूर्यग्रहण अवश्य होगा। इससे पहले या पीछे आने वाली पूर्णमासी के दिन सूर्य इस पात से १५°२०′ पहले या पीछे होगा इसलिए चन्द्रमा भी पूर्णमासी के दिन दूसरे पात से इतना ही आगे या पीछे होगा। परन्तु चन्द्रग्रहण की महत्तम सीमा १२°३६ है (देखो पृष्ठ १०८)। इसलिए पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा पात से महत्तम सीमा से अधिक दूर होने के कारण ग्रस्त नहीं हो सकता। इस प्रकार यह सिद्ध है कि ऐसी अवस्था में एक पात पर एक ही ग्रहण हो सकता है और वह सर्वग्रास सूर्यग्रहण है। इसलिए एक पात पर कम से कम एक सूर्यग्रहण और अधिक से अधिक तीन ग्रहण (दो सूर्यग्रहण तथा एक चन्द्रग्रहण) हो सकते हैं।

एक वर्ष में कितने ग्रहण हो सकते हैं—ऊपर बतलाया गया है कि एक पात से दूसरे पात तक जाने में सूर्य को २७३ दिन लगते हैं और ६ चन्द्रमास में १७७ दिन होते हैं इसलिए यदि किसी पात से दो अंश पहले सूर्य हो और चन्द्र-

---

ग्रहण होने के पश्चात् १३ दिन पर अमावस्या के दिन सूर्य ग्रहण एक ही स्थान से नहीं देखा जा सकता। इस पर मेरा मत इस प्रकार है :—

१३ दिन के पक्षवाली बात पर आश्चर्य इसलिए हुआ कि उस समय तिथियों का मान वेदाङ्ग ज्योतिष की मध्यम गणना से जाना जाता था जिसके अनुसार एक पक्ष में १४ दिन ४५ घड़ी २६ पल होते हैं। इस दशा में १३ दिन का पक्ष असम्भव समझा जाता था जो आजकल आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि स्पष्ट गणना के अनुसार १३ दिन के पक्ष अनेक बार हुए हैं और होते रहेंगे। उस प्राचीन काल में १३ दिन का पक्ष ग्रहणों के देखने से ही जान पड़ा था। वह इस प्रकार संभव है :—

स्पष्ट मान के अनुसार एक पक्ष मे कम से कम १३ दिन ५० घड़ी होते हैं। मान लीजिए ११ तारीख के सूर्योदय से १ घड़ी उपरान्त तक पूर्णिमा थी और इस दिन ग्रस्त चन्द्रमा का अस्त हुआ। ऐसी दशा में यह प्रत्यक्ष है कि पक्ष का आरम्भ १२ तारीख को माना जायगा। यदि पक्ष १३ दिन ५७ घड़ी का हो तो अमावस्या का अन्त २४ तारीख को सूर्योदय से ५८ घड़ी पर होगा। यदि सूर्य में ग्रहण भी लगे तो २५ तारीख को ग्रस्त सूर्य उदय होगा और थोड़ी ही देर में ग्रहण का मोक्ष हो जायगा। इससे यह सहज ही प्रकट हो जाता है कि अमावस्या २४ तारीख की रात को ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार १२ तारीख को प्रतिपदा और २४ तारीख को अमावस्या की गणना होगी और १३ दिन का पक्ष देख पड़ेगा। महाभारत काल में ऐसी ही घटना हुई होगी।

ग्रहण लगे तो इससे पहले और पीछे दोनों अमावसों को सूर्यग्रहण लग सकता है। इस चन्द्रग्रहण से १७७ दिन पीछे सूर्य दूसरे पात से २ अंश पीछे रहेगा। इसलिए इस समय भी चन्द्रग्रहण होगा। इस चन्द्रग्रहण के पहले की अमावस्या को सूर्य दूसरे पात से १३ अंश पहले रहने के कारण ग्रस्त होगा तथा पीछेवाली अमावस्या को सूर्य दूसरे पात से १७ अंश पीछे रहने के कारण उस समय भी ग्रस्त हो सकता है क्योंकि सूर्यग्रहण की महत्तम सीमा १८ अंश के लगभग है। इस प्रकार दोनों पातों पर तीन तीन ग्रहण के हिसाब से ६ ग्रहण हो गये। परन्तु ३४६ दिन में सूर्य फिर पहले पात पर पहुँच जावेगा इसलिए एक सूर्य ग्रहण ३४६ दिन के बाद और हो सकता है। इस प्रकार यदि वर्ष के आरम्भ में सूर्यग्रहण से आरम्भ करके पहले महीने में ३ ग्रहण लगें और वर्ष के मध्य में तीन और ग्रहण लगें तो वर्ष के अन्त में एक सूर्यग्रहण और लग सकता है। ऐसी दशा में एक ही सौर वर्ष के भीतर सात ग्रहण हो सकते हैं। परन्तु १२ चान्द्रमासों के एक वर्ष में अथवा मेष-संक्रान्ति से जिस सौर वर्ष का आरम्भ होता है उसमें यदि अधिकमास न पड़े तो ६ ही ग्रहण होंगे क्योंकि जब चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से वर्ष का आरम्भ माना जाय तो चैत्र शुक्ल १५ को पहला चन्द्रग्रहण होगा। इससे पहले का सूर्यग्रहण चैत्र की अमावस्या को पड़ेगा जो पिछले वर्ष में गिना जायगा। इस प्रकार यद्यपि ३६५ दिन के वर्ष में सात ग्रहण हो सकते है तथापि मेष संक्रान्ति से आरम्भ होने वाले सौर वर्ष में अथवा चैत्र शुक्ल से आरम्भ होने वाले चान्द्र वर्ष में अधिक से अधिक केवल ६ ही ग्रहण देख पड़ेंगे। इन ६ ग्रहणों में ४ ग्रहण सूर्य के और २ चन्द्रमा के होंगे। यदि वर्ष में अधिक से अधिक ७ ग्रहण माने जायँ तो ५ सूर्यग्रहण होंगे और २ चन्द्रग्रहण होंगे।

ऊपर यह सिद्ध हो ही चुका है कि यदि किसी पात पर या उसके तीन अंश आगे-पीछे सर्वग्रास या कंकण सूर्यग्रहण हो तो इसके पहले या पीछे आने वाली पूर्णमासियों के दिन चन्द्रग्रहण नहीं हो सकते। इसलिए इस पात पर केवल एक सूर्यग्रहण होगा। दूसरे पात पर भी केवल एक सूर्यग्रहण हो सकता है। इसलिए वर्ष के भीतर कम से कम २ ग्रहण अवश्य पड़ेंगे और यह सूर्यग्रहण होंगे।

इस पर लोग यह शङ्का करेंगे कि सूर्यग्रहण बहुत कम देख पड़ते हैं और चन्द्रग्रहण अधिक। इसका कारण यह है कि चन्द्रग्रहण भूतल के अधिकांश भाग से देख पड़ता है और सूर्यग्रहण अनेक बार पड़ते हुए भी भूतल के बहुत थोड़े भाग से देखा जा सकता है इसलिए एक ही स्थान से सूर्यग्रहणों की संख्या कम और चन्द्रग्रहणों की संख्या अधिक जान पड़ती है। परन्तु यदि सारे संसार के ग्रहणों की संख्या पर विचार किया जाय तो यही सिद्ध होता है कि सूर्यग्रहणों की संख्या चन्द्रग्रहणों की संख्या से कहीं अधिक होती है।

दस दिन ऊपर १८ वर्ष के ग्रहण-चक्र या ग्रहण-युग में प्रायः ७१ ग्रहण पड़ते हैं जिनमें ४१ सूर्यग्रहण होते हैं और २९ चन्द्रग्रहण। इन दोनों का अनुपात वही है जो सूर्य और चन्द्रग्रहणों की परम सीमा का अनुपात है।

एक स्थान से सर्वग्रास अथवा कंकण सूर्यग्रहण बहुत कम देख पड़ता है यद्यपि एक ग्रहण-चक्र में सारे संसार के सर्वग्रास और कंकण सूर्यग्रहणों की संख्या २८ के लगभग होती है। हैली नामक पाश्चात्य ज्योतिषी के मतानुसार २० मार्च ११४० ईस्वी से २२ अप्रैल १७१५ ई० तक लंदन में कोई सर्वग्रास सूर्यग्रहण नहीं देख पड़ा।

परन्तु सर्वग्रास सूर्यग्रहण बड़े महत्व की घटना होती है और किसी स्थान पर साढ़े सात मिनट अथवा १९ पल से अधिक नहीं रहता। इतने थोड़े समय के लिए भी आजकल के पाश्चात्य ज्योतिषी लाखों रुपया खर्च करके दूर-दूर के जङ्गल, पहाड़, समुद्र, अथवा टापुओं में जहाँ से देखने में अधिक सुविधा होने की संभावना होती है जाते हैं। इस कारण के वेधों से सिद्ध होता है कि सूर्य ठोस पिंड नहीं है। इसके चारों ओर आग की लपकें देख पड़ती हैं जिनकी परीक्षाओं से सिद्ध होता है कि इनमें हाइड्रोजन इत्यादि वायवीय पदार्थ भी हैं। परन्तु इस चर्चा का ग्रहण से विशेष सम्बन्ध नहीं है इसलिए यहाँ इस पर और कुछ न लिख कर अध्याय समाप्त किया जाता है।

इस प्रकार परिलेखाधिकार का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

सप्तम अध्याय

ग्रहयुत्यधिकार

श्लोक—१ ग्रहों का युद्ध, समागम और अस्त। श्लोक २ और ३ का पूर्वार्ध—समागम हो चुका है या होने वाला है? श्लोक ३ का उत्तरार्ध, ४, ५, ६—कब और कहाँ समागम होगा। श्लोक ७-१०—दृक्कर्म की रीति। श्लोक ११—दृक्कर्म की आवश्यकता कहाँ-कहाँ होती है। श्लोक १२—दृक्कर्म संस्कृत ग्रहों के समागम के समय उनका परस्पर अन्तर क्या होता है। श्लोक १३-१४—पांच ताराग्रहों के बिम्बों के मध्यम मान तथा स्पष्ट मान जानने के नियम। श्लोक १५-१७—युतिकाल में ग्रहों की दिशा जानकर वेध करने की रीति। श्लोक १८ के उत्तरार्ध से श्लोक २२ तक—अनेक प्रकार के युद्धों की परिभाषा। श्लोक २३—शुभाशुभ फल जानने के लिये युद्धों की कल्पना।

इस अध्याय में यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि ग्रह एक दूसरे के बहुत निकट कब और कहां देख पड़ते हैं और इनका शुभाशुभ फल क्या होता है।

ग्रहों का युद्ध, समागम और अस्त

ताराग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ।
समागमः शशाङ्केन सूर्येणास्तमयस्सह ॥१॥

अनुवाद (१)—भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि पांच ताराग्रहों का आपस में युद्ध और समागम होता है। जब तारा ग्रह चन्द्रमा के साथ हो जाता है तब चन्द्रमा के साथ उसका समागम होता है और जब ग्रह सूर्य के साथ हो जाता है तब कहा जाता है कि वह ग्रह अस्त हो गया।

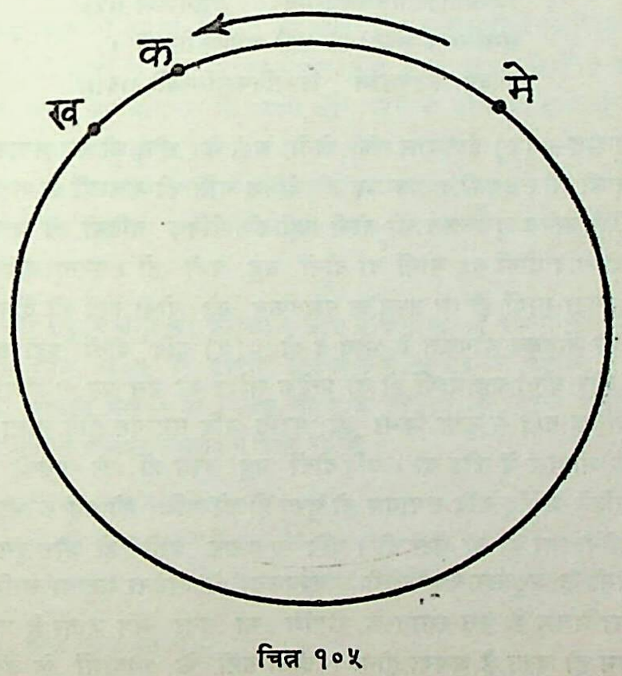
यह जानना कि समागम हो चुका है या होनेवाला है—

शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगो भविताऽन्यथा।
तयोः प्राग्यायिनोरेवं वक्रिणोस्तु विपर्ययात् ॥२॥
प्राग्याय्यधिकेऽतीतः वक्रिण्येऽध्यस्समागमः।

अनुवाद (२)—इष्ट काल में जिस ग्रह की गति मन्द हो उस के भोगांश से यदि शीघ्र गति वाले ग्रह का भोगांश अधिक हो और दोनों ग्रह मार्गी हों अर्थात् पूर्व

की ओर जा रहे हों तो समझना चाहिए कि दोनों का समागम इष्टकाल के पहले ही हो चुका है। परन्तु यदि शीघ्र गति वाले ग्रह का भोगांश मन्दगति वाले ग्रह के भोगांश से कम हो तो समझना चाहिए कि समागम अभी होनेवाला है। परन्तु यदि दोनों ग्रह वक्री हों अर्थात् पच्छिम की ओर जा रहे हों तो ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके विपरीत समझना चाहिए अर्थात् शीघ्रगति वाले ग्रह का भोगांश अधिक हो तो समझना चाहिए कि समागम होने वाला है और यदि कम हो तो समझना चाहिये कि समागम हो चुका है। (३) यदि एक ग्रह मार्गी और दूसरा वक्री हो तो और यदि मार्गी ग्रह का भोगांश वक्री ग्रह के भोगांश से अधिक हो तो इष्ट काल से पहले ही समागम हो चुका है परन्तु यदि वक्री ग्रह का भोगांश अधिक हो तो समझना चाहिए कि समागम होने वाला है।

विज्ञान भाष्य—मान लीजिए दिये हुए चित्र में मे मेष का आदि विन्दु है और क, ख दो ग्रह हैं। यह स्पष्ट है कि उस का भोगांश क के भोगांश से अधिक है। यदि ख कि गति क की गति से अधिक हो तो यह प्रकट है कि ख क से और दूर होता जायगा और इन दोनों का समागम अतीत हो गया है। परन्तु यदि ख की गति मन्द



चित्र १०५

हो तो स्पष्ट है कि क शीघ्र गति से चलता हुआ ख के पास पहुँच जायगा और दोनों का समागम होगा। यह दोनों घटनाएँ उस दशा में घटेंगी जब दोनों ग्रह मार्गी हों अर्थात् तीर की दिशा में जा रहे हों। यदि दोनों वक्री हों अर्थात् तीर के विरुद्ध दिशा में जा रहे हों तो यदि ख की वक्री गति अधिक हो तो समागम होगा और कम हो तो समागम हो चुका है। यदि ख मार्गी हो और क वक्री तो दोनों का समागम हो चुका है परन्तु यदि ख वक्री हो और क मार्गी तो दोनों का समागम होने वाला है।

यह जानना कि किस समय और किस स्थान पर ग्रहों का समागम होगा—

ग्रहान्तरकलास्स्वस्वभुक्तिलिप्तासमाहताः ॥३॥
भुक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोमविलोमयोः।
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन्भुक्तियोगेन भाजयेत् ॥४॥
लब्धं लिप्तादिकं शोध्यं गते देयं भविष्यति।
विपर्ययाद्वक्रगतावेकस्मिन् तद्धनक्षयौ ॥५॥
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगणसंस्थितौ।
विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादिफलमिष्यते ॥६॥

अनुवाद—(३) इष्टकाल के दोनों ग्रहों के भोगांशों का अन्तर निकाल कर कला बनाओ और इसको प्रत्येक ग्रह की दैनिक गति की कलाओं से अलग-अलग गुणा करो। (४) प्रत्येक गुणनफल को दोनों ग्रहों की दैनिक गतियों की अन्तर-कलाओं से भाग दे दो यदि दोनों ग्रह मार्गी वा दोनों ग्रह वक्री हों। परन्तु यदि एक ग्रह वक्री हो और दूसरा मार्गी हो तो उपर्युक्त गुणनफल को दोनों ग्रहों की दैनिक गतियों की कलाओं को जोड़कर योगफल से भाग दे दो। (५) यदि दोनों ग्रहों का समागम हो चुका हो और दोनों ग्रह मार्गी हों तो प्रत्येक लब्धि को उस ग्रह के भोगांश में घटा दो जिसकी दैनिक गति से गुणा किया हो; परन्तु यदि समागम होने वाला हो तो लब्धि को ग्रह के भोगांश में जोड़ दो। यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो इसकी उलटी क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि समागम हो चुका हो तो लब्धि को ग्रह के भोगांश में जोड़ दो और होनेवाला हो तो घटा दो। यदि एक ग्रह वक्री हो और दूसरा मार्गी, तो इन्हीं नियमों के अनुसार जहाँ जैसी आवश्यकता हो जोड़ना घटाना चाहिए (६) ऐसा करने से राशिचक्र के उस स्थान के भोगांश का पता लग जाता है जहाँ दोनों ग्रहों का समागम हो चुका है अथवा होगा। दोनों ग्रहों के भोगांशों के अंतर को इनकी

दैनिक गतियों के अन्तर से भाग देने पर जो लब्धि आती है इष्टकाल से उतने ही दिन के पहिले या पीछे समागम हो चुका रहता है अथवा होता है।

विज्ञान भाष्य—३रे श्लोक के उत्तरार्ध से ६ठें श्लोक के अन्त तक जो दो नियम बतलाये गये हैं वे अङ्कगणित के "समय और दूरी" वाले नियमों से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। इसका एक उदाहरण यह है—प्रयाग से पैंसेजर गाड़ी २५ मील प्रति घन्टे के हिसाब से ६ बजे प्रातःकाल पटने की ओर चली और डाक गाड़ी ४० मील प्रति घंटे के हिसाब से इसी ओर ८ बजे चली तो बतलाओ कि दोनों का मेल कहाँ होगा और कब होगा ?

जिस युक्ति से यह प्रश्न किया जाता है उसी युक्ति से ग्रहों के समागम की भी गणना की जाती है। ऐसे प्रश्नों में पहले यह जानना चाहिए कि जिस समय डाकगाड़ी चली उस समय पैसेंजर गाड़ी उससे कितने अंतर पर थी, फिर यह जानना पड़ता है कि डाकगाड़ी प्रति घंटे १५ मील अधिक चलकर इस अन्तर को कितनी देर में पूरा करेगी। यहाँ १५ मील दोनों गाड़ियों की प्रति घंटे की गतियों का अंतर है क्योंकि दोनों गाड़ियां एक ही दिशा में जा रही हैं।

यदि पैसेंजर गाड़ी प्रयाग से पटने की ओर और डाकगाड़ी पटने से प्रयाग की ओर ६ बजे चलें तो दोनों के समागम का स्थान और समय जानने के लिए दोनों की गतियों का योग करके इस योगफल से प्रयाग और पटने के बीच की दूरी को भाग दे देने से उस समय का ज्ञान होगा जितने समय में दोनों गाड़ियाँ एक दूसरे से मिलेंगी। यहाँ गतियों का योग किया जाता है क्योंकि दोनों गाड़ियां एक दूसरे की ओर मिलने के लिए चल रही हैं इसलिए इनके मिलने की चाल इन दोनों की गतियों के योग के समान होती है।

ठीक इसी प्रकार ग्रहों की युतिकाल और युतिस्थान की गणना की जाती है। मान लीजिए कि चित्र १०५ में किसी इष्टकाल में क ग्रह का भोगांश में क=भ और ख ग्रह का भोगांश मेख=भा। यह भी मान लीजिए कि उसी इष्टकाल में क और ख की दैनिक गतियां क्रमशः ग और गा हैं।

दोनों ग्रहों का अन्तर क ख=भा−भ

दोनों ग्रहों की दैनिक गतियों का अन्तर=ग−गा

इसलिए इष्टकाल से जितने समय पहले या पीछे समागम हो चुका या होगा उसको यदि स कहा जाय तो $स = \frac{भा - भ}{ग - गा}$

२रे श्लोक की उपपत्ति—यदि गा से ग अधिक हो तो हर धनात्मक होगा जिससे स भी धनात्मक होगा, ऐसी दशा में दोनों का समागम इतने दिनों के बाद होगा। परन्तु यदि गा से ग कम हो तो हर ऋणात्मक होने के कारण स भी ऋणात्मक होगा जिसका अर्थ यह है कि इतने दिन पहले ही दोनों ग्रहों का समागम हो चुका है। इस जगह दोनों ग्रहों की गतियाँ स्वयम् धनात्मक मानी गयी हैं। यहां सरलता के लिए इसको स्मरण रखना चाहिए कि मार्गी गति धनात्मक और वक्री गति ऋणात्मक समझी गयी है।

यदि ग और गा दोनों ऋणात्मक हों अर्थात् यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो उपर्युक्त दिनफल का हर (—ग)—(—गा)=गा—ग हो जायगा जो पहले का बिलकुल उलटा है अर्थात् यदि गा से ग कम हो तो दिनफल धनात्मक होगा और समागम होगा परन्तु यदि गा से ग अधिक हो तो दिनफल ऋणात्मक होगा और समागम पहले ही हो चुका है। इस प्रकार २रे श्लोक की उपपत्ति सिद्ध हुई।

३रे श्लोक के पूर्वार्ध की उपपत्ति—यदि क मार्गी और ख वक्री हो तो ग धनात्मक और गा ऋणात्मक होगा इसलिए समीकरण का हर ग—(-गा) के समान होगा जो वास्तव में ग+गा अर्थात धनात्मक हो जायगा इसलिए स धनात्मक होने से समागम उतने ही समय पश्चात् होगा।

परन्तु यदि ख मार्गी और क वक्री हो तो ग ऋणात्मक और गा, धनात्मक होगा ऐसी दशा में समीकरण का हर ग—गा=—ग—(+गा)=—ग—गा= —(ग+गा) जो ऋणात्मक है इसलिए समागम उतने समय पहले ही हो चुका है।

यहाँ यह भी सिद्ध हो जाता है कि युतिकाल का समय जानने के लिए दोनों ग्रहों के भोगांशों के अंतर को दोनों ग्रह की गतियों के अन्तर से भाग देना चहिये यदि दोनों ग्रहों मार्गी या दोनों ग्रह वक्री हों; परन्तु यदि उनमें से एक मार्गी हो और दूसरा वक्री हो तो दोनों की गतियों के योग से भाग देना पड़ता है।

३रे श्लोक के उत्तरार्ध से ६ठें श्लोक तक की उपपत्ति—इन श्लोकों का सार यह है :—

$$\text{इष्टकाल से युतिकाल तक का समय} = \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$$

$$\text{इष्टकाल से युतिकाल तक क ग्रह की चाल} = \text{ग} \times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$$

$$\text{,, ,, ख ,,} = \text{गा} \times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$$

इसलिये यदि क के इष्टकाल के भोगांश में ग $\times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$ जोड़ दिया जाय तो इसका युतिकाल का भोगांश और ख के इष्टकाल के भोगांश में गा $\times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$ जोड़ा जाय तो ख का युतिकाल का भोगांश ज्ञात होगा जो दोनों एक ही होंगे क्योंकि युतिकाल में दोनों ग्रहों के भोगांश एक होते हैं। यहाँ ग—गा का मान ग्रहों की मार्गी और वक्री गतियों के अनुसार वदलेगा जैसा कि पहले कहा गया है क्योंकि जव दोनों ग्रह मार्गी होंगे तो ग और गा दोनों धनात्मक होंगे और जव दोनों ग्रह वक्री होंगे तव ग और गा दोनों ऋणात्मक होंगे। इन दोनों दशाओं में ग—गा का मान वही होगा जो दोनों का अन्तर है। परन्तु यदि एक वक्री हुआ और दूसरा मार्गी तो ग—गा का मान वह होगा जो दोनों का योगफल है परन्तु यह योगफल ऋणात्मक होगा यदि ग ऋणात्मक है और धनात्मक होगा यदि गा ऋणात्मक हो। इस प्रकार चौथे श्लोक की उपपत्ति सिद्ध हुई।

यह पहले ही मान लिया गया है कि इष्ट काल में क, ख ग्रहों के भोगांश क्रमशः भ और भा हैं और इष्टकाल से युतिकाल तक इनकी चालें क्रमशः ग $\times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$ और गा $\times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$ हैं, इसलिए युतिकाल में इनके भोगांश क्रमशः भ $+$ ग $\times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$ और भ $+$ गा $\times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$ हैं। इन दोनों मानों का धन चिह्न प्रत्येक मान के दूसरे पद के चिह्न के अनुसार धन या ऋण होगा जैसा कि पहले कहा गया है। इस प्रकार ५वें और छठें श्लोक के पूर्वार्ध की उपपत्ति सिद्ध होती है। छठें श्लोक के उत्तरार्ध की उपपत्ति पहले ही सिद्ध की गयी है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रीति से युक्तिस्थान का जो भोगांश ज्ञात होगा वह स्थूल होगा क्योंकि किसी इष्टकाल में किसी ग्रह की जो दैनिक गति होती है वह प्रत्येक दिन एकसी नहीं रहती, कुछ घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए इष्टकाल की दैनिक गतियों के अनुसार गणना करने से कुछ स्थूलता रह जाती है। इस कारण यह आवश्यक है कि उपर्युक्त गणना से जो समय आवे उस समय के ग्रह के भोगांश और दैनिक गतियाँ स्वतन्त्र गणना से फिर निकाले और इनके ही आधार पर ऊपर के चार श्लोकों में दिये हुये नियमों से फिर युतिस्थान जाने।

दृक्कर्म की रीति—

कृत्वा दिनक्षपामानं ततो विक्षेपलिप्तिकाः ।
नतोन्नतं साधयित्वा स्वकाल्लग्नवशात्तयोः ॥७॥

विषुवच्छायायाऽभ्यस्ताद्विक्षेपाद्द्वादशोद्धृतात् ।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धविभाजितम् ।।८।।

लब्धं प्राच्यामृणं सौम्याद्विक्षेपात्पश्चिमे धनम् ।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु तथा क्षयः ।।९।।

सत्रिभग्रहजक्रान्तिभागघ्नाः क्षेपलिप्तिकाः ।
विकलास्स्वमृणंक्रान्तिक्षेपयोर्भिन्नतुल्ययोः ।।१०।।

नक्षत्र ग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदय साधने ।
शृङ्गोन्नतौ तु चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ।।११।।

तात्कालिकौ पुनः कार्यौं विक्षेपौ तु तयोरथ ।
दिक्तुल्यत्वेऽन्तरं भेदे योगश्शेषं ग्रहान्तरम् ।।१२।।

अनुवाद—(७) युक्तिकाल के ग्रहों के दिनमान और रात्रिमान तथा उनके विक्षेपों का मान जानना चाहिए फिर उस काल में जो राशि पूर्व में लग्न हो उससे प्रत्येक ग्रह का नतकाल और उन्नतकाल जानना चाहिये। (८) विक्षेप को उस स्थान की पलभा से गुणा करके १२ से भाग देना चाहिये। जो लब्धि आवे उसको प्रत्येक ग्रह की नत घड़ी से गुणा करके उसके दिनमान के आधे से और यदि रात्रि हो तो रात्रिमान के आधे से भाग दे देना चाहिये। (९) अब जो लब्धि आवे उसको यदि विक्षेप उत्तर हो तो पूर्व कपाल में ग्रह के भोगांश में घटा दो और पच्छिम कपाल में जोड़ दो। परन्तु यदि विक्षेप दक्षिण हो तो पूर्व कपाल में उस लब्धि को ग्रह के भोगांश में जोड़ दो और पच्छिम कपाल में घटा दो। (१०) ग्रह के भोगांश में तीन राशि जोड़कर उसकी क्रान्ति निकालो और इस क्रान्ति के अंश को विक्षेप की कला से गुणा कर दो, गुणनफल को विकला समझकर ग्रह के भोगांश में जोड़ दो। यदि क्रान्ति और विक्षेप की दिशाएँ भिन्न हों और यदि इनकी दिशाएँ एक ही हों तो घटा दो। (११) नक्षत्र और ग्रह के योग में ग्रह का उदय और अस्त साधन करने में, चन्द्रमा का शृंङ्गोन्नत जानने के पहले इस दृक्कर्म का संस्कार करना चाहिये। (१२) दृक्कर्म संस्कृत ग्रहों का युतिकाल और इस समय के इनके विक्षेप फिर निकालकर यदि विक्षेपों की दिशा एक ही हो तो अन्तर करे और भिन्न हो तो योग करे। ऐसा करने से जो आवे वही युतिकाल में दोनों ग्रहों का परस्पर अंतर होगा।

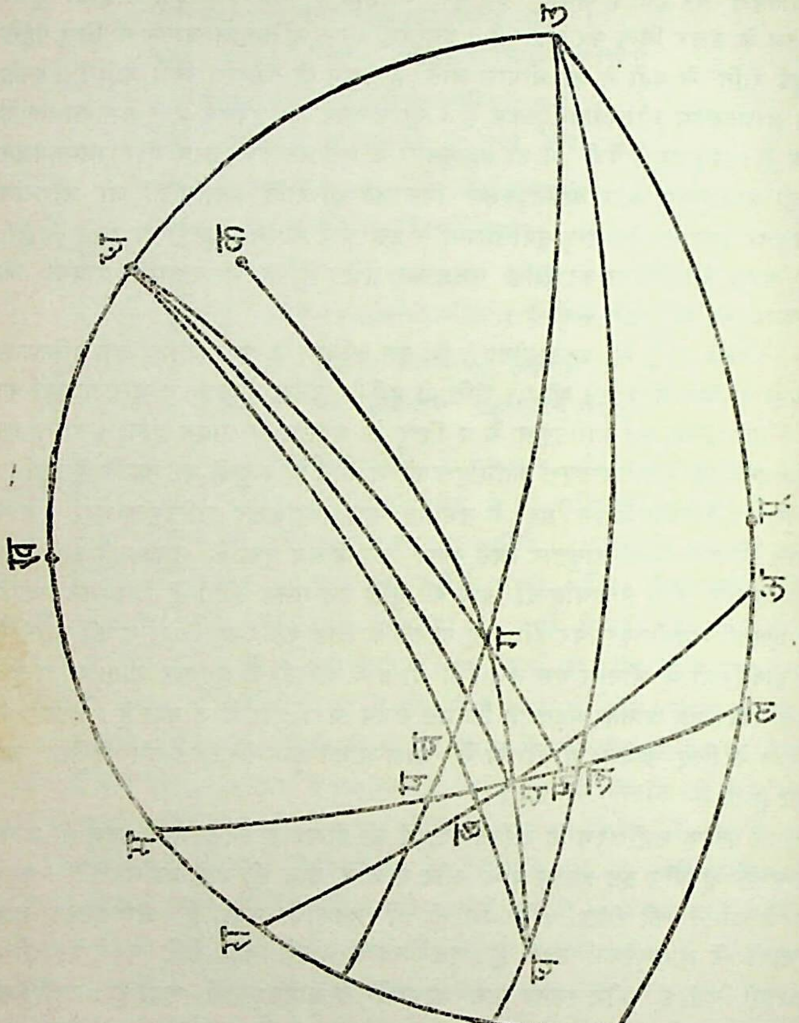
विज्ञान भाष्य—युतिकाल में ग्रहों के स्थान जानने की जो रीति ३—६ श्लोकों में वतलायी गयी है। उससे यह ज्ञात होता है कि उस समय ग्रह कदम्वप्रोतवृत्त पर कहां है परन्तु स्पष्ट युतिकाल उस समय को कहते हैं जिस समय दोनों ग्रह

समप्रोतवृत्त पर होते हैं अर्थात् उस वृत्त पर होते हैं जो दोनों ग्रहों से होता हुआ क्षितिज के उत्तर बिन्दु पर जाता है। इसलिए स्पष्ट युक्तिकाल जानने के लिए पहले दी हुई रीति से ग्रहों के जो भोगांश आते हैं उसमें दो संस्कार किये जाते हैं जिनके नाम आक्षदृक्कर्म और आयनदृक्कर्म हैं। यह संस्कार आक्षवलन और आयनवलन के सदृश हैं। भास्कराचार्यजी ने तो ब्रह्मगुप्तजी के अनुसार आक्षवलन और आयनवलन से ही आक्षदृक्कर्म और आयनदृक्कर्म निकालने की रीति बतलायी है जो आजकल अधिकतर प्रचलित है परन्तु सूर्यसिद्धान्त में इस कार्य के लिए दूसरी ही रीति दी है। यहाँ पहले सूर्यसिद्धान्त की रीति समझाकर संक्षेप में यह भी बतलाया जायगा कि भास्कराचार्य्य की रीति कैसी है।

चित्र १०६ से प्रकट होता है कि इस अध्याय के छठें श्लोक तक युक्तिकाल के ग्रहों के भोगांश जानने की जो रीति दी हुई है उसके अनुसार ग और घ ग्रहों का जो भोगांश होगा वह क्रान्तिवृत्त के य बिन्दु के भोगांश के समान होगा। परन्तु इस समय इन ग्रहों के समप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को ज और प बिन्दुओं पर काटते हैं इसलिए उपर्युक्त युक्तिकाल में इन ग्रहों के समप्रोत वृत्तों का अंतर क्रान्तिवृत्त पर प ज के समान होगा। सिद्धान्तानुसार जिस समय यह अन्तर शून्य के समान हो उस समय को युतिकाल कहते हैं अर्थात् दो ग्रहों की युति उस समय होती है जिस समय दोनों ग्रह एक ही समप्रोतवृत्त पर हों। यह जानने के लिए पहले यह क्रिया करनी पड़ती है कि दोनों ग्रहों के भोगांश एक कब होंगे जो ४-६ श्लोकों के अनुसार जाना जाता है। इसके बाद यह जानना पड़ता है कि उस समय य प और य ज क्या हैं। इनको मैं सुविधा के लिए क्रमशः ग और घ के आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत-फल कहूँगा। यह प्रकट है कि—

प्रत्येक समीकरण के दाहिने पक्ष में जो दो पद हैं उनका मान सहज ही जाना जा सकता है और इस प्रकार य प और य ज के मान भी जाने जा सकते हैं। पहले पद के जानने की रीति ७-९ श्लोकों में बतलायी गयी है और इसका नाम आचार्यों ने आक्षदृक्कर्म रखा है। दूसरे पद के जानने की रीति १०वें श्लोक में बतलायी गयी है और इसका नाम आचार्यों ने आयनदृक्कर्म रखा है। पहले को आक्षदृक्कर्म कहा गया है क्योंकि इसका परिमाण द्रष्टा के अक्षांश के अनुसार बदलता है और दूसरे को आयनदृक्कर्म कहा गया है क्योंकि इसका परिमाण अयनान्तवृत्तों (देखो पृष्ठ २३०) के अनुसार बदलता है जैसा कि आगे सिद्ध किया जायगा।

आक्षदृक्कर्म—यह प्रकट है कि निरक्ष देश पर क्षितिज का उत्तर बिन्दु उ और ध्रुव घ एक हो जाते हैं इसलिये यहां किसी ग्रह के समप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोत-



चित्र १०६

चित्र १०६ का वर्णन

उ पू द=क्षितिज वृत्त का पूर्वार्ध

उ, पू, द=क्रमशः उत्तर, पूर्व और दक्षिण विन्दु

उ ध ख म रा द=यामोत्तरवृत्त

क=कदम्ब

ध=ध्रुव

ख=खस्वस्तिक

म=मध्यलग्न

ग, घ=दो ग्रहों के स्थान (चित्र में घ की जगह ध बन गया है)

क ग य घ=कदम्बवृत्त

ल ज फ य च प म—क्रान्तिवृत्त

ख=क्रान्तिवृत्त का वह बिन्दु जो पूर्व क्षितिज में लग्न हैं।

अ य छ रा=य बिन्दु का अहोरात्रवृत्त

ध च छ घ=घ ग्रह पर जाता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त

ध ग फ=ग ग्रह पर जाता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त

उ ज घ=घ ग्रह पर जाता हुआ समप्रोतवृत्त

उ ग प=ग ग्रह पर जाता हुआ समप्रोतवृत्त

ज=घ ग्रह के समप्रोत वृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात बिन्दु

प=ग ग्रह के समप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात बिन्दु

प ज=दोनों ग्रह के समप्रोत वृत्तों का अन्तर (क्रान्ति वृत्त पर)

च ज=घ ग्रह का आक्षदृक्कर्म (घ ग्रह के समप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

च य=घ ग्रह का आयन दृक्कर्म (घ ग्रह के कदम्बप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

य ज=घ ग्रह का आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत फल, अर्थात् घ ग्रह के समप्रोत और कदम्बप्रोत वृत्तों का क्रान्ति वृत्त पर अंतर

प फ=ग ग्रह का आक्षदृक्कर्म (ग ग्रह के समप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

प फ=ग ग्रह का आयनदृक्कर्म (ग ग्रह के कदम्बप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

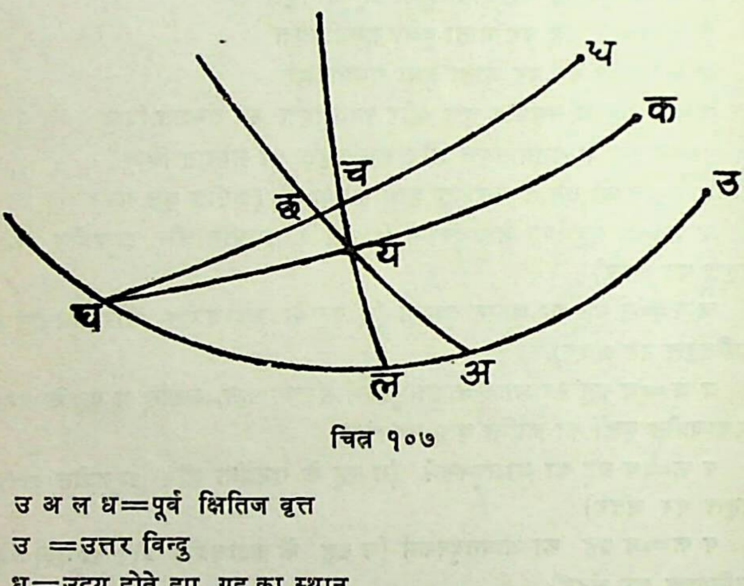
प य=ग ग्रह का आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत फल अर्थात् ग ग्रह के समप्रोत और कदम्बप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अन्तर

य प=प फ—य फ

और य ज=च ज—च य

वृत्त एक में मिले रहते हैं। इस कारण वहां प फ या च ज का मान शून्य होता है अर्थात् वहां आक्षदृक्कर्म शून्य होता है। जैसे-जैसे अक्षांश बढ़ता है अर्थात् जैसे-जैसे

क्षितिजवृत्त के उत्तर विन्दु उ से ध्रुव ध ऊपर होता जाता है तैसे प फ या च अ अर्थात् आक्षदृक्कर्म बढ़ता है। जिस समय ग्रह यामोत्तर वृत्त पर होता है उस समय भी उसके समप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त एक में मिले रहते हैं क्योंकि यामोत्तरवृत्त उ और ध दोनों विन्दुओं पर होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि किसी स्थान के यामोत्तर वृत्त पर भी ग्रह का आक्षदृक्कर्म शून्य रहता है। अब केवल यह जानना रह गया है कि आकाश के अन्य विन्दुओं पर ग्रह का आक्षदृक्कर्म क्या होता है। पहले यह देखना चाहिये कि यदि ग्रह क्षितिजवृत्त पर हो तो आक्षदृक्कर्म का परिमाण क्या होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि ग्रह क्षितिजवृत्त पर हो तो क्षितिजवृत्त ही इसका समप्रोतवृत्त भी होता है। चित्र १०७ से प्रकट है कि जब घ ग्रह पूर्व क्षितिज में लग्न होता है तब क्रान्तिवृत्त पर इसका स्थान य होता है।



चित्र १०७

उ अ ल ध=पूर्व क्षितिज वृत्त

उ =उत्तर विन्दु

ध=उदय होते हुए ग्रह का स्थान

ल=उदय लग्न

क=कदम्ब

य=क्रान्तिवृत्त पर ध ग्रह का स्थान

च=घ के ध्रुवप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात विन्दु

अ य छ=य का अहोरात्र वृत्त

च ल=घ का आक्षदृक्कर्म

य का अहोरात्रवृत्त अयछ घ के ध्रुवप्रोतवृत्त को छ विन्दु पर काटता है। अ छ घ गोलीय समकोण त्रिभुज है क्योंकि अहोरात्र वृत्त अ य छ ध्रुवप्रोतवृत्त से ९० अंश का कोण बनाता है। अहोरात्रवृत्त विपुवद्‌वृत्त के समानान्तर होता है कथा विपुवद् वृत्त और पूर्वक्षितिज वृत्त के बीच का कोण लम्वांश के समान होता है इसलिए कोण छ अ घ लम्बांश के समान है। यदि अ छ घ को सरल समकोण त्रिभुज मान लिया जाय तो कोण अ छ घ=९० अंश और कोण छ अ घ=लम्बांश। इसलिए कोण छ घ अ =अक्षांश क्योंकि अक्षांश+लम्वांश=९० अंश। इसलिए सरल त्रिभुज अ छ घ में

$$\frac{\text{छ अ}}{\text{छ घ}} \; \frac{\text{ज्या}\angle \text{ छ घ अ}}{\text{ज्या}\angle \text{ छ अ घ}} = \frac{\text{ज्या अक्षांश}}{\text{ज्या लम्वांश}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{१२}}$$ (देखो पृष्ठ ५६ और २६३)

यदि छ घ को घ य के समान और छ अ को च ल के समान मान लिया जाय तो

$$\frac{\text{च ल}}{\text{घ य}} = \frac{\text{छ अ}}{\text{छ घ}} = \frac{\text{प ल भा}}{\text{१२}}$$

$$\therefore \text{च ल} = \frac{\text{घ य} \times \text{प ल भा}}{\text{१२}}$$

$$= \frac{\text{ग्रह का शर} \times \text{प ल भा}}{\text{१२}}$$

परन्तु च ल घ=ग्रह का आक्षदृक्कर्म। इसलिये सिद्ध होता है कि जिस समय ग्रह क्षितिज पर होता है उस समय उसका आक्षदृक्कर्म उसके शर को प ल भा से गुणा करके १२ से भाग देने पर आता है। यही ८वें श्लोक के पूर्वार्ध का तात्पर्य है। इस प्रकार जब यह सिद्ध हो गया कि क्षितिजस्थ ग्रह का आक्षदृक्कर्म क्या होता है और यामोत्तरवृत्त पर उसका मान शून्य होता ही है तव अन्य समय के लिये उसकी गणना त्रैराशिक से इस प्रकार की जाती है कि जब ग्रह के आधे दिन में आक्षदृक्कर्म का मान कम से कम शून्य और अधिक से अधिक क्षितिजस्थ आक्षदृक्कर्म के समान होता है तव इष्ट नतकाल में इसका मान क्या होता है। अर्थात् दिनार्द्ध : इष्टनत काल :: क्षितिजस्थ आक्षदृक्कर्म : इष्ट आक्षदृक्कर्म। यही ८वें श्लोक का अर्थ है।

चित्र १०६ और १०७ में ग्रह पूर्वकपाल में दिखलाये गये हैं। यहाँ घ का शर दक्षिण है तो घ का समप्रोतवृत्त कान्तिवृत्त को ज विन्दु पर काटता है जो य से पूर्व है। इसलिये दक्षिण शर में य के भोगांश में घ का आक्षदृक्कर्म जोड़ने से ज का भोगांश आवेगा। परन्तु जब ग का शर उत्तर है तो ग का समप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त

को प स्थान पर काटता है जो य से पच्छिम है इसलिये उत्तर शर में य के भोगांश में ग का आक्षदृक्कर्म घटाने से प का भोगांश आवेगा। पच्छिम कपाल में इसके विपरीत होता है अर्थात् दक्षिण शरवाले ग्रह का आक्षदृक्कर्म ग्रह के भोगांश में घटाना पड़ता है और उत्तर शर वाले ग्रह का आक्षदृक्कर्म ग्रह के भोगांश में जोड़ना पड़ता है। यह बात चित्र १०६ से ही स्पष्ट हो जाती है क्योंकि यदि वह चित्र पच्छिम कपाल का समझ लिया जाय तो ज विन्दु य से पच्छिम समझा जायगा और प विन्दु य से पूरब समझा जायगा क्योंकि पच्छिम कपाल में किसी विन्दु से उसके नीचे का विन्दु पच्छिम होता है और ऊपर का विन्दु पूर्व होता है परन्तु पूर्व कपाल में किसी विन्दु से उसके नीचे का विन्दु पूर्व होता है और ऊपर का विन्दु पच्छिम होता है। इस प्रकार ९वें श्लोक में बतलायी गयी जोड़ने घटाने की क्रिया की उपपत्ति भी सिद्ध हो गयी।

यह स्मरण रखना चाहिए कि ८वें श्लोक में बतलायी गयी रीति स्थूल है क्योंकि जिन कल्पनाओं से यह सिद्ध हुई है वह स्वयम् स्थूल है।

आयन दृक्कर्म—

चित्र १०६ से प्रकट है कि घ ग्रह का आयन दृक्कर्म च य है। अब देखना है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार च य का मान जानने की क्या रीति है।

त्रिभुज च य छ इतना छोटा है कि च य को छ य के समान समझ लेने से कोई हानि नहीं हो सकती। त्रिभुज छ य घ को सरल समकोण त्रिभुज समझ लेने से भी विशेष हानि नहीं है क्योंकि घ ग्रह का शर घ य बहुत छोटा होता है और कोण घ छ य समकोण है क्योंकि अ छ रा य विन्दु का अहोरात्रवृत्त है और ध छ घ घ का ध्रुवप्रोतवृत्त है। इसलिए समकोण त्रिभुज छ य घ में

$$\frac{\text{छ य}}{\text{घ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{ज्या}\angle\text{घ छ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{ज्या } 90^\circ} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ ध य}}{\text{त्रिज्या}}$$

चूंकि ग्रह का शर बहुत छोटा होता है इसलिए कोण छ ध य या कोण ध घ क को कोण ध य क के समान समझ लेने में कोई हानि नहीं है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि

$$\frac{\text{छ य}}{\text{घ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{ध य क}}{\text{त्रिज्या}} \quad \therefore \text{छ य} = \frac{\text{घ य}\times\text{ज्या}\angle\text{ध य क}}{\text{त्रिज्या}}$$

परन्तु कोण ध य क य विन्दु का अयन वलन है क्योंकि यह य के ध्रुवप्रोत-वृत्त और कदम्बप्रोतवृत्त के बीच में है (देखो चित्र १०१) और य के ९० अंश के आगे के भोगांश की क्रान्ति के समान होता है (देखो पृष्ठ ४८०) इसलिए ज्या

∠ध य क की जगह पर य+९०° की क्रान्तिज्या जो पृष्ठ ४८० के समीकरण (२) के अनुसार ज्ञात होती है रखना चाहिए। यदि यह क्रान्ति ज्या क्रा के समान मान ली जाय तो $छ य = \frac{घ य \times क्रा}{त्रिज्या}$ । इस समीकरण में सब परिमाणों को कलाओं में समझना चाहिए।

यह बतलाया गया है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२२) कि परमक्रान्तिज्या का मान १३९७ कला है और परमक्रान्ति २४° के समान मानी गयी है। २४ का ५८ गुना १३९२ होता है जो १३९७ के बहुत निकट है इसलिए यदि यह मान लिया जाय कि २४ का ५८ गुना १३९७ के प्रायः समान है तो कोई हर्ज नहीं। इसलिए जब २४ अंश की ज्या २४×५८ कला के समान होती है तब यह समझने में बहुत हानि नहीं है कि किसी अंश की ज्या उसकी ५८ गुनी कला के समान होती है।

इसलिए क्रा=क्रान्त्यंश×५८ त्रिज्या=६०×५८। इस प्रकार उपर्युक्त समीकरण का रूप यह होगा :—

$$छय = \frac{ध य \times क्रान्त्यंश \times ५८}{५८ \times ६०} = \frac{घ य \times क्रान्त्यंश}{६०} \text{ कला}$$

कला की ६० गुनी विकला होती है इसलिए यदि ऊपर के समीकरण के दाहने पक्ष को ६० से गुणा किया जाय तो उसका मान विकलाओं में बदल जायगा। परन्तु ६० से गुणा करने पर नीचे वाला ६० कट जायगा और समीकरण का रूप यह होगा :—

छ य=घ य×क्रान्त्यंश विकला

यहां छ य=च य=आयन दृक्कर्म, घ य ग्रह ध का शर या विक्षेप कलाओं में है और क्रान्ति अंशों में है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि य के आगे के ९० अंश की क्रान्ति को अंशों में लिख कर इसको विक्षेप की कलाओं से गुणा कर देने पर जो आता है वह विकलाओं में घ ग्रह का आयन दृक्कर्म है जैसा कि श्लोक १० में बतलाया गया है। इस नियम का दूसरा सरल रूप यह भी हो सकता है कि ग्रह के आयन वलन को अंशों में लिखकर इसको ग्रह की विक्षेप कला से गुणा कर देने से जो आता है वह विकलाओं में ग्रह का आयनदृक्कर्म है।

अब यह देखना है कि यह आयनदृक्कर्म किस समय धनात्मक और किस समय ऋणात्मक होता है अर्थात् इस आयनदृक्कर्म को ग्रह के भोगांश में किस समय जोड़ना चाहिये और किस समय घटाना चाहिये। स्पष्टाधिकार के पृष्ठ २०० के चित्र ३९ को ध्यानपूर्वक देखने से पता चल सकता है कि जब तक ग्रह उत्तरायण रहता है

अर्थात् सायन मकर राशि के आदि विन्दु उ से सायन कर्कराशि के आदि विन्दु द तक कहीं रहता है तब तक उसका कदम्बप्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्त से बायें रहता है अर्थात् कदम्ब प्रोतवृत्त का तल ध्रुवप्रोतवृत्त के तल से ऊपर रहता है जैसा कि चित्र ३६ में दिखलाया गया है। परन्तु जब तक ग्रह दक्षिणायन रहता है अर्थात् सायन कर्क राशि के आदि विन्दु द से सायन मकर राशि के आदि विन्दु उ तक कहीं रहता है तब तक उसका कदम्ब प्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्त से दाहने रहता है अर्थात् उसका कदम्बप्रोतवृत्त का तल ध्रुवप्रोतवृत्त के तल से नीचे रहता है जैसा कि चित्र १०६ में दिखलाया गया है।

चित्र ३६ से प्रकट है कि जब ग ग्रह उत्तरायण और इसका शर उत्तर है तब इसका ध्रुवप्रोतवृत्त प विन्दु से पच्छिम हैं जहाँ इसका कदम्बप्रोतवृत्त, क्रान्तिवृत्त को काटता है। परन्तु यदि उत्तरायण ग्रह का शर दक्षिण, मानलो च पर हो तो स्पष्ट है कि इसका ध्रुवप्रोतवृत्त वही रहेगा जो ग का है परन्तु कदम्बप्रोत वृत्त च क (जो चित्र में नहीं दिखलाया गया) क्रान्तिवृत्त को उससे पच्छिम काटेगा अर्थात् च ग्रह का क्रान्तिवृत्त पर जो स्थान होगा उससे आगे पूर्व में ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को काटेगा। अर्थात् पहली दशा में ग्रह के भोगांश से घटाने पर और दूसरी दशा में जोड़ने पर ध्रुवप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्त के सम्पात का स्थान ज्ञात होगा।

इसी प्रकार चित्र १०६ से प्रकट है कि जब ग और घ ग्रह दक्षिणायन हैं इनके कदम्बप्रोतवृत्त से दाहिने हैं। ऐसी दशा में उत्तर शर वाले ग ग्रह का ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को फ स्थान पर काटता है जो य से आगे पूर्व में है इसलिए ब के भोगांश में य फ जोड़ने से फ का स्थान ज्ञात होगा। परन्तु दक्षिण शर वाले घ का ध्रुवप्रोत-वृत्त क्रान्तिवृत्त के च स्थान पर काटता है जो य से पीछे पच्छिम में है इसलिए ब के भोगांश में च य ग घटाने पर च का स्थान ज्ञात होगा।

यह प्रकट ही है कि जब ग्रह उत्तरायण रहता है तब इसके भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आता है उसकी क्रान्ति सदैव उत्तर रहती है क्योंकि जब ग्रह सायन मकर से आगे सायन कर्क तक कहीं रहता है तब इससे ९० अंश आगे का भोगांश सायन मेष से आगे और सायन तुला के पहले रहता है जिसकी क्रान्ति उत्तर होती है। इसी प्रकार जब ग्रह दणिणायन रहता है तब इसके भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आता है उसकी क्रान्ति सदैव दक्षिण होती है। इसलिए जो बात ऊपर उत्तरायण और दक्षिणायन के सम्बन्ध में कही गयी है वही उत्तर क्रान्ति और दक्षिण क्रान्ति के सम्बन्ध में भी लागू होती है जैसा कि १० वें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है।

१२ वें श्लोक की उपपत्ति—आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करने पर ग्रहों के जो भोगांश आते हैं इनका अंतर जानकर यह देखना चाहिए कि दोनों ग्रहों का यह अंतर कब शून्य होता है। जिस समय यह अंतर शून्य होता है उसी समय दोनों ग्रहों की युति समप्रोतवृत्त पर होती है। इस समय यदि दोनों ग्रहों के शर एक ही दिशा में हों अर्थात् दोनों उत्तर या दोनों दक्षिण हो तो दोनों का अन्तर निकालने पर और यदि दोनों ग्रहों के शरों की दिशाएँ भिन्न हों अर्थात् एक का उत्तर और दूसरे का दक्षिण हो तो दोनों शरों का योग करने पर जो आता है उतने ही अन्दर पर दोनों ग्रह समप्रोतवृत्त पर देख पड़ते हैं।

इस प्रकार सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार आक्ष और आयन दृक्कर्म का संस्कार करने की रीति की उपपत्ति सिद्ध होती है जिससे यह पता तो चलता ही है कि यह रीति स्थूल है क्योंकि कई कल्पनाओं से यह सिद्ध की गयी है।

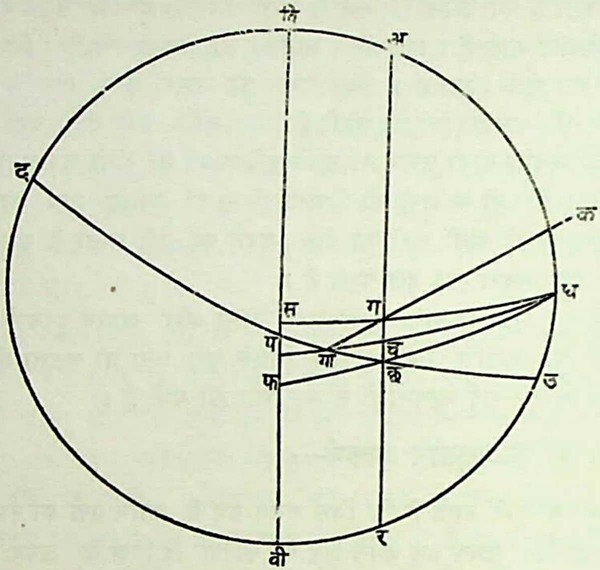
भास्कराचार्य जी के अनुसार दृक्कर्म—

भास्कराचार्यजी कहते हैं कि जिस समय ग्रह के क्रान्तिवृत्त का स्थान क्षितिज में लग्न होता है उस समय ग्रह अपने शर के कारण क्षितिज के ऊपर रहता है या नीचे रहता है। जिस समय ग्रह क्षितिज के ऊपर रहता है उस समय वह अपने क्रान्तिवृत्त के स्थान से पहले ही उदय हो जाता है और जिस समय नीचे रहता है उस समय वह पीछे उदय होता है। कितना पहले या पीछे उदय होता है यह दृक्कर्म से जाना जाता है। इस दृक्कर्म के २ खंड होते हैं। एक खंड ग्रह के आयन-वलन पर आश्रित और दूसरा आक्षवलन पर आश्रित रहता है। जो आयनवलन पर आश्रित होता है उसको आयन दृक्कर्म और जो आक्षवलन पर आश्रित रहता है उसको आक्षदृक्कर्म कहते हैं।

चित्र १०८ में ग ग्रह का शर उत्तर है। ग का अहोरात्रवृत्त अ ग च छ रा क्षितिज को छ विन्दु पर काटता है इसलिए जिस समय ग के क्रान्तिवृत्त का स्थान गा क्षितिज पर है उस समय ग के अहोरात्रवृत्त का छ विन्दु क्षितिज पर है इसलिए ग का उदय गा से उतना पहले हुआ है जितनी देर में ग के अहोरात्र-वृत्त का ग छ खंड क्षितिज के ऊपर आया है। परन्तु ग छ = ग च + च छ जिनमें से प्रत्येक का मान इस प्रकार जाना जाता है :

ग च की गणना—

गोलीय समकोण त्रिभुज ग गा च में ग च गा कोण समकोण है क्योंकि गा का ध्रुवप्रोतवृत्त ग के अहोरात्रवृत्त को च स्थान पर काटता है इसलिए



चित्र १०८

उ छ गा द=पूर्व क्षितिजवृत्त

उ=उत्तर विन्दु

ध =उत्तर ध्रुव

क=कदम्ब

उ ध अ वि ह=यामोत्तरवृत्त

ग=ग्रह

गा=क्रान्तिवृत्त पर ग ग्रह का स्थान, इस समय यह पूर्व क्षितिज पर लग्न भी है। क्रान्तिवृत्त इसलिए नहीं दिखलाया गया कि चित्र सरल रहे।

अ ग च छ र=ग का अहोरात्र वृत्त

वि स प फ वी=विषुवद् वृत्त; क ग गा=ग का कदम्बप्रोतवृत्त

ध च गा प=गा का ध्रुवप्रोतवृत्त

ध छ फ=छ का ध्रुवप्रोतवृत्त,

ग च=आयनदृक्कर्म; च छ=आक्षदृक्कर्म; ग गा=ग ग्रह का शर या विक्षेप

गा च=ग ग्रह का स्पष्ट शर (देखो गणिताध्याय ग्रहच्छायाधिकार श्लोक)

$\angle$ ग गा च=गा का आयनवलन

$\angle$ उ गा ध=गा का आक्षवलन

$$\frac{\text{ज्या ग च}}{\text{ज्या ग गा}} = \frac{\text{ज्या} \angle \text{ग गा च}}{\text{ज्या } ९०} = \frac{\text{आयनवलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\therefore \text{ज्या ग च} = \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \qquad (१)$$

परन्तु ग च अहोरात्रवृत्त का खंड है और इसके सामने का कोण ध्रुव पर ग ध च के समान है जो विषुवद्वृत्त के स प खंड के समान है। इसलिए यह जानने के लिए कि ग च खंड कितनी देर में उदय होता है हमें स प खंड का जानना आवश्यक है जो इस अनुपात से जाना जाता है—

$$\frac{\text{ज्या ग च}}{\text{ज्या स प}} = \frac{\text{ज्या ग ध}}{\text{ज्या ध स}} = \frac{\text{ज्या ग ध}}{\text{त्रिज्या}} \qquad (२)$$

परन्तु ग ध = ध स − ग स = ९०° − ग की क्रान्ति

$\therefore$ ज्या ग ध = ग की क्रान्ति कोटिज्या

$$\therefore \text{ज्या स प} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{ज्या ग च}}{\text{ज्या ग ध}}$$

$$= \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ग की क्रान्ति कोटिज्या}} \times \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{ग की क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$\therefore \text{आयनदृक्कर्म} = \frac{\text{शर ज्या} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

इस क्रिया से स प का जो मान आवेगा वह कलाओं में होगा यदि ज्याओं और कोटिज्याओं की गणना भारतीय रीति से की जायगी। इसका अर्थ यह हुआ कि केवल आयनवलन के कारण ग का उदयकाल गा के उदयकाल से स प असुओं के समान आगे होगा। यदि यह जानना हो कि इतनी देर में क्रान्तिवृत्त का कौन सा खंड उदय होगा तो इसको १८०० से गुणा करके जिस राशि में ग्रह हो उसके लंकोदयासुओं से भाग देना चाहिए क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि जब राशि के लंकोदयासुओं में राशि का ३० अंश या १८०० कला उदय होता है तब जितने समय में स प का उदय होता है उतने समय में राशि का कितना खंड उदय होगा। यही ग्रहच्छायाधिकार के श्लोक ४ का सार है।

च छ की गणना

समकोण गोलीय त्रिभुज च गा छ में गा च छ कोण समकोण है क्योंकि गा

च ध्रुवप्रोतवृत का खंड है, च छ अहोरात्रवृत का खंड है जो ध्रुवप्रोतवृत्त से समकोण पर होता है। गा च को भास्कराचार्यजी ने ग का स्पष्ट शर माना है और भेद दिखलाने के लिए ग गा को मध्यम शर माना है। कोण च गा छ=कोण ध गा उ= आक्षवलन। यदि गा विषवद्वृत्त के पास हो तो कोण ध गा उ अक्षांश के समान माना जा सकता है। ऐसी दशा में और यदि च गा छ त्रिभुज समतल-त्रिभुज मान लिया जाय क्योंकि ग्रह का स्पष्ट शर गा च साधारणत: बहुत छोटा होता है तब च छ गा कोण लम्बांश के समान माना जा सकता है क्योंकि ९०° – अक्षांश= लम्बांश। ऐसी दशा में चूंकि गोलीय त्रिभुज च गा छ में

$$\frac{\text{ज्या च छ}}{\text{ज्या}\angle\text{च गा छ}} = \frac{\text{ज्या च गा}}{\text{ज्या च छ गा}}$$

$$\text{अथवा ज्या च छ} = \frac{\text{ज्या स्पष्ट शर} \times \text{ज्या आक्षवलन}}{\text{लम्ब ज्या}}$$

परन्तु च छ का मान विषवद्वृत्त के प फ खंड के समान है जो सजातीय त्रिभुज ध च छ और ध प फ से इस प्रकार जाना जाता है :—

$$\frac{\text{ज्या प फ}}{\text{ज्या च छ}} = \frac{\text{ज्या ध प}}{\text{ज्या ध च}} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ज्या (९०°} - \text{च प)}}$$

$$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ज्या (९०°} - \text{ग्रह की क्रान्ति)}} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$\therefore \text{ज्या प फ} = \frac{\text{ज्या च छ} \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या स्पष्ट शर} \times \text{ज्या आक्षवलन} \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या} \times \text{लम्ब ज्या}}$$

यही ग्रहच्छायाधिकार के ७वें श्लोक का अर्थ है। इस प्रकार प फ का जो मान कलाओं में आवेगा वही आक्षदृक्कर्म है।

आक्ष और आयन दृक्कर्म किस समय जोड़ना और किस समय घटाना चाहिए इसके लिए वही नियम हैं जो पहले सूर्य सिद्धान्त के सम्वन्ध में वतलाया गया है।

स्पष्ट शर को जानने की एक रीति जो कुछ स्थूल है भास्कराचार्यजी ने ग्रहच्छायाधिकार के तीसरे श्लोक में यों बतलायी है :—

ग्रह के भोगांश में तीन राशि जोड़ने से जो भोगांश आवे उसकी क्रान्ति की कोटिज्या को अर्थात् द्युज्या को मध्यम शर से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या से

भाग दे देना चाहिए। यह नियम चित्र १०८ के गोलीय समकोण त्रिभुज ग गा च से स्पष्ट है। क्योंकि ग्रह के भोगांश में ९०° जोड़ने से जो आता है उसकी क्रान्ति अयनवलन के समान होती है (देखो चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक २५) जो यहाँ ग गा च कोण के समान है इसलिए उसकी क्रान्ति-कोटिज्या अयनवलन-कोटिज्या के समान होगी। यदि गा ग च त्रिभुज समतल समकोण त्रिभुज मान लिया जाय तो

$\angle$गा ग च $= 90^\circ - \angle$ग गा च $= 90^\circ -$ आयनवलन

$$\therefore \frac{\text{ज्या ग गा}}{\text{ज्या}\angle\text{ग च गा}} = \frac{\text{ज्या गा च}}{\text{ज्या}\angle\text{गा ग च}} = \frac{\text{ज्या गा च}}{\text{ज्या } 90^\circ - \text{आयनवलन}}$$

$$\therefore \text{ज्या गा च} = \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{ज्या } (90^\circ - \text{आयनवलन})}{\text{ज्या } 90^\circ}$$

$$= \frac{\text{ज्या मध्यम शर} \times \text{ज्या } (90^\circ - \text{आयनवलन})}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{मध्यम शर ज्या} \times \text{अयनवलन कोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

ग्रहों के विम्बमान—

कुजार्किज्ञामरेज्यानां त्रिंशत्सार्धार्धवर्धिता।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्ष्यायां भृगोष्षष्टिरुदाहृतः ॥१३॥
चित्रतुःकर्णयोगाप्तास्ते द्विघ्नास्त्रिज्यया हताः।
स्फुटाः स्वकर्णास्तिथ्याप्ता भवेयुर्मानलिप्तिकाः ॥१४॥

अनुवाद—(१३) मंगल, शनि, बुध, गुरु और शुक्र के विम्बों के व्यास चन्द्रकक्षा में क्रमानुसार ३०, ३७॥, ४५, ५२॥ और ६० योजन हैं। (१४) किसी ग्रह के विम्ब का स्पष्ट व्यास जानने के लिए उस ग्रह के ऊपर लिखे हुए व्यास के दुगुने को त्रिज्या (३४३८) से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या और उस ग्रह के चतुर्थ शीघ्रकर्ण के योग से भाग देने से जो लब्धि आती है वही विम्ब का स्पष्ट व्यास होता है। यदि इसको १५ से भाग दे दिया जाय तो कलाओं में विम्ब का परिमाण मालूम हो जाता है।

विज्ञान भाष्य—१३वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि ग्रहों के विम्बों के व्यास चन्द्रकक्षा में क्या हैं। इसके आधार पर चन्द्रग्रहणाधिकार के श्लोक १-३ के अनुसार यह विलोम रीति से जाना जा सकता है कि अपनी कक्षा में ग्रह के विम्ब का व्यास क्या है। परन्तु युति के सम्बन्ध में यह जानने की कोई आवश्यकता नहीं होती। यहाँ तो केवल यह जानना चाहिए कि युतिकाल में ग्रहविम्ब का कलात्मक

मान क्या होता है। परन्तु किसी पिण्ड का कोणात्मक या कलात्मक मान उसकी दूरी पर अवलंबित होता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८५) और पृथ्वी से ग्रह की दूरी एक सी नहीं रहती, घटा-बढ़ा करती है इसलिए पहले यह जानना आवश्यक है कि ग्रहबिम्ब का मध्यम कोणात्मक मान क्या है। यहाँ चन्द्रमा की कक्षा में ग्रहबिम्ब का जो परिमाण योजनों में समझा गया था वही दिया गया है। साथ ही साथ अगले श्लोकों में यह भी बतलाया गया है कि अभीष्ट काल में ग्रहबिम्ब का जो स्पष्टमान योजनों में आवे उसको १५ से भाग देने पर उसका स्पष्ट कलात्मक मान आ जाता है। चन्द्रग्रहणाधिकार के पृष्ठ ४५२ पर यह बतलाया गया है कि चन्द्रकक्षा का १५ योजन १ कला के समान कैसे होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि चन्द्रकक्षा के बिम्बमानों को १५ से भाग देने पर इसका परिमाण कला में क्यों आ जाता है। इस प्रकार चन्द्रकक्षा में ग्रहों के बिम्बों का कलात्मक मान नीचे लिखे अनुसार हुआ :—

मंगल का बिम्ब	= ३०	योजन	= ३०	÷	१५=२	कला
शनि ,,	= ३७।।	योजन	= ३७।।	÷	१५=२।।	कला
बुध ,,	= ४५	योजन	= ४५	÷	१५=३	कला
गुरु ,,	= ५२।।	योजन	= ५२।।	÷	१५=३।।	कला
शुक्र ,,	= ६०	योजन	= ६०	÷	१५=४	कला

इनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य मंगल के बिम्ब को सबसे छोटा समझते थे। इससे बड़ा शनि का बिम्ब समझा था, इत्यादि। परन्तु स्पष्टाधिकार के ९६ पृष्ठ की सारणी से प्रकट होता है कि यदि सब ग्रह द्रष्टा से उतनी दूर हों जितनी दूर सूर्य पृथ्वी से है तो बुध के बिम्ब का व्यास सबसे छोटा अर्थात् ६·६८ विकला है। मंगल का इससे बड़ा अर्थात् ९·३६ विकला है। इसके बाद शुक्र, शनि और गुरु के बिम्बों के व्यास क्रमानुसार १६·८०, १६६·५ और १९४·७२ विकला हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि हमारे आचार्यों ने स्थूल यन्त्रों के द्वारा बिम्बों के जो परिमाण निकाले थे वे अत्यन्त अशुद्ध हैं जैसा कि म० म० सुधाकर द्विवेदी जी भी ने लिखा[1] है।

---

१. सूक्ष्म दूरदर्शक यन्त्रादिना बुध शुक्रयोरपि शशिवत् सितवृद्धि हानित्वं शृङ्गोन्नतिश्चोपलभ्यते। आचार्य समये तादृश यन्त्राणामभावाद् दृष्ट्या शृङ्गोन्नतिः सितासित बिम्बमितिश्च नोपलब्धाऽतोऽनुमानेन रबेरासन्नेत्वादित्यादि कल्पना न समीचीनेति सर्वं स्फुटम्।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त ग्रहयुत्यधिकार श्लोक ३-४ की टीका।

अब यह प्रकट है कि जब १३वें श्लोक में दिये हुए बिम्बों के परिमाण ही अशुद्ध हैं तब इन्हीं के आधार पर अगले श्लोक के अनुसार स्पष्ट बिम्ब के परिमाण ठीक-ठीक कैसे जाने जा सकते हैं।

अब यह विचार किया जायगा कि अगला श्लोक कहाँ तक शुद्ध है। इस श्लोक की प्रथम पंक्ति का सार यह है :—

$$\text{स्पष्ट विम्ब} = \frac{\text{मध्यम विम्ब} \times २ \times \text{त्रिज्या}}{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}$$

$$\text{अथवा स्पष्ट विम्ब} = \frac{\text{मध्य विम्ब} \times \text{त्रिज्या}}{\frac{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२}}$$

इसको त्रैराशिक के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

$$\frac{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२} : \text{त्रिज्या} : : \text{मध्यविम्ब} : \text{स्पष्ट विम्ब}$$

नियम के इस रूप से सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य को यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि जब त्रिज्या की दूरी पर ग्रह बिम्ब अपने मध्यम मान के समान होता है तब इससे अधिक दूरी पर स्पष्ट विम्ब का मान कम होगा और कम दूरी पर स्पष्ट विम्ब का मान अधिक होगा जैसा कि स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८५ में दिखलाया गया है। परन्तु त्रिज्या को ३४३८ मानने से काम नहीं चल सकता। यदि त्रिज्या की जगह वह दूरी रखी जाय जो चन्द्रमा से पृथ्वी की दूरी है और $\frac{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२}$ की जगह वह दूरी रखी जाय जो इष्टकाल में पृथ्वी से इष्ट ग्रह की दूरी है तो यह अनुपात ठीक हो सकता है। कोई कोई आचार्य इस त्रैराशिक के पहले पद में त्रिज्या की जगह तृतीय कर्ण लेते हैं। परन्तु इससे भी उतनी शुद्धता नहीं आ सकती जैसी आनी चाहिये। पृथ्वी से किसी ग्रह की दूरी इष्टकाल में क्या होती है इसकी गणना करने के लिये पहले यह जानना होता है कि सूर्य से उस ग्रह की दूरी स्पष्टाधिकार के पृष्ठ १७९-८० में दिये हुए सूत्र के अनुसार क्या है। फिर उसी अधिकार के पृष्ठ १८३ में दिये हुए चित्र के अनुसार पृथ्वी से उस ग्रह की दूरी अर्थात् शीघ्र कर्ण जानना चाहिये। अब यदि ९६ पृष्ठ में दिये हुए मध्यविम्ब को पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी से गुणा करके इसी शीघ्र कर्ण से भाग दिया जाय तो ग्रह का स्पष्ट विम्ब शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है।

आचार्य केतकर की ज्योतिर्गणित के अनुसार पंचतारा ग्रहों के विम्बों के लघुतम और परम मान तथा लघुतम और परम लम्वन त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ ४१० में

ग्रह	स्पष्ट विम्ब		शीघ्र कर्ण	
	लघुतम	परम	परम	लघुतम
	विकला	विकला		
मंगल	४.४	२१·२	२५२४	५२४
बुध	४.८	१०·६	१३८७	६१३
गुरु	३१.६	४६·७	६२०३	४२०३
शुक्र	६·६	६०·०	१७२३	२७७
शनि	१५·८	१६·५	१०५३६	८५३६

* यह बड़े हर्ष की बात है कि आचार्य वेङ्कटेश बापू केतकर अभी जीवित हैं और अपने सुपुत्र के साथ बीजापुर में रहते हैं और पिता पुत्र दोनों ज्योतिष के अध्ययन में अभी तक लगे हुए हैं। मैंने भूल से आपके नाम के पहले पृष्ठ १८६ में आपको 'स्वर्गीय' लिख दिया था क्योंकि मैं समझता था कि आप स्वर्गीय हो गये होंगे। परन्तु श्रीमान् पदम एस० एम० गोडेज **Padam S. M. codrez** के पत्रों से मालूम हुआ कि आप अभी जीवित हैं। इस सूचना के लिए मैं इन महाशय का बड़ा कृतज्ञ हूँ। पूना के महाराष्ट्रीय पंचांगैक्य मंडल के १८८२ वि० के प्रथम अधिवेशन के वृत्तान्त से सिद्ध होता है कि आप वृद्ध होते हुए भी ज्योतिष संबंधी वाद विवादों में सम्मिलित होते हैं। लेखक

दिये गये हैं। उनसे यह प्रगट होता है कि विम्बों का परिमाण लम्बन के अनुसार बदलता है अर्थात् यदि लंबन अधिक होता है तो स्पष्ट विम्ब भी अधिक होता है और लंबन कम होता है। तो स्पष्ट बिंब कम होता है। परन्तु लंबन का परिमाण दूरी के विलोम अनुपात के अनुसार बदलता है अर्थात् जब दूरी अधिक हो जाती है तब लम्बन कम हो जाता है और जब दूरी कम हो जाती है तब लंबन अधिक हो जाता है (देखो पृष्ठ ३८५)।

चित्र ३४ (देखो पृष्ठ १८३) से प्रकट हैं कि जिस समय ग्रह का शीघ्र केन्द्र शून्य होता है उस समय पृथ्वी से ग्रह की दूरी अत्यन्त अधिक होती है अर्थात् उस समय ग्रह का शीघ्र कर्ण अत्यन्त अधिक होता है तथा यह पृथ्वी से सूर्य की दूरी और सूर्य से ग्रह की दूरी के योग के समान होता है। परन्तु जिस समय ग्रह का शीघ्र केन्द्र १८० अंश होता है उस समय पृथ्वी से ग्रह की दूरी अत्यन्त कम होती है तथा यह पृथ्वी से सूर्य की दूरी और सूर्य से ग्रह की दूरी के अंतर के समान होती है। ग्रह के शीघ्रकर्ण और विम्बों का संबंध पिछले पृष्ठ की सारणी से अच्छी तरह प्रकट होता है।

यहाँ पृथ्वी से सूर्य की दूरी अथवा सूर्य का शीघ्रकर्ण १००० माना गया है।

युतिकाल में ग्रहों को बेध करने की गति—

छायां भूमौ विपर्यस्ते स शङ्क्वग्रे प्रदर्शयेत्।
ग्रहः स्वदर्पणान्तस्थ शंक्वग्रे सम्प्रदृश्यते ।। १५।।
पचहस्तोच्छ्रितौ शङ्कु यथा दिग्भागसंस्थितौ।
ग्रहान्तरकलाक्षिप्तौ अधोहस्तनिखातितौ ।।१६।।
कर्णं सूत्रे तथा दद्याच्छायाग्राच्छङ्कुमूर्धगे।
छायाकर्णाग्रसंयोगे संस्थितस्य प्रदर्शयेत् ।।१७।।
स्वशङ्कुमूर्धगौ व्योम्नि ग्रहौ दृक्तुल्यतामितौ।

अनुवाद—(१५) समतल भूमि पर जिस पर शंकु गाड़कर छाया नापी जाती है, शंकु की जिस दिशा में ग्रह हो उसकी विपरीत दिशा में, ग्रह की युतिकालिक छाया के अग्र में रखे हुए दर्पण में ग्रह को दिखलाना चाहिए। ऐसे दर्पण में ग्रह शंकु की नोक के साथ मिला हुआ देख पड़ता है। (१६) पाँच हाथ के ऊँचे दो शंकुओं को उन दिशाओं में गाड़े जिनमें युतिकाल के ग्रह हों। इन शंकुओं का परस्पर यामोत्तर अंतर उतना ही होना चाहिए जितना उन ग्रहों का अन्तर हो। इनको दृढ़तापूर्वक खड़ा रखने के लिए एक-एक हाथ पृथ्वी के नीचे गड्ढा खोदकर गाड़ना

चाहिए। (१७) ग्रह की युतिकालिक छाया के अग्रविन्दु से शंकु की चोटी तक छाया कर्ण बतलाने वाला एक डोरा सीधा बाँधे। देखने वाले को चाहिये कि अपनी आँख छाया कर्ण के इसी सूत्र पर रखे। (१८) ऐसा करने से ग्रह आकाश में शंकु की चोटी से लगा हुआ देख पड़ेगा।

विज्ञान भाष्य—यह साढ़े तीन श्लोक बड़े महत्व के हैं। इनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य ज्योतिष की सूक्ष्म गणना इसीलिए करते थे कि इससे ग्रहों का प्रत्यक्ष स्थान वही आवे जो वेध से देख पड़ता है क्योंकि जव तक ग्रहों की गणना विलकुल शुद्ध नहीं होगी तव तक हम उनको इस प्रकार देख ही नहीं सकते जैसा कि इन श्लोकों में बतलाया गया है। इससे एक बात और भी ज्ञात होती है कि हमारे आचार्यों को प्रकाश के परावर्तन का नियम भी ज्ञात था।

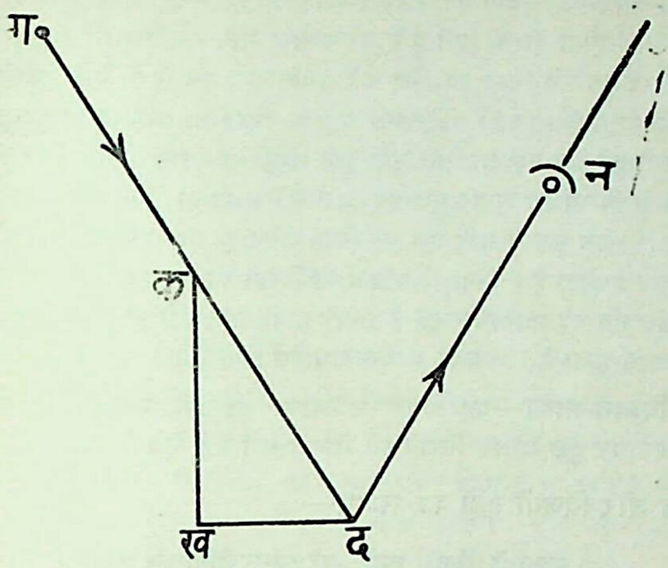
यहाँ ग्रहों की छाया की गणना करने के लिए त्रिप्रश्नाधिकार में बतलायी हुई रीति के अनुसार युतिकालिक ग्रहों का नतकाल उनके भोगांश, क्रान्ति और चर से पृष्ठ ३३१ में बतलायी गयी रीति के अनुसार जानना चाहिए। नतकाल जान लेने पर पृष्ठ २६२ के समीकरण (ख) और (ग) के अनुसार ग्रहों के नतांश जानना चाहिए। नतांश से पृष्ठ २७३ के समीकरण (ख) के अनुसार दिगंश अथवा अग्रा जानना आवश्यक है। नतांश से छाया जानने के लिए नतांश की स्पर्श-रेखा को शंकु के परिमाण से गुणा कर देना चाहिए। यहाँ १५वें श्लोक के लिए यदि शंकु का परिमाण १२ अंगुल का हो तो कुछ हर्ज नहीं परन्तु १६वें श्लोक के लिए शंकु का परिणाम ४ हाथ का होना चाहिये। ऐसा होने से द्रष्टा खड़ा होकर ग्रहों का वेध सुगमतापूर्वक कर सकता है।

१५वें श्लोक का सार चित्र द्वारा इसे प्रकार प्रकट किया जा सकता है :—

द्रष्टा का नेत्र द न रेखा के किसी विन्दु पर होने से दर्पण में ग्रह ग और शंकु की चोटी क एक साथ मिले हुए देख पड़ेंगे।

यदि क ख शंकु चार हाथ का हो तो ख द छाया के अग्रविन्दु द से शंकु की चोटी क तक जो सूत्र क द ताना जायगा उस पर किसी जगह द्रष्टा का नेत्र हो तब भी ग्रह ग शंकु की चोटी क से मिला हुआ देख पड़ेगा। यही १६, १७ और १८वें श्लोक के पूर्वार्ध का सार है।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि आजकल यह वेध तभी ठीक-ठीक आ सकता है जव ग्रह का नतांश दृगगणित के अनुसार शुद्ध-शुद्ध जाना जाय। इस काम के लिए हमारे सिद्धान्त ग्रन्थों में नवीन वेधों के अनुसार संशोधन करना अत्यन्त आवश्यक है।



चित्र १०७

ग=युतिकालिक ग्रह का स्थान

क ख=समतल भूमि में गड़ा हुआ शंकु

द=ख द छाया का अग्रविन्दु जहाँ दर्पण रखा जायगा

न=द्रष्टा का नेत्र

इन श्लोकों से यह भी प्रकट होता है कि ज्योतिष-विज्ञान का अध्ययन ग्रन्थों के आधार पर ही नहीं होना चाहिए वरन् वेध भी करना चाहिए। इसलिए सिद्ध है कि ज्योतिष का पठन-पाठन उचित रीति से तभी सम्भव है जब ज्योतिष विद्यालय के साथ अच्छी वेधशाला भी हो। ऐसी वेधशाला में शंकु इत्यादि के स्थान में आजकल के सूक्ष्म यंत्र दूरदर्शक इत्यादि हों तभी वेधों में शुद्धता आ सकती है और सिद्धान्त ग्रन्थों में उचित संशोधन करके उनका जीर्णोद्धार भी हो सकता है।

पाँच प्रकार की युतियों के लक्षण—

उल्लेखं तारकास्पर्शे भेदे भेदः प्रकीर्तितः ।१८।।
आरादंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्पम् ।
अंशादूनेऽपसव्याख्यं युद्धमेकोऽत्र चेदणुः ।।१९।।
समागमस्स्यादधिके भवतश्चेद्बलाधिकौ ।

अनुवाद—(१८) का उत्तरार्ध--यदि युतिकाल में दोनों ग्रहों के बिम्बों का केवल स्पर्श होता हो तो ऐसी युति को उल्लेख नामक युति कहते हैं। परन्तु यदि एक का बिम्ब दूसरे के बिम्ब को भेद करे अर्थात् कुछ ढक ले तो ऐसी युति को भेद नामक युति कहते हैं। (१९) यदि दोनों ग्रहों के बिम्ब तो कुछ दूर हों परन्तु उनकी किरणें मिली हुई देख पड़ें तो ऐसी युति को अंशुविमर्द नामक युद्ध कहते हैं। यदि दोनों ग्रहों के बिम्बों का अन्तर एक-एक अंश से कम हो तो ऐसी युति को अपसव्य युद्ध कहते हैं। इस युद्ध में यदि एक का बिम्ब छोटा हो तो अपसव्य व्यक्त होता है अन्यथा अव्यक्त होता है। (२०) यदि दोनों बिम्बों का अन्तर एक अंश से अधिक हो तो ऐसी युति को समागम कहते हैं। यदि दोनों ग्रह बली हों अर्थात् स्थूल हों तो व्यक्त समागम होता है। अन्यथा अव्यक्त समागम होता है।

विज्ञान-भाष्य—यहाँ केवल परिभाषा बतलायी गयी है जो स्पष्ट है। इसलिए इस पर कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

पराजित और विजयी ग्रहों का लक्षण—

अपसव्ये जितो युद्धे दूरेऽप्यणुरदीप्तिमान् ॥२०॥
रूक्षो विवर्णो विध्वस्तो मलिनो दक्षिणाश्रितः।
उदक्स्थो दीप्तिमान्स्थूलो जयी याम्येऽपि यो बली ॥२१॥

अनुवाद—(२०) अपसव्य नामक युद्ध में जिस ग्रह का बिम्ब ढक जाता है, छोटा और तेजहीन होता है, (२१) रूखा वर्णहीन या फीका होता है और दक्षिण की ओर होता है वह पराजित समझा जाता है। परन्तु जिस ग्रह का बिम्ब उत्तर की ओर होता है तेजवान और बड़ा होता है वह विजयी समझा जाता है। बली अर्थात् बड़ा और तेजवान ग्रह दक्षिण की ओर हो तब भी विजयी समझा जाता है।

विज्ञान-भाष्य—यह भी स्पष्ट है।

आसन्नावप्युभौ दीप्तौ भवतस्तौ समागमे।
स्वल्पौ द्वावपि विध्वस्तौ भवेतां कूटविग्रहे ॥२२॥

अनुवाद—(२२) यदि दोनों ग्रह पास होते हुए भी प्रभायुक्त हैं तो समागम नामक युद्ध होता है और यदि दोनों ग्रह छोटे और फीके हैं तो कूटविग्रह नामक युद्ध होता है।

उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशो जयी।
शशाङ्केनैवमेतेषां कुर्यात्संयोगसाधनम् ॥२३॥

अनुवाद—(२३) शुक्र चाहे उत्तर की ओर हो चाहे दक्षिण की ओर बहुधा विजयी होता है। इसी प्रकार चंद्रमा के साथ पाँचों ताराग्रहों की युति का साधन करना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—पांच तारा ग्रहों की लघुतम और परम विम्ब मानों की सारणी से यह प्रकट है कि शुक्र ग्रह का लघुतम विम्ब मंगल और बुध के लघुतम विम्बों से वड़ा है इसलिए इनकी युक्ति के समय तो शुक्र ही अधिक दीप्तिमान और स्थूल होने से विजयी होता है। जिस समय मंगल का विम्ब परम होता है उस समम यह सूर्य से १८० अंश आगे होता है। ऐसी दशा में शुक्र के साथ इसकी युति हो ही नहीं सकती; शुक्र और मंगल की युति तभी हो सकती है जब मंगल भी सूर्य के पास रहे। ऐसी दशा में मंगल का विम्ब शुक्र के विम्ब से सदैव छोटा रहेगा। इसलिए मंगल और बुध से शुक्र सदैव अधिक दीप्तिमान और विजयी होता है। हाँ, गुरु या शनि के साथ शुक्र की जब युति होती है तब शुक्र पूर्व में अस्त होने के पहले और पच्छिम में उदय होने पर कुछ समय तक इनसे छोटा होता है। इसलिए यह शनि या गुरु से पराजित कहा जा सकता है परन्तु ऐसी अवस्था बहुत कम होती है। इसीलिए इस श्लोक में कहा गया है कि शुक्र प्रायः विजयी होता है।

भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता।
स्वमार्गगाः प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमाश्रिताः ।।२४।।

अनुवाद—(२५) लोगों के शुभाशुभ फल के लिए ग्रहों के युद्ध समागम इत्यादि की कल्पना की गयी है। यथार्थ में ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण करते हैं और एक दूसरे से बहुत दूर हैं परन्तु परस्पर आश्रित अथवा बहुत निकट देख पड़ते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक में आचार्य ने फलित ज्योतिष के सम्बन्ध में कुछ संकेत किया है परन्तु इस पर अच्छी तरह विचार नहीं किया है कि किस प्रकार के युद्ध या समागम से कैसा फल होता है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि यह सिद्धान्त ज्योतिप का ग्रन्थ है इसलिए इसमें विस्तार के साथ फलित ज्योतिष की चर्चा करने के लिए स्थान नहीं है।

इस प्रकार ग्रहयुत्यधिकार नामक सातवें अधिकार का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

अष्टम अध्याय

नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

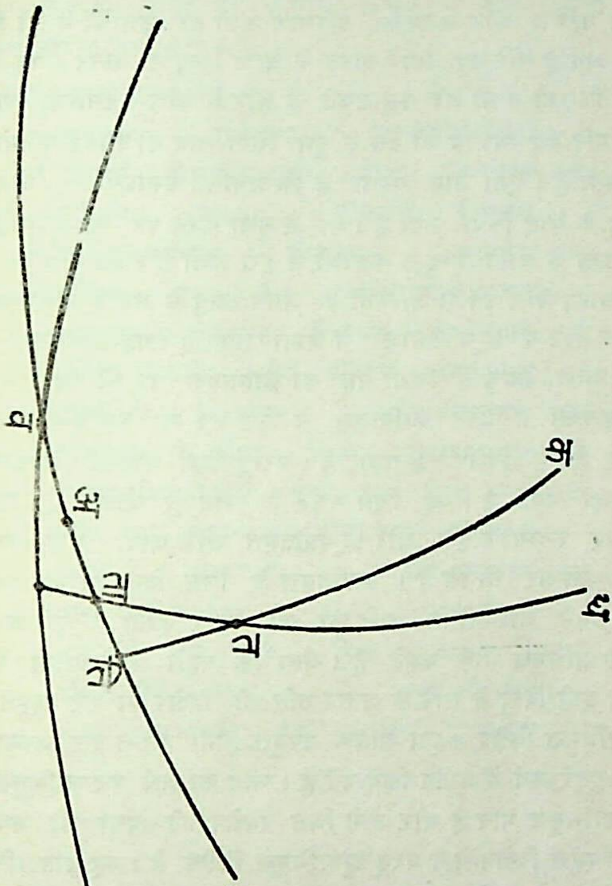
[श्लोक १—नक्षत्रों के भोग से उनके ध्रुव कैसे जाने जाते हैं। श्लोक २-६- नक्षत्रों के भोग और विक्षेपों के मान। श्लोक १०, ११ और १२ का पूर्वार्ध—अगस्त्य, मृगव्याध, अग्नि और ब्रह्म-हृदय नामक तारों के भोग, ध्रुव और विक्षेप। श्लोक १२ का उत्तरार्ध—ध्रुव और विक्षेप को परीक्षा करने की रीति। श्लोक १३—रोहिणी-शकट भेद कब हो सकता है। श्लोक १४-१५—तारे के साथ ग्रह की युति का काल और स्थान जानने की रीति। श्लोक १६-१६—नक्षत्र पुंजों का कौन तारा योगतारा है। श्लोक २०-२१—प्रजापति, अपाम्वत्स और आप ताराओं के ध्रुव और विक्षेप।]

इस अधिकार में यह बतलाया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के मार्ग में कौन-कौन नक्षत्र पुंज पड़ते हैं, उनके स्थान कहाँ हैं और ग्रहों के साथ उनके मुख्य तारे अथवा योगतारे की युति का समय कैसे जाना जाता है। कुछ ऐसे तारों की भी चर्चा आ गयी है जो अत्यन्त प्रतिभावान होने के कारण प्राचीनकाल के साहित्य में विशेप स्थान रखते हैं, परन्तु जिनके साथ ग्रहों की युति नहीं होती। परन्तु ऐसे सब तारों या तारापुंजों की चर्चा यहाँ मालूम नहीं क्यों नहीं की गयी। मैं परिशिष्ट में ऐसे तारों या तारापुंजों की भी चर्चा करूँगा जो इस अधिकार में नहीं दिये गये हैं परन्तु प्राचीन साहित्य में आये हैं अथवा विशेष महत्व रखते हैं जैसे सप्तर्षि, काश्यप मंडल, इत्यादि। इन ताराओं के विषय में आजकल नवीन वेधों से जो कुछ मालूम हुआ है वह भी संक्षेप में वहीं दिया जायगा।

प्रोच्यते लिप्तिका भानां स्वभोगेन दशाहता:।
भवन्त्यतीतधिष्ण्यानां योगलिप्तायुता ध्रुवा: ॥१॥

अनुवाद—(१) अश्विनी आदि तरीकों के जो भोग आगे कहे जाते हैं उनको दस से गुणा करके गुणनफल को गत नक्षत्रों की भोग-कलाओं में जोड़ने से जो आता है वही उन तारों के ध्रुव हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक के पूर्वार्ध में जो स्वभोग शब्द आया है उसका



चित्र ११०

वक्रा=क्रान्तिवृत्त

व वि=विषुवद्वृत्त

व=वसन्त सम्पात

अ=अश्विनी का आदि विन्दु

त=तारे का स्थान

क=कदम्व

ध=ध्रुव

धतता=त तारे का ध्रुवप्रोतवृत्त

कतति=त तारे का कदम्वप्रोतवृत्त

अता=त का ध्रुवाभिमुख भोग या ध्रुव

तता=त का ध्रुवाभिमुख विक्षेप

अति=त का कदम्बाभिमुख भोग अथवा भोग

तति=त का कदम्बाभिमुख विक्षेप अथवा विक्षेप

अर्थ भोगांश नहीं है और न इसका परिमाण अंशों या कलाओं में ही है। तारे के स्वभोग का अर्थ है तारे का अपने नक्षत्र के आदि विन्दु से अन्तर। यह अन्तर ऐसी इकाई में है जिसको न तो अंश कह सकते हैं और न कला। इसीलिए यह बतलाया गया है कि यदि इस स्वभोग को दस से गुणा किया जाय तो इसका परिमाण कलाओं में मालूम होता है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रचलित इकाइयों से भिन्न इकाई का प्रयोग संक्षेप के लिए किया गया है। दस से गुणा करने पर जो आता है वही तारे की अपने नक्षत्र के आदि बिन्दु से कलाओं में दूरी होती है। इस दूरी को गत नक्षत्रों की भोग-कलाओं में जोड़ने से अश्विनी के आदि बिन्दु से अर्थात् राशि-चक्र के आदि विन्दु से उक्त तारे का ध्रुव कलाओं में जाना जाता है। पहले बतलाया गया है कि अश्विनी के आदि विन्दु से किसी ग्रह का क्रान्तिवृत्त पर जो अन्तर होता है वह भोगांश कहलाता है और क्रान्तिवृत्त से उस ग्रह का कदम्ब-प्रोतवृत्त पर जो अन्तर होता है वह विक्षेप कहलाता है। परन्तु यहाँ भोगांश न कहकर ध्रुवांश या ध्रुव कहा गया है। यह चित्र ११० से स्पष्ट हो जाता है। यदि त तारे से जाते हुए कदम्बप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त खींचे जायँ तो ये क्रान्तिवृत्त पर दो भिन्न विन्दुओं पर मिलते हैं। क्रान्तिवृत्त के जिस विन्दु ति पर कदम्बप्रोतवृत्त मिलता है उससे अश्विनी के आदि का जो अन्तर होता है उसे तारे का भोग अथवा कदम्वाभिमुख भोग कहते हैं। जैसा कि पहले के अध्यायों में बतलाया गया है और इसी विन्दु से तारे के अन्तर तति को विक्षेप या शर कहते हैं। जिसे यहाँ कदम्वाभिमुख विक्षेप कहना अधिक उपयुक्त होगा परन्तु इस अध्याय में भोग और विक्षेप दूसरे अर्थ में प्रयोग किये गये हैं। भोग का अर्थ कदम्वाभिमुख भोग नहीं है वरन् ध्रुवाभिमुख भोग है और आगे जिस विक्षेप की चर्चा की गयी है उसका अर्थ कदम्बाभिमुख विक्षेप नहीं वरन् ध्रुवाभिमुख विक्षेप है। यह बात चित्र के नीचे जो विवरण दिया है उससे और भी स्पष्ट हो जाती है। एक ही पारिभाषिक शब्द से दो भिन्न अर्थ प्रकट करने में भ्रम हो जाता है इसलिये इसको अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिये।

ग्रहयुत्यधिकार में यह बतलाया गया है कि ग्रहों के भोगों और विक्षेपों में आयन दृक्कर्म और आक्षदृक्कर्म दो संस्कार करने पड़ते हैं। ग्रहों के भोग में आयन दृक्कर्म का संस्कार करने से जो आता है वही ग्रह का ध्रुवाभिमुख भोग अथवा ध्रुव होता है। इसलिए जब इस अध्याय में ग्रहों का ध्रुवाभिमुख भोग ही लिखा गया है, तब नक्षत्रों के साथ आयनदृक्कर्म की आवश्यकता न पड़ेगी, केवल आक्षदृक्कर्म की आवश्यकता पड़ेगी जैसा कि इसी अध्याय के १४वें श्लोक में बतलाया गया है। इस

प्रकार यह प्रगट है कि तारों का ध्रुवांश लिखने में यही सुभीता है कि इसमें आयनदृक्कर्म नहीं करना पड़ता ।

तारों के स्वभोग और विक्षेप—

अष्टार्णवा: शून्यकृता: पञ्चषष्टिर्नगेषव: ।
अष्टार्था गोऽब्धयोऽष्टागा षडगा मनवस्तथा ॥२॥
कृतेषवो युगरसा: शून्यबाणा वियद्रसा ।
खवेदास्सागरनगा अष्टागा: सागरर्तव: ॥३॥
नवोऽथ रसा वेदा वैश्वमाप्याधंभोगगम् ।
आप्यस्यान्तेऽभिजित्तारा वैश्वान्ते श्रवणस्थित: ॥४॥
त्रिचतु: पादयो: सन्धौ श्रविष्ठा श्रवणस्य तु ।
स्वभोगतो वियन्नागा: षट्कृतिर्यमलाश्विन: ॥५॥
रन्ध्राद्रय: क्रमादेषां विक्षेपा: स्वादपक्रमात् ।
दिङ्मासविषयास्सौम्ये याम्ये पञ्च दिशो भवा: ॥६॥
सौम्ये रसा: खं याम्येऽगा: सौम्ये खार्का स्त्रयोदश ।
दक्षिणे रुद्रयमला: सप्तत्रिंशत्तथोत्तरे ॥७॥
याम्येऽध्यर्ध त्रिकृता नव सार्धशरेषव: ।
उत्तरस्यां तथा षष्टि: त्रिंशत्षट्त्रिंषदेव हि ॥८॥
दक्षिणेऽतोर्धभागस्तु चतुर्विंशतिरुत्तरे ।
भागा: शड्विंशति: खञ्च दस्रादीनां यथाक्रमम् ॥९॥

अनुवाद—अश्विनी से लेकर पूर्वाषाढ़ तक के योग-तारों के स्वभोग क्रम से ४८, ४०, ६५, ५७, ५८, ४, ७८, ७६, १४, ५४, ६४, ५०, ६०, ४०, ७४; ७८, ६४, १४, ६, ४ हैं; उत्तराषाढ़ का योगतारा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के आधे पर, अभिजित के योग तारे का भोग पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के अंत में, श्रवण का योग-तारा उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अन्त में, धनिष्ठा का योग-तारा श्रवण नक्षत्र के तीसरे और चौथे चरणों की सन्धि में अर्थात् तीसरे चरण के अंत में हैं । शतभिषक् पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा भाद्र पद, और रेवती के योग तारों के स्वभोग क्रम के ८०, ३६, २२ और ७९ हैं । क्रान्तिवृत्त से इन अश्विन्यादि योग-तारों के विक्षेप क्रम से १२, १२, ५; उत्तर की ओर; ५, १०, ९ दक्षिण की ओर; ६, ० उत्तर की ओर; ७ दक्खिन की ओर; ०, १२, १३ उत्तर की ओर; ११, २ दक्षिण की ओर; ३७ उत्तर की ओर; १$\frac{१}{२}$, ३, ४, ९, ५$\frac{१}{२}$, ५ दक्षिण की ओर; ६०, ३०, ३६, उत्तर की ओर; $\frac{१}{२}$ दक्षिण की ओर; २४, २६, और ० अंश उत्तर की ओर हैं ।

विज्ञान भाष्य—प्रत्येक तारे के स्वभोग को पहले श्लोक के अनुसार १० से गुणा करने पर तारे की स्वभोग-कला आ जायगी। इसको गत नक्षत्रों की भाग-कक्षाओं में जोड़ देने से उस तारे का ध्रुव ज्ञात होगा। जैसे अश्विनी तारे का स्वभोग ४८ है, इसको १० से गुणा किया तो इसका स्वभोग ४८० कला हुआ। अश्विनी तारा अश्विनी नामक पहले ही नक्षत्र में है इसलिए गत नक्षत्र शून्य हुआ इसलिए ४८० कला अथवा ८ अंश अश्विनी तारे का ध्रुव हुआ। इसी प्रकार रोहिणी तारे का स्वभोग कलाओं में ५७० हुआ। रोहिणी के पहले तीन नक्षत्र अश्विनी, भरणी, कृत्तिका गत हैं इसलिए इनका भोग ३×८०० कला हुआ क्योंकि एक नक्षत्र ८०० कलाओं के समान होता है (देखो स्पष्टाधिकार श्लोक ६४)। इसलिए रोहिणी तारे का ध्रुव=५७०+३+८०० कला=५७०×२४०० कला =२९७० कला =४९ अंश ३० कला।

इसी प्रकार प्रत्येक तारे का ध्रुवांश जाना जा सकता है। उत्तराषाढ़, अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा तारों के स्वभोगों में विशेपता है, इसलिए इनके ध्रुवांश नीचे लिखे अनुसार वतलाये जाते हैं :—

उत्तराषाढ़ का तारा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के आधे पर अर्थात् पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के ४०० कला पर है। पूर्वाषाढ़ के पहले अश्विनी से मूल तक १९ नक्षत्र होते हैं जिनके भोग १९×८०० कला=१५२०० कला के समान है। इसलिए उत्तराषाढ़ का ध्रुव ४००+१५२०० कला=१५६०० कला=२६० अंश हुआ।

अभिजित तारा पूर्वाषाढ़ के अंत में वतलाया गया है, इसलिए इसका ध्रुव २६० अंश +४०० कला अर्थात् २६६ अंश ४० कला हुआ।

श्रवण तारे का ध्रुव उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अंत में है। एक नक्षत्र=१३ अंश २० कला। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र का अंत २६६ अंश ४० कला पर होता है, इसलिए उत्तराषाढ़ के अंत में श्रवण तारा का ध्रुव २८० अंश हुआ।

धनिष्ठा तारा श्रवण नक्षत्र के तीसरे चरण के अंत में हैं। नक्षत्र के तीन चरण ६०० कला। अथवा १० अंश के समान होते हैं। इसलिए धनिष्ठा का ध्रुव २८०+१०=२९० अंश हुआ।

विक्षेप तो अंशों में दिया ही हुआ है, इसलिए इस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

यहाँ यह वतला देना आवश्यक है कि ऊपर दिये हुए तारों के ध्रुव सब सिद्धान्त ग्रन्थों में समान नहीं हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं—(१) वेधों की

भिन्नता (२) अश्विनी के आदि विन्दु की स्थिति के निश्चय करने में भिन्नता (३) योग तारों के निश्चय में भिन्नता और (४) सम्पात विन्दु की गति। पहला कारण तो स्पष्ट है क्योंकि वेध यन्त्रों की स्थूलता के कारण वेध के फलों में भिन्नता स्वाभाविक है। दूसरा कारण भी विशेष महत्व का है। इससे यह जान पड़ता है कि अश्विनी के आदि बिन्दु के निश्चय में पुराने आचार्यों में भी मतभेद था जैसा कि आजकल है। परन्तु इस मतभिन्नता से आजकल संक्रान्तियों और मलमासों के निश्चय करने में बड़ी कठिनाई उपस्थित हो रही है जिससे अखिल भारतीय तिथियों और पर्वों की स्थिरता ही नहीं हो सकती। इस बात पर सब प्रान्तों के ज्योतिषाचार्यों में एकता हो जाय तो बड़ा भारी काम हो जायगा और इसके उद्योग में जो सज्जन तन मन धन लगावेंगे वे बड़े पुण्य के भागी होंगे। महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तों में इसके सम्वन्ध में वहुत दिनों से उद्योग हो रहा है परन्तु अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ।

इसी प्रकार सम्पात विन्दु की गति के कारण तारों के ध्रुवों और विक्षेपों में अन्तर पड़ता जाता है यद्यपि इनके कदम्बाभिमुख भोगों और शरों में स्थिरता रहती है।

अब १०-१२ श्लोकों में बतलाये गये तारों के ध्रुवक और विक्षेप देकर कई सारणियों में यह बतलाने का उद्योग किया जायगा कि तारों के ध्रुवांशों के सम्वन्ध में प्राचीन और अर्वाचीन आचार्यों के क्या मत हैं।

अशीतिभागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तगः।
विंशे च मिथुनस्यांशे मृगव्याधो व्यवस्थितः॥१०॥
विक्षिप्तो दक्षिणे भागैः खार्णवैस्स्वादपक्रमात्।
हुतभुग्ब्रह्महृदयौ वृषद्वाविंशभागगौ॥११॥
अष्टाभिः त्रिंशता चैव विक्षिप्तावुत्तरेण तौ।
गोलं बध्वोपरिक्षेत्रं विक्षेपध्रुवकान् स्फुटान्॥१२॥

अनुवाद—(१०) अगस्त्य तारे का ध्रुव मिथुन राशि के अन्त में अर्थात् ६० अंश और दक्षिण विक्षेप ८० अंश है। मृगव्याध अथवा लुब्धक तारे का ध्रुव मिथुन के २० अंश पर अर्थात् ८० अंश है। (११) इसका विक्षेप क्रान्तिवृत्त से दक्षिण ४० अंश पर है। अग्नि और ब्रह्महृदय दोनों तारों के ध्रुव वृषराशि के २२ अंश पर अर्थात् ५२ अंश हैं। (१२) इनके विक्षेप क्रम से ८ अंश और ३० अंश क्रान्तिवृत्त से उत्तर की ओर हैं। गोलयंत्र के द्वारा इन स्फुटविक्षेपों और ध्रुवकों की परीक्षा करना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—१२ वें श्लोक का उत्तरार्ध बड़े महत्व का है। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्यों को लकीर का फकीर होना इष्ट नहीं था इसीलिए

नक्षत्रों के योग ताराओं तथा कुछ अन्य ताराओं के ध्रुवाभिमुख भोग (ध्रुव)

(देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५२)

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्ल तंत्र		दामोदरीय भट तुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		अन्य तारों के अंग्रेजी नाम
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१	अश्विनी	८	०	८	०	८	०	८	३०	८		८		७	४३	
२	भरणी	२०	०	२०	०	२०	०	२१	१५	२०		२१		२१	५१	
३	कृत्तिका	३७	३०	३७	२८	३६	०	३७	४५	३८		३८		३६	२	
४	रोहिणी	४९	३०	४९	२८	४९	०	४९	०	५०		४९		४७	३७	
५	मृगशिरा	६३	०	६३	०	६२	०	६२	०	६३		६२		६१	२६	
६	आर्द्रा	६७	०	६७	०	७०	०	६६	०	६७		६६		७५	४३	
७	पुनर्वसु	९३	०	९३	०	९२	०	९२	४५	९३		९४		९१	२१	

८	पुष्य	१०६	०	१०६	०	१०५	०	१०६	०	१०६	१०६	१०५	४३
९	आश्लेषा	१०९	०	१०८	०	११४	०	१०७	१५	१०८	१०७	१०८	३८
१०	मघा	१२९	०	१२९	०	१२८	०	१२९	०	१२९	१२९	१२६	५९
११	पूर्वा फाल्गुनी	१४४	०	१४७	०	१३९	२०	१४८			१४८	१४४	३१
१२	उत्तरा फाल्गुनी	१५५	०	१५५	०	१५४	०	१५५	३०	१५५	१५५	१५४	१
१३	हस्त	१७०	०	१७०	०	१७३	०	१७०	०		१७०	१६५	६
१४	चित्रा	१८०	०	१८३	०	१८४	०	१८३	०	१८३	१८३	१८०	०
१५	स्वाती	१९९	०	१९९	०	१९७	०	१९८	३०	१९९	१९८	१९३	२८
१६	विशाखा	२१३	०	२१२	५	२१२	०	२१२	१५	२१२	२१२	२०२	११
१७	अनुराधा	२२४	०	२२४	५	२२२	०	२२४	१५		२२४	२११	८
१८	ज्येष्ठा	२२९	०	२२९	५	२२८	०	२२९	३०	२२९	२३०	२२२	५९
१९	मूल	२४१	०	२४१	०	२४१	०	२४२	०		२४०	२४०	४५

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		दामोदरीय भट तुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		अन्य तारों के अंग्रेजी नाम
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंक	वर्ग	अंश	काल	अंश	कला	अंश	कला	
२०	पूर्वाषाढा	२५४	०	२५४	०	२५४	०	२५५	३२	२५४		२५५		२५३	२३	
२१	उत्तराषाढा	२१०	०	२६०	०	२६७	२०	२६०	०	२६०		२६१		२६३	५	
	अभिजित	२६६	४०	२६५	०	२६७	०	२५९	४५			२५८		२५६	१०	
२२	श्रवण	२८०	०	२७८	०	२८३	१०	२७५	१५	२७८		२७५		२७२	५८	
२३	धनिष्ठा	२९०	०	२९०	०	२९६	२०	३८७	३०	२९०		२८६		२८४	४७	
२४	शततारका	३२०	०	३२०	०	३१३	२०	३२०	०	३२०		३२०		३१८	४३	
२५	पूर्वभाद्रपद	३२६	०	३२६	०	३२७	०	३२५	०	३२६		३२५		३२२	३	
२६	उत्तर भाद्रपद	३३७	०	३३७	०	३३५	२०	३३७	०	३३७		३३७		३४०	३५	

२७	रेवती	३५९	५०	०	०	३५९	०	०	०	०	०	३५६ १	५७ २०	
	अगस्त्य	९०	०	८७	०	८७	०			८७	८०			Canopus
	व्याध	८०	०	८६	०	८६	०			८६	८१			Sirius
	अग्नि	५२	०							५२	५३			β Tauri
	ब्रह्मा	५२	०							५२	५६			α aurigae (capella)
	प्रजापति	५७	०							५७	६१			β aurigae
	अपांवत्स	१८०	०								१८३			θvirginis*
	आपस	१८०	०											δvirginis*

Popular Hindu Astronomy Part I pp. 240-241

नक्षत्रों के योग ताराओं तथा कुछ अन्य ताराओं के ध्रुवाभिमुख शर या विक्षेप

(देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५३)

नक्षत्रों की क्रम-संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		दामोदरीय भटतुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		शर की दिशा
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१	अश्विनी	१०		१०		१०		१०		१०		१०		९		उत्तर
२	भरणी	१२		१२		१२		१२	१५	१२		१२		१०	५७	उत्तर
३	कृत्तिका	५		४	३१	५		४		४		५		४	९	उत्तर
४	रोहिणी	५		४	३३	५		४		४	३०	५		५	३२	दक्षिण
५	मृगशिरा	१०		१०		१०		१०		१०		१०		१३	२४	दक्षिण
६	आर्द्रा	९		११		११		११		११		११		६	४६	दक्षिण
७	पुनर्वसु	६		६		६		६		६		६		६	४६	उत्तर

८	पुष्य	०		०		०		०		०		०		०	५	उत्तर
९	आश्लेषा	७		७		७		७		७		७		११	२४	दक्षिण
१०	मघा	०		०		०		०		०		०		०	२९	उत्तर
११	पू०फाल्गुनी	१२		१२		१२	१३	१	४५			१२		१०	३१	उत्तर
१२	उ०फाल्गुनी	१३		१३		१३		१२	४५			१३		१३	२४	उत्तर
१३	हस्त	११		११		८		११		११		११		१३	१७	दक्षिण
१४	चित्रा	२		१	४५	२		१	४५	१	४५	२		२	१२	दक्षिण
१५	स्वाती	३७		३७		३७		३७	१५			३७		३२	५६	उत्तर
१६	विशाखा	१	३०	१	२३	१	३०	१	१५			१		०	२२	दक्षिण
१७	अनुराधा	३	०	१	४४	३		१	४५			२		२	१	दक्षिण
१८	ज्येष्ठा	४		३	३०	४		३	३०			३		४	३७	दक्षिण
१९	मूल	९		८	३०	८	३०	८	३०			८		१३	४८	दक्षिण

नक्षत्रों की क्रम-संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्ल तंत्र		दामोदरीय भटतुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		शर की दिशा
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
२०	पूर्वाषाढ़	५	३०	५	२०	५	२०	५	३०			५		२	७	दक्षिण
२१	उत्तराषाढ़	५		५		५		५				५		१	२८उ	दक्षिण
	अभिजित्	६०		६२		६३		६२		६२		६२		६१	५५	उत्तर
२२	श्रवण	३०		३०		३०		२९	३०	३०		३०		२९	४९	उत्तर
२३	धनिष्ठा	३६		३६		३६		२५	३०	३६		३६		३४	१५	उत्तर
२४	शततारका	०	३०	०	१८	०	२०	०	१५	०	२०	०		०	२५	दक्षिण
२५	पू. भाद्रपद	२४		२४		२४		२३	४५			२४		२१	६	उत्तर
२६	उ. भाद्रपद	२६		२६		२६		२६				२७		१३	४५	उत्तर

२७	रेवती	०	०	०	०		०	० १४ } ३ १८ }	दक्षिण
	अगस्त्य	८०	७७	८०		७७	७६		दक्षिण
	व्याध	४०	४०	४०		४०	४०		दक्षिण
	अग्नि	८				८	८		उत्तर
	ब्रह्मा	३०				३०	३०		उत्तर
	प्रजापति	३८				३८	३९		उत्तर
	अपांवत्स	३					३		उत्तर
	आप	९							उत्तर

वह स्थान-स्थान पर कहते गये हैं कि यंत्रों के द्वारा ग्रहों और नक्षत्रों का वेध करके जो ध्रुवक यथार्थ आवें उनको मानना चाहिए। यहाँ उन्होंने केवल गोलयंत्र की चर्चा की है। त्रिप्रश्नाधिकार के ११ वें श्लोक में बतलाया गया है कि शंकु की छाया से सूर्य का जो भोगांश आता है उससे गणित से निकाले हुए भोगांश का जो अंतर होता है वही स्पष्ट अयनांश है। इन बातों से स्पष्ट होता है कि हमारे आचार्यों को यह इष्ट था कि ज्योतिष सम्बन्धी गणित का मिलान आकाश के प्रत्यक्ष वेध से करके उचित संशोधन भी करते रहना चाहिए।

यहाँ गोलयंत्र की विशेष चर्चा नहीं की जायगी क्योंकि यह विषय ज्योतिषोपनिषदध्याय नामक १३ वें अध्याय में जहां और यंत्रों की चर्चा है स्वयम् आवेगा इसलिए वहीं चित्र देकर यह अच्छी तरह समझाया जायगा। साथ ही साथ यह भी बतलाया जायगा कि इस समय कुछ नवीन यंत्रों जैसे दूरदर्शक यंत्र इत्यादि से बहुत ही सूक्ष्मतापूर्वक कैसे काम लिया जा सकता है और प्रत्येक ज्योतिष विद्यालय के साथ नवीन ढंग के एक-एक वेधालय की कितनी आवश्यकता होती है।

पिछली सारणियों में यह बताया गया है कि भिन्न-भिन्न आचार्यों के मत से उपर्युक्त तारों के ध्रुवक और विक्षेप क्या हैं। ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त के ध्रुवक और विक्षेप भास्कराचार्य की सिद्धान्तशिरोमणि के ध्रुवक और विक्षेप से मिलते हैं। लल्लतंत्र, दामोदरीयभट तुल्य, और सुन्दरी-सिद्धान्त के ध्रुवक और विक्षेप स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण दीक्षित के भारतीय ज्योतिष शास्त्र से लिये गये हैं। दीक्षित जी ने चित्रा तारे का ध्रुवक १८० अंश मानकर सन् १८८७ ई० के नाटिकल अलमैनेक में दिये हुए तारों के विषुवांशों और क्रान्तियों से जो ध्रुवक और विक्षेप स्थिर किये थे वे भी इस सारिणी में दिये जायँगे। दीक्षित जी ने रेवती तारे के दो ध्रुवक और दो विक्षेप दिये हैं। इसका कारण यह है कि इनके मत से रेवती का योग तारा जीटा पिसियम या म्यू पिसियम हो सकता है। इसीलिए पहला ध्रुवक या विक्षेप जीटा पिसियम का है और दूसरा म्यू पिसियम का।

ग्रह का रोहिणी-शकट-भेद कब होता है—

वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽशकद्वयात्।
विक्षेपोऽभ्यधिको हन्याद् रोहिण्याश्शकटं तु सः ॥१३॥

अनुवाद—(१३) वृषराशि के १७ वें अंश पर स्थित जिस ग्रह का दक्षिण विक्षेप २ अंश से अधिक होता है वह ग्रह रोहिणी नक्षत्र के शकट को भेद करता है।

विज्ञान भाष्य—रोहिणी नक्षत्र में ५ तारे हैं जिनकी आकृति गाड़ी की तरह अथवा अंग्रेजी के वी (V) अक्षर की तरह है। इन पांच तारों में सबसे उत्तर वाले तारे का दक्षिण विक्षेप २ अंश ३५ कला के लगभग है। इस तारे को आजकल एपसिलान टारि कहते हैं। और रोहिणी के योग तारे का दक्षिण शर ५ अंश ३२ कला है। जिस ग्रह का दक्षिण शर या विक्षेप इन दो सीमाओं के बीच में होता है वह रोहिणी के शकट के भीतर हो जाता है। इसी को रोहिणी के शकट का भेदन कहते हैं। यह प्रकट है कि ग्रह का विक्षेप उसके पात पर आश्रित रहता है। चन्द्रमा का पात १८ वर्षों में एक फेरा करता है। इस एक फेरे में चन्द्रमा केवल ५,६ वर्ष शकट का भेद करता है। यदि चन्द्रमा का दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से अधिक हो और ५ अंश ३२ कला से कम और उस समय यह रोहिणी नक्षत्र में हो तो यह अवश्य रोहिणी के शकट में होकर चलेगा इसलिए चन्द्रमा का रोहिणी-शकट-भेद होगा। अब यह देखना है कि जिस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में होता है उस समय इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से अधिक कम होता है।

मध्यमाधिकार के पृष्ठ ७५ में बतलाया गया है कि चन्द्रमा का परमविक्षेप ५ अंश ८ कला ४२ विकला है। इसका अर्थ यह है कि जब चन्द्रमा राहु से ९० अंश आगे रहता है तब इसका उत्तर शर ५ अंश ८ कला और ४२ विकला होता है और जब यह केतु से ९० अंश आगे रहता है तब इसका दक्षिण शर इतना ही होता है। परन्तु जब यह राहु या केतु पर रहता है तब इसका शर शून्य होता है। इसलिए स्पष्टाधिकार के श्लोक २८, चित्र २५ के आधार पर यह सहज ही जाना जा सकता है कि चन्द्रमा का शर २ अंश ३५ कला से अधिक कब होता है। इस चित्र में यदि व स चन्द्रमा की कक्षा, व प क्रान्तिवृत्त, व राहु का स्थान, स चन्द्रमा का स्थान, स ए चन्द्रशर और स व प चन्द्रमा का परम विक्षेप मान लिया जाय तो व स और प का सम्बन्ध सहज ही जाना जा सकता है। यहां यदि स प को २ अंश ३५ कला मान लिया जाय तो

$$\text{ज्या (वस)} = \frac{\text{ज्या (सप)}}{\text{ज्या (सवप)}} = \frac{\text{ज्या } २^\circ ३५'}{\text{ज्या } ५^\circ\ ९'} = \frac{.०४५१}{.०८९८} = \cdot ५०२२$$

$\therefore$ व स = ३० अंश ९ कला

अर्थात् जब चन्द्रमा अपने पात से एक राशि आगे रहता है तब इसका शर २ अंश ३५ कला से अधिक होता है। परन्तु रोहिणी क्रान्तिवृत्त के दक्षिण है और इसका ध्रुवाभिमुख भोगांश सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ४९ अंश ३० कला और शंकर बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार ४७ अंश ३७ कला है तथा कदम्बाभिमुख भोगांश

सूर्य-सिद्धान्त की गणना से ४८ अंश ६ कला और शंकर बालकृष्ण दीक्षित की गणना से ४५ अंश ५७ कला है। इसलिए यदि रोहिणी के योग तारा का कदम्बाभिमुख भोगांश ४६ अंश मान लिया जाय तो जिस समय चन्द्रमा का भोगांश इतना ही होगा उस समय ही रोहिणी-शकट-भेद हो सकता है यदि इसका दक्षिण शर भी २ अंश ३५ कला से अधिक हो। ऐसी दशा में चन्द्रमा को केतु से कम से कम १ राशि आगे रहना चाहिए अर्थात् जब केतु का भोगांश कम से कम १६ अंश हो तभी रोहिणी-शकट-भेद हो सकता है।

ऊपर की गणना से यह सिद्ध हुआ कि जब केतु से चन्द्रमा १ राशि आगे रहता है तब इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला होता है। इसके बाद इसका दक्षिण शर बढ़ते-बढ़ते ५ अंश ८ कला हो जाता है। उस समय यह केतु से ३ राशि आगे हो जाता है। फिर इसका दक्षिण शर घटने लगता है और जब यह केतु से ५ राशि आगे अथवा राहु से १ राशि पीछे रहता है तब तक इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से कम नहीं होता। इसी सीमा के भीतर चन्द्रमा रोहिणी के शकट का भेद करता है। परन्तु ऊपर सिद्ध हुआ है कि जब केतु का भोगांश १६ अंश होता है अर्थात् जब केतु मेष राशि के १६ अंश पर होता है तब यदि चन्द्रमा का दक्षिण विक्षेप २ अंश ३५ कला हो तो रोहिणी-शकट-भेद होगा। इसके बाद केतु अपनी वक्री गति से जब पीछे हटता जायगा तब भी चन्द्रमा रोहिणी के शकट को भेद करेगा क्योंकि उस समय रोहिणी नक्षत्र में इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से अधिक होता जायगा। इस प्रकार जब तक केतु मेष के १६ अंश से ४ राशि पीछे नहीं चला जाता तब तक रोहिणी नक्षत्र में चन्द्रमा का दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से कम नहीं होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब केतु मेष राशि के १६ अंश पर आवेगा तब चन्द्रमा के रोहिणी-शक भेद का आरम्भ होगा और जब तक यह धनु के १६ अंश पर नहीं आवेगा तबतक चन्द्रमा के प्रति फेरे में रोहिणी नक्षत्र में चन्द्रमा का रोहिणी-शकट-भेद होगा। परन्तु राहु केतु से ६ राशि आगे रहता है। इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि जब तक राहु मिथुन के १६ अंश से तुला के १६ अंश तक की सीमा में रहता है तब तक चन्द्रमा का रोहिणी-शकट-भेद होता है।

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के रोहिणी शकट-भेद की भी गणना की जा सकती है। परन्तु मध्यमाधिकार पृष्ठ ७५ में दी हुई सारिणी से यह प्रकट होता है कि शुक्र और बुध के सिवा किसी ग्रह का परम शर २ अंश ३५ कला से अधिक नहीं है इसलिए बुध और शुक्र का ही रोहिणी शकट-भेद संभव है। शनि का परम शर २ अंश २६ कला ३६ विकला है इसलिए शनि का रोहिणी-शकट-भेद भी असंभव जान

पड़ता है। परन्तु वराह मिहिर[1] तथा ग्रहलाघवकार[2] ने लिखा है कि शनि अथवा मङ्गलक रोहिणी-शकट-भेद होने से बड़ा अनिष्ट होता है।

युतिकाल का साधन—

ग्रहवद् द्यु निशेमानां कुर्याद् दृक्कर्म पूर्ववत्।
ग्रहमेलनविज्ञेयं ग्रहभुक्त्या दिनादिकम् ॥१४॥
एष्यो हीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः।
विपर्ययाद्वक्रगतैः ग्रहैः ज्ञेयः समागमः ॥१५॥

अनुवाद—(१४) पहले जिस तरह युतिकालिक ग्रहों का दिनमान और रात्रिमान जानने को कहा गया है उसी तरह नक्षत्रों का भी दिनमान और रात्रिमान साधन करके उनका आक्षदृक्कर्म संस्कार करना चाहिये। इसके पश्चात् जैसे ग्रहों का परस्पर युतिकाल और युतिस्थान जाना जाता है उसी तरह केवल ग्रह की गति से ग्रह और नक्षत्र का युतिकाल और युतिस्थान जान लेना चाहिये। (१५) यदि ग्रह का आयन-आक्ष-दृक्कर्म-संस्कृत भोग नक्षत्र के आक्षदृक्कर्म-संस्कृत ध्रुवक से कम हो तो समझना चाहिये कि नक्षत्र और ग्रह का योग होने वाला है और यदि अधिक हो तो समझना चाहिये कि योग हो चुका है। परन्तु यदि ग्रह वक्री हो तो इसका उलटा समझना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकों में जो नियम बतलाये गये हैं उनकी व्याख्या ग्रहयुत्यधिकार में आ चुकी है। यहां ग्रह का तो आयन और आक्ष दोनों दृक्कर्म करने को कहा गया है परन्तु नक्षत्र का केवल आक्षदृक्कर्म करने को कहा गया है। इसका कारण स्पष्ट है। क्योंकि ग्रह का जो भोगांश स्पष्टाधिकार के अनुसार आता है वह कदम्बाभिमुख होता है इसलिए उसमें आयन-दृक्कर्म का संस्कार करने से वह ध्रुवाभिमुख होता है। अब यदि इसमें आक्षदृक्कर्मका संस्कार किया जाय तो इसका भोगांश समप्रोतवृत्त में आता है। परन्तु नक्षत्रों के जो ध्रुवक

---

१. रोहिणी शकटमर्कनंदनी यदि भिनत्ति रुधिरोथवा शशी।
किं वदामि यदि नष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षये ॥३५॥
—बृहत्संहिता ३४ अध्याय

२. कभशकटमसौ भिनत्त्यसृक् शनिरुडुयो यदि चेज्जनक्षयः ॥७॥
भौमकर्योः शकटभिदा युगान्तरे स्यात् सेदानीं न हि भवतीदृशि स्वपाते ॥८॥
—ग्रहलाघव, नक्षत्रच्छायाधिकार

दिये गये हैं वे ध्रुवाभिमुख हैं इसलिए इनमें केवल आक्षदृक्कर्म का संस्कार करने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार ग्रह और नक्षत्र के भोगों में किसी इष्टकाल में जो अंतर होता है उसको ग्रह की दैनिक गति से भाग देने पर यह जाना जाता है कि कितने समय में ग्रह का नक्षत्र से योग होगा या होने वाला है। और सब बातें ग्रहयुत्यधिकार में बतलाये गये नियम के अनुसार ही समझनी चाहिए। यहाँ सुगमता यह है कि नक्षत्र स्थिर होते हैं इसलिए केवल एक ग्रह के सम्बन्ध की गणना करनी पड़ती है।

नक्षत्रों के योगतारों के पहचानने की रीति—

फल्गुन्योः भाद्रपदयोः तथैवाऽऽषाढयोर्द्वयोः ।
विशाखाश्विनिसौम्यानां योगतारा तथोत्तरा ॥१६॥
पश्चिमोत्तरतारा या द्वितीया पश्चिमे स्थिता ।
हस्तस्य योगताराऽसौ श्रविष्ठायाश्च पश्चिमा ॥१७॥
ज्येष्ठाश्रवणमैत्राणां बार्हस्पत्यस्य मध्यमा ।
भरण्याग्नेयपित्र्याणां रेवत्याश्चापि दक्षिणा ॥१८॥
रोहिण्यादित्यमूलानां प्राची सार्पस्य चैव हि ।
यथाप्रधानं शेषाणां स्थूलास्स्युर्ध्रुवतारकाः ॥१९॥
पूर्वस्यां ब्रह्महृदयादंशकैः पञ्चभिः स्थितः ।
प्रजापतिर्वृषान्तेऽसौ सौम्ये अष्टत्रिंशदंशकैः ॥२०॥
अपांवत्सस्तु चित्राया उत्तरेंऽशैश्च पञ्चभिः ।
बृहत्किञ्चिदतो भागैरापष्षड्भिस्तथोत्तरे ॥२१॥

इत्यष्टमोध्याय :

अनुवाद—(१६) पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, विशाखा, अश्विनी और मृगशिरा नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्र का उत्तरवाला तारा उस नक्षत्र का योग तारा है। (१६) हस्तनक्षत्र के पश्चिमोत्तर दिशा में जो दो तारे हैं। उनमें दूसरा पच्छिमवाला तारा इस नक्षत्र का योगतारा है और धनिष्ठा नक्षत्र के दो उत्तरवाले तारों में भी पच्छिमवाला तारा योग तारा है। (१८) ज्येष्ठा, श्रवण, अनुराधा और पुष्य नक्षत्रों के बीचवाले तारे प्रत्येक के योग तारे हैं। भरणी, कृत्तिका, मघा और रेवती नक्षत्र के दक्षिणवाला तारा प्रत्येक नक्षत्र का योग तारा है। (१९) रोहिणी, पुनर्वसु, मूल और आश्लेषा नक्षत्र का पूर्ववाला तारा प्रत्येक का योग तारा है। २८ नक्षत्रों में से अब जितने शेष हैं, उनमें

अर्थात् आर्द्रा, चित्रा, स्वाती, अभिजित और शतभिषक् नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्रों का सबसे बड़ा तारा उस नक्षत्र का योग तारा है। (२०) ब्रह्महृदय तारे से ५ अंश पूर्व की ओर प्रजापति नामक तारा वृष के अंत में है। इसका उत्तर विक्षेपांश ३८ है। (२१) चित्रा तारे से ५ अंश उत्तर की ओर अपांवत्स तारा है जिससे ६ अंश उत्तर कुछ बड़ा आप नामक तारा है।

विज्ञान भाष्य—१६-१९ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि प्रत्येक नक्षत्र में कौन तारा मुख्य माना गया है जिसके ध्रुवक और शर पहले बतलाये गये हैं। ऐसे मुख्य तारे को योगतारा कहा गया है। आजकल इन योगताराओं के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद है। आगे एक सारणी दी जायगी जिससे पता चलेगा कि आजकल कौन विद्वान् किस तारे को योगतारा मानता है। नक्षत्र के लिए कभी-कभी उनके देवताओं के नामों का प्रयोग किया गया है इसलिए सुविधा के लिए यह भी बतलाया जायगा कि किस नक्षत्र का स्वामी कौन देवता है तथा प्रत्येक नक्षत्र में कितने तारे हैं। तारों की संख्याओं में प्राचीन आचार्यों में भी मतभेद है जैसा कि सारणी से पता चलेगा।

ब्रह्महृदय का ध्रुवक १ राशि २२ अंश बतलाया गया है। इससे ५ अंश पूर्व प्रजापति तारा है। इसलिए प्रजापति का ध्रुवक १ राशि २७ अंश है। श्लोक में बतलाया गया है कि प्रजापति वृषराशि के अंत में है परन्तु इसका अर्थ यही लेना चाहिये कि यह वृषराशि के अंत के पास है। चित्रा तारे का दक्षिण शर २ है और अपांवत्स तारा चित्रा से ५ अंश उत्तर है इसलिए अपांवत्स का उत्तर शर ३ अंश हुआ। आप तारा अपांवत्स से ६ अंश उत्तर है इसलिए इसका उत्तर शर ९ अंश हुआ।

तारों और नक्षत्रों की पहचान के लिए ४ आकाश-चित्र दिये जायँगे जिनसे यह सहज ही जाना जा सकता है कि कौन नक्षत्र किस समय आकाश में कहां देख पड़ता है।

इन सारणियों में तारों के अङ्गरेजी नाम विलक्षण ढंग से दिये हुए हैं इसलिये यह बतला देना आवश्यक है कि ये नाम किस प्रकार रखे गये हैं। अङ्गरेजी में तारा-पुञ्जों के जो नाम प्रचलित हैं वह अधिकतर लैटिन और यूनानी (Greek) भाषा से लिए गये हैं। प्रत्येक तारापुंज के नाम के पहले कोई यूनानी अक्षर जोड़ कर रखा गया है। इन अक्षरों का क्रम अधिकतर इस प्रकार रखा गया है कि उस पुंज में जो तारा सबसे चमकीला और बड़ा है उसका नाम पहले अक्षर 'अल्फा' से प्रकट किया गया है। उसके बाद जो तारा उससे छोटा है उसका नाम दूसरे अक्षर 'बीटा' से प्रकट किया गया है, इत्यादि। कुछ प्रधान तारों के नाम इस तरह तो

नक्षत्र के देवता

(मुहूर्त चिंतामणि तथा भारतीय

क्रम संख्या	नक्षत्रों के नाम	नक्षत्र के स्वामी या देवता	तैत्तिरीय संहिता	नक्षत्र कल्प	वृद्धगार्गीय संहिता	नारद संहिता	वराह मिहिर	खंडखाद्यक
१	अश्विनी	अश्विनी कुमार	२	२	२	३	३	२
२	भरणी	यम		३	३	३	३	३
३	कृत्तिका	अग्नि	७	६	६	६	६	६
४	रोहिणी	ब्रह्मा	१		५	५	५	५
५	मृगशिरा	चन्द्रमा		३	३	३	३	३
६	आर्द्रा	रुद्र	१या२	१	१	१	१	१
७	पुनर्वसु	अदिति	२	२	२	४	५	२
८	पुष्य	वृहस्पति	१	१	१	३	३	१
९	आश्लेषा	सर्प		६	६	५	६	६
१०	मघा	पितर		६	६	५	५	६
११	पूर्वा फाल्गुनी	भग	२	२	२	२	८	२
१२	उत्तरा फाल्गुनी	अर्यमा	२	२	२	२	२	२
१३	हस्त	सूर्य		५	५	५	५	५
१४	चित्रा	विश्वकर्मा	१	१	१	१	१	१
१५	स्वाती	पवन	१	१	१	१	१	१

और तारों की संख्या

ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ ४५८)

लल्लकृत रत्नकोश	शाकल्य ब्रह्मसिद्धान्त	श्रीपतिकृत रत्नमाला	मुहूर्त तत्व	मुहूर्त चिंतामणि	नक्षत्र के तारों के नाम Kaye के Hindu Astronomy के अनुसार
३	२	३	३	३	β, γ Arietis
३	३	३	३	३	35, 39, 41 Arietis
६	६	६	६	६	η Tauri, etc.
५	५	५	५	५	α, θ γ, δ, $\in$ Tauri
३	३	३	३	३	λ, ϕ_1, ϕ_2 Orionis
१	१	१	१	१	α Orionis
४	२	४	४	४	β, α Geminorum
३	३	३	३	३	θ, δ, γ Cancri
५	५	५	५	५	$\in$, δ, σ, η, ρ Hydrae
५	५	५	५	५	α, η, γ, γ, l, μ, $\in$, Leonis
२	२	२	२	२	δ, θ Leonis
२	२	२	२	२	β, 93 Leonis
५	५	५	५	५	δ, γ, $\in$, α, β Corvi
१	१	१	१	१	α Virginis
१	१	१	१	१	α Bootis

क्रम संख्या	नक्षत्रों के नाम	नक्षत्रों के स्वामी या देवता	तैत्तिरीय संहिता	नक्षत्रकल्प	वृद्ध गार्गीय संहिता	नारद संहिता	वराह मिहिर	खंड खाद्यक
१६	विशाखा	इन्द्र, अग्नि	२	२	२	२	५	२
१७	अनुराधा	मित्र		४	४	४	४	४
१८	ज्येष्ठा	इन्द्र	१		३	३	३	३
१९	मूल	राक्षस	१या२		६	११	११	२
२०	पूर्वाषाढ़	जल		४	४	४	२	४
२१	उत्तराषाढ़	विश्वदेव		४	४	२	८	४
	अभिजित	ब्रह्मा	१		३			३
२२	श्रवण	विष्णु	१	३	३		३	३
२३	धनिष्ठा	वसु	४	५	४			५
२४	शतभिषक	वरुण	१	१	१	१००	१००	१
२५	पूर्वा भाद्रपद	अजपाद		२	२	२	२	२
२६	उत्तरा भाद्रपद	अहिर्बुध्न्य	४	२	२	२	८	२
२७	रेवती	पूषा	१	१	४	३२	३२	१

लल्ल कृत रत्नकोश	शाकल्य ब्रह्म सिद्धान्त	श्रीपति कृत रत्नमाला	मुहूर्त तत्व	मुहूर्त चिंता मणि	नक्षत्र के तारों के नाम Kaye के Hindu Astronomy के अनुसार
४	२	४	४	४	γ, β, α, *l* Librae
४	३	४	४	४	δ, β, π Scorpii
३	३	३	३	३	α, σ, L Scropii
११	६	११	११	११	λ, μ, ×, L θ, ∈ Scorpii
२	४	४	४	२	δ, ∈, Sagittarii
२	४	४	३	२	6, ζ Sagittarii
३	३	३	३	३	α, ∈, ζ Lyrae
३	३	३	३	३	α, β, γ, Aquilae
४	५	४	४	४	β, α, γ, δ Delphini
१००	१००	१००	१००	१००	λ Aquarii, etc.
२	२	२	२	२	α, β Pegasi
२	२	२	२	२	γ Pegasi, α Andromedae
३२	३२	३२	३२	३२	γ Pisceium, etc.

किस नक्षत्र का कौन तारा योगतारा है (भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५६)

क्रम संख्या	नक्षत्र का नाम	कोलब्रुक के मत से	बेंटली और केरोपंत के मत से	व्हिटने और बर्जेस के मत से	बापूदेव के मत से	वें. बा. केतकर के मत से	शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मत से	चंद्रशेखर सिंह सामंत का सिद्धान्त दर्पणभूमिका पृ० ५६, ५७
१	अश्विनी	α Arietis	β Arietis	β Arietis	α Arietis	β Arietis	β Arietis	α Arietis
२	भरणी	μ or 35, Arietis	35 Arietis	35 Arietis	35 Arietis	41 Arietis	41 Arietis	41 Arietis
३	कृत्तिका	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri
४	रोहिणी	α Tauri अर्थात् Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran
५	मृगशिरा	λ Orionis	116 Tauri	λ orionis	λ orionis	λ orionis	λ orionis	λ orionis
६	आर्द्रा	α Orionis	133 Tauri	α orionis	α orionis	α orionis	γ Geminorum	α orionis
७	पुनर्वसु	Pollux अर्थात् β Geminorum	Pollux	Pollux	Pollux	Pollux	Pollux	β Geminorum
८	पुष्य	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	Proesepe

९	आश्लेषा	α cancri	49 cancri	ε Hydrae	α cancri	α cancri	ζ Hydrae	ζ Hydrae
१०	मघा	α Leonis अर्थात् Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus
११	पूर्वा फाल्गुनी	δ Leonis	θ Leonis	δ Leonis	δ Leonis	θ Leonis	θ Leonis	δ Leonis
१२	उत्तरा फाल्गुनी	β Leonis अर्थात् Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	β Leonis
१३	हस्त	γ or δ corvi	δ corvi	δ corvi	γ or δ corvi	δ corvi	δ corvi	δ corvi
१४	चित्रा	Spica अर्थात् α Virginis	spica	spica	spica	spica	spica	spica
१५	स्वाती	Arcturus अर्थात् α Bootes	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus
१६	विशाखा	α or K Librae	24 Librae	24 Librae	α or K Librae	24 Librae	α Librae	α Librae
१७	अनुराधा	δ Scorpii	β Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii
१८	ज्येष्ठा	α Scorpii अर्थात् Antares	Antares	Antares	Antares	Antares	Antates	Antares
१९	मूल	v or 34 scorpii	34 scorpii	λ scorpii	34 scorpii	45 ophiuchi	λ Scorpii	λ Scorpii
२०	पूर्वाषाढ़	δ Saggittarii	δ Saggittarii	δ Sagittarii	δ Sagittarii	δ Sagittarii	λ Sagittarii	δ Sagittarii
२१	उत्तराषाढ़	t Saggittarii	φ Sagittarii	σ Sagittarii	t Sagittarii	σ Sagittarii	π Sagittarii	φ Sagittarii

क्रम संख्या	नक्षत्र का नाम	कोलब्रूक के मत से	बेंटली और केरोपंत के मत से	व्हिटने और बर्जेस के मत से	बापूदेव के मत से	वें. बा. केतकर के मत से	शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मत से	चंद्रशेखर सिंह सामंत का सिद्धान्त दर्पणभूमिका पृ० ५६, ५७
	अभिजित	α Lyrae Aega	Aega	Aega	Aega	Aega	Aega	Aega
२२	श्रवण	α Aquilae अर्थात् Altair	Altair	Altair	Altair	Altair	Altair	Altair
२३	धनिष्ठा	α Delphini	α Delphini	β Delphini	α Delphini	α Delphini	α Delphini	α Delphini
२४	शतभिषक	λ aquarii	λ aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquaril	λ Aquarii
२५	पूर्वा भाद्रपद	Markab अर्थात् α Pegasi	Markab	Markab	Markab	Markab	Markab	β Pegasi
२६	उत्तरा भाद्रपद	α Andromedae अर्थात् Alpherat	γ Pegasi (Algenib) α Andromedae	Algenib α Andromedae	α Andromedae	α Andromedae	γ Pegasi (Algenib)	αA ndromedae
२७	रेवती	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ or μ Picium	η Piscium

यूनानी अक्षर		नाम	उच्चारण	समान उच्चारण के रोमन अक्षर	हमारे आकाश चित्र में प्रयोग किये हुए अंक
क	α	alpha	आल्फ़ा	a	१
ख	β	Beta	बीटा	b	२
ग	γ	Gamma	गैमा	g	३
घ	δ	Delta	डेल्टा	d	४
च	∈	Epsilon	एप्साइलन	e short	५
छ	ζ	Zeta	ज़ीटा	z	६
ज	η	Eta	ईटा	e long	७
झ	θ	Theta	थीटा	th	८
ट	∫	Iota	आयोटा	i	९
ठ	K	Kappa	कैपा	k	१०
ड	λ	Lambda	लैम्डा	l	११
ढ	μ	Stet	म्यू	m	१२
त	υ	Nu	न्यू	n	१३
थ	ζ	xi	क्साई	x	१४
द	o	omicron	आमीक्रोन	o short	१५
	π	Pl	पाई	p	१६
	ρ	Rho	रो	r	१७

यूनानी अक्षर	नाम	उच्चारण	समान उच्चारण का रोमन अक्षर	हमारे आकाश चित्र में प्रयोग किये हुए अंक
σ	Sigma	सिग्मा	s	१८
τ	Tau	टा	t	१९
υ	upsilon	अपसाइलन	u	२०
ϕ	Phi	फाई	ph	२१
र χ	chi	काई	ch	२२
ल ψ	Psi	प्साई	ps	२३
ω	omega	ओमेगा	olog	२४

१२ राशियों के नाम

१ संस्कृत साहित्य में प्रचलित नाम	२ संस्कृत के पर्याय	३ अंग्रेजी नाम	४ लैटिन नाम
मेष	क्रियः	Ram	Aries
वृष	ताबुरि	Bull	Taurus
मिथुन	जितुमः, जित्तमः	Twins	Gemini
कर्क	कुलीर	crab	cancer
सिंह	लेय	Lion	Leo
कन्या	पाथोन, पाथेय	virgin	Virgo
तुला	जूकः	Balance	Libra
वृश्चिक	कौर्प्यः	scorpion	scorpio
धनु	तौक्षिक	Archer	sagittarius
मकर	आलोकेर (?)	capricorn	capricornus
कुंभ	हृदरोग	Water-bearer	Aquarius
मीन	इत्थ्य, इथुसी (?)	Fishes	Pisces

रखे ही गये हैं परन्तु साथ ही साथ उनके साहित्य में प्रचलित नाम भी अब तक व्यवहार में आते हैं।

यदि यह मालूम हो कि संस्कृत साहित्य में किसी तारे का क्या नाम प्रचलित है और अङ्गरेजी साहित्य में क्या नाम है तो तारों के पहचानने में बड़ी सुविधा होती है। इसलिए पहले यह बतला कर कि यूनानी भाषा के अक्षर और उनके नाम क्या हैं, एक सारिणी से यह भी बतलाया जायगा कि तारापुंजों के नाम संस्कृत और अङ्गरेजी तथा लेटिन और यूनानी भाषाओं में क्या है। अक्षरों की जगह हमारे आकाश चित्र में हिन्दी के अङ्क क्रमानुसार प्रयुक्त किये जायंगे जैसा कि अन्तिम स्तम्भ में बतलाया गया है।

संस्कृत, लैटिन और अंग्रेजी सभी नामों के एक ही अर्थ हैं परन्तु यूनानी नामों[१] के अक्षरों में भी समानता पायी जाती है जिससे जान पड़ता है कि इनकी उत्पत्ति एक ही देश में हुई है। वह देश चाहे भारतवर्ष हो या यूनान अथवा कोई अन्य देश जिससे इन दोनों देशों ने लिया हो। यह बात भाषा-तत्व-विशारदों से ही स्पष्ट हो सकती है कि इस एकता का क्या कारण है। ज्योतिष के और भी शब्द ऐसे हैं जिनके संस्कृत, अरबी और यूनानी नामों में समता है। परन्तु इस विषय पर यहां तुलनात्मक विचार नहीं किया जायगा क्योंकि इसकी सामग्री इस समय दुर्लभ है। यदि सुविधा हुई तो भूमिका में यह विषय फिर उठाया जायगा।

इस अध्याय में जिन नक्षत्रों की चर्चा हुई है उनकी पहचान के लिए यह आवश्यक है कि उनके चित्र दिये जायँ। इसलिए और फाल्गुन मासों के आकाशचित्र[२] दिये जाते हैं। इन चित्रों में तारों के यूनानी नाम नहीं दिये गये हैं इसलिए योग-तारों के पहचानने में कुछ कठिनाई पड़ सकती है परन्तु नक्षत्रों अर्थात् तारा-समूहों और उनकी स्थिति के समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। इन चित्रों में केवल

---

१. खेद है कि यूनानी अक्षरों के टाइप के अभाव से यूनानी नाम नहीं दिये गये।

२. संवत् १९७८ विक्रमीय के कार्तिक मास से संवत् १९७९ के भाद्रपद मास तक की मर्यादा के लिये जब वह काशी के ज्ञानमण्डल से प्रकाशित होती थी, उसके सम्पादक बाबू सम्पूर्णनन्दजी की इच्छा से दस मास के आकाशचित्र इसी लेखक द्वारा बनाये गये थे। उन्हीं से चार चित्र चुनकर दिये हैं। इनमें उस समय के मंगल, गुरु तथा अन्य प्रधान नक्षत्र समूहों के भी स्थान दिखलाये गये हैं। इनमें से जिनकी चर्चा प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में आयी है उनके नाम संस्कृत ग्रन्थों से ही लिये गये हैं परन्तु जिनकी चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है उनके नाम वही रखे गये हैं जो आजकल

वही तारे नहीं दिये गये हैं जिनकी चर्चा इस अध्याय में आयी है वरन् आकाश के अङ्गरेजी ग्रन्थों में पाये जाते हैं अथवा इनके हिन्दी के समानार्थ-सूचना शव्द बनाये गये हैं। जैसे Cassiopea के लिए काश्यप मंडल, Cepheus के लिए सिफियस, Draco के लिए अजगर, Leporis के लिए शशक इत्यादि। आचार्य वेंकटेश बाबू केतकर ने अपने ज्योतिर्गणित के पृष्ट ३२४ में कई प्रधान तारों के नाम प्रसिद्ध ऋषियों और देवताओं के नाम पर रखे हैं जैसे कण्व, कुवेर, रुद्र, यम, पराशर इत्यादि। परन्तु ये नाम इस चित्र में नहीं दिये गये हैं क्योंकि अभी ये किसी सभा द्वारा स्थिर नहीं किय गये हैं इसलिए पाठकों को तभी सुविधा होगी जब वही नाम दिये जायँ जो संसार के साहित्य में बहुत प्रसिद्धि पा चुके हैं।

इन चित्रों में आकाश के वह दृश्य दिखलाये गये हैं जो २५ अक्षांश के सब स्थानों से चित्रों में बतलाये हुए महीनों में संध्या के ८ बजे से १० बजे तक देखे जा सकते हैं। महीने का आरम्भ संक्रान्ति के प्रायः दूसरे दिन से माना गया है क्योंकि चांद्रमास के अनुसार बनाया हुआ चित्र एक महीने से अधिक काम नहीं दे सकता जबकि संक्रान्ति के हिसाब से बनाया हुआ चित्र सैकड़ों वर्ष तक काम में आ सकता है। संक्रान्ति का विचार भी आजकल तीन तरह से किया जाता है। यहाँ सूर्य सिद्धान्त की रीति से संक्रान्ति का विचार किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए यह बतलाना आवश्यक जान पड़ता है कि कौन संक्रान्ति अङ्गरेजी महीने की किस तारीख को पड़ती है। इन चार चित्रों से वर्ष के बारहों महीनों में कैसे काम लिया जा सकता है उसके लिए भी कुछ बातें अगले दो पृष्ठों की सारणी में दे दी जाती हैं जिसकी विधि आगे बतलायी जायगी।

आगे जो तीन-तीन महीने एकसाथ दिखलाये गये हैं उसका अर्थ यह है कि उन तीन महीनों की पहली तारीख को बीचवाले महीने का आकाश-चित्र ६ठे स्तम्भ में बतलाये हुए समय पर देखा जा सकता है। अथवा यों कहिये कि मोटे अक्षरों में बतलाये हुए महीने का आकाश-चित्र इस महीने के पीछे-आगे वाले महीनों की १ली तारीख को ६ठें स्तम्भ में बतलाये हुए समय पर देखा जा सकता है।

इस सारणी में केवल यह बतलाया गया है कि महीने की १ ली तारीख को

और शनि ग्रहों के चित्र भी यथास्थान दिये गये थे, जो ब्लाक से हट नहीं सकते इसलिये पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे ग्रह अब वहां नहीं देख पड़ेंगे क्योंकि ग्रहों के स्थान बदलते रहते हैं तारों की तरह एक से नहीं रहते। इन ब्लाकों के देने में ज्ञानमंडल के संचालक बाबू शिवप्रसाद गुप्तजी ने जो उदारता दिखलाई है उसके लिए विज्ञान-परिषद और लेखक दोनों गुप्तजी के ऋणी हैं।

सौर मास	किस संक्रान्ति से आरम्भ होता है	उस दिन की अङ्ग्रेजी तारीख जिस दिन सौर मास की पहली तारीख मानी गयी है	सौर मास की १ली तारीख के मध्याह्न काल का सूर्य का विषुवांश *		नक्षत्र काल † जिस का आकाश चित्र बनाया गया है		सौरमास की १ ली तारीख को आकाश चित्र देखने का समय धूप-घड़ी के अनुसार मध्याह्नोपरान्त		सौर मास की १ ली तारीख का काल-समीकरण
			घन्टा	मिनट	घन्टा	मिनट	घन्टा	मिनट	
वैशाख	मेष	१४ अप्रैल	१	२६			११	५६	
ज्येष्ठ	वृष	१५ मई	३	२७	१३	३०	१०	१	
आषाढ़	मिथुन	१५ जून	५	३३			७	५६	

* मध्याह्नकाल में सूर्य का विषुवांश होता है वही मध्याह्न का नक्षत्रकाल भी होता है (देखो पृष्ठ २७५ पाद टिप्पणी)। यह १६८५ विक्रमीय का प्रयाग के मध्याह्नकाल का विषुवांश है। यह प्रतिवर्ष एक-एक मिनट कम होता जाता है परन्तु ४ वर्ष के वाद प्रायः यही फिर हो जाता है। परन्तु यह अन्तर नगण्य है।

† नाक्षत्र काल नाक्षत्र-घटिका-यन्त्र से जाना जाता है और जिस समय वसन्त-सम्पात-विन्दु यामोत्तरवृत्त पर जाता है उस समय नाक्षत्र दिन का आरम्भ होता है (देखो पृष्ठ ३३७-३६) '

श्रावण	कर्क	१७ जुलाई	७	४५			११	४३
भाद्रपद	सिंह	१७ अगस्त	८	४६	१८	३०	८	४२
आश्विन	कन्या	१७ सितम्बर	११	३८			७	५१
कार्तिक	तुला	१८ अक्टूबर	१३	३१			११	५७
मार्गशीर्ष	वृश्चिक	१७ नवम्बर	१५	२८	१	३०	८	५८
पौष	धनु	१६ दिसम्बर	१७	३४			७	५५
माघ	मकर	१४ जनवरी	१८	४२			११	४६
फाल्गुन	कुम्भ	१३ फरवरी	२१	४६	७	३०	८	४३
चैत्र	मीन	१५ मार्च	२३	३८			७	५०

कौन आकाश चित्र किस समय देखना चाहिये। यदि महीने की किसी और तारीख को आकाश-चित्र से काम लेना हो तो यह ध्यान में रखना चाहिये कि जो दृश्य महीने की १ ली तारीख को १० बजे देख पड़ता है वही दृश्य २री तारीख को दस बजने से ४ मिनट पहले, ३री तारीख को दस बजने से ४×२=८ मिनट पहले, एक सप्ताह के बाद अर्थात् ८वीं तारीख को ४×७ =२८ मिनट पहले और १५ दिन के बाद १६ तारीख को १५×४=६० मिनट या १ घंटा पहले अर्थात् ९ बजे देख पड़ेगा। इसका कारण यह है कि पृथ्वी दिन रात भर में १ अंश सूर्य की परिक्रमा करने में आगे बढ़ती है जिससे सूर्य तारों के मध्य पूरब की ओर एक अंश खसकता हुआ देख पड़ता है। इसलिये सूर्य को यामोत्तर वृत्त पर आने में प्रतिदिन ४ मिनट की देर हो जाती है अथवा सूर्य का विपुवांश प्रति दिन प्रायः ४ मिनट बढ़ता जाता है। परन्तु आकाश-चित्र जिस नाक्षत्र-काल का बनाया गया है वह स्थिर है इसलिये मध्याह्न से जितने समय पर आकाश किसी दिन देख पड़ता है उससे ४ मिनट पहले ही दूसरे दिन देख पड़ता है (देखो पृष्ठ ४९३-४९६)। सीधा नियम यह है कि मध्याह्न के सूर्य के विपुवांश से जितना पहले या पीछे आकाश चित्र का नाक्षत्र-काल है मध्याह्न से उतना ही पहले या पीछे आकाश-चित्र में बतलाये गये दृश्य आकाश में देख पड़ते हैं। जैसे वैशाख की १ ली तारीख को मध्याह्नकालीन सूर्य का विपुवांश १ घण्टा २९ मिनट के लगभग होता है और ज्येष्ठ के आकाश चित्र का नाक्षत्रकाल १० घंटा ३० मिनट है अर्थात् मध्याह्नकालीन विपुवांश से १२ घण्टा १ मिनट पीछे है इसलिये वैशाख की १ ली तारीख को ज्येष्ठ का आकाश चित्र रात के १२ बजकर १ मिनट पर देख पड़ेगा। परन्तु ९ठें स्तम्भ में ११ बज कर ५९ मिनट बतलाया गया है इसका कारण यह है। कि १२ घंटा १ मिनट नाक्षत्र-काल में है और ११ घंटा ५९ मिनट धूपघड़ी के अनुसार सावन-काल में है। क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि सावन दिन नाक्षत्र दिन से ४ मिनट के लगभग बड़ा होता है (देखो पृष्ठ ३३७-३९) इसलिये नाक्षत्र-काल का ६ घण्टा सावन-काल के ५ घण्टा ५९ मिनट के समान होता है।

इस नियम के अनुसार यदि आप माघ महीने की १ली तारीख को एक ही रात में आकाश के कुल तारों को देखना चाहें तो सहज ही देख सकते हैं। इस तारीख को बम्बई और जगन्नाथ पुरी को मिलाने वाली रेखा के उत्तर के प्रान्तों में अर्थात् सारे उत्तर भारत में सूर्य साढ़े पांच बजे के पहले अस्त होता है। इसलिये ६ बजे संध्या के समय आकाश के तारे अच्छी तरह दिखाई पड़ने लगते हैं। इस तारीख को मध्याह्नकालीन सूर्य का विपुवांश १९ घण्टा ४२ मिनट होता है इसलिये मध्याह्न से

६ घन्टा पीछे का नाक्षत्र काल हुआ १६ घण्टा ४२ मिनट+६ घण्टा=२५ घन्टा ४२ मिनट अथवा १ घन्टा ४२ मिनट जो १ घन्टा ३० मिनट के लगभग है। इस लिये माघ की १ली तारीख को १ घन्टा ३० मिनट वाले नाक्षत्रकाल का आकाश चित्र अर्थात् मार्गशीर्ष का आकाश चित्र ६ बजे संध्या के समय देखा जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आप श्रवण से लेकर पुनर्वसु तक के १३ नक्षत्रों को अथवा धनिष्ठा से लेकर पुनर्वसु तक के १२ नक्षत्रों को सहज ही पहचान सकते हैं। यदि इससे ६ घंटा पीछे १२ बजे रात को आकाश देखें तो उस समय का नाक्षत्रकाल ७ घंटा ४२ मिनट के लगभग होगा जब कि फाल्गुन मास का आकाश-चित्र आपके काम में आ सकता है क्योंकि फाल्गुन मास का आकाश चित्र उस समय का है जब नाक्षत्र काल ७ घंटा ३० मिनट होता है। इस चित्र से आपको अश्विनी से लेकर हस्त नक्षत्र तक की पहचान सहज ही हो सकती है। इसी प्रकार यदि आप इसी रात को ६ बजे प्रातःकाल के लगभग अथवा १०, १२ मिनट और पहले ही आकाश देखें तो ज्येष्ठ का आकाश चित्र काम दे सकता है क्योंकि ६ बजे प्रातःकाल का नाक्षत्रकाल १३ घंटा ४० मिनट के लगभग होगा और इससे १२, १३ मिनट पहले का आकाश-चित्र १३ घंटा ३० मिनट के नाक्षत्रकाल के समय का होगा। इस आकाश-चित्र से आप पुनर्वसु से लेकर मूल या पूर्वाषाढ़ तक के तारे देख सकते हैं। इसी प्रकार यह भी हिसाब लगाया जा सकता है कि किसी और रात को किस समय किस मास के आकाश चित्र काम दे सकते हैं।

चित्र का साधारण वर्णन—चित्र में जो गोल रेखा खींची हुई है वह २५ अक्षांश का क्षितिज है इसलिए प्रयाग या काशी के क्षितिज से प्रायः मिलता है। केन्द्र में धन का एक चिह्न इस प्रकार+है। इससे आकाश का वह विन्दु प्रकट होता है जो २५ अक्षांश पर सिर के ठीक ऊपर होता है। इसे खस्वस्तिक या खमध्य कहते हैं। गोल रेखा के पास उत्तर, दक्षिण, पूरब, पच्छिम तथा इनके बीच की दिशाएं दिखलाई गयी हैं। उत्तर से दक्षिण तक जो सीधी रेखा देख पड़ती है वह यामोत्तर वृत्त है। मध्याह्नकाल में सूर्य इसी रेखा पर रहता है। पूरब से पच्छिम तक जो टेढ़ी रेखा देख पड़ती है वह विषुवद्वृत्त है। वसंत-सम्पात और शरद्-संपात के दिन सूर्य इसी पर देख पड़ता है और ठीक पूर्व में उदय तथा ठीक पच्छिम में अस्त होता है। विषुवद्वृत्त को काटती हुई एक दूसरी रेखा भी है जिसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। सूर्य इसी पर प्रतिदिन चलता हुआ देख पड़ता है। यथार्थ में यह हमारी पृथ्वी का मार्ग है जिस पर चलती हुई यह वर्ष भर में सूर्य की एक परिक्रमा कर लेती है। यह मार्ग बड़े महत्व का है। चंद्रमा और ग्रह इसी के आसपास आकाश में चक्कर लगाते हुए

देख पड़ते हैं। क्रान्तिवृत्त २७ समान भागों में बाँटा गया है जिन्हें नक्षत्र कहते हैं। मार्गशीर्ष के आकाश चित्र में नक्षत्रों के नाम भी दे दिये गये हैं परन्तु अन्य चित्रों में नक्षत्रों की केवल क्रम संख्या दी गयी है। जैसे क्रान्तिवृत्त पर जहाँ १ लिखा है वहाँ १ला नक्षत्र अश्विनी का अन्त होता है, जहाँ ५ लिखा है वहाँ ५वाँ नक्षत्र मृगशिरा समाप्त होता है, इत्यादि। क्रान्तिवृत्त पर जहाँ छोटे से वृत्त के भीतर चिह्न बना हुआ है वहीं सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार आजकल रेवती नक्षत्र का अन्त और अश्विनी नक्षत्र का आरम्भ समझा जाता है। क्रान्तिवृत्त, विषुवद्वृत्त और यामोत्तरवृत्त की रेखाएं आकाश में देख नहीं पड़ती हैं। इनकी कल्पना ज्योतिषियों ने सुविधा के लिए की है।

वैसे तो निर्मल आकाश में जब अन्धेरी रात हो अनगिनत तारे देख पड़ते हैं परन्तु इन चित्रों में केवल वही दिखलाये गये हैं जो चांदनी रात में भी देखे जा सकते हैं। आकार का परिचय कराने के लिये कुछ ऐसे तारे भी ले लिये गये हैं जो पूर्णमासी के ३, ४ दिन आगे-पीछे चन्द्रमा का अधिक प्रकाश होने के कारण नहीं देख पड़ते। आकाश-गङ्गा भी जिनमें नन्हें-नन्हें असंख्य तारे एक दूसरे से मिले हुए देख पड़ते हैं इन चित्रों में नहीं दिखलायी गयी है। अंधेरी रात में यह आकाश-गंगा भी उत्तर की ओर प्रजापति, परशु, कश्यप, राजहंस और श्रवण मण्डलों को नहलाती हुई वृश्चिक, धनु राशियों को सींचती हुई प्रसिद्ध अग्रहायण और लुब्धक मण्डल को पुनर्वसु और प्रश्वा से अलग करती हुई उत्तर से दक्खिन तक आकाश को घेरे हुए है।

जिस समय का चित्र बनाया गया है उससे कुछ पहले देखने पर पूर्व क्षितिज के पास वाले तारे उदय न होने के कारण नहीं देख पड़ेंगे और पच्छिम क्षितिज के पास वाले तारे कुछ ऊपर देख पड़ेंगे और यामोत्तर वृत्त के पास वाले तारे कुछ पूरब की ओर हटे हुए देख पड़ेंगे। परन्तु यदि उपर्युक्त समय से कुछ पीछे आकाश देखा जाय तो पूर्व क्षितिज के तारे कुछ ऊपर उठे हुए देख पड़ेंगे और क्षितिज के पास कुछ नये तारे भी उदय हो चुके रहेंगे; पच्छिम क्षितिज में कुछ तारे अस्त हुए रहेंगे और यामोत्तर वृत्त के पास वाले तारे पच्छिम की ओर ढल चुके रहेंगे।

२५ अक्षांश के जो स्थान उत्तर हैं वहाँ उत्तर के कुछ और तारे देख पड़ेंगे। परन्तु जो स्थान दक्षिण हैं वहाँ दक्खिन के कुछ और तारे देख पड़ेंगे और तारों की ऊँचाई-नीचाई में भी कुछ अन्तर देख पड़ेगा परन्तु इससे कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

चित्र देखने की रीति—जिधर मुँह करके आकाश को देखना हो चित्र में अंकित उसी दिशा को नीचे करके चित्र को खड़ा कर लीजिए। सबसे नीचे वह तारा है जो क्षितिज के पास देख पड़ेगा। नीचे से केन्द्र तक जो जो तारे चित्र में

दिखाये गये हैं क्षितिज से खस्वतिक तक वही तारे उसी क्रम से देख पड़ेंगे।

ज्येष्ठ मास का आकाश चित्र—

सिर के ऊपर—स्वामी खस्वस्तिक से कुछ पूरब और दक्खिन है। पौन घण्टे में यह यामोत्तर वृत्त पर आ जायगा और उस समय खस्वस्तिक से ५ अंश दक्खिन रहेगा।

उत्तर—सप्तर्षि के पहले ५ तारे यामोत्तर वृत्त से पच्छिम हो गये हैं। छठा तारा वशिष्ठ प्रायः यामोत्तर वृत्त पर है। इसी के पास इसका युगल तारा अरुंधती भी ध्यान से देखने पर देख पड़ेगा। सातवाँ तारा मरीचि कुछ पूरब है और १५ मिनट में यामोत्तर वृत्त पर आ जायगा।

सप्तर्षि के नीचे ४ मंद तारे पूरब से पच्छिम की ओर प्रायः एक रेखा में फैले हुए देख पड़ते हैं। यह अजगर की पूंछ की तरफ के तारे हैं, जिसका मुँह इस समय उत्तर-पूर्व दिशा में प्रायः उसी ऊँचाई पर देख पड़ता है जिस ऊँचाई पर लघु-सप्तर्षि के तारे उत्तर दिशा में अजगर की लपेट के नीचे देख पड़ते हैं। उत्तर से कुछ पूर्व की ओर सिफियस के तीन तारे क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं।

उत्तर-पूरब—इस दिशा में क्षितिज के पास ही हंस मण्डल के तारे देख पड़ते हैं। यहाँ से लेकर पूरब-दक्खिन के कोने तक एक चमकती हुई सड़क सी दिखाई पड़ती है। इसी को आकश-गंगा कहते हैं। इसमें अनगिनत तारे आरम्भिक दशा में हैं। हंस के ऊपर बहुत ही चमकीला तारा अभिजित है। प्रथम श्रेणी का यह तीसरा तारा है। इसी के बगल में पूरब की ओर अजगर का मुख है।

पूरब—क्षितिज के पास ही कुछ उत्तर की ओर हटकर श्रवण नक्षत्र के तीन तारे हैं जिसके बीच का तारा बहुत चमकीला और प्रथम श्रेणी का है। श्रवण के ऊपर खस्वस्तिक और क्षितिज के बीचोबीच हरिकुलेश पुंज है जिसके सभी तारे मन्द ज्योति के हैं। हरिकुलेश पुंज के कुछ ही ऊपर ५, ७ तारे मुकुट के आकार के देख पड़ते हैं। इसके तारे भी मन्द ज्योति के हैं। इसके और ऊपर खस्वस्तिक के पास स्वाती पुंज है जिसका स्वाती नामक तारा प्रथम श्रेणी का चमकीला तारा है रङ्ग में कुछ-कुछ लाल है।

पूरब-दक्षिण—इस समय इस दिशा में वृश्चिक राशि के तारे अपनी अपूर्व छटा से आकाश को शोभायमान कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है मानों एक बड़ा भारी बिच्छू आकाश में लटक रहा है जिसका मुख अनुराधा नक्षत्र के तीन तारों से बना हुआ है और पेट में ज्येष्ठा नक्षत्र के तीन तारे लटक रहे हैं। बीच वाला तारा भी प्रथम श्रेणी का और कुछ-कुछ लाल है। बिच्छू का डंक दक्खिन की ओर फैला हुआ

है जिसमें वहुत से छोटे-छोटे तारे चमक रहे हैं। क्षितिज के पास ही मूल नक्षत्र के तारे भी पास ही पास देख पड़ते हैं। कुछ पूरव की ओर परन्तु क्षितिज के पास ही पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के तारे देख पड़ते हैं। मूल और पूर्वाषाढ़ के तारे धनुराशि में हैं जो पूरा उदय नहीं हुआ है। पूर्वाषाढ़ के ऊपर चित्र में मङ्गल ग्रह के दो स्थान दिखलाये गये हैं परन्तु अव वह यहाँ नहीं देख पड़ेगा। अनुराधा के ऊपर विशाखा नक्षत्र के दो तारे दहने बायें फैले हुए देख पड़ते हैं। ये वहुत चमकीले नही हैं परन्तु बड़े महत्व के हैं।

दक्षिण—इस दिशा में क्षितिज के पास ही सेन्टोरी पुंज के दो तीन तारे प्रथम श्रेणी के हैं। ये इतने दक्खिन हैं कि हम काशी, प्रयाग निवासियों को एक घन्टे से अधिक नहीं दिखाई पड़ते। लखनऊ वालों को इससे भी कम समय तक देख पड़ते हैं। अलीगढ़, वरेली वालों को कठिनाई से देख पड़ेंगे और इससे भी उत्तर रहने वालों को नहीं देख पड़ेंगे। कुछ पच्छिम की ओर क्षितिज के पास ही दूसरी श्रेणी के चार तारे पास ही पास देख पड़ते हैं। यह भी एक घन्टे से अधिक नहीं देख पड़ते।

खस्वस्तिक और दक्षिण क्षितिज के मध्य से कुछ और ऊपर प्रथम श्रेणी का चित्रा तारा है जो अपनी स्थिति के कारण बड़े महत्व का है। यह प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है। आज से कोई सवा सोलह सौ वर्ष पहले शरद सम्पात इसी तारे के पास होता था अर्थात् जव सूर्य यहाँ पहुँचता था तव वह दक्षिण गोल में जाता था। आजकल शरद सम्पात इस तारे से २२ अंश ५० कला के लगभग पच्छिम हो गया है और उस जगह है जहाँ १२ वें नक्षत्र के पास श अक्षर लिखा हुआ है। महाराष्ट्र प्रान्त में इसी तारे के सम्वन्ध में बड़ा वाद-विवाद चल रहा है। जो लोग कहते हैं कि अश्विनी नक्षत्र अथवा मेष राशि का आरम्भ उस बिन्दु से माना जाना चाहिए जिससे चित्रा तारा ठीक १८० अंश दूर है वे लोग चैत्र पक्ष के कहलाते हैं। इस पक्ष के समर्थक आचार्य वेंकटेश बापू जी केतकर तथा अन्यान्य सज्जन हैं। इनके विरुद्ध एक दूसरा पक्ष है जिसके समर्थक लोकमान्य तिलक भी थे। इनका मत है कि अश्विनी का आरम्भ स्थान वह विन्दु है जिससे चित्रा तारा १८४ अंश के लगभग दूर है। यह विन्दु रेवती नक्षत्र में है (देखो भाद्रपद मास का चित्र)। इसीलिए इस पक्ष को रैवत पक्ष कहते हैं।

चित्रा से पच्छिम कुछ नीचे की ओर हस्त नक्षत्र के ५ तारे हाथ की अंगुलियों की तरह फैले हुए देख पड़ते हैं। हस्त के ऊपर कन्या राशि के कई मन्द-मन्द तारे देख पड़ते हैं। नीचे की ओर के दो-तीन तारे जो प्रायः सीधी रेखा में हैं क्रान्तिवृत्त के पास ही प्रायः उसी के समानान्तर देख पड़ते हैं। इस रेखा के पच्छिम सिरे पर

जो तारा है उसी के पास आजकल शरद सम्पात विन्दु है, इसलिये जब सूर्य यहां आता है तब वह दक्षिण गोल में जाता है। इसी से चित्रा तारा २३ अंश के लगभग दूर है।

दक्षिण पच्छिम—इस दिशा के आकाश में कोई महत्व के तारे नहीं हैं। बहुत मन्द-मन्द तारों की एक वक्र रेखा चित्रा और हस्त नक्षत्रों के नीचे से होती हुई पच्छिम दिशा तक फैली हुई है जिसके पच्छिमी सिरे पर एक तारा कुछ चमकीला है।

पच्छिम—क्षितिज के पास प्रश्वा नामक तारा देख पड़ता है। इससे उत्तर की ओर कई मन्द-मन्द तारे एक वक्र रेखा में देख पड़ते हैं जिसके उत्तरी छोर पर दो प्रथम श्रेणी के तारे हैं। यही पुनर्वसु नक्षत्र के दो तारे हैं। प्रश्वा से पुनर्वसु तक मन्द-मन्द तारों की जो वक्र रेखा बन जाती है वह मिथुन राशि है। प्रश्वा के ऊपर बहुत मन्द-मन्द तारों का एक वक्र है जिसे कर्क राशि कहते हैं। यह ठीक पच्छिम की ओर देख पड़ता है। इससे ऊपर कुछ ही पच्छिम की ओर हटकर खस्वस्तिक और क्षितिज के बीचोबीच सिंह राशि के तारे अपनी अपूर्व छटा दिखा रहे हैं। सिंह की गर्दन नीचे की ओर लटकी हुई है जिसमें ६, ७ तारे सहज ही देखे जा सकते हैं जिनका आकार हँसिया की तरह जान पड़ता है। दक्खिन वाला अथवा बायीं ओर वाला तारा कुछ कुछ लाल है और प्रथम श्रेणी का है। इसी को मघा का योग तारा या केवल मघा तारा कहते हैं। यह प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है इसलिए बड़े महत्व का है। इससे दाहिने उत्तर की ओर एक और तारा है जो चमक में मघा से कुछ कम है परन्तु इतना चमकीला अवश्य है कि पूर्णमासी की रात में भी देखा जा सकता है। मघा के ऊपर दो तारे दाहिने बायें चमकते हुए देख पड़ते हैं। ये पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के तारे हैं और सिंहराशि की कमर में हैं। सिंह राशि की पूँछ में पूर्वाफाल्गुनी के कुछ और ऊपर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का अकेला तारा है। इस प्रकार यह प्रकट है कि पच्छिम दिशा में दो राशियों के तारे अपनी चमक से सहज ही लोगों को आकर्षित कर सकते हैं; केवल कर्कराशि के तारों को मिथुन और सिंहराशियों के बीच कुछ दक्खिन की ओर ध्यान से देखना पड़ता है।

उत्तर पच्छिम—इस दिशा में क्षितिज के पास प्रजापति मण्डल के केवल प्रजापति नाम का तारा देख पड़ता है। ब्रह्महृदय तारा कुछ पहले अस्त हो गया है। इसके सिवा क्षितिज के पास कोई चमकीला तारा अथवा तारासमूह नहीं है। वहुत ऊपर पहले बतलाये हुए सप्तर्षिमण्डल के तारे देख पड़ते हैं। सप्तर्षिमण्डल के दो ध्रुव-सूचक तारों क्रतु और पुलहकी रेखा में दक्खिन की ओर एक तारा है। इससे और दक्खिन परन्तु पूर्वाफाल्गुनी के उत्तर दोनों के बीच में बहुत मन्द-मन्द तारे सर्पाकार

देख पड़ते हैं और पुराणों में प्रसिद्ध नहुष राजा की याद दिलाते हैं जो अगस्त ऋषि के शाप से सर्प बन गया था।

इस प्रकार ज्येष्ठमास के आकाश चित्र का वर्णन पूरा हुआ।

भाद्रपद मास का आकाश चित्र

सिर के ऊपर——इस समय तीन प्रसिद्ध नक्षत्रमण्डल खस्वस्तिक के आस-पास देख पड़ते हैं। श्रवणमण्डल के तीन तारे प्रायः यामोत्तरवृत्त पर खस्वस्तिक से कुछ दक्खिन हटे हुए देख पड़ते हैं। इसी के पास धनिष्ठा नक्षत्र के चार तारे बहुत पास-पास परन्तु मन्द ज्योति के हैं। यह नक्षत्र ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। वेदांग-ज्योतिष-काल में जब सूर्य यहाँ पहुँचता था तभी उत्तरायण का आरम्भ होता था।

खस्वस्तिक के पास ही एक मन्द तारा है जो हंस की पूंछ का अन्तिम तारा है। इससे उत्तर पूर्व दिशा में एक ही रेखा में दो और तारे हैं जो इससे अधिक चमकीले हैं परन्तु उत्तर वाला इनमें सबसे अधिक चमकीला है। बीच वाले तारे के अगल-बगल पहली रेखा से समकोण बनाते हुए प्रायः एक ही रेखा में दो-तीन तारे और देख पड़ते हैं जो हंस के पंख की तरह जान पड़ते हैं। यह हंस आकाशगंगा में पंख फैलाये तैरता हुआ जान पड़ता है। हंस के पच्छिम अभिजित नक्षत्र है जिसका सबसे चमकीला तारा भी अभिजित नाम से प्रसिद्ध है। यह आकाशगङ्गा से बाहर पच्छिम की ओर है। चमक में इस तारे का स्थान तीसरा है।

आकाशगङ्गा—यह चित्र में नहीं दिखलाई गई है परन्तु इस समय इसका दृश्य बहुत ही मनोरम है। इस समय यह उत्तर-पूर्व क्षितिज से दक्षिण-पच्छिम क्षितिज तक फैली हुई है। उत्तर-पूर्व दिशा में इस समय परशु या पारसीक मण्डल उदय हो रहा है। वहीं से आकाशगङ्गा का भी आरम्भ देख पड़ता है जो राह में काश्यप मण्डल को नहलाती हुई सिफियस के बगल से होती हुई हंस को अच्छी तरह शराबोर कर देती है। हंस के उत्तर वाले तारे से ही इसकी दो शाखायें हो जाती हैं जो प्रायः समानान्तर दिशा में आगे बढ़ती हुई दक्षिणपच्छिम क्षितिज के पास फिर मिलती हुई जान पड़ती हैं। पूर्ववाली शाखा श्रवण नक्षत्र को परिप्लावित करती हुई धनु-राशि के मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्रों को लीन करती हुई क्षितिज में गुप्त हो जाती है। पच्छिमवाली शाखा में चमकीले तारे बहुत कम हैं। दक्षिण-पच्छिम क्षितिज के पास वृश्चिक के डंक के तारों को डुबाती हुई यह भी गुप्त हो जाती है। ज्येष्ठा नक्षत्र इस शाखा के पच्छिमी तट पर देख पड़ता है।

उत्तर—लघु सप्तर्षि के तारे ध्रुव से पच्छिम की ओर फैले हुए हैं। लघु सप्तर्षि के कुछ और पच्छिम अजगर लटका हुआ देख पड़ता है जिसके मुख के चार तारे अभिजित के पास तक फैले हुए देख पड़ते हैं। अजगर की पूंछ के पास सप्तर्षि मण्डल के ध्रुव-सूचक तारे उत्तर और उत्तर-पच्छिम दिशाओं के बीच क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं। इस सप्तर्षि मण्डल के अन्य तारे उत्तर-पच्छिम दिशा में देख पड़ते हैं।

ध्रुवतारा के पूरब कुछ ऊपर की ओर सिफियस के ४ मंद तारे हैं जिसके और पूरब काश्यप मण्डल के तारे अंग्रेजी के डवलू (W) अक्षर का आधार बनाते हुए देख पड़ते हैं। काश्यप मण्डल से नीचे उत्तर-पूर्व दिशा में परशु या पारसीक मण्डल के तारे क्षितिज के पास ही हैं।

पूर्व—पूर्व और उत्तर-पूर्व दिशाओं के बीच क्षितिज के पास ही अश्विनी नक्षत्र के तीन तारे उदय होते हुए देख पड़ते हैं। इसके ऊपर अंतरमदा (Andromeda) का वक्र देख पड़ता है जिसका आरम्भ पारसीक मण्डल के पास से होता है। इस वक्र पर पूर्वाभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रों के उत्तरवाले तारे हैं। इन दो नक्षत्रों के दो-दो तारे मिलकर एक वर्गाकार बनाते हैं जिसे भाद्रपदावर्ग अथवा (square of Pegasus) कहते हैं। वर्ग के नीचे वाले दो तारे उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हैं और ऊपर वाले तारे पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में हैं। उत्तराभाद्रपद के तारों की रेखा की सीध में दक्खिन की ओर बढ़ने पर प्रायः उतनी ही दूरी पर जितनी दूरी पर ये दो तारे आपस में हैं बसंत-संपात विन्दु है जहाँ क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त एक दूसरे को काटते हुए जान पड़ते हैं। जब सूर्य यहाँ देख पड़ता है तभी वसंत ऋतु का आरम्भ होता है और सूर्य उत्तर गोल में आता है। इसी दिन दिन रात समान होते हैं और इसी समय से दिन बड़ा और रात छोटी होने लगती है।

पूर्व-दक्षिण – इस दिशा में चमकीले तारे बहुत कम हैं। ज्येष्ठ के महीने में इस दिशा में जितने तारे थे वे सब इस महीने में दक्षिण-पच्छिम दिशा में हो गये हैं। क्षितिज के पास एक प्रथम-श्रेणी का तारा (Fomalhaut) अवश्य देख पड़ता है जिसे हिन्दी में कुम्भज कहना उचित प्रतीत होता है यद्यपि कुम्भज का पर्याय अगस्त्य तारा इससे बहुत भिन्न है। इसका नाम कुम्भज मैंने दो कारणों से रखा है। एक कारण तो यह है कि यह कुम्भ राशि के पास है, दूसरा कारण यह है कि यह ७,८ बजे संध्या के समय प्रायः आश्विन के महीने में दिखाई देने लगता है जब वर्षा ऋतु का अन्त होता है। जबकि अगस्त्य नामक तारे का उदय वर्षा ऋतु के ठीक मध्य में होता है और प्रातःकाल केवल थोड़ी देर तक देख पड़ता है। कुम्भज से कुछ

और दक्षिण की ओर तीन तारे समकोण त्रिभुज के तीन कोण विन्दु बनाते हुए देख पड़ते हैं। इनका नाम सारस रखा गया है क्योंकि अंग्रेजी में इन्हें Crane कहते हैं।

कुम्भज के ऊपर कुछ पूरब की ओर हटे हुए कुम्भराशि के मन्द मन्द तारे हैं। सारस के ऊपर और श्रवण नक्षत्र के नीचे दोनों के बीच में मकरराशि के मन्द तारे हैं।

दक्षिण—इस दिशा में इस समय क्षितिज के पास कोई चमकीले तारे नहीं हैं। श्रवण नक्षत्र बहुत ऊपर खस्वस्तिक के पास देख पड़ता है।

दक्षिण-पच्छिम—जैसे ज्येष्ठ के महीने में दक्षिण-पूर्व दिशा वृश्चिक और धनु राशियों के तारों से शोभायमान होती है इसी तरह इस महीने में दक्षिण-पच्छिम दिशा इन्हीं दो राशियों के तारों से जगमगा रही है। यहाँ विशेषता यह है कि इस समय धनुराशि के सभी तारे, तथा पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों के भी तारे दिखाई पड़ रहे हैं। विच्छू के और पच्छिम क्षितिज के पास विशाखा नक्षत्र के तारे भी दिखाई देते हैं।

पच्छिम—इस दिशा में इस समय कोई तारे विशेष महत्व के नहीं हैं। विशाखा के तारे कुछ दक्खिन हट कर हैं। स्वाती का तारा कुछ उत्तर की ओर हटा हुआ है परन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रायः इसी दिशा में स्वाती का तारा है। स्वाती मण्डल के ऊपर मुकुट और मुकुट के ऊपर हरिकुलेश मण्डल के मन्द मन्द तारे हैं जिनकी चर्चा ज्येष्ठ मास के आकाश चित्र के पूरव दिशा के वर्णन में अच्छी तरह की जा चुकी है।

मार्गशीर्ष मास का आकाश चित्र

इस मास में आकाश बहुत स्वच्छ रहता है। वैशाख, जेठ महीनों की धूल और सावन भादों के वादल कहीं देख नहीं पड़ते और न माघ, फागुन के कुहरा से ही दृष्टि को वाधा पहुँचती है। इसलिए इस महीने के आकाश-चित्र से ज्ञान और मनोरंजन दोनों होते हैं। इस महीने के आकाश में पूरब दिशा में बहुत से नये तारे और तारा समूह देख पड़ते हैं जिनकी चर्चा प्राचीन साहित्य में भी अनेक स्थलों पर की गयी है।

उत्तर—क्षितिज के पास लघु सप्तर्षि के तारे लटके हुए देख पड़ते हैं। इस समय इनमें ध्रुव तारा सबसे ऊपर है। लघु सप्तर्षि के ऊपर सिफियस के तीन मन्द तारे पच्छिम की ओर फैले हुए देख पड़ते हैं। क्षितिज से जितने ऊपर ध्रुव तारा है, ध्रुव तारा से उतने ही ऊपर काश्यप मण्डल अंग्रेजी के एम् (M) अक्षर के आकार का देख पड़ता है। इसके चार बड़े तारे यामोत्तर वृत्त को लाँघकर पच्छिम की ओर

चले गये हैं, केवल एक तारा यामोत्तरवृत्त से कुछ ही पूरब है। काश्यप मण्डल के ऊपर अन्तरमदा का वक्र है जिसका केवल एक तारा अब यामोत्तर-वृत्त से पूरब है और सब पच्छिम की ओर चले गये हैं।

सिर के ऊपर—अश्विनी नक्षत्र बिलकुल सिर पर देख पड़ता है।

उत्तर पूरब—इस दिशा में कुछ पूरब की ओर और हटकर पुनर्वसु के दो तारे उदय हो चुके हैं। इनके ऊपर ठीक उत्तर-पूर्व दिशा में प्रजापति मण्डल चमक रहा है जिससे पाँच मुख्य तारे पंचभुज क्षेत्र बनाते हुए जान पड़ते हैं। इस मण्डल के उत्तर वाले दो तारे बहुत तेजवान हैं और नीचे ऊपर देख पड़ते हैं। नीचे वाले तारे प्रजापति और ऊपर वाले को ब्रह्महृदय कहते हैं। चमक में इसका स्थान चौथा है। आकाश में सबसे चमकीला तारा लुब्धक है जो इस समय पूर्व दिशा से कुछ दक्खिन है और क्षितिज के पास ही देख पड़ता है। दूसरा तारा अगस्त्य है जो अभी क्षितिज के ऊपर नहीं आया है। तीसरा तारा अभिजित है जो उत्तर-पच्छिम क्षितिज के पास देख पड़ता है और चौथा तारा ब्रह्महृदय है। ब्रह्महृदय के सम्मुख पंचभुज क्षेत्र के दक्खिन कोने पर अग्नि नामक तारा है।

प्रजापति मण्डल के ऊपर पारसीक मण्डल या परशुमण्डल है जिसके दक्षिण सिरे पर कृत्तिका नक्षत्र के ६ तारे पास ही पास देख पड़ते हैं। पारसीक मण्डल के ऊपर प्रायः सिर पर अश्विनी नक्षत्र के तीन तारे हैं जिनमें दो बड़े हैं।

पूर्व—इस दिशा में प्रश्वा नामक प्रथम श्रेणी का तारा उदय हो चुका है परन्तु क्षितिज के बिलकुल पास है। इससे कुछ दक्षिण हटकर क्षितिज के पास ही लुब्धक अपनी दिव्य ज्योति से चमक रहा है। लुब्धक और प्रश्वा के ऊपर प्रसिद्ध आग्रहायण मण्डल (Orion) है जो अपनी दिव्य ज्योति, आकार और प्रसिद्धि के कारण अत्यन्त प्राचीन काल से महत्वपूर्ण समझा जाता है। लोकमान्य तिलक ने इसी के सूक्ष्म विचार से अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ओरायन (Orion) में सिद्ध किया है कि वेद के जिस मंत्र में इसकी चर्चा की गयी है वह आज से कम से कम ६००० वर्ष पहले प्रकाशित हुआ होगा। इसको कालपुरुष भी कहते हैं। इसकी चर्चा यूनानी और पारसी साहित्य में बहुत आलंकारिक भाषा में की गयी है। इस मण्डल के बीच में तीन चमकीले तारे प्रायः एक ही रेखा में पास ही पास देख पड़ते हैं जिन्हें इल्वक कहते हैं। इनमें सबसे ऊपर वाला तारा प्रायः विषुवद्वृत्त पर है इसलिए क्षितिज के जिस विन्दु पर यह तारा उदय होता है वही ठीक पूर्व दिशा है और जहाँ अस्त होता है वही पच्छिम दिशा है। आग्रहायण के चारों कोनों पर चार तारे अपनी अपूर्व छटा दिखलाते हैं। इनमें उत्तरवाला नीचे का तारा कुछ कुछ लाल रंग का

देख पड़ता है। इसे ही आर्द्रा नक्षत्र का योग तारा कहते हैं। इसके ऊपरवाला तारा मृगशिरा नक्षत्र का योग तारा कहलाता है। दक्खिन की ओर का ऊपरवाला तारा भी प्रथम श्रेणी का है। गाँववाले इस मण्डल को हन्नाहन्नी कहते हैं और जाड़े की रात में इसकी स्थिति से समय का पता लगाते हैं। आग्रहायण मण्डल के दक्खिन कई तारे मंद ज्योति के हैं जिनसे शशक का आकार बना हुआ जान पड़ता है। इसीलिए इनको शशक (Leporis) कह सकते हैं।

आग्रहायण के ऊपर कुछ उत्तर हटकर रोहिणी नक्षत्र है जिसका नीचे वाला तारा प्रथम श्रेणी का कुछ कुछ लाल रंग का है। इसी रंग के कारण इसका नाम रोहिणी पड़ा। रोहिणी नक्षत्र के ५ तारों से जो आकार बनता है वह अङ्गरेजी के (V) अक्षर के सदृश होता है। रोहिणी नक्षत्र के उत्तर प्रजापति मंडल और ऊपर कुछ उत्तर की ओर कृत्तिका पुंज है जिसे गाँव वाले कचपचिया कहते हैं। इससे भी रात को समय जानने का काम लिया जाता है। कृत्तिका के ऊपर प्रायः शिर पर अश्विनी नक्षत्र है।

जिन तारापुंजों की चर्चा इस समय की गयी है और जो इस समय पूर्व दिशा में देख पड़ते हैं जाड़े की ऋतु में रात भर दिखाई देते हैं इसलिए इनको शीतकाल के नक्षत्र (Winter constellations) कहते हैं।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशा में कोई चमकीले तारे नहीं देख पड़ते। शशक कुछ पूरब है जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है।

दक्षिण—इस दिशा में क्षितिज के पास तीन तारों का पुंज है जिसे अङ्गरेजी में फीनिक्स कहते हैं। बहुत ऊपर तिमिमंडल देख पड़ता है जिसका मुँह ह्वेल मछली के आकार का नीचे की ओर लटका हुआ और फैला हुआ जान पड़ता है। इसके तारे सभी धीमी ज्योति के हैं।

दक्षिण-पच्छिम—इस दिशा में इस समय सारस और कुम्भज या दूसरा अगस्त देख पड़ते हैं। दूसरे की चर्चा पहले की जा चुकी है।

पच्छिम—दक्षिण और पच्छिम दिशाओं के बीच क्षितिज के पास मकर राशि के मन्द मन्द तारे फैले हुए हैं। इनके ऊपर कुम्भ राशि के तारे भी देख पड़ते हैं।

पच्छिम—इस दिशा में क्षितिज के पास ही श्रवण नक्षत्र के तारे देख पड़ते हैं। श्रवण के ऊपर कुछ उत्तर हटकर धनिष्ठा के तारे हैं। श्रवण के बहुत ऊपर पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद के तारे हैं जिनका वर्गाकार भी बहुत ही साफ-साफ देख पड़ता है। वर्गाकार क्षेत्र के नीचेवाली भुज के दो तारे पूर्वाभाद्रपद और ऊपर वाले भुज के दो तारे उत्तरा भाद्रपद के तारे कहलाते हैं।

उत्तर-पच्छिम—इस दिशा में अभिजित नक्षत्र क्षितिज के पास ही देख पड़ता है। अभिजित के ऊपर हंसमंडल के तारे हैं।

इससे और उत्तर क्षितिज के पास अजगर के मुख के कुछ तारे देख पड़ते हैं।

आकाश-गंगा—इस समय आकाशगंगा पूर्व क्षितिज के पास से उत्तर-पच्छिम क्षितिज तक फैली है। पूर्व क्षितिज में यह प्रश्वा को उत्तर तट पर और लुब्धक को दक्खिन तट पर छोड़ती हुई आग्रहायण के उत्तर, अग्नि और ब्रह्महृदय के बीच से होती हुई पारसीक मंडल और काश्यप मंडल के मध्य हंसमंडल के पास दो शाखाओं में बँटनी हुई और श्रवण को दक्खिन तट पर छोड़ती हुई पच्छिम और उत्तर-पच्छिम क्षितिज में विलीन हो जाती है।

फाल्गुन मास का आकाशचित्र

सिर पर—मिथुनराशि इस समय ठीक सिर पर है। पुनर्वसु के दोनों तारे प्रायः खस्वस्तिक पर और प्रश्वा कुछ दक्खिन है।

उत्तर—लघुसप्तर्षि ध्रुवतारा से पूर्व की ओर फैला हुआ है। ध्रुवतारा से पच्छिम सिफियस के तीन तारे हैं जिनमें से एक क्षितिज से बिल्कुल मिला हुआ है। लघुसप्तर्षि के पूर्व अजगर की लपेट है जिसका मुँह अभी क्षितिज से नीचे है।

उत्तर-पूर्व—इस दिशा में सप्तर्षि मंडल के सातों तारे दिखाई पड़ रहे हैं। सप्तर्षि के ऊपर सर्पाकार मंद-मंद तारे हैं।

उत्तर-पूर्व और पूर्व दिशाओं के बीच क्षितिज के पास ही कुछ कुछ लाल रंग का स्वाती तारा है।

पूरब—इस दिशा में क्षितिज के पास कन्या राशि के तारे दिखाई पड़ रहे हैं। अभी चित्रा उदय नहीं हुआ है। कन्या राशि के ऊपर सिंहराशि के सब तारे दिखाई पड़ रहे हैं। नीचे वाला अकेला तारा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का है। इसके ऊपर दो तारे पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के हैं। पूर्वाफाल्गुनी के ऊपर मघा नक्षत्र के तारे हंसिया के आकार के देख पड़ते हैं। इस हंसिया के नीचे के दो तारे बहुत चमकीले हैं जिनमें दक्खिनवाला तारा मघा का योगतारा है। यह भी कुछ कुछ लाल रंग का देख पड़ता है।

हँसिया के ऊपर बहुत मंद-मंद तारे हैं। उत्तरवाले तारों को पुष्यनक्षत्र और दक्खिन वालोंतारों को आश्लेषा नक्षत्र कहते हैं। यहीं कर्कराशि भी है। पुनर्वसु और मघा के बीच में जितने मंद-मंद तारे हैं सभी कर्कराशि में कहे जा सकते हैं।

पूर्व और पूर्व-दक्षिण दिशाओं के बीच ४,५ तारे क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं। ये हस्तनक्षत्र के तारे हैं।

पूर्व क्षितिज से लेकर सिर के ऊपर तक वरन् कुछ और पच्छिम तक जितने नक्षत्र क्रान्तिवृत्त के पास देख पड़ते हैं उनको वर्षा के नक्षत्र कहते हैं। इसलिए नहीं कि ये वर्षा ऋतु में देख पड़ते हैं वरन् इसलिए कि जब सूर्य इन नक्षत्रों में रहता है तभी यहाँ वर्षा होती है। वर्षा के नक्षत्रों के नाम क्रमानुसार यह है :—आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा।

पूर्व-दक्षिण —इस दिशा में कोई प्रसिद्ध तारा इस समय नहीं देख पड़ता।

दक्षिण—इस दिशा में क्षितिज के पास कई तेजवान तारों का समूह है जो जहाज के आकार का देख पड़ता है इसीलिए इसको नौका पुंज (Argo Navis) कहते हैं। इस समूह का प्रधान तारा अगस्त याम्योत्तरवृत्त से पच्छिम हो गया है और क्षितिज के पास देख पड़ता है। चमक में इसका स्थान दूसरा है। पहला स्थान लुब्धक को प्राप्त है जो इससे ठीक ऊपर देख पड़ता है। नौका पुंज के ऊपर लुब्धक मंडल है।

पच्छिम दक्षिण—इस दिशा में क्षितिज के पास कोई चित्ताकर्षक नक्षत्र नहीं है। कुछ ऊपर शशक और इससे भी ऊपर प्रसिद्ध आग्रहायण मंडल है। आग्रहायण मंडल के ऊपर प्रायः सिर पर मिथुन राशि के तारे हैं।

पच्छिम—इस दिशा में कुछ उत्तर को हटकर अश्विनी नक्षत्र क्षितिज के पास ही है। इससे ऊपर २, ३ बहुत मंद तारे हैं जिसे भरणी नक्षत्र कहते हैं। भरणी से कुछ और उत्तर तीन तारे त्रिकोण बनाते हुए देख पड़ते हैं। भरणी के ऊपर कुछ पच्छिम की ओर कृत्तिका नक्षत्र है। कृत्तिका के कुछ ऊपर और पच्छिम रोहणी नक्षत्र है। कृत्तिका से उत्तर पारसीक मंडल है इन दोनों नक्षत्रों के ऊपर प्रजापति मंडल है जिसका अग्नि तारा कृत्तिका के ऊपर और ब्रह्महृदय पारसीक के ऊपर है। ब्रह्महृदय के ऊपर प्रजापति का तारा है। पारसीक और प्रजापति मंडलों के उत्तर वाले तारे ब्रह्महृदय, प्रजापति आदि उत्तर पच्छिम दिशा में देख पड़ते हैं।

त्रिकोण के उत्तर अंतरमदा के कुछ तारे क्षितिज के पास देख पड़ते हैं।

उत्तर पच्छिम—इस दिशा में पारसीक और प्रजापति मंडल के उत्तर वाले तारे हैं जिनकी चर्चा अभी हो चुकी है। इस दिशा से कुछ उत्तर और हटकर काश्यप मंडल के तारे क्षितिज के पास हैं।

आकाश-गंगा—इस समय उत्तर पश्चिम के कोने से दक्खिन क्षितिज तक फैली हुई है। उत्तर-पश्चिम क्षितिज से आरम्भ कर के इसमें या इसके आसपास कश्यप, पारसीक, प्रजापति, आग्रहायण, लुब्धक मंडल और नौका पुंज के तारे हैं।

इन चार मासों के आकाश चित्रों और इनके वर्णनों से आकाश के सभी सभी प्रधान तारों और तारासमूहों की जानकारी की जा सकती है। इनकी सहायता से रात्रि में जब आकाश निर्मल हो दिशा, देश और काल का ज्ञान सहज ही हो सकता है।

इस प्रकार नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार नामक आठवें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

नवम अध्याय

उदयास्ताधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—सूर्य के निकट आ जाने के कारण ग्रहों और नक्षत्रों के अदृश्य होने का विचार। २-३ श्लोक—ग्रहों के उदय और अस्त होने की दिशा। ४-५ श्लोक—ग्रहों का कालांश जानने की रीति। ६-६ श्लोक-- ग्रहों के परम कालांश। १०-११ श्लोक—यह जानने की रीति कि किसी इष्टकाल में उदय या अस्त होने को कितने दिन शेष हैं या बीत गये हैं। १२-१५ श्लोक—किस तारे का क्या परम कालांश है। १६-१७ श्लोक—तारे के दृश्य या लोप होने के दिन को जानने की रीति। १८ श्लोक—उन तारों के नाम जो कभी अदृश्य नहीं होते]

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि ग्रहों और तारों का उदय और अस्त कब होता है और कैसे जाना जाता है। यहाँ उदय और अस्त के अर्थ साधारण उदय और अस्त के अर्थों से भिन्न हैं। साधारणतः जब सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि पूर्व क्षितिज के ऊपर आ जाते हैं तब इनका उदय समझा जाता है और जब ये पच्छिम क्षितिज के नीचे चले जाते हैं तब इनका अस्त समझा जाता है। यह पृथ्वी की दैनिक गति के कारण होता है जिसे पुराने आचार्य प्रवह-गति कहते थे। इसके सिवा जब ग्रह चन्द्रमा या तारे सूर्य के बहुत पास हो जाते हैं जिससे वे सूर्योदय के लगभग पूर्व क्षितिज के ऊपर आते हैं और सूर्यास्त के लगभग पच्छिम क्षितिज के नीचे चले जाते हैं तब भी वे अस्त कहे जाते हैं। ऐसी दशा में वे सूर्य के तीव्र प्रकाश के कारण देखे नहीं जा सकते। जिस समय वे सूर्य के निकट आने के कारण अदृश्य हो जाते हैं उस समय से वे अस्त समझे जाते हैं और जिस समय वे सूर्य से इतनी दूर हो जाते हैं कि सूर्योदय के कुछ पहले या सूर्यास्त के कुछ पीछे देख पड़ने लगते हैं उस समय उनका उदय समझा जाता है। इस अधिकार में इसी प्रकार के उदय अस्त की बातें बतलायी गयी हैं। पाश्चात्य ज्योतिषी इसको heliacal rising and setting कहते हैं।

अध्याय का प्रयोजन—

अथोदयास्तमययोः परिज्ञानं प्रकीर्त्यते।
दिवाकरकराक्रान्त मूर्तीनामल्पतेजसाम् ॥१॥

अनुवाद—(१) सूर्य के प्रकाश से आक्रान्त होने के कारण अथवा दब जाने के कारण अल्प प्रकाशवाले पिंडों का जो उदय अस्त होता है उसके जानने की रीति बतलायी जाती है।

विज्ञान भाष्य—इसकी व्याख्या ऊपर की जा चुकी है।

उदय और अस्त की दिशा—

सूर्यादभ्यधिकाः पश्चादस्तं जीवकुजार्कजाः।
ऊनाः प्रागुदयं यान्ति शुक्रज्ञौ वक्रिणौ तथा ।।२।।
ऊनाः विवस्वतः प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञभार्गवाः।
व्रजन्त्यभ्यधिकाः पश्चादुदयं शीघ्रयायिनः ।।३।।

अनुवाद—(२) जब गुरु, मंगल और शनि के भोगांश सूर्य के भोगांश से कुछ अधिक होते हैं तब इनका पच्छिम में अस्त होता है और जब इनके भोगांश से कुछ कम होते हैं तब इनका पूर्व में उदय होता है। इसी प्रकार वक्री शुक्र और बुध का भी उदय अस्त होता है, अर्थात् जब वक्री शुक्र और बुध के भोगांश सूर्य के भोगांश से अधिक होते हैं तब इनका पच्छिम में अस्त और कम होते हैं तब पूर्व में उदय होता है। (३) चन्द्रमा, (मार्गी) बुध और शुक्र के भोगांश सूर्य के भोगांश से कम होते हैं तब ये पूर्व में अस्त होते हैं और जब ये तीव्र गति के कारण सूर्य से कुछ आगे बढ़ जाते हैं तब पच्छिम में उदय होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकों में संक्षेप में यह बतलाया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध इत्यादि के भोगांशों से अथवा स्पष्ट स्थानों से मोटी रीति से कैसे जाना जा सकता है कि कौन ग्रह किस दिशा में उदय या अस्त होगा। इस काम के लिए ग्रहों के दो भाग कर दिये गये हैं। एक भाग में गुरु, मंगल और शनि हैं जिनकी गति सूर्य की गति से मंद है और दूसरे भाग में बुध, शुक्र और चन्द्रमा हैं जिनकी गति सूर्य की गति से तीव्र है। इनमें भी बुध और शुक्र की गतियों में विशेषता होने के कारण कुछ भिन्नता है।

गुरु, मङ्गल और शनि की अपेक्षा सूर्य अधिक चलता है इसलिए सूर्य ही गुरु, मङ्गल और शनि की ओर बढ़ता हुआ देख पड़ता है। जब सूर्य इनके इतना निकट पहुँच जाता है कि ये अदृश्य हो जाते हैं तब सूर्य के भोगांश से इनका भोगांश अधिक रहता है क्योंकि भोगांश की नाप पच्छिम से पूरब की ओर होती है। अदृश्य होने के पहले ये तीनों ग्रह सूर्यास्त के पीछे पच्छिम क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं और वहीं गोधूली प्रकाश की तीव्रता के कारण अदृश्य हो जाते हैं इसलिए कहा जाता है कि ये तीन ग्रह पच्छिम में अस्त होते हैं। कुछ दिन में जब सूर्य इनसे आगे

बढ़ जाता है और इनका भोगांश सूर्य के भोगांश से कम हो जाता है तब ये फिर पूर्व में सूर्योदय के कुछ पहले दिखलाई पड़ने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि पूर्व में इनका उदय होता है।

जब वक्री बुध और शुक्र के भोगांश सूर्य के भोगांश से अधिक होते हैं तब ये सूर्यास्त के उपरान्त पच्छिम क्षितिज में देख पड़ते हैं और वहीं अदृश्य हो जाते हैं। कुछ दिन में ये ग्रह अपनी वक्र गति के कारण सूर्य की दूसरी ओर बहुत शीघ्र चले जाते हैं और इनके भोगांश सूर्य के भोगांश से कम हो जाते हैं। ऐसी दशा में ये सूर्योदय के पहले पूर्व क्षितिज में फिर दीखने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि वक्री बुध और शुक्र भी पच्छिम में अस्त और पूर्व में उदय होते हैं।

परन्तु चन्द्रमा तथा मार्गी बुध और शुक्र की गति सूर्य की गति से अधिक होती है इसलिए जब ये सूर्य की ओर बढ़ते हुए उसके पास इतना पहुँच जाते हैं कि अदृश्य हो जाते हैं तब इनके भोगांश सूर्य के भोगांश से कम होते हैं और ये पूर्व क्षितिज में ही सूर्योदय के पहले अदृश्य होते हैं। इसलिए कहा जाता है कि ये पूर्व में अस्त होते हैं। जब ये सूर्य के आगे बढ़ जाते हैं तब इनके भोगांश सूर्य के भोगांश से अधिक हो जाते हैं और सूर्यास्त के उपरान्त पच्छिम क्षितिज में दीखने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि चन्द्रमा और मार्गी बुध और शुक्र पच्छिम में उदय होते हैं।

कालांश जानने की रीति—

सूर्यास्तकालिकौ पश्चात्प्राच्यामुदयकालिकौ।
दिवाकरग्रहौ कुर्यात् दृक्कर्माथ ग्रहस्य तु ॥४॥
तयोर्लग्नान्तरप्राणाः कालांशाः षष्टिभाजिताः।
प्रतीच्यां षड्भयुतयोस्तद्वल्लग्नान्तरासवः ॥५॥

अनुवाद—(४) यदि पच्छिम में किसी ग्रह के उदय या अस्त होने का समय जानना हो तो अनुमान से जाने हुए दिन के सूर्यास्त काल के सूर्य और ग्रह को स्पष्ट करे और पूरब में किसी ग्रह के उदय या अस्त होने का समय जानना हो तो उस दिन के सूर्योदय-काल के सूर्य और ग्रह को स्पष्ट करे तथा ग्रह का दृक्कर्म संस्कार करे। दृक्कर्म संस्कृत ग्रह और सूर्य के उदय लग्नों के असुओं का अन्तर निकाले और इसको ६० से भाग दे तो ग्रह का पूर्व में उदय या अस्त सम्बन्धी कालांश ज्ञात होता है। यदि ग्रह का पच्छिम में उदय या अस्त सम्बन्धी कालांश जानना हो तो सूर्य और ग्रह के भोगांश में ६ राशि जोड़ने से जो आवे उनके लग्नों के असुओं के अन्तर को ६० से भाग देकर कालांश जानना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—सूर्य के उदय होने से जितने समय पहले कोई ग्रह पूर्व क्षितिज में आता है अर्थात् उदय होता है उस समय को उस ग्रह का कालान्तर कहते हैं। लग्न काल की गणना सूक्ष्मता के लिए असुओं में की जाती है और विपुवद्-वृत्त की एक कला का उदय एक असु में होता है। इसलिए ६० काल का उदय ६० असुओं में होता है परन्तु ६० कला एक अंश के समान है। इसलिए सूर्य और ग्रह के उदय-कालों के अन्तर को जो प्राय· असुओं में होता है और जिसे ५ वें श्लोक में लग्नान्तर-प्राण या लग्नान्तरासु कहा गया है ६० से भाग देने पर जो आता है उसको अंशों में समझ लेना चाहिए, इसी को ग्रह का कालांश कहते हैं।

पृष्ठ ५६१ में बतलाया गया है कि यह जानने के लिए कि ग्रह किस समय क्षितिज में लग्न होता है इसके स्पष्ट भोगांश में आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करना चाहिए क्योंकि स्पष्टाधिकार के अनुसार ग्रह का जो भोगांश आता है उससे तो केवल यह मालूम होता है कि ग्रह अपनी कक्षा में कहाँ है। परन्तु ग्रह की कक्षा क्रान्ति-वृत से भिन्न होती है इसलिए जिस समय ग्रह का क्रान्तिवृत्त वाला विन्दु क्षितिज पर आता है उस समय ग्रह का बिम्ब क्षितिज पर नहीं वरन् अपने शर के अनुसार कुछ आगे या पीछे उदय होता है (देखो चित्र १०७, १०८) जिसका ज्ञान दृक्कर्म संस्कार से ही होता है। इसीलिए चौथे श्लोक में पहले दृक्कर्म संस्कार आने करने को कहा गया है। दृक्कर्म संस्कार करने पर जब ग्रह के क्षितिज पर का समय ठीक ठीक ज्ञात हो जाय तभी यह जाना जा सकता है कि सूर्योदय से कितना पहले वह ग्रह पूर्व क्षितिज में लग्न होता है।

परन्तु जब ग्रह का उदय या अस्त पच्छिम में होता है तब सूर्यास्तकालिक सूर्य और ग्रह का समय स्पष्ट किया जाता है क्योंकि तब यह जानने की आवश्यकता पड़ती है कि सूर्यास्त से कितने समय पीछे ग्रह का अस्त होता है। इस काम के लिए भी ग्रह में दृक्कर्म संस्कार की आवश्यकता पड़ती है जैसा कि उदय लग्न के समय की जाती है। अब दृक्कर्म संस्कृत ग्रह अथवा भास्कराचार्यजी के शब्दों में दृग्ग्रह और सूर्य के अस्तलग्नासुओं का अन्तर जानना चाहिए अर्थात् यह देखना चाहिए कि जिस समय सूर्य अस्त होता है उस समय से कितने असु उपरान्त इष्ट ग्रह का बिम्ब पच्छिम क्षितिज पर आता है। इन असुओं को ६० से भाग देने पर अस्त समय के कालांश अथवा अस्तांश का ज्ञान हो जाता है। परन्तु ५वें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि अस्तकालिक सूर्य और दृग्ग्रह के भोगांशों में ६ राशि या १८० अंश जोड़ कर दोनों के लग्नासुओं का अन्तर निकाले। इसका कारण यह है कि जिस समय सूर्य अस्त होता रहता है उस समय पूर्व क्षितिज में क्रान्तिवृत्त का वह विन्दु लग्न

होता है जो सूर्य से १८० अंश आगे रहता है। इसी प्रकार जब दृग्ग्रह अस्त होता रहता है तब भी पूर्व क्षितिज में वह विन्दु लग्न रहता है जो दृग्ग्रह से १८० अंश आगे है। इसलिए यदि यह मालूम हो जाय कि सूर्य और दृग्ग्रह के अस्तकालों में पूर्व क्षितिज के लग्नों के उदयासुओं में क्या अन्तर होता है तो भी अस्तांश या कालांश का ज्ञान हो सकता है।

ग्रहों के परम कालांश—

एकादशामरेड्यस्य तिथिसङ्ख्याऽर्कजस्य तु।
कालांशा भूमिपुत्रस्य दश सप्ताधिकास्तथा ॥६॥
पश्चादस्तमयोऽष्टाभिः उदयः प्राङ्महत्तया।
प्रागस्तमुदयः पश्चादल्पत्वाद्दशभिः भृगोः ॥७॥
एवं बुधो द्वादशभिः चतुर्दशभिरंशकैः।
वक्री शीघ्रगतिश्चार्कात्करोत्यस्तमयोदयौ ॥८॥
एभ्योऽधिकैः कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शनाः।
भवन्ति लोके खचरा भानुमाग्रस्तमूर्तयः ॥९॥

अनुवाद—(६) गुरु का परमकालांश ११, शनि का १५ और मङ्गल का १७ है। (७) शुक्र का विम्व वड़ा देख पड़ने के कारण पच्छिम में अस्त होने का और पूर्व में उदय होने का परमकालांश ८ है परन्तु विम्व छोटा देख पड़ने के कारण इसके पूर्व में अस्त होने का और पच्छिम में उदय होने का परमकालांश १० है। (८) इसी प्रकार वक्री और शीघ्र गति वाला बुध जब सूर्य से १२ कालांश पर रहता है तब पच्छिम में उसका अस्त और पूर्व में उदय होता है। परन्तु इसका पूर्व में अस्त होने और पच्छिम में उदय होने का कालांश १४ है। (९) सूर्य के प्रकाश से ग्रस्त होने के कारण अथवा दब जाने के कारण यदि किसी ग्रह का किसी समय का कालांश उसके परमकालांश से अधिक हुआ तो उस समय वह ग्रह देख पड़ता है और कम हुआ तो नहीं देख पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में ग्रहों के कालांशों की वह सीमा वतलायी गयी है जिससे अधिक होने पर ग्रह देख पड़ते हैं और कम होने पर नहीं देख पड़ते। इसलिए इस सीमा को परमकालांश कहा जा सकता है। प्रत्येक ग्रह का परम-कालांश भिन्न है। इसका कारण यह है कि जिस ग्रह का विम्व बड़ा होता है वह सूर्य के पास होने पर भी सुगमतापूर्वक देखा जा सकता है और जिसका विम्व छोटा होता है वह कुछ कठिनाई से देखा जा सकता है। दूर के ग्रहों में वृहस्पति का विम्व सबसे बड़ा है इसलिए इसका परम कालांश ११

माना गया है अर्थात् यदि सूर्योदय से ११ अंश या ११० पल ४४ मिनट पहले बृहस्पति उदय हो अथवा सूर्यास्त से इतना ही समय पीछे अस्त हो तो यह प्रातः-काल या सायङ्काल के संधि-प्रकाश में भी देखा जा सकता है। इसलिए जब बृहस्पति का कालांश घटते घटते ११ हो जाता है तब यह पच्छिम क्षितिज में अदृश्य हो जाता है। इसके बाद जब इसका कालांश घटते घटते शून्य हो जाता है तब यह सूर्य के साथ उदय या अस्त होता है। इस समय से इसका कालांश बढ़ने लगता है और जब तक ११ अंश नहीं होता तब तक यह अदृश्य रहता है क्योंकि सूर्य के तीव्र प्रकाश में यह देखा नहीं जा सकता। इसी को साधारण बोलचाल में गुरु-आदित्य अथवा 'गुरु-बादिक' भी कहते हैं। यह अवधि साधारणतः १ महीने की होती है। इस अवधि में हिन्दू लोग विवाह, मुंडन इत्यादि कोई शुभ काम नहीं करते।

शनि का बिम्ब गुरु के बिम्ब से छोटा और मङ्गल के बिम्ब से बड़ा होता है इसलिए शनि का परमकालांश १५ और मङ्गल का १७ माना गया है। परन्तु शुभ कामों में इनके उदय अस्त का विचार नहीं किया जाता है।

शुक्र के परमकालांश ८ और १० माने गये हैं। इसका कारण यह है कि जब शुक्र वक्री होकर पच्छिम में अस्त होता है और पूर्व में उदय होता है तब पृथ्वी से इसका अन्तर बहुत कम रहता है क्योंकि यह सूर्य और पृथ्वी के बीच में रहता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १०१—१०३)। निकट रहने से इसका बिम्ब बहुत बड़ा देख पड़ता है इसलिए यह सन्धि प्रकाश में बहुत देर तक देखा जा सकता है। इसकी सीमा ८ कालांश ३२ मिनट या ८० पल की मानी गयी है अर्थात् जब सूर्यास्त के उपरान्त ३२ मिनट से भी कम समय में शुक्र अस्त होता है तब नहीं देख पड़ता और कहा जाता है कि शुक्र पच्छिम मे अस्त हो गया। इसके बाद जब शुक्र सूर्योदय से ३२ मिनट पहले उदय होने लगता है तब यह फिर देख पड़ने लगता है और कहा जाता है कि पूर्व में शुक्र उदय हो गया। यह अवधि एक सप्ताह से अधिक नहीं होती क्योंकि जब शुक्र वक्री रहता है तब शुक्र और सूर्य का अन्तर दोनों की गतियों के योग के समान प्रतिदिन घटता या बढ़ता है इसलिए शुक्र बहुत जल्द सूर्य के पीछे चला जाता है।

परन्तु जब शुक्र पूर्व में अस्त और पच्छिम में उदय होता है तब इसका परम कालांश १० होता है क्योंकि इस समय यह पृथ्वी से बहुत दूर सूर्य की दूसरी ओर रहता है (देखो चित्र २१, २२)। दूर रहने से शुक्र का बिम्ब छोटा देख पड़ता है इसलिए यह संध्या प्रकाश में उतनी देर तक नहीं देख पड़ता जितनी देर तक वक्री

होने पर देख पड़ता है। जब यह पूर्व में अस्त होता है तब मार्गी रहता है अर्थात् इसकी गति उसी ओर को होती है जिस ओर को सूर्य चलता हुआ देख पड़ता है इसलिए इन दोनों का अन्तर दोनों की गतियों के अन्तर के समान प्रति दिन घटता या बढ़ता है। इसलिए शुक्र के अस्त होने की यह अवधि दो महीने के लगभग की होती है।

जब तक शुक्र अस्त रहता है तब तक भी हिन्दुओं में विवाह, मुण्डन इत्यादि कोई शुभ काम नहीं किये जाते।

शुक्र की तरह बुध भी जब वक्री रहता है तब पृथ्वी के निकट रहने के कारण बड़ा देख पड़ता है और इसका परम कालांश १२ होता है। परन्तु जब यह पृथ्वी से बहुत दूर सूर्य की दूसरी ओर रहता है तब छोटा देख पड़ता है और इसका परम कालांश १४ होता है।

बुध के अस्त होने का विचार विवाह, मुण्डन इत्यादि में नहीं किया जाता।

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ग्रहों के उदय और अस्त होने की गणना किस प्रकार की जाती है और इनके परम कालांश क्या हैं। अब यहाँ दो प्रश्न उपस्थित होते हैं, एक तो यह कि क्या कालांश जानने की यह रीति शुद्ध है, दूसरे यह कि क्या ये परमकालांश ठीक हैं। इसका उत्तर देना इसलिए सुगम है कि इसकी जांच इन ग्रहों के प्रत्यक्ष दर्शन से की जा सकती है। क्योंकि इनके उदय अस्त की परिभाषा ही ऐसी है कि जब तक ये सूर्य के निकट होने के कारण बिना किसी यन्त्र की सहायता के देखे न जा सकें तभी तक इनको अस्त समझना चाहिये अन्यथा उदय। इस कसौटी पर कसने से तो यही सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त अथवा अन्य किसी भारतीय[1] ज्योतिष सिद्धान्त के आधार पर निकाले हुए उदय या अस्त कालों में तो कभी-कभी दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह दिन का अन्तर पड़ जाता है। यह प्रकट है कि कालांश की शुद्ध-शुद्ध गणना तभी संभव है जब ग्रहों का स्पष्ट भोगांश और शर बिलकुल शुद्ध हों। परन्तु भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर जाने गये भोगांश और शर ठीक नहीं होते जैसा कि पिछले अध्यायों के अनेक स्थानों में बतलाया जा चुका है। उदाहरण के लिये (पूर्णिमान्त) चैत्र कृष्ण ११ भौमवार सम्वत् १९८३ वि० तदनुसार २९ मार्च सन् १९२७ की मध्य रात्रि

---

१. आचार्य केतकर का ज्योतिर्गणित भारतीय ज्योतिष सिद्धान्त के आधार पर नहीं बनाया गया है वरन् पाश्चात्य सिद्धान्तों के आधार पर बनाया गया है जिनमें अर्वाचीन आविष्कारों की भी सहायता ली गयी है।

	मंगल			बुध			गुरु			शुक्र			शनि		
	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क
विश्व पंचांग[1]	१	२५	३८	१०	२१	०	१०	२९	५०	०	१८	३६	७	९	२६
भारतभूषण पंचांग[2]	१	२५	४०	१०	१९	३०	१०	२४	३६	०	१६	३८	७	१४	११
गणेशदत्त शर्मा का पंचांग[3]	१	२५	४०	१०	१९	३०	१०	२४	३६	०	१६	३८	७	१४	११
नवल किशोर प्रेस का पंचांग[4]	१	२६	५२	१०	२१	४७	१०	२४	४४	०	१५	४८	७	१४	१८
विक्रम विजय पंचांग[5]	१	२५	४०	१०	१७	५८	१०	२२	४२	०	१६	३७	७	१४	२०
ज्योतिर्गणित के अनुसार[6]	१	२६	५३	१०	२२	२०	१०	२३	५४	०	१५	३५	७	१४	४९

(नोट—निर्देशों के लिए पृष्ठ ६६० देखें)

काल के ५ तारा-ग्रहों के निरयन भोग ६ पंचांगों के अनुसार दिये जाते हैं जिनसे यह भी पता लगेगा कि ग्रहों की गणना में हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न मतों के अनुसार कितना भेद पड़ता है। (देखें पृष्ठ ६५६)

प्रत्येक ग्रह के भोगांशों की तुलना करने से यह प्रकट हो जाता है कि शुद्ध सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाले हुए भोगांश ज्योतिर्गणित अथवा दृग्गणित से निकाले हुए भोगांशों से बहुत भिन्न है। गुरु और शनि के भोगांश तो पाँच-पाँच छः छः अंश भिन्न हैं इसके प्रतिकूल मकरंद सारणी के अनुसार जाने हुए भोगांश दृग्गणित से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसलिए ग्रहों के उदय अस्त का विचार सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार कदापि ठीक नहीं हो सकता। इसके सिवा यह तो दिखलाया ही जा चुका है कि दृक्कर्म संस्कार की रीति भी स्थूल है। इसलिए यह सिद्ध है कि उदय अस्त का विचार करने के लिए हमको दृग्गणित सिद्ध मूलाङ्कों से ही काम लेना चाहिये और इसके लिए या तो ज्योतिर्गणित से काम लिया जाय जो पाश्चात्य ज्योतिष सिद्धान्त के आधार पर बनाया गया है अथवा नया स्वतन्त्र सिद्धान्त तैयार किया जाय, क्योंकि नाविक पंचांगों के आधार पर ग्रहों का उदय अस्त जानकर अपने धार्मिक कृत्यों, मुण्डन, विवाह इत्यादि का निश्चय करना उचित नहीं जान पड़ता।

१—शुद्ध सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार बनाया हुआ काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित तथा पं० मदनमोहन मालवीय, ज्योतिषाचार्य पं० रामयत्न ओझा, पं० रामव्यास पाण्डेय, पं० पूर्णचन्द्र त्रिपाठी इत्यादि द्वारा सम्पादित।

२—मकरंद सारणी के अनुसार बनाया हुआ काशी के ज्योतिषाचार्य पं० रामनिहोर द्विवेदी तथा श्री रामानन्द मिश्र द्वारा विरचित तथा पं० रामयत्न ओझा द्वारा अनुमोदित ?

३—यह भी मकरंद सारणी के अनुसार बनाया गया और पं० बलदेव मिश्रात्मज पं० गणेशदत्त शर्मा द्वारा सम्पादित।

४—पं० रामप्रसाद सिद्धान्ती के पुत्र श्री पं० श्यामविहारी द्वारा बनाया गया।

५—सूर्य-सिद्धान्त संस्कृतं मकरंदीयम् काश्यक्षवृत्तीयं द्वग्गणितैक्य विषैरलंकृतम् जब्बलपुरीय पं० श्री लक्ष्मीप्रसाद विद्याभूषण विरचितम्।

६ आचार्य वेंकटेश बाबू केतकर के ज्योतिर्गणित के अनुसार लेखक द्वारा गणना किया हुआ परन्तु अयनांश २२ अंश ४१ कला मानकर, इसलिये दृग्गणित के अनुसार शुद्ध है। केवल अश्विनी का आदि विन्दु सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार स्थिर किया गया है।

स्थान	पंचांग का विवरण	शुक्रास्तकाल	शुक्रोदयकाल	गुरु का अस्तकाल	गुरु का उदयकाल
काशी	बालकृष्ण शास्त्री का	ज्येष्ठ शुक्ल १०, ८५ २६ मई १९२८ ई०	अधिक श्रावण शु० १३, ८५; ३० जुलाई २८	चैत्र शुक्ल ३, ८५ विक्रमी	वैशाख शुक्ल ८, ८५ वि० २७
,,	विश्वपंचांग काशी विश्व विद्यालय का	ज्येष्ठ शुक्ल १०, २६ मई	अ० श्रा० शु० १३; ३० जुलाई	२४ मार्च १९२८ ई० चैत्र शुक्ल २, २३ मार्च	अप्रैल १९२८ ई० वैशाख शु० ८, २७ अप्रैल
लखनऊ	रामप्रसाद सिद्धान्ती का नवल किशोर प्रेस का	ज्येष्ठ शुक्ल २, २१ मई	अ० श्रा० कृ० ३, ४ अगस्त	चैत्र शुक्ल ४, २५ मार्च	वैशाख शु० ७, २६ अप्रैल
औंध	शास्त्रशुद्ध ऐक्य वर्द्धक पंचांग	* आ० कृ० ३, ६ जून	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल
बागलकोट	केतकी पंचांग	,, ,,	,, ,,	??	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल
पूना	चित्रशाला पंचांग	आ० कृ० ३, ६ जून	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल

*यहाँ कृष्ण पक्ष पूर्णिमान्त गणना के अनुसार लिखा गया है, अमान्त गणना से यह ज्येष्ठ कृष्ण है जो महाराष्ट्र प्रान्त में प्रचलित है।

स्थान	पंचांग का विवरण	शुक्रास्तकाल	शुक्रोदयकाल	गुरु का अस्तकाल	गुरु का उदयकाल
पूना	पंचांग प्रवर्तक कमेटी का	ज्ये० शु० १३, १ जून	श्रा० शु० १५, १ अगस्त	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० ३, २२ अप्रैल
,,	शंकर शास्त्री का	ज्ये० शु० १४, २ जून	अ० श्रा० शु० ६, २६ जुलाई	,, २, २३ मार्च	वैशाख शु० ४, २३ अप्रैल
मुंबई	वालकृष्ण तुकाराम का	,, १५, ३ जून	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	,, १, २२ ,,	वैशाख शु० २, २२ अप्रैल
,,	गुजराती पत्राच्या न्यूस प्रेस में चैत्री पंचांग	,, ३, २२ मई	अ० श्रा० कृ० ३, ४ अगस्त	,, ४, २५ ,,	वैशाख शु० ६, २५ अप्रैल

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि ग्रहों का उदय अस्त जानने के लिए कालांश जानने की प्राचीन रीति में ही स्थूलता है। अब यह बतला देना भी आवश्यक है कि ग्रहों के परम कालांश के परिमाण में भी आजकल कितना मतभेद है। उदाहरण के लिये हम इसी वर्ष के गुरु और शुक्र के उदय अस्त के कालों को लेकर पिछले पृष्ठ पर दिखला चुके हैं कि किसने कितना परम कालांश माना है।

इस कोष्ठक से यह स्पष्ट है कि काशी के दोनों पंचांगों के अनुसार शुक्रास्त और शुक्रोदय के दिन एक है परन्तु गुरु के अस्तकाल के दिन में एक दिन का अन्तर है। इसी प्रकार आँध के शास्त्रशुद्ध ऐक्यवर्द्धक पंचांग, बागलकोट के केतकी पंचांग और पूना के चित्रशाला पंचांग में शुक्र तथा गुरु के उदय और अस्त के दिन एक हैं। इससे जान पड़ता है कि काशी के पंचांगवालों ने इन ग्रहों के परम कालांश एकमत से कुछ माना है और महाराष्ट्र के तीन पंचागवालों ने एकमत होकर कुछ माना है। काशी के विश्वपंचांग से यह सिद्ध होता है कि इसमें ग्रहों का उदय अस्त १९२८ ई० के नाविक पंचांग के आधार पर स्थिर किया गया है। केतकी पंचांग ज्योतिर्गणित के अनुसार बनाया गया है जो अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्त से मिलता-जुलता है इसलिए यह सहज ही जाना जा सकता है कि आचार्य केतकर तथा इनके अनुयायियों ने गुरु और शुक्र के परमकालांश क्या माना है।

अब हम १९२८ ई० के नाविक पंचांग से शुक्र के उदय और अस्त काल के दिन के सूर्य और शुक्र के विपुवांश और क्रान्ति से परमकालांश जानने की रीति लिखते हैं:—

तारीख	सूर्य का विपुवांश	सूर्य की क्रान्ति	शुक्र का विपुवांश	शुक्र की क्रान्ति
	घंटा मिनट सेकंड	अंश कला विकला	घंटा मिनट सेकंड	अंश कला विकला
२९ मई	४ २४ १६.५९	२१ ३७ ३७.६	३ ४७ २.६७	१९ १२ १९.४
३० जुलाई	८ ३७ ४६.८६	१८ ३१ ८.८	९ ११ ३७.२६	१७ ३७ ९.१
६ जून	४ ५७ ३.३२	२२ ३९ ३८.२	४ २७ ५४.५९	२१ २० १८.७
२८ जुलाई	८ २९ ५७.३८	१८ ५९ ३२.७	९ १ ३९.९	१८ १८ ६.५

२६ मई को सूर्य की क्रान्ति २१ अंश ३७ कला ३७.६ विकला अथवा २१°३८′ है और शुक्र की क्रान्ति १६ अंश १२ कला १६.४ विकला अथवा १६°१२′ है। यह जानने के लिए कि सूर्य और शुक्र किस समय क्षितिज पर आवेंगे पहले इनके चरकाल जानना आवश्यक है (देखो चित्र ६० पृष्ठ ३०८)। काशी का अक्षांश २५°२०′ है।

उदयकालिक सूर्य की चरज्या = स्परे २१°३८′ × स्परं २५°२०′
= ·३६६६ × ·४७३७
= ·१८७६
∴ चरांश = १०°५०′
∵ चरकाल = ४३ मिनट २० सेकंड

सूर्य की क्रान्ति उत्तर है इसलिए सूर्य के विषुवांश से यह चरकाल घटाने पर यह ज्ञात होगा कि सूर्योदय के समय विषुवद्वृत्त का कौन सा विन्दु पूर्व में लग्न है (देखो चित्र ६०)।

	घं०	मि०	से०
सूर्य का विषुवांश	४	२४	१७
चरकाल		४३	२०
अन्तर	३	४०	५७

इसलिए सूर्योदय काल में विषुवद्वृत्त का वह विन्दु पूर्व में लग्न है जो वसंत सम्पात से ३ घन्टा ४० मि० ५७ सेकंड या ३ घन्टा ४१ मिनट आगे है।

उदयकालिक शुक्र की चरज्या = स्परे १६°१२′ × स्परे २५°२०′
= ·३४८२ × .४७३७
= ·१६४६
∴ चरांश = ६·३०′
∴ चरकाल = ३८ मिनट

	घं०	मि०
शुक्र का विषुवांश	३	४७
चरकाल		३८
अंतर	३	६

इसलिए शुक्र जिस समय पूर्व क्षितिज पर आवेगा उस समय विषुवद्वृत्त का वह विन्दु पूर्व में लग्न होगा जो वसंत सम्पात से ३ घन्टा ६ मिनट आगे है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य के लग्न काल में विषुवद्वृत्त का ३ घन्टा ४१ मिनट लग्न था इसलिए सूर्य और शुक्र के लग्नकालों में ३ घन्टा ४१ मिनट—३ घन्टा ९ मिनट=३२ मिनट का अन्तर होगा। इसलिए विश्वपंचांग के अनुसार पूर्व अस्त होने के समय शुक्र का परमकाल ३२ मिनट और परमकालांश ८ है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि नाविक पंचांग के जो विषुवांश ऊपर के कोष्टक में दिये गये हैं वे ग्रीनविच के २९ मई के मध्यम मध्याह्न काल के हैं जो काशी के साढ़े पाँच बजे संध्या के लगभग के हैं। यथार्थ में इस दिन के काशी के सूर्योदय काल के विषुवांशों और क्रान्तियों से काम लेना चाहिए परन्तु शुक्र और सूर्य की गतियों में बहुत थोड़ा अन्तर है इसलिए इन दोनों का सापेक्ष अन्तर प्रातःकाल भी प्रायः उतना ही समझ लेने में कोई हर्ज नहीं है जितना सायंकाल के लिए समझा गया है।

दूसरी बात और भी विचार करने की है। त्रिप्रश्नाधिकार में बतलाया गया है कि वातावरण के कारण प्रकाश में वर्तन हो जाता है जिससे सूर्य यथार्थ उदयकाल से दो-ढाई मिनट पहले ही देख पड़ने लगता है (देखो पृष्ठ ३७८)। इसलिए ऊपर की गणना से शुक्र का जो परमकाल ३२ मिनट होता है वह यथार्थ में ३० ही मिनट या उससे भी आधा मिनट कम ठहरता है।

अब देखना चाहिए कि ६ जून को शुक्र का कालांश क्या है। इसके लिए प्रातःकाल के विषुवांश और क्रान्ति से काम लिया जायगा क्योंकि इससे अधिक शुद्धता होगी। यहाँ सेकंड और विकलाओं की गणना नहीं की जायगी।

	सूर्य				शुक्र			
	विषुवांश		क्रान्ति		विषुवांश		क्रान्ति	
पूना की	घंटा	मिनट	अंश	कला	घंटा	मिनट	अंश	कला
५ जून की संध्या में	४	५३	२२	३३	४	२३	२१	६
६ जून की संध्या में	४	५७	२२	४०	४	२८	२१	२०
६ जून के सूर्योदय काल में	४	५५	२२	३६	४	२५·५	२१	१३

पूना का अक्षांश १८°३०′।

∴ पूना में सूर्य की चरज्या=स्परे १८°३०′×स्परे २२°३६

=·३३४६×·४१६३

=·१३९३

∴ चरांश = ८°

∴ चरकाल = ३२ मिनट

इसलिये सूर्योदय काल में विपुवद्वृत्तीय लग्न = ४ घन्टा ५५ मिनट—३२ मिनट = ४ घन्टा २३ मिनट

शुक्र की चरज्या = स्परे १८°३०′ × स्परे २१°१३′

= ·३३४६ × ·३८८२

= ·१२६६

∴ चरांश = ७°२८′

∴ चरकाल = ३० मिनट के लगभग

इसलिए जिस समय शुक्र क्षितिजस्थ होगा उस समय विपुवद्वृत्तीय लग्न होगा।

४ घन्टा २५$\frac{३}{४}$ मिनट—३० मिनट = ३ घन्टा ५५$\frac{३}{४}$ मिनट

परन्तु सूर्योदय काल में विपुवद्वृत्तीय लग्न = ४ घन्टा २३ मिनट

इसलिए चित्रशाला पंचांग या केतकी पंचांग के अनुसार शुक्र का परम काल हुआ।

४ घन्टा २३ मिनट—३ घन्टा ५५$\frac{३}{४}$ मिनट = २७$\frac{१}{४}$ मिनट

यदि इससे २$\frac{१}{२}$ मिनट घंटा दिया जाय, क्योंकि वर्तन के कारण सूर्योदय गणनाकाल से २ या ढाई मिनट पहले ही होता है, तो शुक्र का परमकाल २५ मिनट ही होता है जो सवा ६ अंश के समान हुआ।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि दृश्य गणना से भी शुक्रोदय काल और शुक्रास्त काल में बड़ी भिन्नता पड़ जाती है क्योंकि कोई परमकालांश कुछ मानता है और कोई कुछ। इसलिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि भारतवर्ष भर के ज्योतिषी मिलकर इस बात का निश्चय अवश्य करें कि किस ग्रह का परम कालांश क्या माना जाय, नहीं तो पंचांगों की यह धाँधली कभी बंद नहीं हो सकती।

अब अधिक उदाहरण देकर विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। शुक्र के परमकालांश के सम्बन्ध में आचार्य वेंकटेश बापू केतकर ने अपने ज्योतिर्गणित के पृष्ठ ३३३ में जो लिखा है वह ज्यों का त्यों यहाँ दे दिया जाता है :—

वातावरणे निर्मले सति हेमन्ततौं षण्मिते कालांशान्तरे शुक्रो दृश्यते। प्रयत्ने कृते सार्धपञ्चमिते कालांशान्तरेऽपि द्रष्टुं शक्यते। परमस्मिन्प्रसङ्गे तत्तेजोहानिरियती जायते यत्केवलास्तीक्ष्णेक्षणा ज्योतिर्विद एव तं द्रक्ष्यन्ति।

बाल्य और वृद्धकाल

यह स्पष्ट है कि वातावरण सदैव निर्मल नहीं रहता। गरमी के दिनों में तो धूल इतनी रहती है कि क्षितिज के ऊपर सूर्य भी कुछ दूर तक नहीं देख पड़ता इसलिए ऐसी दशा में शुक्र या गुरु को देखना बड़ा कठिन होता है। दूसरी बात यह है कि देखने वाले की दृष्टि की मंदी और तीव्रता से भी ग्रहों के देखने में दो तीन दिन का अंतर हो सकता है। इन सब कारणों से ग्रहों के उदय या अस्त होने के दिन से दो तीन या चार दिन आगे पीछे तक वे अदृश्य हो सकते हैं। जान पड़ता है इसी कारण पुराने आचार्यों ने गुरु और शुक्र के बाल्य-वृद्धकाल का विचार किया है परन्तु इसमें भी एकमत नहीं है जैसा कि मुहूर्त चिंतामणि में लिखा है :—

पुरःपश्चाद्भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्धकम्
पक्षं पंच दिनं ते द्वेगुरोः पक्षमुदाहृते ॥२७॥
ते दशाहं द्वयोःप्रोक्तं कैश्चित्सप्तदिनं परैः।
त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्धाहं च त्र्यहं विधोः ॥२८॥[1]

गुरु और शुक्र के बाल्यकाल और वृद्धकाल में भी बहुत से शुभकर्मों का वैसे ही निषेध है जैसे इनके अस्तकाल में।[2]

उदय वा अस्त का विचार कालांश से होना चाहिए या उन्नतांश से ?

इस सम्बन्ध में एक बात और भी विचार करने के योग्य है। ग्रहों के उदय-अस्त के विषय में अब तक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो गया है कि जब ग्रह सूर्य के इतना पास आ जाते हैं कि प्रातः या सायंकाल के संधिप्रकाश (twilight) के कारण देख नहीं पड़ते तभी कहा जाता है कि वे अस्त हो गये। परन्तु सन्धिप्रकाश की तीव्रता और सीमा सब ऋतुओं और स्थान में एकसी नहीं रहती। इस बात का कोई भी अनुभव कर सकता है कि हमारे यहाँ जाड़े के दिनों में संधिप्रकाश की सीमा बढ़ जाती है और गरमी के दिनों में घट जाती है। इसका कारण यह है कि संधिप्रकाश का सम्बन्ध क्षितिज के नीचे गये हुए सूर्य के नतांश से होता है जो सूर्य की क्रान्ति और इष्टस्थान के अक्षांश पर आश्रित है (देखो पृष्ठ २६१ सूत्र १)। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि जब तक सूर्य क्षितिज के नीचे १८° से अधिक नहीं होता तब तक इसके प्रकाश का कुछ न कुछ अंश वातावरण के द्वारा लौटकर भूतल पर आता रहता है। सूर्य के अस्तकाल से लेकर उस समय तक जब तक वह क्षितिज के नीचे १८ अंश से अधिक नहीं जाता जो मन्द प्रकाश मिलता है उसी को सन्धि प्रकाश कहते हैं।

---

१. संस्कार प्रकरण

२. देखो मुहूर्त चिंतामणि शुभाशुभ प्रकरण श्लोक ४६,४७

इसी प्रकार सूर्य के उदयकाल से जब पहले वह क्षितिज से १८ अंश नीचे हो जाता है तबसे प्रातःकालिक संधि-प्रकाश का आरंभ होता है। यह प्रकट है कि जब सूर्य १८ अंश क्षितिज से नीचे रहता है तब यह खस्वस्तिक से ९०+१८=१०८ अंश नीचे होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिस समय सूर्य का पूर्व-नतांश १०८ अंश होता है उस समय से संधिप्रकाश का आरंभ होता है और जिस समय उसका पूर्वनतांश ९० अंश होता है उस समय तक प्रातःकालिक संधिप्रकाश रहता है। इसी प्रकार जब तक सूर्य का पच्छिम-नतांश ९० से १०८ रहता है तब तक सायं-कालिक संधिप्रकाश रहता है।

पृष्ठ २९१ के सूत्र (१) में बतलाया गया है कि नतांश और नतकाल का क्या सम्बन्ध है और यह अक्षांश और क्रान्ति पर किस प्रकार आश्रित है। इस सूत्र में नतांश की जगह १०८, तथा इष्टस्थान के अक्षांश और इष्टदिन की सूर्य की क्रान्ति के मान उत्थापित किये जाँय तो जो नतकाल आवेगा उससे सूर्य का उदय-कालिक या अस्तकालिक नतकाल घटा दिया जाय तो उस दिन के संधिप्रकाश का परिमाण मालूम हो जायगा। उदय या अस्तकाल का नतकाल जानने के लिए नतांश का परिमाण ९० अंश ३५ कला लेना पड़ेगा क्योंकि उदय या अस्त होते हुए सूर्य या किसी ग्रह का प्रत्यक्ष नतांश ९० होता है परन्तु वातावरण के वर्तन के कारण यथार्थ नतांश ३५ कला और बढ़ जाता है (देखो पृष्ठ ३७८-३८०) इसलिये सूर्य का उदय या अस्तकालिक नतांश यथार्थ में ९०°३५′ होता है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि संधिप्रकाश सब ऋतुओं में और सब स्थानों में एकसा नहीं होता इसलिए ग्रहों के दर्शन और लोप का दिन जानने के लिए सब स्थानों और सब ऋतुओं के लिए एक ही ग्रह का परम कलांश भिन्न-भिन्न मानाना पड़ेगा जहाँ संधिप्रकाश देर तक रहेगा वहाँ उसी परम कलांश से काम न चलेगा जो थोड़े संधिप्रकाश के लिए काम दे सकता है। इन सब बातों का विचार करने से यही युक्तियुक्त जान पड़ता है कि ग्रहों के लोप और दर्शन का विचार उनके उन्नतांश से किया जाय न कि कालांश से जैसा कि आचार्य केतकर जी पृष्ठ ३३३ में लिखते हैं :—

सर्वे ग्रहाः शीघ्रकेन्द्रगत्या सूर्यमुपेत्य कानिचिद्दिनान्यदृश्या भवन्ति। इयं चमत्कृती रविग्रहयोरुदयास्तमययोः कालयोरन्तरमाश्रयत इति पूर्वाचार्याणां मतं न समञ्जसम्। यतः संध्यारुणदीप्तिः सूर्यस्य क्षितिजादपस्तनान्नतांशाननुसरति न च कालांशान्। यत्र देशे ३५° अक्षांशास्तत्र विषुवदिवसे संधिप्रकाशः सूर्यस्योदयास्त-कालात्प्राक् पश्चात् २ घ० ४० पल वर्तते। परमयन्प्रवृत्तिदिवसे स एव ४ घड़ी

४० पल भवति । एतयोः कालांशाः क्रमेण २२°, २८° भवन्ति । अतएव सिद्धं यदेकैरेव कालांशैर्यद्दर्शनादर्शन गणितं पूर्वाचार्यैरुक्तं तदुपपत्ति विरुद्धं स्थूलं चेति । अतो ग्रहाणां लोपदर्शन गणितं तेषामुन्नतांशश्रयेणैव कार्यम् ।

आचार्य केतकर के मत से शुक्र का उदयास्तकालिक उन्नतांश ६°.४ और गुरु का ११° है । (देखो ज्योतिर्गणित पृ० ३५१)

उदाहरण—काशी में सायन मकर संक्रान्ति, सायन मेष संक्राति और सायन कर्क संक्रान्ति के दिन संधि प्रकाश की अवधि क्या होती है ?

काशी का अक्षांश २५°१८′

सायन मकर संक्रान्ति तथा सायन कर्क संक्रान्ति के दिन सूर्य की क्रान्ति २३°२७′ (देखो पृष्ठ ३०६) और सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है ।

सायन कर्क संक्रान्ति के दिन का सन्धि-प्रकाश जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होती है—

बतलाया गया है कि संधि प्रकाश के आरंभ या अन्त में सूर्य का नतांश १०८ होता है इसलिए २६१ पृष्ठ के सूत्र (१) के अनुसार

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{\text{कोज्या } १०८^\circ - \text{ज्या } २५^\circ १८' \times \text{ज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \times \text{कोज्या } २३^\circ २७'}$$

$$= \frac{-\text{ज्या } १८^\circ - \text{ज्या } २५^\circ १८' \times \text{ज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \times \text{कोज्या } २३^\circ २७'}$$

$$= \frac{-\cdot ३०६० - \cdot ४२७४ \times \cdot ३६७६}{\cdot ६०४१ \times \cdot ६१७५}$$

$$= \frac{-\cdot ३०६० - \cdot १७०१}{\cdot ८२६५}$$

$$= \frac{-\cdot ४७६१}{\cdot ८२६५}$$

$$= -\cdot ५७७६$$

यहाँ कोज्या नतकाल ऋणात्मक है इसलिए नतकालांश ६० अंश से अधिक है । यदि यह ६० अंश से अ अंश अधिक हो तो

कोज्या नतकाल = कोज्या (६० + अ = − ज्या अ = − ·५७७६

∴ अ = ३५°१७′

∴ संधि प्रकाश के आरंभ काल का नतकाल

$$= ६०^\circ + ३५^\circ १७' = १२५^\circ १७'$$

पृष्ठ ३७६ के अनुसार काशी में सूर्योदयकालिक नतकाल

$$=१०१^\circ ५०' + ४३' = १०२^\circ ३३'$$

इसलिए संधिप्रकाश काल $= १२५^\circ १७' - १०२^\circ ३३'$

$$= २२^\circ ४४' = १ \text{ घंटा } ३० \text{ मि० } ५६ \text{ सेकंड}$$

सायन मकर संक्रान्ति के दिन का संधिप्रकाश काल—

इस समय सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है इसलिए उपर्युक्त सूत्र में ऋण चिह्न धन हो जायगा (देखो पृष्ठ २६३) और संधिप्रकाश के आरम्भ का नतकाल नीचे लिखे समीकरण से सिद्ध होगा—

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{-\text{ज्या } १८^\circ + \text{ज्या } २५^\circ १८' \times \text{ज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोज्या } २५^\circ\ १८' \times \text{कोज्या } २३^\circ\ २७'}$$

$$= \frac{-\cdot ३०९० + \cdot १७०१}{\cdot ८२९५}$$

$$= \frac{-.१३८९}{\cdot ८२९५}$$

$$= -\cdot १६७५$$

$$\therefore \text{कोज्या नतकाल} = \text{कोज्या } (९० + \text{अ}) = -\text{ ज्या अ}$$

$$= -\cdot १६७५$$

$$\therefore \text{अ} = ९^\circ ३८'$$

$\because$ संधिप्रकाश के आरम्भ काल का नतकाल

$$= ९०^\circ + ९^\circ ३८' = ९९^\circ ३८'$$

पृष्ठ ३७६ के अनुसार सूर्योदयकालिक नतकाल

$$= ७८^\circ १०' + ४३' = ७८^\circ ५३'$$

$\because$ संधि प्रकाशकाल $= ९९^\circ ३८' - ७८^\circ ५३' = २०^\circ ४५'$

$$= १ \text{ घंटा } २३ \text{ मिनट}$$

सायन मेष या तुलासंक्रान्ति के दिन सन्धि प्रकाशकाल—

इस दिन सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है इसलिए ज्या क्रांति भी शून्य के समान होगी परन्तु कोज्या १ होगी इसलिए संधिप्रकाश के आरम्भ काल का नतकाल इस सूत्र से जाना जायगा।

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{\text{कोज्या } १०८^\circ}{\text{कोज्या } २५^\circ १८'}$$

$$= \frac{-\text{ ज्या } १८^\circ}{\cdot ९०४१}$$

$$= \frac{-\cdot ३०६}{\cdot ६०४०}$$

$$= -\cdot ३४१८$$

∴ कोज्या नतकाल = कोज्या (९० + अ) = − ज्या अ

= − ·३४१८

∴ अ = १९°५९′

∴ संधिप्रकाश के आरम्भ का नतकाल = ९० + १९°५९′

= १०९°५९′

पृष्ठ ३८० के अनुसार सूर्योदय का नतकाल ९०°३८′·७ या ९०°३९′ है। इसलिए

संधिप्रकाशकाल = १०९°५९′ − ९०°३९′ = १९°२०′

= १ घंटा १७ मिनट २० सेकंड

इस प्रकार यह सिद्ध है कि किसी स्थान पर संधिप्रकाश काल सब ऋतुओं में एकसा नहीं होता। ऊपर जो गणना की गयी है उसमें सूर्य उस समय क्षितिज पर समझा गया है जिस समय सूर्य का केन्द्र क्षितिज पर आता है परन्तु सूर्य का ऊपरी विम्ब १ मिनट के लगभग पहले ही क्षितिज को छू लेता है क्योंकि सूर्य का बिम्बार्ध १६ कला के लगभग होता है। इस कारण संधि प्रकाश काल १ मिनट और कम हो जाता है।

उदयास्तकाल के कितने दिन बीते हैं या शेष हैं—

तत्कालांशान्तरकला भुक्त्यन्तर विभाजिताः।
दिनादितत्फलं लब्धैर्भुक्तियोगेन वक्रिणः॥१०॥
यल्लग्नासुहते भुक्ती अष्टादश शतोद्धृते।
स्यातां कालगतीताभ्यां दिनादि गत गम्ययोः॥११॥

अनुवाद—(१०) ग्रह के इष्टकालिक कालांश और परमकालांश के अंतर को कलाओं में लिखकर सूर्य और ग्रह की दैनिक कालगतियों के अन्तर से (यदि ग्रह मार्गी हो) और योग से (यदि ग्रह वक्री हो) भाग देने से जो आता है वह दिनों की संख्या है। (११) सूर्य या ग्रह जिस राशि में हो उसके लग्नासुओं को स्पष्ट दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को १८०० से भाग देने पर जो प्राप्त होता है वही ग्रह की कालगति होती है। सूर्य और ग्रह की कालगतियों (के अन्तर या योग) से ही उदय या अस्तकाल के गत या गम्य दिन जाने जाते हैं।

विज्ञान भाष्य—यदि किसी दिन यह जानना हो कि किसी ग्रह के उदय

या अस्त होने को कितने दिन हैं या उदय अथवा अस्त होने के उपरान्त कितने दिन बीत गये हैं तो उस दिन का ग्रह का कालांश ४-५ श्लोकों के अनुसार जान लेना चाहिए जिससे यह मालूम हो जाता है कि ग्रह सूर्योदय से कितने पहले उदय होता है या सूर्यास्त से कितना पीछे अस्त होता है ।

यदि यह कालांश परमकालांश से अधिक तथा सूर्य का भोगांश ग्रह के भोगांश से अधिक हुआ—और यह ग्रह मार्गी बुध या शुक्र है तो समझ लेना चाहिये कि अभी इसके अस्त होने में कुछ दिन शेष है परन्तु यदि यह ग्रह मङ्गल, गुरु या शनि अथवा वक्री बुध या शुक्र है तो समझना चाहिए कि इसके उदय हुए कुछ दिन बीत गये हैं । परन्तु यदि कालांश अधिक तथा सूर्य का भोगांश ग्रह के भोगांश से कम हुआ और ग्रह मङ्गल, गुरु या शनि अथवा वक्री बुध या शुक्र है तो समझना चाहिए कि अभी इनके अस्त होने में कुछ दिन शेष हैं । इसके विपरीत यदि कालांश परमकालांश से कम तथा सूर्य का भोगांश ग्रह के भोगांश से अधिक हुआ—तो समझना चाहिए कि मार्गी बुध या शुक्र के अस्त हुए कुछ दिन बीत गये और मङ्गल, गुरु या शनि तथा वक्री बुध या शुक्र के उदय होने में कुछ दिन शेष हैं । परन्तु यदि सूर्य का भोगांश भी ग्रह के भोगांश से कम हुआ तो समझना चाहिए कि मार्गी बुध और शुक्र के उदय होने में कुछ दिन शेष हैं तथा मङ्गल, गुरु, शनि और वक्री बुध या शुक्र के अस्त हुए कुछ दिन बीत गये हैं । सब दशाओं में इन दिनों की संख्या जानने के लिए कालांश और परमकालांश का अन्तर निकालना चाहिए और देखना चाहिए कि यह अन्तर कितने दिन में घट कर शून्य हो जायगा वा शून्य बढ़ते बढ़ते इतना हुआ है । ऐसा करने के लिए इस अन्तर को सूर्य और इष्ट ग्रह की दैनिक गतियों के अन्तर से भाग देना चाहिए यदि ग्रह मार्गी हो परन्तु यदि वक्री हो तो इनकी दैनिक गतियों को जोड़ लेना चाहिए जैसा कि ग्रहयुत्यधिकार में बतलाया गया है । परन्तु सूर्य या ग्रह की दैनिक गति साधारणतः क्रान्तिवृत्तीय होती है और कालांश विषुवद्वृत्तीय होता है इसीलिए क्रान्तिवृत्तीय दैनिक गतियों को विषुवद्वृत्तीय में बदलने के लिए ११ वें श्लोक में बतलाया गया है कि सूर्य या ग्रह जिस राशि में हो उसके लग्नासुओं को सूर्य या ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके १८०० से भाग देना चाहिए क्योंकि राशि के उदय होने का समय उसके लग्नासुओं के समान होता है इसलिए ग्रह की जितनी दैनिक गति होती है उसके उदय होने का समय भी उसी अनुपात से समझना चाहिए । दैनिक गति छोटी होने के कारण साधारणतः कलाओं में लिखी जाती है इसीलिए एक राशि को भी १८०० कलाओं में लिखा जाता है इससे ग्रह की जो दैनिक गति आती है वह विषुवद्वृत्तीय हो जाती है इसीलिए

इसको कालगति कहा गया है क्योंकि इससे काल का पता सहज ही लग जाता है। बीजगणित की भाषा में १०-११ श्लोकों के नियम को इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

इष्ट दिन का ग्रह का कालांश ⌙ ग्रह का परमकालांश
=कालांशान्तर (१)

किसी ग्रह की दैनिक कालगति

$$= \frac{\text{ग्रह की दैनिक गति} \times \text{ग्रह की राशि के लग्नासु}}{१८००} \quad (२)$$

गत या गम्य दिनों की संख्या

$$= \frac{\text{कालांशान्तर}}{\text{सूर्य की कालगति} + \text{ग्रह की कालगति}} \quad (३)$$

यदि ग्रह वक्री हो तो अन्तिम समीकरण में धन का चिह्न रखना चाहिए, नहीं तो दोनों अन्तर का निकालना चाहिए। यहाँ ऋण के चिह्न की जगह अंतर का चिह्न अधिक युक्तियुक्त है क्योंकि किसी ग्रह की कालगति सूर्य की कालगति से अधिक होती है और किसी की कम।

ग्रह की कालगति जानने का जो नियम दिया गया है वह कुछ स्थूल है। इसका कारण यह है कि ग्रह की गति क्रान्तिवृत्त पर नहीं होती वरन् अपने कक्षावृत्त पर होती है जो क्रान्तिवृत्त से कुछ भिन्न है परन्तु इससे विशेष हानि नहीं है। यदि ग्रह का विषुवांश और क्रान्ति मालूम कर ली जाँय तो विषुवांश में प्रतिदिन का जो अन्तर होता है वही कालगति होती है। विषुवांश जान लेने पर ग्रह का कालांश भी सुविधा और शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है क्योंकि फिर दृक्कर्म की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इसलिए मेरी सम्मति में ग्रहों या तारों का उदय अस्त और युति की गणना करने के लिए ग्रहों या तारों के भोगांश की जगह विषुवांश के ज्ञान की अधिक आवश्यकता है जिसकी शुद्ध शुद्ध जानकारी अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्त और यन्त्रों की सहायता से ही हो सकती है। इस बात के लिए आवश्यकता है एक वेधशाला की, जहाँ हमारे ज्योतिषी ग्रहों और तारों का वेध करके इनके स्थानों और मूलांकों का ठीक-ठीक पता लगा सकें।

तारों के परम कालांश

स्वात्यगस्त्यमृगव्याध चित्रा ज्येष्ठाः पुनर्वसुः।
अभिजिद् ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरंशकैः॥१२॥

⌙ यह अन्तर का चिन्ह है और सूचित करता है कि इसके दहिने बायें की संख्याओं में जो बड़ी हो उससे छोटी को घटाना चाहिये।

हस्तश्रवण फाल्गुन्यो धनिष्ठा रोहिणी मघा: ।
चतुर्दशांशकैर्दृस्या विशाखाऽश्विनिदैवतम् ।।१३।।
कृत्तिकामैत्रमूलानि सार्परौद्रर्क्षमेव च ।
दृश्यन्ते पञ्चदशभिराषाढाद्वितयं तथा ।।१४।।
भरणीतिष्यसौम्यानि सौक्ष्म्यात्त्रिस्सप्तकांशकैः ।
शेषाणि सप्तदशभिस्तथा दृश्यानि भानि तु ।।१५।।

अनुवाद—(१२) स्वाती, अगस्त्य, मृगव्याध या लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय तारों के परम कालांश १३ हैं। (१३) हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा और अश्विनी के परम कालांश १४ हैं। (१४) कृत्तिका, अनुराधा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों के परम कालांश १५ हैं। (१५) सूक्ष्म होने के कारण भरणी, पुष्य और मृगशिरा के परम कालांश २१ हैं। इससे अधिक होने पर वे दृश्य और कम होने पर अदृश्य होते हैं। शेष नक्षत्रों के परम कालांश १७ हैं।

विज्ञान भाष्य—१५ वें श्लोक में जिन शेष नक्षत्रों के लिए संकेत है वे वही हैं जिनकी चर्चा नक्षत्र ग्रहयुत्यधिकार में हुई है परन्तु जिनके नाम यहाँ नहीं दिये गये हैं। तारों के इन कालांशों से यह भी प्रगट होता है कि हमारे आचार्यों के मत से कौन तारा चमक में किस श्रेणी का है। चमक में प्रथम श्रेणी के तारे १२वें श्लोक में दिये गये हैं जिनके कालांश १३ हैं। दूसरी श्रेणी में वे तारे आते हैं जो १३वें श्लोक में दिये गये हैं और जिनके कालांश १४ हैं। तीसरी श्रेणी के तारे १४वें श्लोकमें लिखे गये हैं जिसके कालांश १५ हैं। इनके सिवा १५वें श्लोक में जो तारे आये हैं उनकी श्रेणी का ठीक ठीक पता नहीं लगाया जा सकता।

आजकल चमक के अनुसार तारों का विभाग बहुत ही सूक्ष्मरीति से किया जाता है। अँधेरी रात में विना किसी यन्त्र की सहायता के तेज आँखवाले मनुष्य सारे आकाश में जितने तारे देख सकते हैं उनकी संख्या ६००० से अधिक नहीं है। इन ६ हजार तारों को ६ श्रेणियों (magnitudes) में विभक्त किया गया है। इन श्रेणियों का विभाग इस प्रकार किया गया है कि प्रथम श्रेणी का कोई विशेष तारा छठीं श्रेणी के किसी विशेष तारे से चमक में १०० गुना होता है। इससे यह फल निकलता है कि किसी श्रेणी का तारा अपने नीचे वाली श्रेणी के तारे से २.५११९ गुना चमकीला होता है अर्थात् १ली श्रेणी का तारा २री श्रेणी के तारे से २.५११९ गुना चमकीला होता है, दूसरी श्रेणी वाला तारा तीसरी श्रेणी वाले तारे से २.५११९ गुना चमकीला होता है परन्तु पहली श्रेणी वाला तारा तीसरी श्रेणी वाले

तारे से २.५११९×२.५११९=६.३०९६. गुना चमकीला होता है इत्यादि। यह तो हुई उन तारों की बात जिन्हें तेज आँख वाले बिना किसी यन्त्र की सहायता के देख सकते हैं। दूरदर्शक यन्त्र से १५वीं श्रेणी तक के तारे देखे गये हैं। यहाँ तक बतला देना आवश्यक है कि जो तारे एक श्रेणी में हैं वे भी सब समान चमक के नहीं हैं। पहली श्रेणी में जो तारे रखे गये हैं उनकी संख्या २० से अधिक नहीं हैं परन्तु इनमें सबसे अधिक चमकीला लुब्धक है। उसके बाद अगस्त्य का नम्बर आता है। इन दोनों की चमक में भी इतना अन्तर है कि कोई भी सहज ही देख सकता है। इसलिए अधिक सूक्ष्म गणना करने के लिए प्रत्येक श्रेणी में दस और विभाग किये गये हैं। यह तो प्रकट है कि तारे की चमक जितनी ही अधिक है उसकी श्रेणी की क्रम संख्या उतनी ही छोटी है इसलिए प्रथम श्रेणी के सबसे चमकीले तारे लुब्धक की श्रेणी ऋणात्मक और—१·४ है और इसकी चमक ६·१ मानी गयी है। श्रेणी और चमक का सम्बन्ध नीचे की सारणी[१] से सहज ही समझ में आ सकता है:—

६ठीं श्रेणी के तारे की चमक	=	१
५वीं ,, ,, ,,	=	२.५ गुनी
४थी ,, ,, ,,	=	६.३ ,,
३री ,, ,, ,,	=	१५.८ ,,
२री ,, ,, ,,	=	३९.६ ,,
१ली श्रेणी के तारे की चमक	=	१०० गुनी
१ली श्रेणी के सबसे चमकीले तारे लुब्धक की चमक	=	४०० ,,

सूर्य की चमक=२४०००००००००००० गुनी

किसी तारे की चमक सदैव एकसी नहीं रहती इसलिए पुरानी और नयी पुस्तकों में प्रथम श्रेणी के २० तारों के क्रम में भी दो-चार जगह भिन्नता हो गयी है। इस भिन्नता का कारण यह भी है कि चमक परखने की कसौटी भी पहले कुछ स्थूल थी और अब सूक्ष्म हो गयी है। इस बात का पता अगले पृष्ठ की सारणी[२] से चलेगा :—

---

१. सर नारमन लाकयर के (**Elementary Lessons in Astronomy**) पृष्ठ १० से उद्धृत।

२. देखो **The Twentieth Century Atlas of Popular Astronomy by Heath, Second edition pp. 112**

नाम	श्रेणी	चमक	नयी श्रेणी[1]
सूर्य	—२६·५		
पूर्ण चन्द्रमा	—१२·०		
शुक्र	— ३·०	३६·८	
लुब्धक α canis majoris, sirius	— १·४	६·१	
अगस्त्य α Argus, canopus	— ०·८	५·२	— १.५८
ब्रह्महृदय α Aurigae, caplela	०.१	२.३	—०.८६
स्वाती α Bootis, Arcturus	०.२	२.१	०.२१
α centauri ...	०.२	२.१	०.२४
अभिजित α Lyrae, Vega	०.२	२.१	०.०६
β Orionis, Regel ...	०.३	१.६	०.१४
α Eridani, Achernar ...	०.४	१.७	०.३४
प्रश्वा α canis minoris, Procyon	०.५	१.६	०.६०
β centauri	०.७	१.३	०.४८
α orionis, Betelguese ...	०.६	१.१	०.८६
α crucis	०.६	१.१	परिवर्तनशील
श्रवण α aquilae, Altair ...	०.६	१.१	०.८६
रोहिणी α tauri, Aldebaran	१.०	१.०	१.०६
चित्रा α Virginis, spica ...	१.१	०.६	१.२१
पुनर्वसु α Geminorum, Pollux	१.२	०.८	१.२१
ज्येष्ठा α scorpii, Antares	१.२	०.८	१.२२
मघा α Leonis, Regulus	१.३	०.८	१.३४
कुम्भज α Piscis Australis, Fomalhaut	१.३	०.८	१.२६
α cygni, Deneb	१.४	०.७	१.३३

१. यह १६२६ ई० के Nautical almanac के अनुसार है।

पूर्ण चन्द्रमा से सूर्य ६३१००० गुना चमकीला है। चौथे स्तम्भ में जो नयी श्रेणी दी गयी है उससे प्रकट होता है कि कई तारों के क्रम में अन्तर पड़ गया है। इसके अनुसार अगस्त्य के बाद centauri और अभिजित आते हैं न कि ब्रह्महृदय जैसा कि पुरानी श्रेणी में दिखलाया गया है। इसी प्रकार अन्य तारों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

गतगम्य दिन जानने की दूसरी रीति—

अष्टादशशताभ्यस्तान् दृश्यांशःस्वोदयासुभिः।
विभज्यलब्धाः क्षेत्रांशास्तैः दृश्यादृश्यताथवाः ।।१६।।

अनुवाद—(१६) अथवा दृश्यांश (कालांश) को १८०० से गुणा करके राशि के लग्नासुओं से भाग देने से जो क्षेत्रांश (भोगांश) आवे उससे भी दृश्य और अदृश्य होने का दिन जाना जा सकता है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १० वें और ११ वें श्लोकों में बतलाये हुए नियम का विलोम है। वहाँ कालांशांतर को दैनिक काल-गतियों के अन्तर से भाग देने को कहा गया है और यहाँ बतलाया गया है कि दैनिक गति से दैनिक कालगति कैसे जानी जा सकती है। यहाँ दैनिक काल-गति जानने की आवश्यकता नहीं वरन् कालांशांतर को ही क्रान्तिवृत्तीय भोगांशान्तर में बदलने के लिए बतलाया गया है। इसलिए इसकी उपपत्ति वही है जो वहाँ बतलायी गयी है। यदि यह श्लोक ११ वें श्लोक के बाद दिया गया होता तो अधिक उपयुक्त होता क्योंकि इसका सम्बन्ध १५ वें श्लोक से तो बहुत कम है।

तारों का उदय अस्त जानना—

प्रागेषामुदयः पश्चादस्तं दृक्कर्म पूर्ववत् ।
गतैष्य दिवसप्राप्तिर्भानुभुक्त्या सदैव हि।।१७।।

अनुवाद—(१७) तारों का पूर्व में उदय और पच्छिम में अस्त होता है। तारों का आक्ष दृक्कर्म संस्कार पहले की तरह करना चाहिए और उदयास्त का गतगम्य दिन जानने के लिए सूर्य की ही गति से काम लेना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—नक्षत्रों में कोई गति नहीं देख पड़ती इसलिए सूर्य ही उनके पास पहुँचता हुआ देख पड़ता है। जब सूर्य उनके इतना पास हो जाता है कि वे इसके प्रकाश में दब जाते हैं तभी उनका अस्त समझा जाता है। इसलिए इनका अस्त सदैव पच्छिम में होता है जैसा कि मंदगामी मंगल, गुरु और शनि ग्रहों के साथ होता है। जब सूर्य इनके इतना आगे बढ़ जाता है कि वे देख पड़ने लगते हैं तभी

उनका उदय समझा जाता है और इस समय यह सूर्योदय के पहले पूर्व क्षितिज में पड़ते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि नक्षत्रों की क्रान्ति नहीं बदलती इसलिये इनका कालांश जानने के लिए केवल आक्षदृक्कर्म संस्कार की आवश्यकता होती है।

अभी बतलाया गया है कि उदय अस्त का गत-गम्य दिन जानने के लिए सूर्य और ग्रह की कालगतियों के अन्तर से कालांशान्तर को भाग दिया जाता है। परन्तु नक्षत्रों में गति शून्य होती है इसलिए केवल सूर्य की गति से ही कालांशान्तर को भाग देने की आवश्यकता पड़ती है।

कभी अस्त न होने वाले तारे—

अभिजिद्ब्रह्महृदयं स्वातीवैष्णववासवाः।
अहिर्बुध्न्यमुदक्स्थत्वान्न लुप्यन्तेऽर्करश्मिभिः ॥१८॥

अनुवाद—(१८) अभिजित्, ब्रह्महृदय, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा भाद्रपद बहुत उत्तर में होने के कारण सूर्य के प्रकाश से नहीं छिपते।

विज्ञान भाष्य—जब सूर्य इन तारों के विषुवांश पर या इसके निकट आता है तब उससे इनका अंतर उत्तर की ओर इतना अधिक होता है कि ये सूर्य के उदयास्त काल से इतना पहिले उदय या अस्त होते हैं कि देख पड़ते हैं इसलिए सूर्य के प्रकाश से यह कभी लुप्त नहीं हो सकते। यह बात ६७९ पृष्ठ की सारणी* से और भी स्पष्ट होती है :—

इससे प्रकट है कि सूर्य की क्रान्ति केवल ब्रह्महृदय के सामने उत्तर होती है अन्यथा दक्षिण है जब कि तारों की क्रान्ति सदैव उत्तर है। ब्रह्महृदय और सूर्य का क्रान्त्यन्तर भी २३ अंश के लगभग है। अब देखना है कि काशी या प्रयाग में ब्रह्म-हृदय का चरकाल क्या है ?

चरज्या = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा

∴ ब्रह्महृदय की चरज्या = स्परे ४५°५६′ × स्परे २५°२५′

= १.०३३१ × .४७५२

= .४९०९

∴ चरांश = २९°२४′

∴ चरकाल = १ घण्टा ५८ मिनट के लगभग

इस दिन सूर्य का चरकाल ४७ मिनट के लगभग होता है। दोनों की क्रान्ति उत्तर है। इसलिए ब्रह्महृदय का उदय सूर्योदय काल से १ घण्टा ५८ मिनट—४७

* १९२९ के नाविक पंचांग के अनुसार

तारों के नाम	विषुवांश			क्रान्ति उत्तर			सूर्य का विषुवांश			सूर्य की क्रान्ति			सूर्य की क्रान्ति की
	घं०	मि०	से०	अं०	क०	विक०	घं०	मि०	से०	अं०	क०	विक०	दिशा और ता०
अभिजित्	१८	३४	३२	३८	४३	०	१८	३६	१६	२३	११	१८	दक्षिण, ३० दि०
ब्रह्महृदय	५	११	२६	४५	५५	४०	५	१२	३४	२३	०	८	उत्तर. १० जून
स्वाती	१४	१२	२५	१९	३३	५	१४	१३	५	१३	२३	९	द०, २९ अक्टूबर
श्रवण	१९	४७	१९	८	४०	४७	१९	४७	१८	२१	९	४१	द०, १५ जनवरी
धनिष्ठा	२०	३६	२०	१५	३९	३८	२०	३७	५९	१८	३०	२४	द०, २७ जनवरी

मिनट=१ घण्टा ११ मिनट पहले होगा और इसका अस्त सूर्यास्त से इतना ही पीछे होगा इसलिए इस दिन ब्रह्महृदय प्रात:काल और सायंकाल दोनों समय देखा जा सकता है। जिस दिन सूर्योदय काल में यह तारा पूर्व क्षितिज में लग्न होता है उस दिन तो इसका दैनिक अस्त सूर्योदय काल से १६ घण्टे के उपरान्त होगा जब सूर्य को अस्त होने में १४ घण्टे से अधिक नहीं लग सकता। इसलिए इस दिन भी यह सायं-काल में अच्छी तरह देखा जा सकता हैं। इसी प्रकार जिस दिन यह सूर्यास्त काल में पच्छिम क्षितिज में लग्न होता है उस दिन सूर्योदय से २ घण्टे से भी अधिक पहले उदय होकर लोगों को दर्शन देता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि काशी प्रयाग के उत्तर के देशों में तो यह कभी अदृश्य नहीं हो सकता, हाँ उन स्थानों में जिनका उत्तर अक्षांश २० अंश से कम है, यह कुछ दिनों के लिए अवश्य अदृश्य हो जायगा इसलिए यह जगन्नाथ पुरी में प्रत्येक दिन देखा जा सकता है परन्तु बम्बई में नहीं।

शेष तारों में श्रवण ऐसा तारा है जिसकी उत्तर क्रान्ति बहुत कम है। इसलिए देखना चाहिये कि इसके लिए यह नियम कहाँ तक ठीक है।

काशी प्रयाग में श्रवण का चरकाल=१७ मिनट के लगभग

,, सूर्य का चरकाल=४३ ,, ,,

दोनों की क्रान्ति भिन्न हैं इसलिए इस दिन सूर्योदय से १७+४३ मिनट=१ घण्टा पहले श्रवण का उदय होगा। परन्तु श्रवण का कालांश ५६ मिनट है इसलिये यह अच्छी तरह देखा जा सकता है। परन्तु काशी प्रयाग के दक्षिण के देशों के लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता।

इसी प्रकार अन्य तारों के बारे में भी जाना जा सकता है।

इस प्रकार उदयास्ताधिकार नामक ९वें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

———

दशम् अध्याय

शृङ्गोन्नत्यधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १—चन्द्रमा का उदय अस्त जानने की विधि पहले की तरह है और कालांश १२ हैं। श्लोक २-४—शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा का दैनिक अस्तकाल जानने की रीति। श्लोक ५—कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का दैनिक उदयकाल जानने की रीति। श्लोक ६-८—सूर्यास्तकाल में सूर्य से चन्द्रमा का रेखात्मक अन्तर जानने की रीति। श्लोक ९—चन्द्रमा के शुक्ल भाग का विम्ब जानने की रीति। श्लोक १०-१४—चन्द्रमा के शुक्ल भाग का परिलेख खींचने की रीति। श्लोक १५—कृष्ण पक्ष में चन्द्रविम्व का परिलेख खींचने का नियम।]

इस अध्याय में चन्द्रमा का उदयास्त काल जानने की रीति बतलायी गयी है। इससे पहले के अध्याय में केवल उस प्रकार के उदय अस्त का वर्णन है जिसमें ग्रह सूर्य के बहुत पास आ जाने से अदृश्य हो जाता है। परन्तु इस अध्याय में इस प्रकार के उदय अस्त के सिवा चन्द्रमा का दैनिक उदयास्त काल जानने की रीति भी है। फिर यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि किस दिन चन्द्र-बिम्ब का कितना भाग प्रकाशित रहता है और उसका आकार कैसे खींचा जा सकता है। शुक्ल पक्ष के आरम्भ में अथवा कृष्ण पक्ष के अन्त में चन्द्रमा के प्रकाशित या शुक्ल भाग का आकार शृङ्ग की तरह होता है और उत्तर या दक्खिन की तरफ उठा रहता है इसीलिए इस अध्याय का नाम शृङ्गोन्नत्यधिकार है।

यहाँ यह याद दिलाने की आवश्यकता है कि चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान सूर्य-सिद्धान्त की गणना की रीति से जाने गये स्थान से बहुत भिन्न होता है जैसा कि स्पष्टाधिकार के पृष्ठ १८६-१९६ में अच्छी तरह दिखलाया गया है। इसके सिवा चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति भी सूर्य-सिद्धान्त की रीति से ठीक नहीं होती। इन सब कारणों से इस अध्याय के लिए दृग्गणित के मूलाङ्कों से ही काम लेना चाहिए, नहीं तो सूर्य-सिद्धान्त के मूलाङ्कों के द्वारा चन्द्रमा के उदयास्त का जो समय ज्ञात होगा वह प्रत्यक्ष से १५,१६ मिनट आगे पीछे होगा। इसलिए आवश्यक है कि भारतीय ज्योतिष का संशोधन करने के लिए एक अच्छी वेधशाला हो जिसमें चन्द्रमा, ग्रहों

और नक्षत्रों का सूक्ष्म से सूक्ष्म वेध लेकर इनके मूलाङ्क फिर से स्थिर किये जायें। ऐसे काम में भी नाविक पंचांग के आश्रित होना किसी प्रकार वांछनीय नहीं है।

चन्द्रमा का उदयास्त काल और कालांश—

उदयास्त विधिः प्राग्वत्कर्तव्यः शीतगोरपि।
भागैर्द्वादशभिः पश्चाद् दृश्यः प्राग्यात्यदृश्यताम् ।।१।।

अनुवाद—(१) चन्द्रमा के भी उदय और अस्त होने का समय उदयास्ताधिकार के श्लोक ४, ५ में बतलायी गयी रीति से जानना चाहिए। जब इसका कालांश सूर्य से १२ अंश पीछे होता है तब यह पच्छिम में दृश्य होता है और पहले होता है तब पूर्व में अदृश्य हो जाता है।

विज्ञान-भाष्य—इस पर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जैसे और ग्रहों का उदयास्त काल जाना जाता है वैसे ही चन्द्रमा का भी। चन्द्रमा का ऐसा उदय अस्त चान्द्र-मास में केवल एक बार होता है। चन्द्रमा की गति बहुत तीव्र है इसलिए चन्द्रमा का अस्त पूर्व में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को होता है और उदय पच्छिम में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के उपरान्त सन्ध्याकाल में होता है।

दैनिक उदयास्त काल जानने की रीति—

रवीन्द्वोः षड्भयुतयोः प्राग्वल्लग्नान्तरासवः।
एकराशौ रवीन्द्वोश्च कार्या विवरलिप्तिकाः ।।२।।
तन्नाडिकाहते भुक्ती रवीन्द्वोः षष्टिभाजते।
तत्फलान्वित मो भूंयः कर्तव्या विवरासव ।।३।।
एवं यावत् स्थिरी भूता रवीन्द्वोरन्तरासवः।
तैः प्रणैरस्तमेतीन्द्रः शुक्लेऽर्कास्तमयात्परम् ।।४।।

अनुवाद—(२) (शुक्ल पक्ष के जिस दिन चन्द्रमा का अस्त काल जानना हो उस दिन के सूर्यास्त काल के सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करके और चन्द्रमा में आक्ष और आयनदृक्कर्म संस्कार करके) सूर्य के भोगांश और चन्द्रमा के दृक्कर्म संस्कृत भोगांश में छः छः राशि जोड़ने से जो आवे उनके उदय लग्नों के अन्तरासुओं को जान ले। यदि सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि में हों तो इनके भोगांशों के अन्तर की कला बना लेना पर्याप्त होगा। (३) इन उदय लग्नों के अन्तरासुओं की घड़ी बना कर इससे सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियों से गुणा कर दे और गुणनफल को ६० से भाग दे दे। सूर्य की गति से जो लब्धि मिले उसे उसको सूर्य के भोगांश में और चंद्रगति से जो लब्धि मिले चन्द्रमा के भोगांश

में जोड़ कर इनका लग्नान्तर काल पहले की तरह फिर निकाले। (४) इस प्रकार कई बार करने से लग्नान्तर काल स्थिर हो जाता है। इतने ही समय पर शुक्ल पक्ष में सूर्यास्त के उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होता है।

विज्ञान भाष्य—किसी किसी ग्रन्थ में इन तीन श्लोकों के स्थान में केवल एक श्लोक है जिसका पूर्वार्ध दूसरे श्लोक का पूर्वार्ध है और उत्तरार्ध चौथे श्लोक का उत्तरार्ध। इसलिए किसी किसी के मत से दूसरे श्लोक के उत्तरार्ध से लेकर चौथे श्लोक के पूर्वार्ध तक की ४ पंक्तियाँ प्रक्षिप्त हैं। पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी, पं० माधव पुरोहित अथवा पं० बलदेव प्रसाद मिश्र जी ने इन चार पंक्तियों को लिख तो दिया है परन्तु इनका अर्थ नहीं किया है और न इनके विषय में कुछ लिखा ही है। हाँ, आचार्य रङ्गनाथ जी की संस्कृत टीका में, जिसका सम्पादन भी पं० बलदेव प्रसाद जी ने अपनी हिन्दी टीका के साथ किया है, इसकी चर्चा अच्छी तरह है जहाँ लिखा है[1]—

१. श्लोक मध्य एकराशावित्यादि रवीन्दोरित्यन्त रासव इत्यन्त श्लोक द्वयं केनचिन्मन्दमतिना समयोऽसकृदेव साध्य इति शिष्यधीवृद्धिद तन्त्वोक्तं सुबुद्धि मन्ये-नायुक्तमपि युक्तं मत्वानिक्षिप्तम्।

स्वामी विज्ञानानन्द सम्पादित बंगाल के सूर्य-सिद्धान्त में ये दो श्लोक मूल संस्कृत श्लोकों के साथ नहीं दिये गये हैं वरन् बङ्गला की टीका में हैं और वहाँ बतलाया गया है कि ये प्रक्षिप्त क्यों हैं।

चन्द्रशेखर सिंह सामन्त के सिद्धान्त-दर्पण में तीसरा श्लोक ज्यों का त्यों उद्धृत[2] किया गया है और चौथे श्लोक के पूर्वार्ध के अर्थ को कई श्लोकों में विस्तारपूर्वक लिखकर उत्तरार्ध भी दे दिया गया है। इसके उपरान्त यह श्लोक[3] लिखा गया है—

> अत्रार्क सावनत्वं हि द्वयोस्तात्कालिकी कृतौ
> तत्कृतौ केवलस्येन्दोः प्राणानामार्क्षता मता
> सूर्यास्तकालिकौ तौ चेद्ग्राह्यौ ते चंद्रसावना ॥११॥

जिससे यह सिद्ध होता है कि चन्द्र शेखरसिंह सामन्त ने सूर्य-सिद्धान्त के प्रक्षिप्त कहे जाने वाले श्लोकों के डेढ़ श्लोकों को बहुत आवश्यक समझा है। यथार्थ में यह है भी आवश्यक जैसा कि अभी दिखलाया जायगा। इसलिए मेरी समझ में इसको

---

१. श्री सूर्यसिद्धान्त पृष्ट १६७ श्री वेंकटेश्वर प्रेस का छपा

२. देखो योगेशचन्द्र राय सम्पादित सिद्धान्त-दर्पण पृष्ठ १३३

३. ,, ,, ,, १३४

प्रक्षिप्त कह कर उड़ा देना और इसका अर्थ ही न करना उचित नहीं है क्योंकि यदि यह प्रक्षिप्त हो तो भी अनुचित नहीं है क्योंकि इसके अनुसार गणना न करने से तो चन्द्रमा के अस्त काल में १ घड़ी या २४ मिनट तक का अन्तर पड़ सकता है। आचार्य रङ्गनाथजी ने अपनी टीका १५२५ शाके[1] में की थी इसलिए यह विवाद कई सौ वर्ष पहले का है कि यह प्रक्षिप्त है या नहीं। मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि इन श्लोकों का क्या अर्थ है। श्लोक २ के पूर्वार्ध में तो संक्षेप में उदयास्ताधिकार के चौथे और पाँचवें श्लोकों में बतलाये गये नियम की ओर संकेत है जो बिलकुल ठीक है। उत्तरार्ध में यह बतलाया गया है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि में हों तो इन दोनों के दृक्कर्म-संस्कृत-भोगांशों के अन्तर को ही कलांश समझ कर जान लेना चाहिए कि सूर्यास्त के उपरांत कितने समय पर चन्द्रमा का अस्त होगा। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जब चन्द्रमा सूर्य से इतने थोड़े अन्तर पर रहता है कि ये दोनों एक ही राशि में हों तब इनके लग्नान्तरासुओं में जो अन्तर होता है वह इनके भोगांशों के अंतर से बहुत भिन्न नहीं होता इसलिए सुगमता के लिए यह स्थूल नियम बतला दिया गया है।

इसके बाद श्लोक ३ में असकृत्कर्म (approximation) से चन्द्रमा का अस्तकाल सूक्ष्मतापूर्वक जानने की रीति बतलायी गयी है। इसका कारण यह है कि दूसरे श्लोक के पूर्वार्ध के अनुसार चन्द्रमा के अस्तकाल का जो समय आता है वह ठीक नहीं होता क्योंकि चन्द्रमा की गति बहुत तीव्र होती है इसलिए सूर्य के अस्तकाल में चन्द्रमा का जो भोगांश होता है उससे चन्द्रमा के अस्तकाल का भोगांश कुछ बढ़ जाता है जिससे वह कुछ देर में अस्त होता है। सूर्य से चन्द्रमा जितना ही अधिक दूर रहता है उसीके अनुपात में चन्द्रमा के अस्त होने में बिलम्ब लगना है। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी या चतुर्दशी के दिन तो यह विलम्ब २० मिनट के लगभग हो जाता है क्योंकि इस दिन सूर्यास्त से १०, ११ घण्टे से भी अधिक समय में चन्द्रमा का अस्त होता है और इतने समय में इसकी गति ५, ६ अंश के लगभग होती है जिससे इसके अस्त होने में २० से २४ मिनट तक का विलम्ब हो सकता है। यही जानने के लिए कहा गया है कि सूर्य और चन्द्रमा में ६ राशि जोड़ने से जो लग्नान्तरासु आवे उसकी घटिका बनाकर अर्थात् असुओं को ६ से भाग देकर पल और पलों को ६० से भाग देकर घड़ी बनाकर इसको सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियों से गुणा कर दे और गुणनफल को ६० से भाग दे दे तो यह मालूम हो जायगा कि लग्नान्तरासुओं में सूर्य और चन्द्रमा में कितनी गति हुई। क्योंकि जब ६० घड़ी में सूर्य और चन्द्रमा की

---

१. देखो वेंकटेश्वर प्रेस का सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ २४६

गति दैनिक गति के समान होती है तो लग्नान्तरासुओं में इसी के अनुपात से होगी। यह गति जान लेने पर इसे सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश में जोड़कर और योगफल में ६ राशि और जोड़कर इनके लग्नों के अन्तरासु फिर निकाले। इस प्रकार २, ३ बार असकृत्कर्म करने से जब अन्तर स्थिर हो जाय तब सूर्यास्त से उतने ही समय उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होता है।

यहाँ एक बात विचारणीय है। जब सूर्यास्तकाल के सूर्य और चन्द्रमा एक बार स्पष्ट कर लिये गये और पहली बार यह मालूम कर लिया गया कि सूर्यास्त काल से इतने समय उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होगा तब इसमें और चन्द्रमा के प्रत्यक्ष अस्तकाल में जो अन्तर पड़ेगा वह केवल चन्द्रमा की गति के कारण होगा इसलिए असकृत्कर्म के लिए केवल चन्द्रमा की गति को सूर्यास्तकालिक चन्द्रमा के भोगांश में जोड़ना चाहिए न कि सूर्य की गति को भी। परन्तु नियम में सूर्य और चन्द्रमा दोनों की गतियों को जोड़ने को कहा गया है। सूर्य की गति को भी जोडने से जो समय आवेगा वह नाक्षत्र-काल नहीं होगा वरन् सावन काल होगा। परन्तु पहला अन्तर नाक्षत्र काल में आता है इसलिए नाक्षत्र काल और सावन काल का योग नहीं हो सकता। इसलिए उचित यह है कि केवल चन्द्रमा की गति का असकृत्कर्म किया जाय परन्तु सूर्य की गति लेने से अधिक से अधिक अन्तर २ मिनट का हो सकता है क्योंकि १२ घण्टे का नाक्षत्र काल १२ घण्टे के सावन काल से केवल २ मिनट अधिक होता है। इसलिए इतनी भूल के लिए नियम को ही प्रक्षिप्त समझ कर निकाल देना बुद्धिमानी नहीं जान पड़ती।

कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का उदय काल जानना—

भगणार्धं रवौ दत्वा कार्यास्तद्विवरासवः।
तै प्राणैः कृष्णपक्षे तु शीतांशुरुदयं व्रजेत ।।५।।

अनुवाद—(५) सूर्यास्तकालिक सूर्य के भोगांश में ६ राशि जोड़ने से जो आवे उसके लग्नकाल और सूर्यास्तकालिक स्पष्ट चन्द्रमा के लग्नकाल के अन्तरासुओं से असकृत्कर्म के द्वारा जो समय आता है सूर्यास्त से उतने ही समय उपरान्त कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का पूर्व क्षितिज में उदय होता है।

विज्ञान-भाष्य—कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का भोगांश सूर्यास्तकालिक सूर्य के भोगांश से १८० अंश से अधिक होता है इसलिए सूर्यास्त के उपरान्त पूर्व क्षितिज में चन्द्रमा का उदय होता है। यह जानने के लिए सूर्यास्त काल के सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश जानकर केवल सूर्य के भोगांश में ६ राशि जोड़ना चाहिए क्योंकि चन्द्रमा का

उदय तो पूर्व क्षितिज में होता ही है इसलिए यह केवल यह जानने की आवश्यकता है कि सूर्यास्तकाल में पूर्व क्षितिज में कौन राशि लग्न है और इसके उपरान्त चन्द्रमा कितने समय में लग्न होगा। इस क्रिया से जो समय आवेगा उस समय चन्द्रमा का उदय नहीं होगा क्योंकि इतने समय में चन्द्रमा अपनी गति से और पूर्व हो जायगा। इससे कितना अन्तर पड़ जायगा यह जानने के लिए तीसरे श्लोक में बतलाये गये नियम से असकृत्कर्म करना होगा। यहाँ भी केवल चन्द्रमा की गति से ही असकृत्कर्म करना चाहिए।

सूर्यास्त काल में सूर्य से चन्द्रमा का रेखात्मक अन्तर जानने की रीति

अर्केन्द्वोः क्रान्तिविश्लेषः दिक्साम्ये युतिरन्यथा।
तज्ज्येन्दुरर्काद्यत्रासौ विज्ञेया दक्षिणोत्तरा ॥६॥
मध्याह्नेन्दुप्रभाकर्ण संगुणा यदि सोत्तरा।
तदाऽर्कघ्नाक्षजीवायाश्शोध्या योज्या तु दक्षिणे ॥७॥
शेषो लम्बज्यया भक्तो लब्धं बाहुस्स्वदिङ्मुखः।
कोटिश्शङ्कुस्तयोर्वर्गयुतेर्मूल श्रवो भवेत् ॥८॥

अनुवाद—(६) सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति जानकर यदि इनकी दिशाएँ एक हैं तो इनकी ज्याओं का अन्तर करे और भिन्न हों तो योग करे। सूर्य से चन्द्रमा जिस दिशा में हो वही दिशा इस अंतर या योग को भी समझे अर्थात् यदि चन्द्रमा सूर्य से दक्षिण हो तो अन्तर या योग की दिशा दक्षिण समझे और उत्तर हो तो उत्तर समझे। (७) इस योग या अन्तर को चन्द्रमा के तात्कालिक छाया कर्ण से गुणा कर दे। यदि दिशा उत्तर हो तो इस गुणनफल को १२ और अक्षज्या के गुणनफल में घटा दे और दक्षिण हो तो जोड़ दे। (८) इस शेष या योगफल को लम्बज्या से भाग दे दे और लब्धि को इष्ट दिशा का भुज समझे। चन्द्रमा के शंकु अर्थात् नतांश-कोटिज्या को कोटि मानकर भुज और कोटि के वर्गों के योगफल का वर्गमूल निकालने से जो आवे उसे कर्ण समझना चाहिए। यही कर्ण सूर्य और चन्द्रमा का सूत्रात्मक या रेखात्मक अंतर है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीन श्लोकों का सार यह है :—

यदि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तिज्याओं का अन्तर प मान लिया जाय तो छठें श्लोक के अनुसार

प = चन्द्र क्रान्तिज्या ± सूर्य क्रान्तिज्या,

सातवें और आठवें श्लोक के पूर्वार्ध के अनुसार

$$\text{भुज} = \frac{\text{प} \times \text{चन्द्रछायाकर्ण} \pm \text{१२ अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

कोटि = चन्द्रमा का शंकु अर्थात् चन्द्रमा की नतांशकोटिज्या

$$\therefore \text{कर्ण} = \sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$$

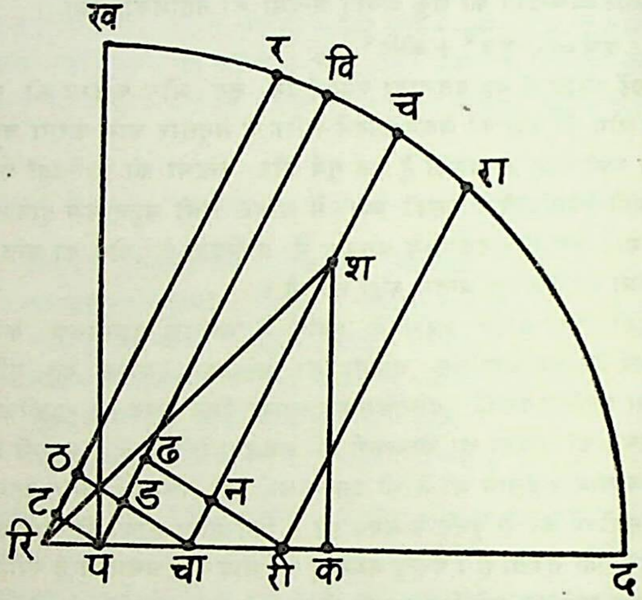
छठें श्लोक में यह बतलाया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियों के अन्तर या योग की ज्या को लेकर सातवें श्लोक के अनुसार काम करना चाहिये परन्तु यह नियम तभी लागू हो सकता है जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ बहुत कम हों क्योंकि किसी कोण और उसकी ज्या में अन्तर तभी बहुत कम होता है जब उस कोण का मान कम हो। इसीलिये अनुवाद में क्रान्तियों के योग या अन्तर की जगह क्रान्तिज्याओं का योग या अन्तर कहा गया है।

इसी तरह सातवें श्लोक के पूर्वार्ध में 'मध्याह्नेन्दुप्रभाकर्ण' कहा गया है जिसका अर्थ है मध्याह्नकालिक चन्द्रमा का छायाकर्ण, परन्तु यह युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता इसलिए इसकी सूर्यास्तकालिक अथवा जिस समय की शृङ्गोन्नति जाननी हो उस समय का चन्द्रमा का छायाकर्ण ही समझना उचित है। स्वामी विज्ञानानन्द जी तथा आचार्य रङ्गनाथ जी ने भी इसका अर्थ यही किया है और बतलाया है कि यदि एक सूर्योदय तक से दूसरे के समय को १ दिन माना जाय तो सूर्यास्त का समय मध्याह्न कहा जा सकता है। परन्तु मध्याह्न का शव्द यहाँ भ्रमात्मक है क्योंकि मध्याह्न का साधारण अर्थ १२ बजे दिन का ही लिया जाता है। इसलिए श्लोक में मध्याह्न शव्द उचित नहीं है।

उपपत्ति—सूर्यास्तकाल में सूर्य से चन्द्रमा का जो रेखात्मक अन्तर होता है उसी को यहाँ कर्ण कहा गया है और उसी को जानने की रीति बतलायी गयी है। सूर्यास्त काल में चन्द्रमा आकाश में जिस विन्दु पर हो उसका धरातल से जो लम्बान्तर (perpendicular distance) होता है उसे ही यहाँ कोटि कहा गया है परन्तु यह भारतीय प्रथा के अनुसार उन्नतांशज्या अथवा नतांश-कोटिज्या के समान होता है और नतांश-कोटिज्या का दूसरा नाम शंकु भी है (देखो पृष्ठ २८२) इसलिए कोटि को शंकु कहा गया है। इसी कोटि के आधारविंदु से सूर्य का जो रेखात्मक अंतर धरातल पर होता है उसे ही भुज या बाहु कहा गया है जिसको जानने की रीति श्लोक ६, ७ और ८ के पूर्वार्ध में बतलायी गयी है।

यहाँ एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। इस नियम से तभी काम लिया जा सकता है जब सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमा को याम्योत्तरवृत्त के तल (plane) में समझ लिया जाय अर्थात् चन्द्रमा द्रष्टा से जिस दिशा में हो उसे दक्षिण

या उत्तर दिशा समझनी चाहिए और चन्द्रमा के भुज कोटि और कर्ण को भी यामोत्तरवृत्त के तल में समझना चाहिए। यह सब बातें * चित्र ११५ से अच्छी तरह समझ में आ जायगी।



चित्र ११५

प=क्षितिज का पच्छिम विन्दु

द= " का दक्षिण विन्दु

पद=पच्छिम विन्दु से दक्षिण विन्दु तक का क्षितिज का चतुर्थांश

ख=खस्वस्तिक

र रि=सूर्य के अहोरात्र वृत्त का खंड जो यामोत्तर वृत्त और पच्छिम क्षितिज के बीच में है जब कि सूर्य की क्रान्ति उत्तर होती है।

रा री=सूर्य के अहोरात्रवृत्त का खंड जब क्रान्ति दक्षिण हो।

रि, री=पच्छिम क्षितिज के विन्दु जहाँ सूर्य अस्त होता है।

च चा=चन्द्रमा के अहोरात्र वृत्त का खंड जो यामोत्तर वृत्त और पच्छिम क्षितिज के बीच में है।

विप=विषुवद्वृत्त का चतुर्थांश जो यामोत्तरवृत्त और क्षितिज के बीच है।

* यह चित्र स्वामी विज्ञानानन्द के बङ्गला सूर्य-सिद्धान्त से लिया गया है।

श=सूर्यास्तकाल का चन्द्रमा का स्थान जब कि यह यामोत्तरवृत्त से पच्छिम होता है ।

शक=चन्द्रमा से क्षितिज तल पर लम्ब या चंद्र-शंकु या कोटि ।

शरि वा शरी=सूर्य से चन्द्रमा का रेखात्मक अंतर या कर्ण ।

करि या करी=भुज; पट और चाठ सूर्य के अहोरात्र वृत्त पर लम्ब हैं ।

इस चित्र में यामोत्तर-वृत्त के तल खदप पर क्षितिज के ऊपर के खगोल का वह अंश दिखलाया गया है जो पच्छिम क्षितिज के सूर्यास्त विन्दु से लेकर दक्षिण विन्दु तक फैला हुआ है । इसीलिए चन्द्रमा का स्थान श यामोत्तर वृत्त से पच्छिम होते हुए भी यामोत्तर वृत्त पर ही जान पड़ता है और चन्द्रमा के शंकु, भुज, कर्ण यामोत्तर-वृत्त के तल पर देख पड़ते हैं । सूर्य और चन्द्रमा के अहोरात्रवृत्त तथा विपुवद्वृत्त का चतुर्थांश भी यामोत्तरवृत्त के ही तल पर दिखलाये गये हैं । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पद क्षितिज के दक्षिणार्ध और यामोत्तरवृत्त की छेद रेखा (Projection) है र रि और च चा इष्ट काल के सूर्य और चन्द्रमा के अहोरात्रवृत्त हैं । रा री भी सूर्य का अहोरात्रवृत्त है जब क्रान्ति दक्षिण होती है । इसलिए विर सूर्य की उत्तर क्रान्ति, विच चन्द्रमा की दक्षिण क्रान्ति और वि रा सूर्य की दक्षिण क्रान्ति है । खवि इष्ट स्थान का अक्षांश और विद लम्बांश है । अहोरात्र वृत्तों और क्षितिज के वीच के कोण भी लम्बांश के समान हैं ।

चित्र से प्रकट है कि चन्द्रकर्ण $\text{शरि}^2 = \text{शक}^2 + \text{करि}^2$

इसमें शक इष्टकालिक चन्द्रमा का शंकु है जिसकी गणना चन्द्रमा के नतकाल से त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ २६० के सूत्र (क) अथवा पृष्ठ २६२ के सूत्र (ग) के अनुसार सहज ही जाना जा सकता है और करि चंद्रमा का भुज है जिसको जानने की रीति ऊपर के ढाई श्लोकों में वतलायी गयी है ।

करि=रिचा+चाक, जिसमें रिचा सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियों के अन्तर पर आश्रित है और चाक चन्द्रमा के उन्नतांश पर ।

समकोण त्रिभुज चाठरि में भारतीय रीति के अनुसार,

$$\frac{\text{चाठ}}{\text{ज्या चारिठ}} = \frac{\text{चारि}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\therefore \text{चारि} = \frac{\text{चाठ} \times \text{त्रिज्या}}{\text{ज्या चारिठ}}$$

परन्तु चाठ=चाड+ड ठ=चन्द्रक्रान्तिज्या+सूर्यक्रान्ति ज्या और

ज्या चारिठ=लम्बज्या

$$\therefore \text{चारि} = \frac{(\text{चंद्रक्रान्तिज्या} + \text{सूर्यक्रान्तिज्या})\ \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

इसी प्रकार समकोण त्रिभुज शकचा में

$$\frac{\text{चाक}}{\text{ज्या चाशक}} = \frac{\text{शक}}{\text{ज्या शचाक}}$$

परन्तु कोण शचाक=लम्बांश और कोण चाशक लम्बांश का पूरक है इसलिए यह अक्षांश के समान हुआ और शक चंद्रमा का शंकु है इसलिए,

$$\text{चाक} = \frac{\text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

यहाँ चाक और चारि के मान कलाओं में है क्योंकि भारतीय रीति से ज्या के मान कलाओं में होते हैं। परन्तु परिलेख के लिए नाप अंगुलों में की जाती है इसलिए इसको अंगुलों में बदलने के लिए यह मान लेना होगा कि चन्द्रमा का शंकु शक १२ अंगुल है और इसका तात्कालिक अंगुलात्मक छायाकर्ण त्रिज्या अर्थात् ३४३८ के समान है। यदि मान लिया जाय कि चारि और चाक के अंगुलात्मक मान क्रमानुसार त और थ हैं तो नीचे लिखे तीन अनुपात सिद्ध होते हैं—

$$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}} = \frac{\text{शक}}{१२} = \frac{\text{चारि}}{\text{त}} = \frac{\text{चाक}}{\text{थ}}$$

$$\therefore \text{त} = \frac{१२ \times \text{चारि}}{\text{शक}} = \frac{१२ \times \text{चारि} \times \text{छायाकर्ण}}{१२ \times \text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{१२ \times (\text{चंद्रक्रांतिज्या} + \text{सूर्यक्रांतिज्या})\text{त्रिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{१२ \times \text{त्रिज्या} \times \text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{\text{छायाकर्ण} \times (\text{चंद्रक्रांतिज्या} + \text{सूर्यक्रांतिज्या})}{\text{लम्बज्या}}$$

$$\text{इसी तरह थ} = \frac{१२ \times \text{चाक}}{\text{शक}} = \frac{१२ \times \text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{शक} \times \text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{१२\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

क्योंकि शक और शंकु एक ही वस्तु है।

यहाँ चंद्रमा और सूर्य की क्रांतिज्याएँ जोड़ी गयी हैं क्योंकि इनकी क्रांतियों की दिशाएँ भिन्न हैं। यदि दोनों की क्रांतियों की दिशा एक ही हो तो अंतर निकालना पड़ेगा जैसे यदि सूर्य रा पर हो तो अंतर निकालना पड़ेगा क्योंकि इस दशा में

$$\text{करी} = \text{चाक} - \text{चारी}$$

इस प्रकार ६-८ श्लोकों की उपपत्ति सिद्ध हुई।

चन्द्रबिम्ब का शुक्ल भाग जानने की रीति—

सूर्योनशीतगोर्लिप्ताः शुक्लं नवशतोद्धृताः ।
चन्द्रबिम्बांगुलाभ्यस्तं हृतं द्वादशभिः स्फुटम् ॥९॥

अनुवाद—चंद्रमा के भोगांश से सूर्य का भोगांश घटाने से जो आवे उसकी कला बनाकर ९०० से भाग देने पर जो आता है वह अंगुलों में चन्द्रमा का शुक्ल भाग होता है। इसको चन्द्रमा के तात्कालिक अंगुलात्मक बिम्ब से गुणा करके १२ से भाग देने पर स्फुट शुक्ल भाग का मान अंगुलों में आ जाता है।

विज्ञान भाष्य—पूर्ण चन्द्रमा का मध्यम बिम्ब १२ अंगुल का माना गया है। जिस समय चन्द्रमा पूर्ण होता है उस समय यह पूरा शुक्ल देख पड़ता है और जिस समय अमावस्या होती है उस समय चंद्रमा के शुक्ल भाग का अभाव रहता है। जैसे-जैसे चन्द्रमा सूर्य से आगे बढ़ता है तैसे-तैसे इसका शुक्ल भाग भी बढ़ता जाता है और अन्त में पूर्णिमा काल में इसका पूरा बिम्ब शुक्ल देख पड़ता है। ऐसी दशा में चन्द्रमा का सूर्य से अन्तर १८० अंश या $१८० \times ६० = १०८००$ कला होता है इसलिए चन्द्रमा के शुक्ल भाग का परिमाण इस प्रकार हुआ कि जब सूर्य से चन्द्रमा १०८०० कला आगे जाता है तब इसका शुक्ल भाग १२ अंगुल के समान होता है इसलिए जब किसी काल में चन्द्रमा सूर्य से अ कला आगे हो तब उसका शुक्ल

$$\text{भाग} = \frac{\text{अ} \times १२}{१०८००} = \frac{\text{अ}}{९००} \text{ अंगुल}$$

परन्तु यह मध्यम बिम्बमान से लगाया गया है। स्पष्ट बिम्ब इससे भिन्न होता है जिसकी गणना चन्द्रग्रहणाधिकार (पृष्ठ ४८१-८२) के अनुसार करनी चाहिए। जब स्पष्ट बिम्ब का मान अंगुलों में आ जाय तब फिर अनुपात करना चाहिए कि जब मध्यम बिम्ब १२ अंगुल का होता है तब इष्ट शुक्ल भाग $\frac{\text{अ}}{९००}$ अंगुल होता है, इसलिए जब स्पष्ट बिम्ब च है तब

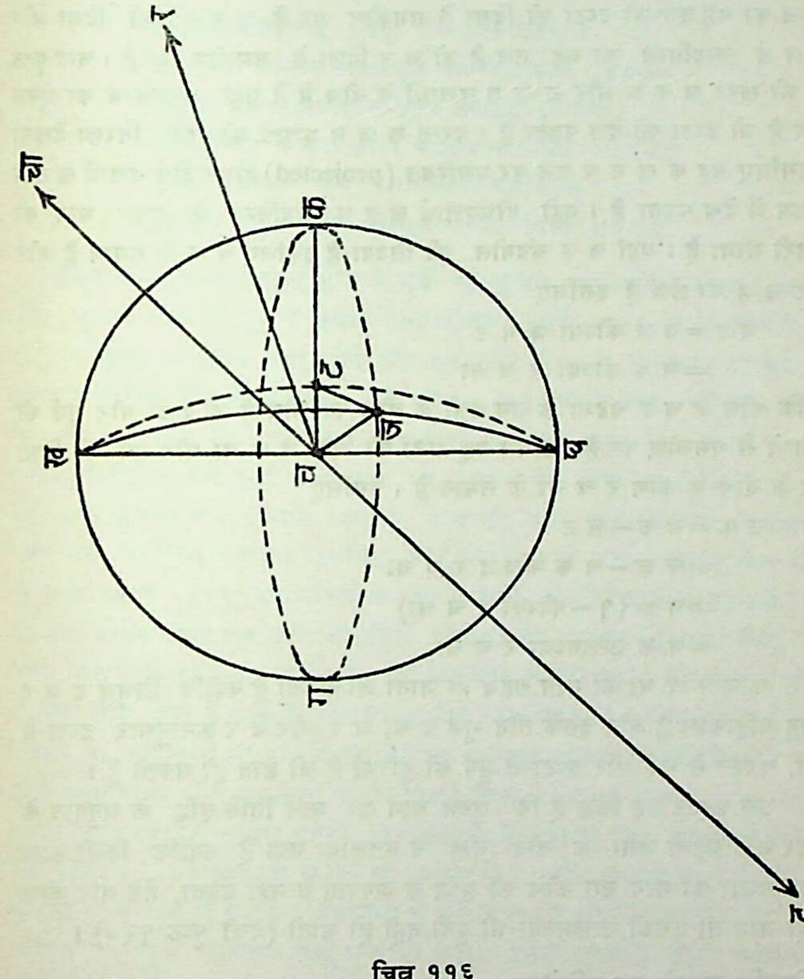
$$\text{शुक्ल भाग} = \text{स्पष्ट बिम्ब} \times \frac{\text{अ}}{९००} \div १२$$

$$= \text{स्पष्ट बिम्ब} \times \frac{\text{अ}}{९००} \times \frac{१}{१२}$$

यह नियम स्थूल है क्योंकि चन्द्रबिम्ब के शुक्ल भाग की वृद्धि तिथि वृद्धि के अनुपात में नहीं बढ़ती जैसा कि अभी प्रकट होगा। चन्द्रमा के शुक्ल भाग की नोकों को शृंग (cusp या horn) कहते हैं। दोनों शृंगों को मिलाने वाली रेखा चन्द्रबिम्व के उस वृत्त का व्यास है जो उसके प्रकाशित भाग को अप्रकाशित भाग से अलग करता है। इसलिए यह चन्द्र सूर्य के केन्द्रों को मिलानेवाली रेखा से समकोण पर होता है। यह उस वृत्त का भी व्यास है जो चन्द्रमा के द्रष्टा के सामने वाले भाग को उसके दूसरी ओर वाले भाग से अलग करता है। इसलिए यह द्रष्टा और चन्द्र-केन्द्र को मिलानेवाली रेखा से भी समकोण पर होता है। जब दोनों शृंगों को मिलानेवाली रेखा द्रष्टा और चन्द्रकेन्द्र तथा सूर्य और चन्द्र केन्द्रों को मिलाने वाली रेखाओं के समकोण पर होती है तब यह उस तल (plane) के भी समकोण पर होगी जो द्रष्टा चन्द्रकेन्द्र और सूर्यकेन्द्र से होकर जाता है अर्थात् सूर्य और चन्द्र केन्द्रों से होकर जाननेवाला महावृत्त (great circle) शृंगों को मिलानेवाले व्यास को दो समान भागों में काटता है। यह महावृत्त क्षितिज-तल से जो कोण बनाता है वह बहुत परिवर्त्तनशील है इसलिए चन्द्रमा का शृंग भिन्न-भिन्न मासों में भिन्न-भिन्न रीति से झुका रहता है अर्थात् कभी क्षितिज-तल के समानान्तर होता है और कभी लम्ब की दिशा में।

चन्द्रमा के दृश्य गोलार्ध का शुक्ल भाग दो वृत्तार्धों के बीच में होता है जिनमें से एक वृत्तार्ध द्रष्टा के सामनेवाले चन्द्रबिम्ब का होता है और दूसरा सूर्य के सामने वाले चन्द्रबिम्ब का। द्रष्टा के सामने वाले चन्द्रबिम्ब का वृत्तार्ध सूर्य की ओर किनारे पर होता है परन्तु सूर्य के सामने वाले चन्द्रबिम्ब का वृत्तार्ध भीतर की ओर होता है और द्रष्टा को तिरछी (obliquely) दिशा में देख पड़ता है इसलिए यह दीर्घ वृत्तार्ध के आकार का देख पड़ता है क्योंकि किसी वृत्त का छेद (projection) तिरछी रेखा में देखने पर दीर्घवृत्त (ellipse) होता है। इसकी जाँच कोई मनुष्य एक गोल चूड़ी और दीपक से सहज ही कर सकता है। चूड़ी लेकर दीवाल और दीपक के बीच में इस प्रकार थामना चाहिए कि चूड़ी का तल दीवाल के समानान्तर हो और दीपक का केन्द्र, चूड़ी का केन्द्र और दीवाल पर चूड़ी की छाया का केन्द्र समसूत्र में दीवाल के तल से समकोण पर हो। ऐसी दशा में चूड़ी की छाया गोल होगी। यदि चूड़ी इसी जगह थामे हुए तिरछी कर दी जाय जिससे इसका तल दीवाल से समानान्तर न रहे अथवा चूड़ी के तल को दीवाल के समानान्तर रखते हुए चूड़ी को नीचे ले जायँ या ऊपर उठा दें जिससे तीनों के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा दीवाल की लम्ब दिशा में न हो तब दीवाल पर चूड़ी की

जो छाया पड़ेगी वह बिल्कुल गोल न होगी वरन् दीर्घवृत्त के आकार की होगी। पहली दशा में छाया के दीर्घवृत्त का दीर्घ अक्ष सम दिशा (horizontal) में होगा और दूसरी दशा में ऊर्ध्वाधर (vertical)। इसी प्रकार चन्द्रबिम्ब के शुक्ल भाग की भीतरी सीमा दीर्घवृत्तार्ध होती है जिसका दीर्घ अक्ष चन्द्रबिम्ब के व्यास के



चित्र ११६

चित्र ११६ Hugh Godfray M. A. की A Treatise on Astronomy से लिया गया है।

समान होता है और लघु अक्ष सदैव परिवर्त्तनशील । अब यह बतलाया जायगा कि सूर्य और चन्द्रमा के स्थानों के अनुसार शुक्ल भाग की वृद्धि या क्षीणता किस प्रकार होती है ।

मान लो कि च चन्द्रमा का केन्द्र, च द द्रष्टा की दिशा, क ख ग घ चन्द्र बिम्ब का वह तल जो द्रष्टा की दिशा से समकोण पर है, च र सूर्य की दिशा और ख ज घ चन्द्रबिम्ब का वह तल है जो च र दिशा से समकोण पर है । चन्द्र-पृष्ठ का जो खण्ड ख क घ और ख ज घ वृत्तार्धों के बीच में है वही चन्द्रबिम्ब का शुक्ल भाग है जो द्रष्टा को देख पड़ता है । परन्तु ख ज घ वृत्तार्ध को द्रष्टा तिरछा देखता है इसलिए यह क ख ग घ तल पर प्रलम्बित (projected) होकर दीर्घ वृत्तार्ध ख ट घ के रूप में देख पड़ता है । यही दीर्घवृत्तार्ध ख ट घ चंद्रबिम्ब के शुक्ल भाग की भीतरी सीमा है । यहाँ च ज चंद्रगोल की त्रिज्या है इसलिए च क के समान है और च ट च ज का छेद्य है इसलिए

च ट=च ज कोज्या ज च ट

=च क कोज्या र च चा

क्योंकि कोण ज च ट चंद्रमा के उन तलों के बीच का कोण है जो द्रष्टा और सूर्य की दिशाओं से समकोण पर हैं इसलिये यह द्रष्टा की दिशा द च चा और सूर्य की दिशा च र के बीच के कोण र च चा के समान है । इसलिए

ट क=च क—च ट

=च क—च क कोज्या र च चा

=च क (१—कोज्या र च चा)

=च क उत्क्रमज्या र च चा

कोण र च चा का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि त्रिभुज द च र का यह वहिःकोण है और इसके तीन भुज द च, च र और द र क्रमानुसार द्रष्टा से चंद्रमा, चंद्रमा से सूर्य और द्रष्टा से सूर्य की दूरियाँ हैं जो ज्ञात हो सकती हैं ।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि शुक्ल भाग का मान तिथि-वृद्धि के अनुपात के अनुसार नहीं बढ़ता जैसा कि नौवें श्लोक में बतलाया गया है क्योंकि किसी कोण की उत्क्रमज्या का मान उस कोण की वृद्धि के अनुपात से नहीं बढ़ता, जैसे यदि कोण दूना हो जाय तो उसकी उत्क्रमज्या भी दूनी नहीं हो जाती (देखो पृष्ठ १२०) ।

शृङ्गोन्नति जानने का परिलेख—

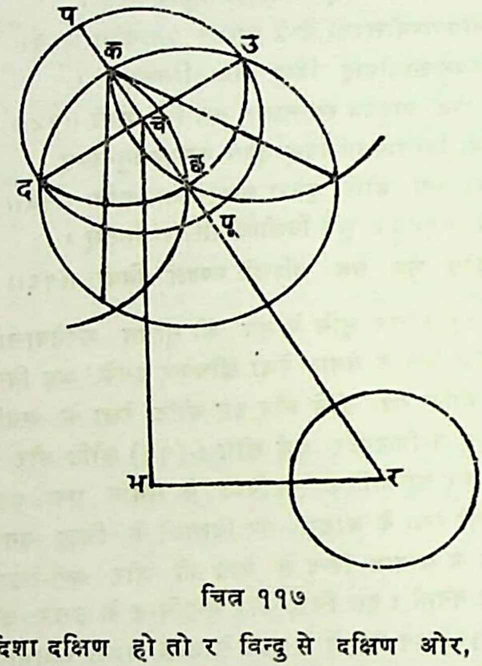
दत्वाऽर्कसंज्ञितं विन्दुं ततो बाहुं स्वदिङ्मुखम् ।
ततः पश्चान्मुखं कोटिं कर्णं कोट्यग्रभानुगम् ।।११।।

कोटिकणयुतेरिन्दोः विम्बं तात्कालिकं लिखेत् ।
कर्णसूत्रेण दिक्सिद्धि प्रथमं परिकल्पयेत् ॥१२॥
शुक्लं कर्णेन तद्बिम्बयोगावन्तमुखं नयेत् ।
शुक्लाग्रयाम्योत्तरयो र्मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत् ॥१३॥
तन्मध्यसूत्रसंयोगाद् बिन्दु त्रिस्पृग्लिखेद्धनुः ।
प्राग्बिम्बं यादृगेव स्यात्तादृक् तत्र दिने शशी ॥१४॥
कोट्या दिक्साधनात्तिर्यक् शुक्लं तच्छृङ्गमुन्नतम् ।
दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्य साऽऽकृतिः ॥१५॥
कृष्णे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथाऽसितम् ।
दद्याद्वामं भुजं तत्र पश्चिमे मण्डलं विधोः ॥१६॥

अनुवाद—(१०) समतल भूमि में सूर्य को सूचित करनेवाला विन्दु लिखकर इससे भुजकी दिशा में भुज के समान रेखा खींचकर इसके अग्र विन्दु से पच्छिम की ओर १२ अंगुल की कोटि रेखा खींचे और इस कोटि रेखा के अग्रविन्दु को सूर्य को सूचित करनेवाले विन्दु से मिलाकर कर्ण खींचे। (११) कोटि और कर्ण के संपात-विन्दु को केन्द्र मान कर तात्कालिक चंद्रविम्ब के समान एक वृत वनावे। पहले इसकी परिधि पर कर्ण रेखा के आधार पर दिशाओं के चिह्न वनावे। (१२) कर्ण रेखा और चन्द्रविम्ब के सम्पात विन्दु से केन्द्र की ओर कर्ण-रेखा पर चन्द्रमा के शुक्ल भाग का चिह्न बनावे। इस चिह्न और चन्द्रविम्ब के उत्तर दक्षिण विन्दुओं से दो मत्स्य बनावे। (१३) इन मत्स्यों के मध्य से जाने वाली रेखाओं के सम्पात विन्दु को केन्द्र मानकर एक धनु खींचे जो तीनों विन्दुओं को अर्थात् शुक्लाग्र विन्दु और उत्तर दक्षिण विन्दुओं को स्पर्श करे। इस धनु और चन्द्रविम्ब के पूर्व भाग के बीच-में जैसा चित्र होता है वैसा ही चन्द्रमा उस दिन देख पड़ता है। (१४) अब कोटि के आधार पर चन्द्रविम्ब की परिधि पर दिशाओं के चिह्न बनावे। कोटि रेखा से सम-कोण बनानेवाली और चन्द्रविम्ब के जानेवाली रेखा के ऊपर शुक्ल भाग का जो शृङ्ग रहेगा वही उन्नत देख पड़ेगा और आकाश में चन्द्रमा की आकृति वैसी ही देख पड़ेगी। (१५) कृष्णपक्ष में सूर्य की राशि में ६ राशि जोड़ने से जो आवे उसे चन्द्रमा के भोगांश से घटाकर चन्द्रविम्ब के असित अर्थात् अप्रकाशित भाग का साधन उसी प्रकार करना चाहिए। यहाँ भुज की दिशा उलटी होती है और चन्द्रविम्ब के पच्छिम भाग में काले भाग की वृद्धि होती है।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों में यह बतलाया गया है कि चन्द्रमा के शुक्ल भाग का परिलेख किस प्रकार बनाया जाता है। मान लो कागज का पृष्ठ समतल

भूमि या पट्टी है जिस पर परिलेख बनाना है और विन्दु रवि का स्थान है (देखो चित्र ११७)। यदि ६-८ श्लोकों के अनुसार जाने हुए भुज का मान र भ के समान



चित्र ११७

हो और इसकी दिशा दक्षिण हो तो र विन्दु से दक्षिण ओर, और उत्तर हो तो उत्तर की ओर र भ के समान एक रेखा खींचो जिसका भ सिरा भुज-अग्र कहा जा सकता है। इस भुज-अग्र से पच्छिम की ओर कोटि के समान अर्थात् १२ अंगुल के समान एक रेखा च तक खींचो। इस च विन्दु को कोटि-अग्र कहते हैं और इसी को तात्कालिक चन्द्रबिम्ब का केन्द्र समझना चाहिए। र च रेखा को कर्ण कहते हैं जिसकी चर्चा आठवें श्लोक में की गयी है। च को केन्द्र मानकर तात्कालिक चन्द्रबिम्ब के व्यासार्ध च पर एक वृत्त खींचो जो परिलेख में चन्द्रबिम्ब सूचित करता है। कर्ण-रेखा को इतना बढ़ाओ कि वह चन्द्रबिम्ब के दूसरी ओर प तक पहुँच जाय। च विन्दु से जाती हुई एक लम्ब रेखा प पू पर खींचो जो चन्द्रबिम्ब के उ, द विन्दुओं पर पहुँचे। इन उ, पू, द, प विन्दुओं को चन्द्रबिम्ब की क्रमानुसार उत्तर, दक्षिण और पच्छिम दिशाएँ समझो। नौवें श्लोक के अनुसार आये हुए चन्द्रमा के शुक्ल भाग का जो परिमाण हो पू से उतनी ही दूरी पर च की ओर एक विन्दु छ रखो। उ छ द विन्दुओं से होता हुआ जो धनु खींचा जायगा वही

चन्द्रमा के शुक्ल भाग का भीतरी किनारा है और उस दिन चन्द्रमा के शुक्ल भाग की वही आकृति होगी जो उ छ द और उ पू द धनुओं के बीच में है। उ छ द धनु खींचने के लिए यह रीति बतलायी गयी है कि उ को केन्द्र मानकर छ पर धनु खींचो और छ को केन्द्र मानकर उ पर धनु खींचो; इन दोनों धनुओं के योग-बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा खींचो। इसी प्रकार द और छ बिन्दुओं पर भी धनु खींच कर उनके योग-बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा खींचो। यह दोनों रेखाएँ जहाँ चन्द्रबिम्ब के भीतर काटें उसको केन्द्र मान कर छ बिन्दु पर जो धनु खींचा जायगा वह उ छ द बिन्दुओं को स्पर्श करेगा और वही चन्द्रमा के शुक्ल भाग का भीतरी किनारा होगा।

उ, छ, द, बिन्दुओं पर जानेवाले वृत्त का केन्द्र जानने की रीति रेखा-गणित की रीति से मिलती जुलती है क्योंकि धनुओं के योग बिन्दुओं को मिलाने-वाली रेखाएँ उ छ और द छ रेखाओं की समविभाजक लम्ब रेखाएँ हैं जिनका सम्पात् बिन्दु उ छ द वृत्त का केन्द्र है। चित्र में क बिन्दु इसी रीति से स्थिर किया गया है। अब क को केन्द्र मानकर क छ त्रिज्या से उ छ द धनु खींचा गया और उ छ द पू क्षेत्र की आकृति जानी गयी जो चन्द्रमा के शुक्ल भाग की आकृति है जिसमें उ द चन्द्रमा के शृङ्ग हैं।

यह जानने के लिए कि कौन शृङ्ग उन्नत अर्थात् उठा हुआ है चन्द्र-बिम्ब की दिशाओं में दूसरी कल्पना करने को १४वें श्लोक में कहा गया है परन्तु मेरी समझ में इसकी आवश्यकता नहीं है। कोटि-अग्र च से भुजा भ र के समानान्तर एक रेखा खींचो। जो शृङ्ग इस रेखा के ऊपर होता है वही उन्नत कहा जाता है। दिये हुए चित्र में उत्तर शृङ्ग उन्नत है।

चित्र से स्पष्ट है कि यदि भुज की दिशा दक्षिण हो तो चन्द्रमा का उत्तर शृङ्ग उन्नत होगा और भुज की दिशा उत्तर हो तो दक्षिण शृङ्ग उन्नत होगा। परन्तु यदि भुजा शून्य हो अर्थात् न उत्तर हो, न दक्षिण, तो चन्द्रमा का कोई शृङ्ग उन्नत न होगा वरन् सम होगा।

यह बतलाया जा चुका है कि शुक्ल भाग की वृद्धि जानने की जो रीति दी गयी है वह स्थूल है और उ छ द धनु भी वृत्त की परिधि का अंश नहीं है वरन् दीर्घवृत्त की परिधि का अंश है। इसलिए परिलेख की यह रीति स्थूल है परन्तु काम चलाने के लिए पर्याप्त है।

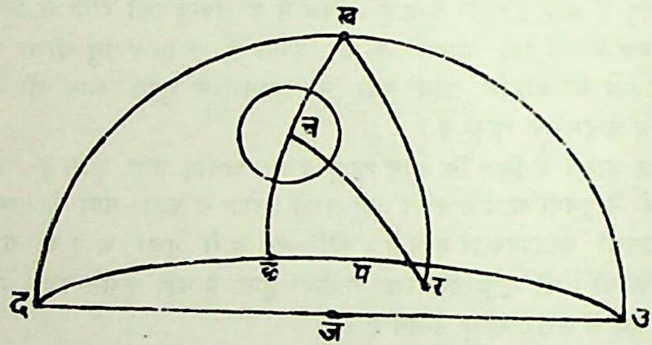
कृष्ण पक्ष के लिए नियम में जो संशोधन किया गया है उससे चन्द्रमा के असित भाग का ज्ञान होता है। परन्तु मेरी समझ में यदि सूर्योदयकालिक सूर्य की

राशि से चन्द्रमा की राशि घटाकर शुक्ल भाग की गणना की जाय और परिलेख बनाया जाय तो अधिक अच्छा है।

अब संक्षेप में यह बतला देना उचित होगा कि शुद्ध गणित की रीति से शृङ्गोन्नति की गणना कैसे की जाती है।

शृङ्गोन्नति की गणना की नवीन रीति—

सूर्य और चन्द्र बिम्बों के केन्द्रों से जानेवाले महावृत्त से चन्द्रशृङ्गों को मिलानेवाली रेखा समकोण बनाती है। खमध्य और चन्द्र बिम्ब के केन्द्र से जाने वाला महावृत अर्थात् दृङ्मण्डल पहले महावृत्त से जो कोण बनाता है वही शृङ्गोन्नति के कोण के समान होता है इसलिए शृङ्गोन्नति जानने के लिए इसी कोण के जानने की आवश्यकता होती है जो गोलीय त्रिकोणमिति के एक सूत्र के अनुसार जिसकी चर्चा त्रिप्रश्नाधिकार में कई स्थानों पर की गयी है सहज ही



चित्र ११८

उ ख द=यामोत्तर वृत्त ख =खमध्य

ज =देखने वाले का स्थान उ ज द=उत्तर-दक्षिण रेखा

उ प द=पच्छिम क्षितिज

च =पच्छिम गोल में चन्द्रमा का स्थान

र =अस्त हुए सूर्य का स्थान

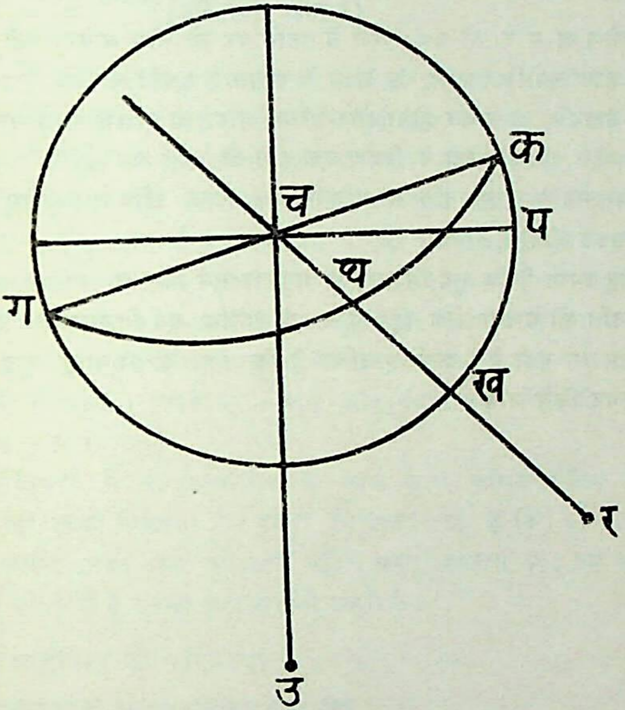
ख च =चन्द्रमा का नतांश

ख र =सूर्य का नतांश

च र=सूर्य और चन्द्रमा के बीच का अन्तर

∠ र ख च=सूर्य और चन्द्रमा के दिगंशों का अन्तर

मालूम हो सकता है। यदि सूर्य और चन्द्रमा के विषुवांश और क्रान्ति मालूम हों तो विषुवांश से विषुव काल और नतकाल जाने जा सकते हैं और नतकाल, क्रान्ति तथा अक्षांश से पृष्ठ २६१ के सूत्र (१) के नतांश और इससे पृष्ठ २७३ में दिये हुए सूत्र से दिगंश जाने जा सकते हैं। चित्र ११८ से विदित होता है कि इनके आधार पर शृङ्गोन्नति कैसे जानी-जा सकती है।



चित्र ११६

च=चन्द्र बिम्ब का केन्द्र

उ च=चन्द्र केन्द्र का ऊर्ध्व वृत्त (दृङ्मण्डल)

र च=सूर्य की दिशा

क ख ग घ=चन्द्रमा का शुक्ल भाग

∠उ च र=शृङ्गोन्नति का कोण=∠क च प

गोलीय त्रिकोणमिति के सूत्र के अनुसार,

कोज्या च र = कोज्या ख र × कोज्या ख च + ज्या ख र × ज्या ख च × कोज्या ∠ र ख च

इस सूत्र से जब च र आ जाय तब,

$$\text{कोज्या} \angle \text{ख च र} = \frac{\text{कोज्या ख र} - \text{कोज्या ख च} \times \text{कोज्या च र}}{\text{ज्या ख च} \times \text{ज्या चर}}$$

कोण ख च र को १८० अंश से घटाने पर जो कोण आवेगा वही शृङ्गोन्नति का कोण होगा क्योंकि यह ∠ छ च र के समान है। यदि चन्द्रमा से सूर्य उत्तर होगा तो उत्तर शृङ्ग उन्नत होगा और दक्षिण होगा तो दक्षिण शृङ्ग उन्नत रहेगा। यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों के दिगंश एक होंगे तो शृङ्ग सम होगा। इतना जान लेने पर चन्द्रमा के शृङ्गोन्नति का परिलेख इस प्रकार खींचना चाहिए जैसा चित्र ११६ से प्रकट होता है।

यह स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करने से शृङ्गोन्नति की गणना ठीक नहीं हो सकती क्योंकि सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवाङ्कों में कुछ स्थूलता आ गयी है। इसलिए उचित है कि ग्रहों के ध्रुवाङ्क शुद्ध वेध द्वारा फिर से स्थिर किये जायँ।

इस प्रकार शृङ्गोन्नत्यधिकार नामक दसवें अध्याय का विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

एकादश अध्याय

पाताधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-२—वैधृति और व्यतीपात पातों की परिभाषा। श्लोक ३-५—दोनों पातों का स्वरूप और प्रभाव। श्लोक ६—सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब निश्चय करे। श्लोक ७-८—यह जानना कि पातकाल बीत चुका है अथवा होने-वाला है। श्लोक ९-११—सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ कब समान होती हैं। श्लोक १२-१३—स्पष्ट क्रान्ति से शुद्ध पातकाल जानना। श्लोक १४-१५—पातकाल का आरम्भ, मध्य और अंत कब होता है। श्लोक १६-१८—पातकाल में क्या करना चाहिये। श्लोक १९—पात दो बार कब होते हैं, और अभाव कब होता है। श्लोक २०—पंचांग संबंधी व्यतीपात योग जानना। श्लोक २१—भसंधि और गंडांत काल की परिभाषा। श्लोक २२—पात और गंडांतकाल किस लिए निषिद्ध हैं श्लोक २३—उपसंहार।]

इस अधिकार में गणितज्योतिष के साथ साथ फलितज्योतिष का भी समावेश है। यही इसकी विशेषता है। दूसरी विशेषता यह है कि इसके बाद जो तीन अध्याय आवेंगे उनका नाम 'अधिकार' नहीं है वरन् 'अध्याय' है। इस अधिकार में जिन पातों की चर्चा है उनको महापात भी कहते हैं।

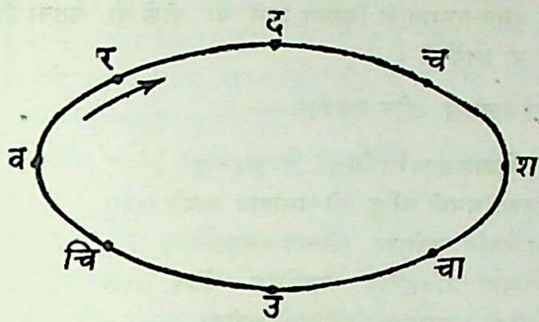
वैधृति और व्यतीपात की परिभाषा—

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योः तुल्यत्वे वैधृताभिधः॥
विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।
समस्तदा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतौ॥

अनुवाद—(१) जब सूर्य और चन्द्रमा एक अयन में होते हैं और जब इनके भोगांशों का योग १२ राशि के समान होता है तब दोनों की क्रान्तियाँ समान होने से वैधृति नामक पात होता है। (२) जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न अयनों में होते हैं और जब इनके भोगांशों का योग ६ राशि के समान होता है तब इनकी क्रान्तियाँ समान होने से व्यतीपात नामक पात होता है।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती हैं तभी वैधृति और व्यतीपात नामक पात होते हैं अर्थात् जब विषुवद्वृत्त से सूर्य और चन्द्रमा की दूरियाँ समान होती हैं तभी वैधृत और व्यतीपात होते हैं। परन्तु सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होते हुए भी दोनों उत्तर हो सकती हैं या दोनों दक्षिण; अथवा एक उत्तर और दूसरी दक्षिण। अब यह देखना है कि यह दशा कब होती है। जब सूर्य विषुवद्वृत्त पर होता है तब इसकी क्रान्ति शून्य होती है। यह घटना वर्ष में दो बार होती है—सायन मेष और सायन तुला संक्रान्ति के दिन। सायन मेष से सायन कर्क तक सूर्य की उत्तर क्रान्ति शून्य से बढ़ते-बढ़ते आजकल २३ अंश २७ कला तक हो जाती है। सायन कर्क से घटने लगती है और सायन तुला तक घट कर शून्य फिर हो जाती है। सायन तुला से क्रान्ति दक्षिण हो कर सायन मकर तक बढ़कर २३ अंश २७ कला हो जाती है। सायन मकर से सायन मेष तक घटते-घटते शून्य हो जाती है। जब सूर्य सायन मकर से आगे बढ़ता है तब यह उदय या अस्त होने के समय क्षितिज पर उत्तर की ओर खसकता हुआ देख पड़ता और यह गति सायन कर्क तक देखी जाती है इसीलिए सायन मकर संक्रान्ति से सायन कर्क संक्रान्ति तक के समय को उत्तरायण कहते हैं। परन्तु सायन कर्क संक्रान्ति के उपरान्त सूर्य क्षितिज पर दक्षिण की ओर खसकता हुआ देख पड़ता है इसीलिए सायन कर्क संक्रान्ति से सायन मकर संक्रान्ति तक के समय को दक्षिणायन कहते हैं। चन्द्रमा भी सूर्य की तरह अपने लगभग एक मास के चक्कर में आधे मास तक उत्तरायण और आधे मास तक दक्षिणायन रहता है परन्तु इसकी कक्षा क्रान्ति-वृत्त से कुछ भिन्न होने के कारण तथा इसकी कक्षा और क्रान्तिवृत्त के सम्पात स्थानों राहु और केतु से स्वयम् वक्री होने के कारण इसके उत्तरायण और दक्षिणायन का समय स्थिर करना कुछ कठिन है। परन्तु मोटे हिसाब से यह कहने में कोई हर्ज नहीं है कि जब चन्द्रमा सायन मकर राशि के निकट आता है तब यह उत्तरायण होता है और जब सायन कर्क राशि के निकट आता है तब दक्षिाणयन होता है क्योंकि चन्द्र-कक्षा और क्रान्तिवृत्त के बीच का कोण अर्थात् चन्द्रमा का परमशर केवल ५°९′ के लगभग है। दिये हुए चित्र १२० से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मान लो दिया हुआ दीर्घवृत्त क्रान्तिवृत्त है और इसके व और श विन्दु क्रम से वसन्तऔर शरद सम्पात हैं जहाँ विषुवद्वृत्त क्रान्तिवृत्त से मिलता है। सरलता के लिए विषुवद् वृत्त नहीं दिखलाया गया है। यदि मान लिया जाय कि चन्द्रमा की कक्षा क्रान्तिवृत्त ही है तो यह स्पष्ट है कि जब सूर्य और चन्द्रमा व और श बिन्दुओं से समान दूरी पर होंगे तभी दोनों की क्रान्तियाँ समान होंगी। अब देखना है कि



चित्र १२०

चन्द्रमा के एक फेरे के यह घटना कितनी वार हो सकती है। मान लो र सूर्य का स्थान वसंत-सम्पात व और दक्षिणायन विन्दु द के बीच में किसी जगह है। जब चन्द्रमा भी र पर रहेगा अर्थात् अमावस्या के दिन, तब दोनों की क्रान्तियाँ एक ही रहेंगी। जब चन्द्रमा च, चा और चि पर रहेगा तब भी दोनों की क्रान्ति समान रहेंगी यदि वर=चश=शचा=चिव। परन्तु जब चन्द्रमा चा विन्दु पर रहेगा तब पूर्णिमा होगी। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार पातकालिक क्रान्तिसाम्य के लिए अमावस्या और पूर्णिमा के दिन का विचार नहीं किया जाता इसलिए जब चन्द्रमा च और चि पर रहेगा तभी क्रान्ति साम्य का योग आवेगा।

पहले श्लोक में बतलाया गया है कि जब सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का योग ३६० अंश हो तब वैधृति नामक पात होता है। यह दशा तभी हो सकती है जब सूर्य र, च, चा या चि पर हो तो चन्द्रमा क्रम से चि, चा, च या र पर हो क्योंकि तभी वसंत सम्पात व से सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का योग ३६० अंश हो सकता है। चित्र से स्पष्ट है कि र और चि स्थान उत्तरायण विन्दु उ, वसंत सम्पात व और दक्षिणायन बिन्दु द के बीच में है इसलिए र और चि दोनों उत्तरायण हैं। इसी प्रकार च, चा दोनों दक्षिणायन हैं। इसीलिए पहले श्लोक में बतलाया गया है कि जब सूर्य और चन्द्रमा एक अयन में हों और दोनों के (सायन) भोगांशों का योग ३६० अंश हो तभी वैधृति पात होता है। इसके प्रतिकूल जब दोनों भिन्न अयन में हों और भोगांशों का योग १८० अंश हो तब व्यतीपात होता है। चित्र में यदि सूर्य और चन्द्रमा र, च पर हों तो दोनों के भोगांशों का योग १८०° होगा और चा, चि पर हों तो भी दोनों के भोगांशों का योग ३६०+१८० अंश अथवा १८० अंश होगा। परन्तु र और च अथवा च और चि स्थान भिन्न अयनों में है, इसलिए व्यतीतपात नामक क्रान्तिसाम्य योग तभी होता है जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न अयनों

में हों और सूर्य वसंत-सम्पात से जितना आगे या पीछे हो उतना ही चन्द्रमा शरद सम्पात से पीछे या आगे हो ।

दोनों पातों का स्वरूप और स्वभाव—

तुल्यांशुजालसंपर्कात्तयोस्तु प्रवहाहतात्[1] ।
तद्दृक्क्रोधभवो वह्निः लोकाभावाय जायते ॥३॥
विनाशयति पातोऽस्य लोकानामसकृद्यतः ।
व्यतीपातः प्रसिद्धोऽत्र संज्ञाभेदेन वैधृतः ॥४॥
स कृष्णो दारुणवपुः लोहिताक्षो महोदरः ।
सर्वानिष्टकरो रौद्रः भूयोभूयः प्रजायते ॥५॥

अनुवाद—(३) क्रान्ति-साम्य-कालिक सूर्य और चन्द्रमा की समान किरणों के मिलने से और उनकी दृष्टि रूपी क्रोध से उत्पन्न अग्नि प्रवह वायु से प्रज्वलित होकर संसार के लिए अशुभ फल उत्पन्न करती है । (४) जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती हैं तब यह पात संसार को वारंवार नाश करता है । इसे व्यतीपात और वैधृति कहते हैं । (५) यह पात रंग में काला, कठिन शरीरवाला, लाल नेत्रवाला, बड़ा पेटवाला, सबका अशुभ करने वाला और भयंकर है और बार-बार उत्पन्न होता है ।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकों में दोनों पातों का बड़ा भयंकर चित्र खींचा गया है परन्तु तो भी काशी के अच्छे-अच्छे पंचांगों में भी इनकी चर्चा बहुत कम रहती है । बम्बई प्रान्त के भी पंचांगों में इनकी चर्चा नहीं देख पड़ती । हाँ, गुजराती के 'प्रत्यक्ष पंचांग' में इसका विचार अवश्य रहता है । इससे जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त के इन महापातों का विचार फलित ज्योतिषी लोग बहुत कम करते हैं ।

व्यतीपात और वैधृति नाम के योग भी होते हैं । पहले की क्रम संख्या १७ और दूसरे की २७ है । व्यतीपात नामक योग का सम्बन्ध व्यतीपात नामक पात से कुछ भी नहीं है परन्तु वैधृत योग का सम्बन्ध इस नाम के पात से उस समय अवश्य रहा होगा जब वसंत-संपात अश्विनी नक्षत्र के आदि स्थान में था ।

सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब निश्चय करनी चाहिए—

भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चक्रार्धावधिसंस्थयोः ।
दृक्तुल्यसाधितांशादि युक्तयोः स्वावपक्रमौ ॥६॥

---

१. वेंकटेश्वर प्रेस वाले और बंगला संस्करण में प्रवहावृतः पाठ है ।

अनुवाद—(६) त्रिप्रश्नाधिकार में बतलायी हुई रीति से छाया सूर्य का भोगांश जानकर इससे स्पष्टाधिकार की रीति से जाने हुए स्पष्ट सूर्य को घटाकर अयनांश निकाले और यह अयनांश स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों में जोड़े। अयनांश-संस्कृत सूर्य और चन्द्रमा अर्थात् सायन सूर्य और सायन चन्द्रमा के भोगांशों का जोड़ जब १२ राशि या ६ राशि हो तब इन दोनों की स्पष्ट क्रान्ति निश्चय करनी चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—यह जानने के लिए कि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब समान होती है, सायन सूर्य और सायन चन्द्रमा के भोगांश जानने की आवश्यकता है इसीलिए स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमा में अयनांश जोड़ने की विधि बतलायी गयी है। इस रीति से क्रान्ति-साम्य का जो समय आवेगा वह स्थूल होगा क्योंकि चन्द्रमा की कक्षा क्रान्तिवृत्त से भिन्न है। इस विषय की और बातें चित्र १२० के साथ ही बतला दी गयी हैं।

यह जानना कि पात-काल बीत गया है या आनेवाला है—

अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता ।
यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥७॥
ऊना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च ।
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुध्यति ॥८॥

अनुवाद—(७) सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जानने के बाद यह देखना चाहिये कि चन्द्रमा वसंत-संपात से विषम पद में है या सम पद में। यदि चन्द्रमा विषम पद में हो और इसकी विक्षेप-संस्कृत क्रान्ति अर्थात् स्पष्ट क्रान्ति सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति से अधिक हो तो समझना चाहिये कि पातकाल बीत गया है, (८) और यदि कम हो तो समझना चाहिये कि पातकाल आनेवाला है। परन्तु यदि चन्द्रमा समपद में हो तो इसका उलटा समझना चाहिये अर्थात् समपद में चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से अधिक हो तो समझना चाहिए कि पातकाल आनेवाला है और कम हो तो समझना चाहिए कि पातकाल बीत गया है। यदि चन्द्रमा के विक्षेप या शर से इसकी क्रान्ति कम हो और घटाना पड़े तो ऊपर के नियम में विषमपद के बारे में जो कुछ कहा गया है वह समपद के बारे में समझना चाहिये और समपद के बारे में जो कहा गया है वह विषमपद के बारे में समझना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—ओज और युग्मपद अथवा विषम और समपद की चर्चा स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२६-२७ में अच्छी तरह हुई है। यहाँ वसंत-संपात बिन्दु से सायन कर्क बिन्दु या दक्षिणायन बिन्दु तक प्रथम पद, दक्षिणायन बिन्दु से शरद सम्पात

बिन्दु तक द्वितीय पद, शरद सम्पात से सायन मकर या उत्तरायण बिन्दु तक तृतीय पद और उत्तरायण बिन्दु से बसंत सम्पात तक चतुर्थ पद है। प्रथम और तृतीय पदों को विषम या ओज पद और द्वितीय तथा चतुर्थ पद को सम पद या युग्म पद कहा गया है।

चित्र १२० से स्पष्ट होता है कि जब चन्द्रमा विषमपद अर्थात् व द या श उ में कहीं रहेगा तब व्यतीपात या वैधृति के लिए सूर्य को क्रमानुसार द श या उ व में होना चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि सूर्य या चन्द्रमा की क्रान्ति विषम पद में बढ़ती रहती है और समपद में घटती रहती है। इसलिए जब चन्द्रमा विषम पद में और सूर्य सम पद में होता है तब चन्द्रमा की क्रान्ति बढ़ती रहती है और सूर्य की घटती रहती है। इसलिए छठें श्लोक से पातकाल का जो स्थूल समय निकाला जाता है उस समय यदि चन्द्रमा की क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से अधिक है तो चन्द्रमा की क्रान्ति और बढ़ती जायगी और सूर्य की क्रान्ति घटती जायगी। इसलिए दोनों की क्रान्ति इस समय से पहले ही समान हो चुकी है और पातकाल बीत गया है। इसके विरुद्ध यदि चन्द्रमा की क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से कम हो तो चन्द्रमा की क्रान्ति बढ़ती रहने के कारण वह समय आने वाला है जब दोनों की क्रान्ति समान होगी और तभी पातकाल होगा। इसी तरह जब चन्द्रमा समपदों में होगा तब सूर्य विषम पदों में होगा। ऐसी दशा में चन्द्रमा की क्रान्ति घटती और सूर्य की बढ़ती रहेगी। इसलिए यदि चन्द्र-क्रान्ति अधिक है तो घटते-घटते सूर्य की क्रान्ति के बराबर हो जायगी और पातकाल श्लोक ६ से निकाले हुए समय के बाद आवेगा। परन्तु यदि चन्द्रक्रान्ति कम हो तो पातकाल बीता हुआ समझना चाहिए।

आठवें श्लोक के उत्तरार्ध में यह बतलाया गया है कि यदि विक्षेप से मध्यक्रान्ति घटाकर स्पष्ट क्रान्ति आती हो तो ऊपर बतलाए हुए नियम से भिन्न नियम काम में लाना होगा क्योंकि यदि मध्य क्रान्ति और शर की दिशा भिन्न है तो सीधे ही यह नहीं बतलाया जा सकता कि चन्द्रक्रान्ति बढ़ रही है या घट रही है। ऐसी दशा में १ दिन आगे और पीछे की क्रान्ति जानने से ही काम चलेगा।

असकृत्कर्म से तुल्य क्रान्तियों का स्थान निश्चय करना—

क्रान्तिज्ये त्रिज्ययाऽभ्यस्ते परक्रान्तिज्ययोद्धृते।
तच्चापान्तरमर्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ ॥९॥
शोध्यं चन्द्राद् गते पाते सूर्यस्य गतिताडितम्।
चन्द्रभुक्त्या हृतं भानौ लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥१०॥
तद्वच्छशाङ्कपातस्य फलं देयं विपर्ययात्।
कर्मैतदसकृत्कुर्यात् यावत्क्रान्ती समे तयोः ॥११॥

अनुवाद—(९) सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा करके परम क्रान्तिज्या से भाग देना चाहिये। लब्धियों के धनु बनाकर उनका अन्तर निकाले। इस अन्तर को या इसके आधे को चन्द्रमा के भोगांश में जोड़ दे यदि पातकाल आने वाला हो और (१०) यदि पातकाल बीत चुका हो तो उस अन्तर या इसके उसके आधे को चन्द्रमा के भोगांश से घटा दे। इस अन्तर या आधे को जिसको जोड़ा या घटाया जाय उस दिन की सूर्य की गति से गुणा करके उस दिन की चन्द्रगति से भाग देना चाहिए। जो लब्धि आवे उसे सूर्य के भोगांश में उसी तरह जोड़ना या घटाना चाहिए जैसे चन्द्रमा में जोड़ा या घटाया है। (११) इसी प्रकार उस अन्तर या उसके आधे को चन्द्रपात अर्थात् राहु की गति से गुणा करके चन्द्र गति से भाग देकर जो लब्धि आवे उसे राहु के भोगांश में उलटे क्रम से संस्कार दे अर्थात् यदि चन्द्रमा में अन्तर जोड़ा हो तो राहु में घटाना चाहिए और घटाया है तो जोड़ना चाहिए। इन संस्कारों के बाद सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति फिर जाननी चाहिए। यदि दोनों समान न हों तो फिर ९-१० श्लोकों में बतलायी गयी क्रिया करनी चाहिए। यह असकृत्कर्म (Method of approximation) तब तक करना चाहिए जब तक सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति समान न हो जायँ।

विज्ञान-भाष्य—नौवें श्लोक के पूर्वार्ध में जो नियम बतलाया गया है वह स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक में बतलाये गये नियम का विलोम है (पृष्ठ १२२-२३)। यहाँ क्रान्तिज्या, त्रिज्या और परम क्रान्तिज्या से भोगांश जानने की रीति है। इस रीति से जो भोगांश आवेगा वह ९० अंश से कम होगा। इससे अधिक जानने की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि हमको तो यही देखना है कि वसंत या शरद सम्पात से सूर्य और चन्द्रमा कितनी दूर हैं। स्पष्ट क्रान्ति भिन्न होने से यह भोगांश भी भिन्न होंगे परन्तु एक दूसरे के निकट अवश्य होंगे। इन भोगांशों का जो अन्तर होगा उतना ही चन्द्रमा पातकाल से आगे या पीछे होगा। यदि पातकाल आनेवाला है तो यह अन्तर चन्द्रमा के भोगांश में जोड़ना चाहिए क्योंकि उस समय तक चन्द्रमा इतना ही आगे बढ़ जायगा और यदि पातकाल बीत चुका है तो यह अन्तर चन्द्रमा के भोगांश से घटाना चाहिए क्योंकि बीते हुए पातकाल के समय चन्द्रमा इतना ही पीछे रहेगा। परन्तु सूर्य भी इतने समय में कुछ न कुछ स्थान छोड़ेगा। इसलिए पातकाल का सूर्य का स्थान भी स्पष्ट करना आवश्यक है। इसके लिए अनुपात से काम लेना चाहिए कि जब चन्द्रमा की दैनिक गति इतनी है तो सूर्य की दैनिक इतनी है इसलिए जब चन्द्रमा की गति उस अन्तर के समान होगी तब सूर्य की गति क्या होगी अर्थात् चन्द्र

दैनिक गति : चन्द्र अन्तर :: सूर्य की दैनिक : सूर्य अन्तर । इस प्रकार जो अन्तर आवे उसे सूर्य के भोगांश में जोड़ना चाहिए यदि चन्द्रमा का अन्तर जोड़ा गया हो, नहीं तो घटाना चाहिए । इस प्रकार पातकाल में सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट भोगांश मालूम हो जायँगे । इससे फिर सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जाननी चाहिये । परन्तु चन्द्रमा की स्पष्ट क्रांति जानने के लिए चंद्रमा का शर जानना आवश्यक है जो चंद्रमा के पात राहु या केतु पर अवलम्बित है और इतनी देर में चंद्रपात भी वक्रीगति से अपना स्थान बदल देगा इसलिए उसी प्रकार अनुपात से राहु का भी परिवर्तन जान लेना चाहिये । परन्तु इस परिवर्तन का संस्कार राहु में विलोम रीति से करना चाहिए अर्थात् जब चंद्रमा और सूर्य में जोड़ना हो तो इसमें घटाना चाहिये और घटाना हो तो जोड़ना चाहिये क्योंकि राहु की गति उलटी होती है । जब चंद्र-क्रांति में चंद्र-शर का संस्कार करके स्पष्ट क्रान्ति आ जाय तब देख पड़ेगा कि सूर्य की क्रान्ति अब भी कुछ भिन्न है । इन क्रान्तियों से ९-११ श्लोकों में बतलायी गयी रीति को फिर दुहरावे और तब तक दुहरावे जब तक दोनों की क्रान्ति समान न हो जाय । इसी को असकृत्कर्म कहते हैं जिसकी चर्चा पीछे कई जगह हो चुकी है ।

९-११ श्लोकों में बतलाये गये नियम की इतनी व्याख्या पर्याप्त है । यहाँ मुझे केवल इतना ही कहना है कि यह सब झंझट करने पर भी पातकाल का ठीक-ठीक ज्ञान होना असंभव है क्योंकि चंद्रमा की गति इतनी सरल नहीं है जैसी सूर्य-सिद्धान्त में बतलायी गयी है । इसका शुद्ध स्थान जानने के लिए कई संस्कार करने पड़ते हैं जिनकी चर्चा स्पष्टाधिकार में अच्छी तरह की गयी है । इसलिए यदि पातकाल का ठीक-ठीक निर्णय करना हो तो आधुनिक वेधों से ही काम लेना चाहिए जिसके लिए आधुनिक सिद्धान्त के आधार पर सारणी आदि तैयार करनी चाहिये ।

नौवें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि सूर्य और चंद्रमा के भोगांशों के अंतर या इस अन्तर के आधे को जोड़ना या घटाना चाहिए । टीकाकारों ने लिखा है कि आधा तब लेना चाहिए जब अन्तर अधिक हो । इससे गणना में तो कोई भेद नहीं पड़ता, केवल कुछ सरलता आ जाती है क्योंकि उद्देश्य तो यह है कि असकृत्कर्म से वह समय जाना जाय जिस समय दोनों की क्रान्ति समान होती है ।

पातकाल अर्धरात्रि से पहले या पीछे—

क्रान्त्योस्समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ ।
हीनेऽर्धरात्रिकाद्यातो भावि तात्कालिकेऽधिके ।।१२।।

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्तियाँ जब समान होती हैं तभी पातकाल होता है । नौवें श्लोक के अनुसार जाना हुआ पातकालिक स्पष्ट चन्द्रमा का

भोगांश स्पष्टाधिकार के अनुसार जाने हुए उस दिन के अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट चन्द्रमा के भोगांश से कम हो तो समझना चाहिए कि पातकाल अर्धरात्रि से पहले हो चुका है और अधिक हो तो समझना चाहिए कि पातकाल अर्धरात्रि के बाद होगा।

विज्ञान-भाष्य—चन्द्रमा का भोगांश सदैव बढ़ता रहता है इसलिए यदि पातकालिक स्पष्ट चन्द्रमा का भोगांश अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट चन्द्रमा के भोगांश से कम हो तो निश्चय है कि पातकाल अर्धरात्रि से पहले हो चुका है और अधिक है तो अर्धरात्रि के बाद होगा।

पातकाल अर्धरात्रि से कितना पहले या पीछे है—

स्थिरीकृतार्धरात्रेन्द्वोःद्वयोर्विवरलिप्तिका: ।
षष्टिघ्नाश्चन्द्रभुक्त्याप्ता: पातकालस्य नाडिका: ॥१३॥

अनुवाद—उपर्युक्त नियम से निश्चित किया हुआ पातकालिक चन्द्र-भोगांश और उस दिन के अर्धरात्रिकालिक चन्द्रभोगांश के अंतर को कलाओं में लिखकर साठ से गुणा करने और गुणनफल को अर्धरात्रिकालिक चन्द्रगति से भाग देने से जो लब्धि आवेगी उतनी ही घड़ी पहले या पीछे पातकाल हुआ है या होगा।

विज्ञान-भाष्य—पातकालिक चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चंद्रमा के भोगांशों के अंतर से यह मालूम होगा कि पातकालिक चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा से कितना पहले या पीछे था। फिर यह गणना करनी चाहिए कि अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा की दैनिक गति ६० घड़ी में होती है तो वह अंतर कितनी घड़ी में हुआ होगा। इतना ही आगे या पीछे पातकाल होना चाहिए।

यदि सूर्य और चन्द्र की गणना आधुनिक सिद्धान्त द्वारा बहुत सूक्ष्म की जाय तो भी इस नियम से जो पातकाल आवेगा वह स्थूल होगा क्योंकि पातकालिक गणना बहुत सूक्ष्म होती है और चन्द्रमा की दैनिक गति इतनी अधिक होती है कि यदि अर्द्धरात्रिकालिक गति को पातकालिक समझ लिया जाय जैसा कि इस नियम में समझा गया है तो सूक्ष्मता नहीं आ सकती क्योंकि यदि पातकाल और अर्द्धरात्रिकाल में बहुत अंतर है तो दोनों समय की चन्द्रगतियाँ समान नहीं होंगी इसलिए मेरी समझ में यह अच्छा होगा कि इस नियम से जो पातकाल आवे उस समय से दो घड़ी आगे और पीछे की चन्द्रगतियों से काम लिया जाय।

पातकाल के आरम्भ और समाप्त होने का समय जानना—

रवीन्द्वोर्मानयोगार्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत् ।
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादिकम् ॥१४॥

पातकालस्स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्धवर्जितः ।
तस्य संभवकालस्स्यात् संयुक्तश्चान्तसंज्ञितः ।।१५।।

अनुवाद—(१४) सूर्य और चन्द्रबिम्बों के मानों को जोड़कर आधा करे और इसको ६० से गुणा करके दोनों की गतियों के अन्तर से भाग दे दे तो लब्धि स्थित्यर्ध घड़ी होती है। (१५) इसको स्पष्ट पातकाल से जो पात का मध्यकाल होता है घटा देने से जो समय आता है उसी समय पातकाल का आरम्भ होता है और जोड़ने से जो समय आता है उसी समय पातकाल का अन्त होता है।

विज्ञान-भाष्य—स्थित्यर्ध की जो परिभाषा चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ४६८-७० में दी गयी है वही यहाँ भी समझनी चाहिए। पृष्ठ ४६६ में $\frac{६० \times च फ}{चा - रा}$ सूत्र दिया गया है। यदि इसमें च फ की जगह सूर्य और चन्द्र-बिम्बों के योग का आधा रख दिया जाय तो पातकाल का स्थित्यर्ध हो जायगा जिसे जानने का नियम १४वें श्लोक में बतलाया गया है। १५वें श्लोक में स्थित्यर्ध से आरम्भ और अन्तकाल उसी तरह जाना जाता है जिस तरह ग्रहण का स्पर्श और मोक्षकाल जाना जाता है।

इसका सार यह है कि जिस समय चन्द्रमा और सूर्य के बिम्बों के किनारों की क्रान्ति समान होती है उस समय से पातकाल का आरम्भ होता है और जिस समय दोनों बिम्बों के केन्द्रों की क्रान्ति समान होती है उस समय पात का मध्यकाल होता है जिसके जानने की रीति १३ श्लोकों तक बतलायी गयी है और जिस समय दोनों बिम्बों के दूसरे किनारों की क्रान्तियाँ भी समान हो जाती हैं उस समय पातकाल का अन्त होता है।

पातकाल का प्रभाव और उसके योग्य कर्म—

आद्यन्तकालयोर्मध्ये कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः ।
प्रज्वलज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः ।।१६।।
एकक्राष्ठां गतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम् ।
संभवस्तावदेवास्य सर्वकर्मविनाशकृत् ।।१७।।
स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मसु ।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयः तत्कालज्ञानतस्तदा ।।१८।।

अनुवाद—(१६) पातकाल के आरंभ से अंत तक का समय बड़ा दारुण, प्रज्वलित, और अग्नि स्वरूप होता है। यह सब शुभ कार्यों के लिए निन्दित है। (१७) जब तक सूर्य बिम्ब के किसी विन्दु की क्रान्ति चन्द्रबिम्ब के किसी विन्दु की

क्रान्ति के समान होती है तब तक सब कर्मों का नाश करनेवाले इस पात की स्थिति रहती है। (१८) इस काल में स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रत, होम आदि कर्मों से अत्यन्त पुण्य प्राप्त होता है और इस काल के ज्ञान से भी पुण्य होता है।

विज्ञान-भाष्य—जैसे पूर्णिमा, अमावस्या आदि कालों में स्नान, दान, जप अदि काम अच्छे समझे जाते हैं वैसे ही पातकाल में भी यह कर्म अच्छे बतलाये गये हैं और जिस प्रकार मुहूर्त-चिंतामणि में बतलाये गये बहुत से योगों में शुभ कर्म करना वर्जित है उसी प्रकार यहाँ भी। परन्तु ज्योतिषी लोग यथार्थ में इन महापातों का विचार कम करते हैं, वह शायद इसलिए कि इसकी गणना पुराने सिद्धान्तों के आधार पर तो असम्भव ही है। इसीलिए पंचांगों में इनकी चर्चा नहीं के बराबर रहती है। हिन्दू विश्वविद्यालय के विश्व-पंचांग में भी दो एक जगह चर्चा करके छोड़ दिया जाता है यद्यपि इसके लेखकों को नाविक-पंचांग की सहायता से पातकाल का जानना बड़ा सुगम होता है क्योंकि और बातों में तो ये नाविक पंचांग से सहायता लेते ही हैं। १८वें श्लोक की अंतिम बात निस्संदेह बहुत सुन्दर है। उसमें यह बतलाया गया है कि पातकाल के जानने से भी पुण्य होता है अर्थात् पातकाल का शुद्ध-शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना भी पुण्य कार्य है जो तभी संभव है जब सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि की गणना ठीक-ठीक दृक्तुल्यता से की जाय और ज्योतिष सिद्धान्त का पठन-पाठन नवीन वैज्ञानिक रीति से किया जाय। केवल प्राचीन सिद्धान्तों को ही सब कुछ समझना और उनमें देशकाल के अनुसार संशोधन न करना तथा शुद्ध वैज्ञानिक रीति को निंदित समझना बुद्धिमानी नहीं है और न प्राचीन ज्योतिषाचार्यों की पद्धति के ही अनुकूल है।

रवीन्द्वोः तुल्यता क्रान्त्योर्विषुवत्सन्निधौ यदा।
द्विर्भवेच्च तदा पातः स्यादभावो विपर्ययात् ॥१९॥

अनुवाद - जब विषुवद् वृत्त के निकट अर्थात् वसंत संपात या शरद संपात के पास सूर्य चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती हैं तब पात दो बार होते हैं। इसके विपरीत दशा में अर्थात् सायन कर्क या सायन मकर बिन्दु के समीप पात का अभाव होता है।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य और चन्द्रमा वसंत या शरद सम्पात के पास होते हैं तब इनकी क्रान्तियों की गति बहुत तीव्र होती है। इसलिए जब चन्द्रमा विषुवत् वृत्त के दक्षिण होता है और सूर्य उत्तर तब दोनों की क्रान्तियाँ समान होती हैं। इसके बाद जब चन्द्रमा शीघ्र गति से कारण उत्तर हो जाता है तब भी इसकी क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति के समान हो जाती है। इस प्रकार क्रान्ति-साम्य दो बार एक ही दो दिन के बीच में हो सकता है। परन्तु जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों

विषुवद्वृत्त से उत्तर रहेंगे तब अमावस्या का समय होगा और ऐसी दशा में पात-काल नहीं माना जाता जैसा कि पहले और दूसरे श्लोकों से सिद्ध होता है। इसलिए जान पड़ता है कि केवल यह विशेषता बतलाने के लिए श्लोक १६ दिया गया है कि क्रान्ति-साम्य दो बार हो सकता है, दो ही एक दिन के अन्तर पर।

परन्तु यदि सूर्य सायन कर्क या सायन मकर विन्दुओं के समीप हो तो इसकी क्रान्ति परम क्रान्ति के निकट रहती है। यदि इस समय चन्द्रमा की क्रान्ति शर की दिशा भिन्न होने के कारण कम हो तो क्रान्ति साम्य नहीं हो सकता और न वैधृति या व्यतीपात का ही संयोग घट सकता है।

तीसरे प्रकार का व्यतीपात जानने की रीति--

शशाङ्कार्कयुतेर्लिप्ता भभोगेन विभाजिताः।
लब्धं सप्तदशान्तोऽन्यो व्यतीपातः तृतीयकः ॥२०॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों को जोड़कर कला बनावे और इसको ८०० से भाग दे दे। यदि लब्धि १७ के अन्त में हो अर्थात् १७ के निकट हो तो तीसरा व्यतीपात होता है।

विज्ञान भाष्य—स्पष्टाधिकार के श्लोक ६५ में विष्कम्भादि २७ योगों के जानने की रीति दी हुई है। इनमें १७ वां योग व्यतीपात बतलाया गया है (देखो पृष्ठ २१६)। इसी के जानने की रीति यहाँ भी दुहरायी गयी है। वह इसलिए, जिससे मालूम हो जाय कि इस अधिकार में क्रान्ति-साम्य से उत्पन्न जिन महापातों की चर्चा है उन्हीं के समकक्ष व्यतीपात नामक योग भी होता है। इसी तर्क से कहा जा सकता है कि २७वें योग वैधृति को भी वैधृति नामक महापात के समान समझना चाहिए।

यहां एक बात ध्यान देने की है। व्यतीपात और वैधृति योगों की गणना सूर्य और चन्द्रमा के निरयण भोगांशों से की जाती है परन्तु महापातों की गणना सायन भोगांशों से की जाती है। इसलिए यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि २०वें श्लोक में जो नियम दिया गया है उसमें सायन भोगांशों का प्रयोग करना चाहिए या निरयण। गूढ़ार्थ प्रकाशिका संस्कृत टीका में तो अयनांश संस्कृत भोगांश अर्थात् सायन भोगांश से ही गणना करने को बतलाया गया है और इसी का अनुसरण पं० माधव पुरोहित और पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी ने किया है। परन्तु स्वामी विज्ञानानन्द ने अपनी बंगला टीका में कोई चर्चा नहीं की है। मुझे जान पड़ता है कि यह व्यतीपात विष्कम्भादि योगों का ही व्यतीपात है, उससे भिन्न नहीं है। इसलिए जिस प्रकार इन योगों की गणना होती है उसी प्रकार इस श्लोक में बतलाये हुए व्यतीपात की

गणना करनी चाहिए अर्थात् निरयण भोगांशों से ही इसकी गणना होनी चाहिए तथा गूढ़ार्थ प्रकाशिका के अयनांश-संस्कृत भोगांशों को न लेना चाहिए। सायन भोगांश लेने में एक अड़चन और है। वह यह कि इससे जो व्यतीपात या वैधृति काल आवेगा वह विष्कम्भादि योगों के व्यतीपात और वैधृति से भी भिन्न होगा। इस प्रकार एक मास में चार-चार व्यतीपात और वैधृति कालों की कल्पना करनी पड़ेगी जो ग्रन्थकार की तर्क-शैली से भी अनुचित जान पड़ती है।

भसंधि और गंडान्त योग कब होता है—

सार्पेन्द्रपौष्णधिष्ण्यानामन्त्याः पादा भसन्धयः।
तदग्रभेष्वाद्यपदो गण्डान्तं नाम कीर्त्यते ॥२१॥

अनुवाद—आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रों के चौथे चरण नक्षत्र-सन्धि हैं और इनके आगेवाले नक्षत्रों मघा, मूल, और अश्विनी के प्रथम चरण गंडांत कहलाते हैं।

विज्ञान-भाष्य—मुहूर्त-चिन्तामणि तथा अन्य मुहूर्त ग्रन्थों में इनकी चर्चा विशेष प्रकार से है। नक्षत्र-संधि या गंडांत में जो संतान होती है उसके लिए साधारणतः कहा जाता है कि मूल में हुई है। इसे अशुभ मानते हैं। बच्चा पैदा होने के २७वें दिन जब वही गंडांत या भसंधि काल फिर आता है तब मूलशान्ति के लिए विशेष प्रकार की पूजा की जाती है। यहाँ गंडांत की चर्चा करने का अर्थ यही जान पड़ता है कि जो अशुभ फल महापातों का होता है यही गंडांत का भी होता है जैसा कि अगले श्लोक से प्रकट है। यह भसंधियाँ चौथी, आठवीं, और बारहवीं राशियों के अंतिम भाग हैं और गंडांत पाँचवीं, नवीं और पहली राशियों के आरंभिक भाग हैं।

व्यतीपातत्रयं घोरं गण्डान्त त्रितयं तथा।
एवं भसन्धित्रितयं सर्वं कर्मसु वर्जयेत् ॥२२॥

अनुवाद—तीनों व्यतीपात, तीनों गंडांत और नक्षत्रसंधियाँ बहुत भयंकर होती हैं इसलिए ये सब शुभकामों में वर्जित हैं अर्थात् जब ये हों तब कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक में वैधृत व्यतीपात की चर्चा नहीं है परन्तु तर्क शैली से और पहले के श्लोकों से जान पड़ता है कि वैधृति भी इसमें सम्मिलित है। टीकाकारों ने ऐसा ही किया भी है।

उपसंहार—

इत्येवं परमं पुण्यं ज्योतिषां चरितं हितं।
रहस्यमिदमाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२३॥

अनुवाद—मैंने यह परम पवित्र अत्यन्त रहस्मयुक्त और हितकर ज्योतिविज्ञान की कथा कही, अब और क्या सुनना चाहता है ?

विज्ञान-भाष्य—सूर्यांश पुरुष ने मयासुर से जिस ज्योतिर्विज्ञान की कथा पहले अधिकार में आरंभ की थी उसका अंत यहाँ हुआ। इस पर मयासुर ने जो प्रश्न किये उसकी चर्चा आगे तीन अध्यायों में होगी। इसलिए यहाँ तक जो कुछ कहा गया है उसे सूर्य-सिद्धान्त का पूर्वार्ध कहते हैं। इसके आगे जो तीन अध्याय हैं उन्हें उत्तरार्ध कहते हैं। अब हम यहाँ संक्षेप में यह बतला कर कि महापातों की गणना कैसे की जाती है इस पूर्वार्ध को समाप्त करेंगे।

पंचांगों से महापातकों का स्थूलकाल निश्चय करना—विष्कम्भादि २७ योगों की गणना पंचांगों में अवश्य रहती है। इनको जानने की रीति स्पष्टाधिकार के ६५ वें श्लोक में बतलायी गयी है जो यह है—सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों को जोड़ कर कला बनाओ और इसको ८०० से भाग दे दो। जो लब्धि आवे उससे बीते हुए योगों की संख्या मालूम होती है और जो शेष बचता है उससे वर्तमान योग का ज्ञान होता है।

इस नियम में सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश अश्विनी नक्षत्र के आदि बिन्दु से नापे जाते हैं और महापातों की गणना के लिए भोगांशों की नाप वसंत-संपात विन्दु से की जाती है। यदि दोनों के लिए भोगांशों की नाप वसंत-संपात से होती तो महापातों का समय जानना बड़ा सुगम होता क्योंकि जिस समय १४वें योग हर्षण का आधा समय बीतता उस समय सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का जोड़ १८० अंश होता और व्यतीपात नामक पातकाल का मध्य होता है और जिस समय वैधृति योग का अंत होता उसी समय वैधृति नामक पात का मध्यकाल होता। परन्तु बात ऐसी नहीं है। इसलिए इसमें थोड़ा सा संस्कार करना पड़ेगा। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार अश्विनी का आदि-विन्दु आजकल जहाँ है वहाँ से वेध-द्वारा-सिद्ध वसंत संपात विन्दु २२ अंश ४५ कला के लगभग पच्छिम है। इसी अन्तर को अयनांश कहते हैं। यदि यहाँ से सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश लिये जायँ तो दोनों का जोड़ ४५ अंश ३० कला अधिक होता है। व्यतीपात के लिए सूर्य और चन्द्रमा के सायन भोगांशों का जोड़ १८० अंश होता है, इसलिए १८० अंश—४५ अंश ३० कला= १३४ अंश ३० कला=८०७० कला। यह अश्विनी नक्षत्र के आदि-विन्दु से व्यतीपातकालिक सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का जोड़ है। इसको ८०० कला से भाग देने पर १० लब्धि और ७० कला शेष होते हैं। १० से सिद्ध होता है कि व्यतीपात काल में गंड योग बीता रहता है और वृद्धि योग का आरम्भ हुआ रहता है। इस-

लिए स्थूल रूप से व्यतीपात काल को निश्चय करने के लिए जिस समय वृद्धि योग का आरम्भ होता है उसी समय के सूर्य चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जानकर व्यतीपात काल की सूक्ष्म गणना करनी चाहिए।

वैधृति नामक पातकाल का निश्चय करने के लिए ४५ अंश ३० कला को ३६० अंश से घटाना चाहिए। ऐसा करने से शेष आया ३१४ अंश ३० कला=१८८७० कला। इसको ८०० से भाग देने पर २३ लब्धि और ४७० कला शेष हुए, जिससे प्रकट होता है कि वैधृति नामक पातकाल में २३ वाँ योग शुभ बीता रहता है और २४वें योग शुक्ल का भी आधा बीत चुका रहता है। इसलिए स्थूल रूप से वैधृति नामक पात शुक्ल योग के आधे भाग पर होता है। इसलिए सूक्ष्म गणना करने के लिए इसी समय के सूर्य, और चन्द्रमा और स्पष्टक्रान्ति जाननी चाहिए। इसके लिए सूर्य, चन्द्रमा और राहु के स्पष्ट भोगांश, सूर्य की क्रान्ति, चन्द्रमा की मध्यमक्रान्ति और शर जानकर इसका संस्कार करके चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जाननी चाहिए जिसकी रीति स्पष्टाधिकार पृ० १९९-२०० में बतलायी गयी है। इसलिए उदाहरण में इन सब बातों के बतलाने की आवश्यकता नहीं जाना पड़ती। यहाँ केवल यह दिखलाना पर्याप्त होगा कि सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवाङ्कों से महापातों के समय की गणना करना न तो सुगम ही है और न शुद्ध जब कि आधुनिक रीति से जाने हुए ध्रुवाङ्कों से यह बात शुद्धतापूर्वक जानी जा सकती है। मेरे पास इस समय १९२९ ई० का नाविक पंचांग मौजूद है इसलिए इसी की सहायता से वैशाख शुक्ल १९८६ विक्रमीय के व्यतीतपात नामक महापात की गणना की जाती है।

१९८६ के वैशाख शुक्ल पक्ष में गंड योग का अंत १४ मई को ४२ घड़ी ४० पल पर होता है और इसके बाद वृद्धि योग का आरम्भ होता है इसलिए १४ या १५ मई को व्यतीपात नामक महापात होगा : अब नाविक पंचांग से यह देखना चाहिए कि इन तारीखों में किस समय सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्तियाँ समान होंगी। नाविक पंचांग के पृष्ठ ५१ से जान पड़ता है कि १४ मई को सूर्य का उत्तर क्रान्ति १८ अंश ३४ कला और ४२ विकला है तथा १५ मई को १८ अंश ४९ कला और ६ विकला है। परन्तु चन्द्रमा की क्रान्ति १४ मई को २२ अंश से अधिक है इसलिए १४ मई को व्यतीपात काल नहीं आवेगा परन्तु १५ मई की शाम को यह घटना हो सकती है क्योंकि,

	अंश	कला	वि०
१५ मई के मध्याह्न काल में सूर्य की क्रान्ति	१८	४९	६.१
१६ ,, ,, ,,	१९	३	१०.९

२४ घंटे में क्रान्तिगति		१४	४·८
१५ मई के सायंकाल ६ बजे चंद्रक्रान्ति	१८	५४	११·५
,, ,, ७ ,, ,,	१८	४२	३३.४
१ घंटे में चन्द्रक्रान्ति की गति		११	३८.१

यहाँ सूर्य क्रान्ति बढ़ रही है और चन्द्रमा की घट रही है इसलिए चन्द्रमा की क्रान्ति की गति से यह निश्चय है कि ६ बजे के आसपास ही दोनों की क्रान्तियां समान होंगी। ६ घंटे में सूर्य की क्रान्ति की गति $\frac{६}{२४}$×(१ कला ४·८ विकला)= ३ कला ३१·२ विकला है। इसलिए ६ बजे सायंकाल सूर्य की क्रान्ति हुई १८ अंश ४६ कला ६·१ विकला+३ कला ३१·२ विकला=१८ अंश ५२ कला ३७·३ विकला। यह छः बजे की चन्द्र क्रान्ति से कम है और चन्द्र-क्रान्ति घट रही है तथा सूर्य-क्रान्ति बढ़ रही है इसलिए छः बजे के बाद ही कुछ मिनिटों में दोनों की क्रान्तियाँ समान होंगी। यह जानने के लिये दोनों की क्रान्तियों के अन्तर को दोनों की क्रान्ति-गतियों के अंतर से भाग देना चाहिये।

	अंश	कला	विकला
६ बजे चन्द्र-क्रान्ति=	१८	५४	११·५
,, सूर्य क्रान्ति =	१८	५२	३७·३
दोनों का अन्तर =		१	३४·२=६४·२ वि०

$$\text{सूर्य की १ घंटे की क्रान्ति-गति} = \frac{\text{१४ कला ४·८ वि०}}{\text{२४}}$$

$$= \text{३५·२ विकला}$$

चंद्रमा की १ घंटे की क्रान्ति गति=११ कला ३८·१ विकला

दोनों की दिशाएँ भिन्न हैं इसलिए इनका अंतर जानने के लिए इनको जोड़ना चाहिए। इसलिए दोनों का योग=१२ कला १३·३ विकला=७३३·३ विकला।

जब ७३३·३ विकला का अंतर १ घंटे में होता है तब ६४·२ विकला का अंतर कितने समय में होगा।

७३३·३ : ६४·२ : : १ घंटा : इष्टकाल

$$\therefore \text{इष्टकाल} = \frac{\text{६४·२×१}}{\text{७३३·३}} \text{ घंटा}$$

$$= \frac{\text{६४·२×·१×६०}}{\text{७३३·३}} \text{ मिनट}$$

= ७ मिनट ४३ सेकंड के लगभग

इसलिए १५ मई को ६ बजकर ७ मिनट ४३ सेकंड पर व्यतीपात का मध्यकाल होगा। परन्तु यह गणना ग्रीनविच के टाइम से की गई है जो भारतवर्ष के रेलवे टाइम से ५ घंटा ३० मिनट पीछे है। इसलिए भारतवर्ष के रेलवे टाइम के अनुसार १५ मई की रात को ११ बजकर ३७ मिनट ४३ सेकंड पर व्यतीपात काल का मध्य होगा।

अब स्थित्यर्ध-काल जानकर इससे घटाया जाय तो व्यतीपात काल का प्रारंभ काल आ जायगा और जोड़ा जाय तो अंतकाल आवेगा। यह १४वें श्लोक के अनुसार सुगमतापूर्वक हो सकता है इसलिए उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

इस प्रकार पाताधिकार नामक ११वें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

द्वादश अध्याय

भूगोलाध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-६—मयासुर के भूगोल, खगोल तथा ऋतु सम्बन्धी अनेक प्रश्न। श्लोक १०-११—सूर्यांश पुरुष का मयासुर से उत्तर सुनने के लिए कहना। श्लोक १२-२३—वासुदेव से लेकर पंच महाभूतों तक की उत्पत्ति का क्रम। श्लोक २४—पांच ताराग्रहों की उत्पत्ति। श्लोक २५—बारह राशियों और २७ नक्षत्रों की उत्पत्ति। श्लोक २६-३०—चराचर जगत् की उत्पत्ति। श्लोक ३०-३३—ब्रह्माण्ड में ग्रहों की कक्षाओं का क्रम और पृथ्वी का स्थान। श्लोक ३३-३६—भूगोल में पाताल, सुमेरु आदि के स्थान। श्लोक ३७-४२—विषुवत्‌रेखा पर स्थित चार नगरों के स्थान। श्लोक ४३-४५—विषुवत्‌रेखा और उत्तर दक्षिण ध्रुओं का सम्बन्ध। श्लोक ४६—भिन्न ऋतुओं में सूर्य की किरणें मन्द और तीव्र क्यों होती हैं। श्लोक ४७-५०—उत्तर ध्रुवनिवासियों अर्थात् देवताओं और दक्षिण ध्रुव निवासियों अर्थात् असुरों के दिन रात का विभाग। श्लोक ५१—देवताओं और असुरों के मध्याह्न और मध्यरात्रि का समय। श्लोक ५२-५३—भूगोल पर १८० अंश की दूरी पर रहने वाले एक दूसरे को ऊपर नीचे क्यों समझते हैं। श्लोक ५४—भूगोल चाक की तरह क्यों देख पड़ता है। श्लोक ५५-५८—भूतल पर दिन रात के घटने-बढ़ने का कारण। श्लोक ५६—किसी समय विषुवत्‌रेखा से कितनी दूरी पर सूर्य ठीक ऊपर देख पड़ता है। श्लोक ६०-६१—विषुवत्‌रेखा से कितनी दूरी पर ६० घड़ी का दिन और ६० घड़ी की रात होती है। श्लोक ६२-६०—घड़ी से भी बड़ा दिन या रात कहाँ होती है। श्लोक ६३-६७—दो दो महीने, चार चार और छः छः महीने का दिन या रात कहाँ होती है। श्लोक ६८—उत्तरायण और दक्षिणायन के दिन सूर्य कहाँ ठीक देख पड़ता है। श्लोक ६६—किसी वस्तु की छाया कहाँ किस दिशा में होती है। श्लोक ७०-७१—भूतल पर जब एक जगह सूर्य का उदय होता है तब कहाँ मध्याह्न रहता है और कहाँ मध्यरात्रि अथवा अस्तकाल। श्लोक ७२—ध्रुवों की दिशा में जाने से आकाशीय ध्रुओं की उन्नति और नक्षत्र-कक्षा की अवनति देख पड़ती है। श्लोक ७३—प्रवह वायु के द्वारा नक्षत्र-चक्र कैसे भ्रमण करता है। श्लोक ७४—देवताओं, पितरों और मनुष्यों के दिन रात का प्रमाण। श्लोक ७५-७७—ग्रहों की कक्षाओं और उनके भ्रमणकालों का सम्बन्ध। श्लोक

७८-७९—वर्षपति, मासपति, दिनपति तथा होरापतियों का सम्बन्ध। श्लोक ८०—नक्षत्र-कक्षा का विस्तार। श्लोक ८१-८४—आकाश-कक्षा का प्रमाण तथा इससे ग्रह की कक्षाओं और गतियों का सम्बन्ध। श्लोक ८५-९०—कक्षाओं का परिमाण योजनों में।]

इस अध्याय में भूगोल की उत्पत्ति, स्थिति, विस्तार आदि सभी बातों का निरूपण किया गया है, इसीलिए इसका नाम भूगोलाध्याय है। साथ ही साथ ग्रहों, नक्षत्रों और आकाश की कक्षाओं के प्रमाण भी दिये गये हैं।

मयासुर के प्रश्न और सूर्यांश पुरुष के उत्तर की भूमिका—

अथाऽर्कांशसमुद्भूतं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।
भक्त्या परमयाऽभ्यर्च्य पप्रच्छेदं मयोऽसुरः ॥१॥
भगवन् किंप्रमाणा भूः किमाकारा किमाश्रया।
किंविभागा कथं वाऽत्र सप्तपातालभूमयः ॥२॥
अहोरात्रव्यवस्थां च विदधाति कथं रविः।
कथं पर्येति वसुधां भुवनानि विभावयन् ॥३॥
देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
किमर्थं तत्कथं वा स्याद् भानोः भगणपूरणात् ॥४॥
पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्ट्या तु मानुषम्।
तदेव किल सर्वत्र न भवेत् केन हेतुना ॥५॥
दिनाब्दमासहोराणामधिपा न समाः कुतः।
कथं पर्येति भगणः सग्रहोऽयं किमाश्रयः ॥६॥
भूमेरुपर्युपर्युक्ताः किमुत्सेधाः किमन्तराः।
ग्रहर्क्षकक्ष्याः किम्मात्राः स्थिताः केन क्रमेण ताः ॥७॥
ग्रीष्मे तीव्राः करा भानोः न हेमन्ते तथाविधाः।
कियती तत्करव्याप्तिः मानानि कति किञ्च कैः ॥८॥
एतन्मे संशयं छिन्धि भगवन्भूतभावन।
अन्यो न त्वामृते छेत्तां विद्यते सर्वदर्शिवान् ॥९॥
इति भक्त्योदितं श्रुत्वा मयेनार्कांशसंभवः।
रहस्यतरमध्यायं पुनः प्राह यथाश्रुतम् ॥१०॥
श्रृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
वक्ष्याम्यतीवभक्तानां नादेयं विद्यते मम ॥११॥

अनुवाद—(१) इसके उपरान्त मयासुर ने सूर्य के अंश से उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोड़ कर प्रणाम करके और बड़ी भक्ति से पूजा करके यह पूछा। (२) हे भगवन्, इस पृथ्वी का परिमाण क्या है, इसका आकार कैसा है और यह किस के आधार पर है, इसके कितने विभाग हैं और इसमें सात पातालों की भूमि कैसे स्थित है। (३) सूर्य अहोरात्र की व्यवस्था कैसे करते हैं और भुवनों को प्रकाशित करते हुए पृथ्वी के चारों ओर कैसे घूमते हैं। (४) देवताओं और असुरों के दिन-रात एक दूसरे के विपरीत क्यों होते हैं और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है। (५) पितरों का दिन-रात एक मास का और मनुष्यों का ६० घड़ियों का क्यों होता है। सब जगह एक ही प्रकार के दिन-रात क्यों नहीं होते। (६) दिन, वर्ष, मास और होरा (घंटा) के स्वामी समान क्यों नहीं होते, ग्रहों के साथ नक्षत्र मंडल कैसे घूमता है और इनका आधार क्या है। (७) ग्रहों और नक्षत्रों की कक्षाएँ पृथ्वी से ऊपर कितनी कितनी ऊँचाई पर तथा परस्पर कितने अन्तर पर हैं, इनके मान क्या हैं और ये किस क्रम से स्थित हैं। (८) ग्रीष्म ऋतु में सूर्य कि किरणें बहुत तीव्र क्यों होती हैं और हेमन्त ऋतु में वैसी क्यों नहीं होतीं। यह किरणें कितनी दूर दूर तक जाती हैं; सौर, चन्द्र आदि मान कितने हैं और इनसे क्या प्रयोजन निकलता है। (९) हे भूतभावन, भगवत् मेरी इन शंकाओं को दूर कीजिये क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं इसलिये आपके सिवा दूसरा मनुष्य मेरी शंकाओं को नहीं दूर कर सकता (१०) भक्ति से कहे हुए मयासुर के इन वचनों को सुनकर सूर्यांश पुरुष ने उससे फिर पहले के रहस्य स्वरूप दूसरा अध्याय कहा। (११) एकाग्रचित्त होकर यह अध्यातम नामक तत्व सुनो जिसे मैं कहता हूँ क्योंकि भक्तों के लिए मैं कोई वस्तु अदेय नहीं समझता।

विज्ञान-भाष्य—मयासुर ने जितने प्रश्न किये हैं उनका उत्तर जानने की अभिलाषा सभी तत्वज्ञानियों को होती है। इस पर सूर्यांश पुरुष ने बतलाया है कि उत्तर में जिस रहस्य का प्रतिपादन किया जायगा वह अध्यात्म ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। इस पर बहुत से लोग कह उठेंगे कि मयासुर के प्रश्नों का उत्तर तो कोई भी ज्योतिषी और भूगोलशास्त्री दे सकता है। यह विचार कुछ दूर तक ठीक है परन्तु सूर्यांश पुरुष ने इस संसार की उत्पत्ति की चर्चा की है वह तो अवश्य अध्यातम संबंधी ही कही जा सकती है क्योंकि यह भौतिक विज्ञान से परे की बात है।

सृष्टि का क्रम—

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात्परोऽव्ययः ॥१२॥
प्रकृत्यन्तर्गतो देवः बोध्यमानश्च सर्वगः।
संकर्षणोऽपः सृष्टवादौ तासुवीर्यमवासृजत् ॥१३॥

तदण्डमभवद्धैमं सर्वत्रतमसाऽऽवृतम् ।
तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतस्सनातनः ॥१४॥
हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि पठ्यते ।
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते ॥१५॥
परं ज्योतिस्तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च ।
पर्येति भुवनान्येव भावयन्भूतभावनः ॥१६॥
प्रकाशात्मा तमोहन्ता महानित्येष विश्रुतः ।
ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्युस्रा मूर्तिर्यजूंषि च ॥१७॥
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्विभुः ।
सर्वात्मा सर्वगस्सूक्ष्मः सर्वमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥१८॥
रथे विश्वमये चक्रं कृत्वा संवत्सरात्मकम् ।
छन्दांस्यश्वाः सप्तयुक्ताः पर्यटत्येष सर्वदा ॥१९॥
त्रिपादममृतं गुह्यं पादोऽयं प्रकटोऽभवत् ।
सोऽहङ्कारं जगत्सृष्ट्यै ब्रह्माणमसृजद्विभुः ॥२०॥
तस्मै वेदान्वरान्दत्वा सर्वलोकपितामहम् ।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येतु स्वयं पर्येति भावयन् ॥२१॥
अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माऽहङ्कारमूर्तिभृत् ।
मनसश्चन्द्रमा जज्ञे चक्षुशस्तेजसां निधिः ॥२२॥
मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धरा क्रमात् ।
गुणैक वृद्धया पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥२३॥

अनुवाद—(१२) परं ब्रह्म वासुदेव हैं। इनकी मूर्ति परम पुरुष है जो अव्यक्त, निर्गुण, शान्त और अव्यय और सांख्य शास्त्र के पच्चीस तत्वों से परे हैं। (१३) बाहर भीतर सर्व व्यापक देवता ने प्रकृति में प्रवेश करके संकर्षण रूप से प्रारम्भ में जल की सृष्टि करके उसमें बीज रखा (१४) जो सोने का अंडा हो गया जिसके चारों ओर अंधकार था। इसमें सनातन अनिरुद्ध पहले प्रकट हुए। (१५) इन्हीं को वेदों में हिरण्यगर्भ भगवान् कहा गया है। पहले होने के कारण इन्हें आदित्य और सब चराचर जीवों को उत्पन्न करने के कारण इन्हें सूर्य कहते हैं। (१६) परम प्रकाशमय होने के कारण इन्हें सूर्य और अंधकार के अंत में होने के कारण सविता कहते हैं। यह भूतभावन अर्थात् स्थावर जंगम सृष्टि को उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले भगवान लोकों को प्रकाशमान करते हुए भ्रमण करते हैं। (१७) इन्हें ही प्रकाशात्मा अंधकार का नाश करनेवाले और वेदों में महान् तत्व कहते हैं।

इनका मंडल ऋग्वेद, करण सामवेद और मूर्ति यजुर्वेद हैं। (१८) इसलिए इनको वेदत्रयात्मक कहते हैं। इनसे काल की गणना होती है इसलिए इनको कालात्मा और कालकृत कहते हैं। यह सब की आत्मा, सर्वव्यापक, सूक्ष्म हैं और सब सृष्टि इनमें स्थित है। (१९) संसार रूपी रथ में संवत्सर रूपी चक्र बनाकर सात छंदों के सात घोड़ों से युक्त होकर यह सर्वदा भ्रमण करते हैं। (२०) इनके तीन चरण अमृत होने से अगम्य हैं और यह एक चरण प्रकट हुआ है। इसी प्रभु ने जगत् की सृष्टि के लिए अहङ्काररूपी ब्रह्मा को बनाया। (२१) इसके बाद सब लोकों के पितामह ब्रह्मा को श्रेष्ठ वेदों को देकर और इन्हें अंडे के बीच में स्थापित करके अनिरुद्ध भगवान् स्वयम् लोकों को प्रकाशित करते हुए भ्रमण करते हैं। (२२) इसके पश्चात् अहङ्कार मूर्तिधारी ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना करने का विचार किया। ब्रह्मा के मन से चंद्रमा और नेत्रों से तेजपुञ्ज सूर्य उत्पन्न हुए। (२३) मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी पांच महाभूत क्रम से एक एक गुण की वृद्धि से उत्पन्न हुए।

विज्ञान भाष्य—सूर्यांश पुरुष ने मयासुर से उपर्युक्त सृष्टिक्रम का जो वर्णन किया है वह वेदान्त, सांख्य, श्रीमद्भागवत् आदि में बतलाये गये सृष्टि-क्रम का मिश्रण है। यह क्रम भिन्न भिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न रीति से बतलाया गया है इसलिए यह संभव नहीं कि उन सबकी व्याख्या यहाँ की जाय। इस विषय पर लोकमान्य तिलक ने अपने गीता-रहस्य के ६-९ प्रकरणों में अच्छी तरह विचार किया है और कहीं-कहीं युरोपीय विद्वानों के मतों की भी तुलना की है इसलिए इसकी जानकारी के लिए पाठकों को उसीका अध्ययन करना चाहिए। यहाँ उसीका सार दिया जा सकता है।

सांख्यशास्त्र के अनुसार ब्रह्मांड का वंश-वृक्ष ७२३ पृष्ठ पर दिया जाता है। देखो गी० र० (पृ० १७९) :—

वेदान्त का परब्रह्म इन २५ तत्वों से परे है जिसकी चर्चा सूर्य-सिद्धान्त के १२वें श्लोक में है (देखो गीता रहस्य पृ० २०३)। सूर्य-सिद्धान्त में संकर्षण, और अनिरुद्ध की जो चर्चा है उसकी चर्चा भागवतधर्म में इस प्रकार आयी है 'वासुदेव रूपी परमेश्वर से संकर्षण रूपी जीव उत्पन्न हुआ; और फिर संकर्षण से प्रद्युम्न अर्थात् मन तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कार हुआ; कुछ लोग तो इन चार व्यूहों में से दो, तीन या एक ही को मानते हैं (देखो गीता रहस्य पृ० ४२९)। सूर्य-सिद्धान्त में प्रद्युम्न की चर्चा नहीं है। यहां अहङ्कार को ही ब्रह्मा बतलाया है।

*पृष्ठों की संख्या सं० १९७३ के छपे हुए हिन्दी गीता-रहस्य के अनुसार है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को ही पंचमहाभूत कहते हैं। आकाश में एक गुण शब्द, वायु में दो गुण शब्द, स्पर्श, अग्नि में तीन गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जल में चार गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वी में पांच गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध माने गये हैं इसीलिए २३वें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि एक एक गुण की वृद्धि से पंचमहाभूतों की उत्पत्ति क्रम से हुई है।

ब्रह्मांड का वंशवृक्ष

पुरुष →(दोनों स्वयंभू और अनादि)←—प्रकृति (अव्यक्त औरसूक्ष्म)

महान् अथवा बुद्धि (व्यक्त और सूक्ष्म)

अहंकार (व्यक्त और सूक्ष्म)

(सात्विक सृष्टि अर्थात् व्यक्त और सूक्ष्म इन्द्रियाँ) (तामस अर्थात् निरिंद्रिय सृष्टि)

पांच बुद्धीन्द्रियां पांच कर्मेन्द्रियां मन

पञ्चतन्मात्राएँ (सूक्ष्म)

पञ्च महाभूत (स्थूल)

पांच ग्रहों की उत्पत्ति—

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः।
तेजो भूरवाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे ॥२४॥

अनुवाद—अग्नि स्वरूप सूर्य और सोम स्वरूप चन्द्रमा की उत्पत्ति के बाद तेज अर्थात् अग्नि से मंगल, पृथ्वी से बुध, आकाश से बृहस्पति शुक्र और वायु से शनि उत्पन्न हुए।

१२ राशियों और २७ नक्षत्रों की उत्पत्ति—

पुनर्द्वादशधाऽऽत्मानं विभदे राशिसंज्ञितम्।
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी ॥२५॥

अनुवाद—फिर जितात्मा ब्रह्मा ने मनः कल्पितवृत्त को पहले १२ राशियों में फिर २७ नक्षत्रों में बाँटा।

चराचर जगत् की उपत्ति—

ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम्।
ऊर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ गात्रेभ्यः प्रकृतिं सृजन् ॥२६॥
गुणकर्मविभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात्।
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात् ॥२७॥
ग्रहर्क्षत्रताराणां भूमेः विश्वस्य वा विभुः।
देवानां च मनुष्याणां सिद्धानां च यथाक्रमम् ॥२८॥
ब्रह्माण्डमेतत् सुषिरं यत्रेदं भूर्भुवादिकम्।
कटाहद्वितयस्यैव संपुटं गोलकाकृतिः ॥२९॥

अनुवाद—(२६) इसके पश्चात् श्रेष्ठ, मध्यम और अधम स्रोतों से सत्व, रज और तम विभेदात्मक प्रकृति का निर्माण करके देवता, मनुष्य, राक्षस आदि चराचर विश्व की रचना की। (२७) गुण और कर्म के अनुसार पूर्वोक्त क्रम से सृष्टि रचकर वेदों में बतलायी हुई रीति के अनुसार देश काल के अनुसार इसके विभाग किये। (२८) समर्थवान् ब्रह्मा ने ग्रहों, नक्षत्रों, तारों, पृथ्वी, संसार, देवताओं, मनुष्यों और सिद्धों का यथाक्रम स्थापन किया, (२९) दो समान कड़ाहों के मुँह मिला देने से जैसा खोखला गोला बनता है उसी प्रकार के इस ब्रह्माण्ड अवकाश में भूर्भुवः आदि लोक स्थित हैं।

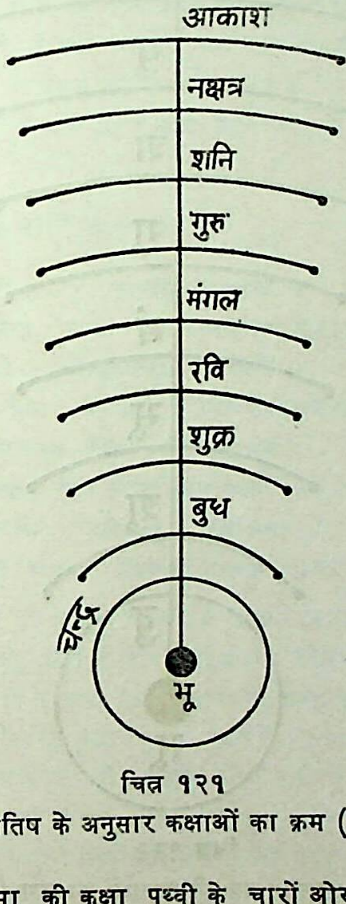
ब्रह्माण्ड में ग्रहों की कक्षाओं का क्रम—

ब्रह्माण्डमध्यपरिधि र्व्योमकक्ष्याऽभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानां तदधोऽधः क्रमादथ ॥३०॥
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्तात्सिद्धविद्याधरा घनाः ॥३१॥
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२॥

अनुवाद—(३०) ब्रह्माण्ड की परिधि को आकाश कक्षा कहते हैं जिसके भीतर नक्षत्र भ्रमण करते हैं; फिर उसके नीचे क्रमानुसार (३१) शनि, वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा भ्रमण करते हैं। इसके नीचे सिद्ध, विद्याधर

और मेघ हैं। (३२) इस ब्रह्माण्ड के बिल्कुल बीच में यह भूगोल ब्रह्मा की धारणात्मिका परम शक्ति के बल पर शून्य में ठहरा हुआ है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीनों श्लोकों में यह बतलाया गया है कि ब्रह्माण्ड की परम परिधि के भीतर नक्षत्रों और ग्रहों की कक्षाएँ किस क्रम से हैं। हमारी पृथ्वी का स्थान इन ब्रह्माण्ड के बिल्कुल मध्य में माना गया है अर्थात् यह भूगोल सारे ब्रह्माण्ड के केन्द्र में हैं। यह बात अर्वाचीन ज्योतिष-सिद्धान्त के प्रतिकूल है। अर्वाचीन ज्योतिष में सूर्य जगत् का केन्द्र समझा जाता है। सूर्य के सबसे निकट बुध ग्रह की कक्षा है, फिर शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि की कक्षाएँ क्रमानुसार



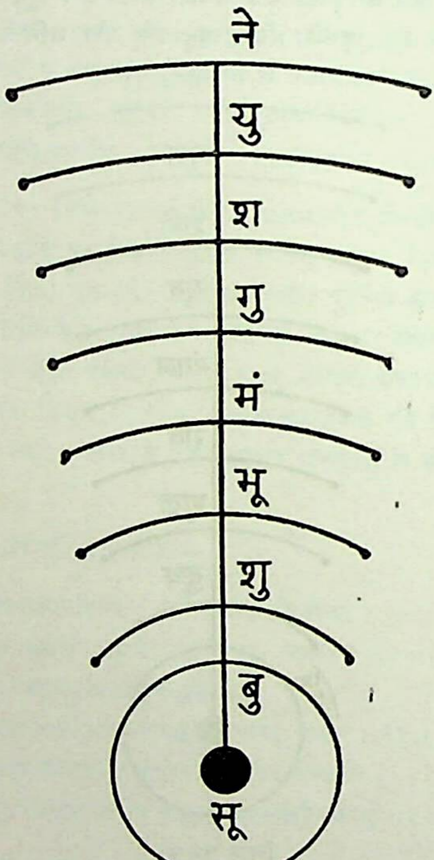
चित्र १२१

भारतीय ज्योतिष के अनुसार कक्षाओं का क्रम (पृथ्वी केन्द्र में)

दूर होती गयी हैं। चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी के चारों ओर है। नक्षत्रों की कक्षा

अर्वाचीन ज्योतिष के अनुसार स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि सब तारे समान दूरी पर नहीं हैं। आकाश कक्षा की सीमा भी स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि आजकल कुछ तारों की दूरी इतनी अधिक समझी जाती है कि आकाश कक्षा की सीमा उसके सामने नगण्य है। चित्र १२१ तथा १२२ से हिन्दू ज्योतिष और अर्वाचीन ज्योतिष के मतों की भिन्नता अच्छी तरह समझ में आ जायगी।

पृथ्वी और चन्द्रकक्षा के बीच में मेघों, विद्याधरों और सिद्धों के लोक हैं जो इस चित्र में नहीं दिखलाये जा सके।



चित्र १२२

अर्वाचीन ज्योतिष के अनुसार ग्रह की कक्षाओं का क्रम (यहाँ सूर्य केन्द्र में है)

इस चित्र में चन्द्रमा की कक्षा नहीं दिखलायी गयी है क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है और पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य के भी चारों ओर जाता है। ऐसे कई चन्द्रमा मंगल, गुरु और शनि के चारों ओर भी भ्रमण करते हुए देखे गये हैं। चित्र १२२ में कक्षाओं की दूरी प्रायः समान देख पड़ती है और आकार गोल, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इसका विचार आगे किया जायगा; यहाँ तो केवल क्रम दिखलाया गया है।

श्लोक ३२ में जिस धारणात्मिका शक्ति की चर्चा है उसे ही आजकल गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार हमारी पृथ्वी शून्य में स्थित मानी गयी है। इसको कोई जीव थामे हुए नहीं है। परमेश्वर की जिस शक्ति के बल पर यह पृथ्वी शून्य में ठहरी हुई है उसे धारणात्मिकाशक्ति कहा गया है। आजकल यह माना जाता है कि पृथ्वी, चन्द्रमा, ग्रह इत्यादि सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से बँधे हुए हैं और ग्रहों, उपग्रहों की गतियों का कारण भी यही गुरुत्वाकर्षण है।

भूगोल में पाताल, सुमेरु आदि के स्थान :—

तदन्तरपुटास्सप्त नागासुरसमाश्रयाः ।
दिव्यौषधिरसोपेता रम्याः पातालभूमयः ।।३३।।
अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः ।
भूगोलमध्यगो मेरुः उभयत्र विनिर्गतः ।।३४।।
उपरिष्टात्स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः ।
अधस्तादसुरास्तद्वत् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ।।३५।।
ततस्समन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः ।
मेखलावत्स्थितो धात्र्या देवासुरविभागकृत् ।।३६।।

अनुवाद—(३३) इस भूगोल के भीतरी परतों में अति सुन्दर सात पाताल भूमि हैं जहाँ नाग और असुर रहते हैं और जहाँ प्रकाश देनेवाले और रसीले वृक्ष हैं। (३४) नाना प्रकार के रत्नों से भरा हुआ, स्वर्णमयी जम्बू नदी से सुशोभित, भूगोल के आर पार दोनों ओर निकला हुआ सुमेरु पर्वत है। (३५) इस सुमेरु पर्वत के ऊपर की ओर इन्द्र के साथ देवता और महर्षि लोग रहते हैं और असुर रहते हैं। ये देवता और असुर एक दूसरे के शत्रु हैं। (३६) इस सुमेर पर्वत के चारों ओर घेरे हुए यह महासागर (लवण समुद्र) पृथ्वी की मेखला की तरह स्थित है तथा देवताओं और असुरों का विभाग कर देता है।

विज्ञान भाष्य—भूगोल के भीतर सात पाताल देश माने गये हैं जिनके नाम अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल हैं। यहां नागों और असुरों का निवास है। सुमेरु पर्वत के पास जम्बूनदी है। यह पर्वत भूगोल के केन्द्र से होता हुआ दोनों ओर अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर निकला हुआ माना गया है। उत्तरी ध्रुव पर देवता और दक्षिणी ध्रुव पर असुर रहते हैं जो परस्पर शत्रु हैं। इस मेरु पर्वत को घेरे हुए पृथ्वी के चारों ओर लवण समुद्र है जो देवताओं और असुरों की भूमि को अलग करता है और पृथ्वी की मेखला की तरह है।

इस वर्णन में बहुत सी बातें कल्पना से उत्पन्न हुई जान पड़ती हैं इसलिये इन सब का अस्तित्व नहीं बतलाया जा सकता। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों को सुमेरु पर्वत के ऊपर और नीचे वाले सिरे समझना चाहिये। इसके बीच में विषुवत् रेखा के पास लवण समुद्र माना गया है जो आजकल भी प्रायः इसी स्थिति में है।

विषुवत् रेखा पर स्थित चार नगरियों का वर्णन :

समन्तान्मेरुमध्यात्तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः ॥३७॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा ॥३८॥
याम्यायां भारते वर्षे लंका तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता ॥३९॥
उदक्सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रतिष्ठिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः ॥४०॥
भूवृत्तपादविवराः ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः।
ताभ्यश्चोत्तरतो मेरुः तावानेवासुराश्रयः ॥४१॥
तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः।
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते ॥४२॥

अनुवाद—(३७) मेरु के मध्य भाग के चारों ओर समुद्र के समान अन्तर पर जम्बू द्वीप के पूर्व दक्षिण, और उत्तर दिशाओं में देवताओं की बनाई हुई चार नगरी हैं। (३८) पूर्व में भूपरिधि के चतुर्थांश पर भद्राश्व वर्ष में यमकोटी नगरी प्रसिद्ध है जहाँ सोने के दीवार और फाटक हैं; (३९) दक्षिण में भारतवर्ष में उसी प्रकार लङ्कापुरी और पश्चिम में केतुमाल देश में रोमकपुरी प्रसिद्ध हैं; (४०) उत्तर में कुरु देश में सिद्धपुरी है जहाँ सब प्रकार के दुःखों से मुक्त सिद्ध, महात्मा लोग रहते

हैं। (४१) यह नगरियां एक दूसरे से भूपरिधि के चतुर्थांश अन्तर पर स्थित हैं जिनके उत्तर दिशा में उतने ही अन्तर पर का निवास स्थान मेरु है। (४२) जब सूर्य विषुववृत्त पर आता है तब इन नगरियों के ठीक ऊपर होता है इसलिए न वहाँ विषुवच्छाया होती है और न अक्षांश ही होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन छः श्लोकों में विषुवत् रेखा पर स्थित चार नगरियों की स्थिति का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन है। ये नगरियां एक दूसरे से भूपरिधि के चतुर्थांश अन्तर पर हैं अर्थात् यह एक दूसरे से ६० अंश के अन्तर पर हैं और उत्तर मेरु (उत्तरी ध्रुव) भी इतने ही अन्तर पर इनसे उत्तर में है। इन नगरियों की दिशायें भारतवर्ष से मानी गयी हैं। भारतवर्ष के दक्षिण विषुवत् रेखा पर लङ्का नगरी है जिसका स्थान मध्यमाधिकार के ६२ वें श्लोक अनुसार के उज्जैन की देशान्तर रेखा माना जाना चाहिए (पृष्ठ ६५)। ग्रीनविच से उज्जैन का देशान्तर ७६ अंश के लगभग है। इसलिये यदि लङ्का इसी देशान्तर पर और विषुत् रेखा पर मानी जाय तो आजकल यहाँ समुद्र है। इससे ६० अंश पूर्व का स्थान ग्रीनविच से १६६ अंश पूर्व देशान्तर पर है। इसलिए यमकोटी नगरी की जगह भी आजकल समुद्र है। लङ्का से ६० अंश पच्छिम अथवा ग्रीनविच से १४ अंश पच्छिम देशान्तर पर भी विषुवत् रेखा पर स्थल का नाम नहीं हैं इसलिए रोमक नगरी का भी पता नहीं लगाया जा सकता। यह रोमक नगरी आजकल के पच्छिमी अफरीका के फ्रीटाउन से ५० मील के लगभग दक्षिण रही होगी। इसी प्रकार सिद्धपुरी वर्तमान् मेक्सिको से १००० मील से भी अधिक दक्षिण रही होगी।

यदि इन चार पुरियों का अस्तित्व कभी रहा होगा तो वह काल बहुत ही प्राचीन होगा क्योंकि आजकल तो इतना अन्तर पड़ गया है कि उस काल का कोई चिह्न वर्तमान नहीं है। यह भी सम्भव है कि इन चार पुरियों का अस्तित्व कवि की कल्पना में ही रहा हो और आलंकारिक भाषा में इस बात का वर्णन किया गया हो कि विषुवत् रेखा पर ये चार स्थान ऐसे हैं कि जब लङ्का में मध्याह्न होता है तब रोमक में सूर्योदय, सिद्धपुरी में मध्यरात्रि और यमकोटि में सूर्यास्त।

यह तो स्पष्ट ही है कि जब सूर्य विषुवत् रेखा के खस्वस्तिक पर रहता है तब वहां मध्याह्नकाल में किसी खड़ी वस्तु की कोई छाया नहीं पड़ती। इस रेखा के क्षितिज पर उत्तर और दक्षिण ध्रुव हैं इसलिए यहाँ ध्रुव तारे की ऊँचाई शून्य होती है। इसलिए अक्षांश भी शून्य होता है। इसी कारण विषुवत् रेखा को निरक्ष देश कहा गया है। इसका और स्पष्ट वर्णन अगले तीन श्लोकों में है।

मेरु पृथ्वी के बीच से होता हुआ दोनों ओर निकला हुआ बतलाया गया है इसलिए इसे पृथ्वी का अक्ष समझना चाहिए जिसका उत्तरी सिरा उत्तरी ध्रुव

और दक्षिणी सिरा दक्षिणी ध्रुव कहलाते हैं। इसी अक्ष के मध्य अर्थात् भूकेन्द्र के चारों ओर समान पूरी पर विषुवत रेखा मानी गयी है जो जम्बूद्वीप और लवण समुद्र की सीमा समझी गयी थी।

विषुवत् रेखा और उत्तर दक्षिण ध्रुवों का सम्बन्ध

मेरोरुभयतो मध्ये ध्रुवतारे नभःस्थिते।
निरक्षदेशसंस्थानामुभये क्षितिजाश्रिये ॥४३॥
अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः।
नवतिर्लम्बकांशास्तु मेरावक्षांशकास्तथा ॥४४॥
मेषादौ देवभागस्थे देवानां याति दर्शनम्।
असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसञ्चरः ॥४५॥

अनुवाद—(४३) मेरु के दोनों ओर अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की तरफ आकाश में स्थित ध्रुव तारे ठीक ख मध्य में हैं; निरक्ष देश में रहने वालों को ये दोनों तारे क्षितिज में देख पड़ते हैं। (४४) इसलिये इन नगरियों की क्षितिज रेखा पर दोनों ध्रुवतारों के होने के कारण इन पुरियों का अक्ष ऊँचा नहीं है अर्थात् इनका अक्षांश शून्य है परन्तु लम्बांश ९० है। इसी प्रकार मेरुओं का अर्थात् ध्रुवों का अक्षांश ९० है। (४५) सूर्य जब देव-भाग में अर्थात् उत्तरी गोलार्द्ध में रहता है तब मेष के आदि स्थान में देवताओं को उसका प्रथम दर्शन होता है और जब सूर्य असुर भाग में अर्थात् दक्षिणी गोलार्द्ध में रहता है तब तुला के आदि में वह असुरों को पहले पहल देख पड़ता है।

विज्ञान-भाष्य—यहाँ बतलाया गया है कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के ख मध्य में ध्रुव तारे हैं जो निरक्ष देश की क्षितिज पर हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन काल में जब सूर्य-सिद्धान्त कहा गया था तब दो ध्रुव तारे रहे होंगे। यह भी कहा जा सकता है कि जैसे उत्तरी ध्रुव के ख मध्य में एक तारा है वैसे ही दक्षिणी ध्रुव के ख मध्य में भी एक तारा समझा गया होगा। परन्तु यह निश्चय है कि उत्तरी ध्रुव के ख मध्य में इस समय जो तारा देख पड़ता है वह प्राचीन काल में इस स्थान पर नहीं था क्योंकि अयन-चलन के कारण इसका स्थान भी बदल रहा है (देखो पृष्ठ २४०-४२)। इसलिए यहाँ जिन ध्रुव तारों का वर्णन है वे आकाशीय ध्रुवों के स्थान हैं जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के ख मध्य में हैं। इनसे किसी तारे का सनातन सम्बन्ध नहीं है। जब अयन-चलन के कारण कोई तारा इनके पास आ जाता है तब यह भी प्रत्यक्ष में ध्रुव तारा कहलाने लगता है।

यह कई जगह बतलाया जा चुका है कि विषुवत् रेखा पर अक्षांश शून्य और

लम्बांश ६०° तथा उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों पर अक्षांश ६० और लम्बांश शून्य कैसे होता है (देखो पृष्ठ ५८, ५६, २५६, २५७ इत्यादि)।

श्लोक ४५ बड़े महत्व का है। इसमें बतलाया गया है कि जब सूर्य मेष राशि के आदि में होता है तब देवताओं को पहले पहल देख पड़ता है अर्थात् तब उत्तरी ध्रुव निवासियों के लिए सूर्य का उदय होता है और जब वह तुला राशि के आदि में होता है तब असुरों को पहले पहल देख पड़ता है अर्थात् तब दक्षिणी ध्रुव निवासियों के लिए उसका उदय होता है। इससे प्रकट होता है कि मेष राशि का आदि स्थान उसे ही समझना चाहिए जहाँ क्रान्तिवृत्त और विषुवन्मण्डल का योग होता है और जहाँ पहुँचकर सूर्य उत्तर गोल में हो जाता है। इसी स्थान को वसंत-संपात-बिन्दु कहते हैं। इसी प्रकार तुला का आदि बिन्दु शरद-सम्पात-बिन्दु है जहाँ पहुँच कर सूर्य दक्षिण गोल में हो जाता है। जब सूर्य मेष के आदि में विषुवन्मंडल पर आता है तभी उत्तरी ध्रुव वालों के लिए सूर्योदय होता है और इससे ६ महीने तक बराबर सूर्य देख पड़ता है। इसी समय को देवताओं का दिन कहते हैं। और असुरों की रात क्योंकि जब तक सूर्य उत्तर ध्रुव वालों को देख पड़ता है तब तक वह दक्षिण ध्रुव वालों के लिए अदृश्य रहता है और वहां रात रहती है। जिस समय सूर्य तुला राशि के आदि में पहुँचता है उस समय उत्तरी ध्रुव पर सूर्यास्त और दक्षिणी ध्रुव पर सूर्योदय होता है इस समय से ६ महीने तक सूर्य दक्षिण ध्रुव पर बराबर देख पड़ता है और वहाँ महीने का दिन होता है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों तथा विषुवत् रेखा पर यह विशेषताएँ इसीलिए होती हैं कि ध्रुव विषुवत् रेखा से ६० अंश के अन्तर पर है (देखो पृष्ठ ६२)।

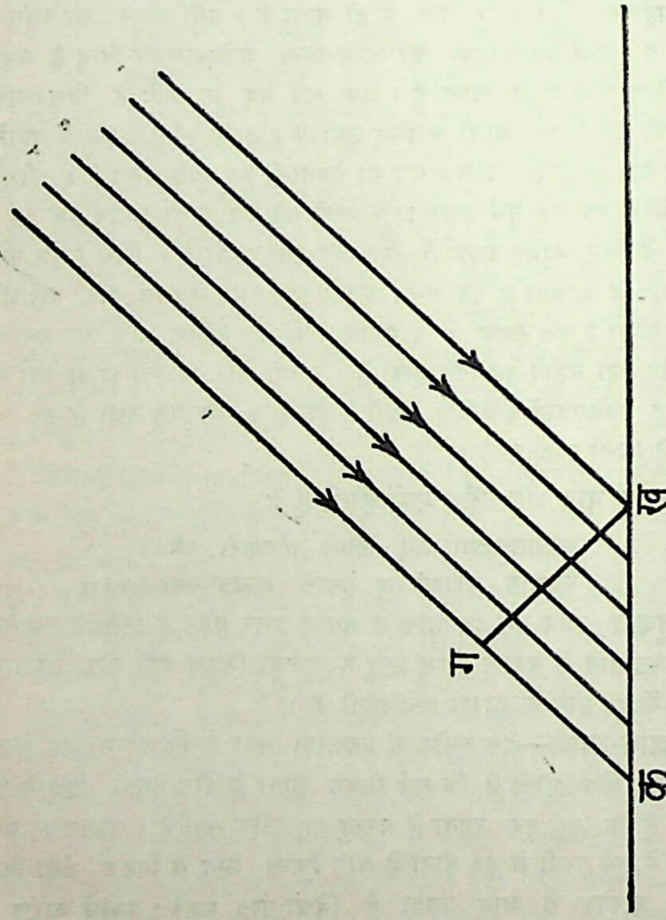
सूर्य की किरणें मन्द और तीव्र क्यों होती हैं?

अत्यासन्नतया तेन ग्रीष्मे तीव्रकरा रवेः।
देवभागे सुराणां तु हेमन्ते मन्दतान्यथा ।।४६।।

अनुवाद—जब सूर्य देव भाग में अर्थात् उत्तर गोल में रहता है तब देवताओं के बहुत निकट होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में उसकी किरणें बड़ी तीव्र होती हैं और हेमन्त ऋतु में दूर होने के कारण मन्द होती हैं।

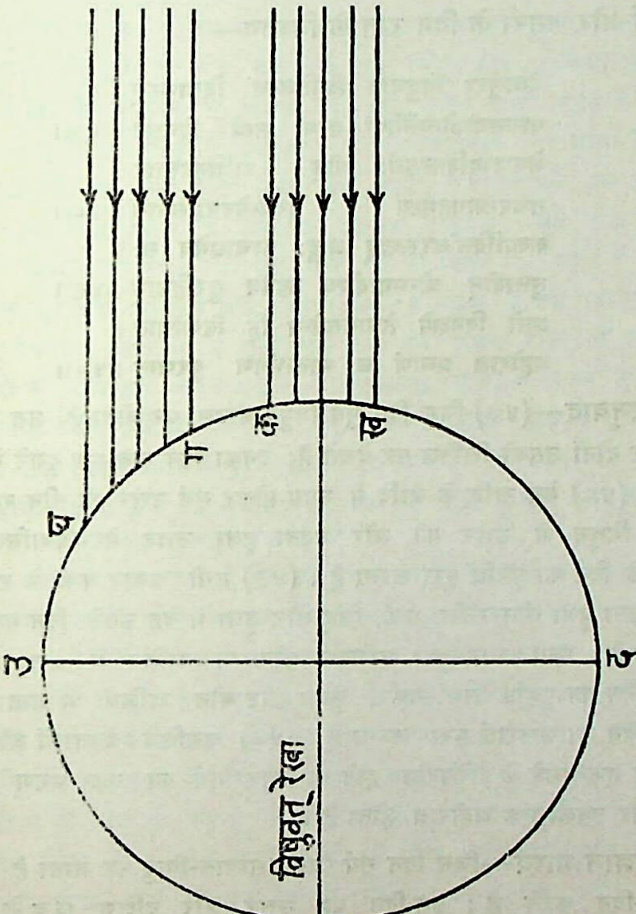
विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक में बतलाया गया है कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें इसलिए तीव्र होती हैं कि सूर्य निकट होता है और हेमन्त ऋतु में इसलिए मन्द होती हैं कि सूर्य दूर रहता है परन्तु यह ठीक नहीं है। आजकल यथार्थ में ग्रीष्म ऋतु में सूर्य पृथ्वी से दूर होता है और हेमन्त ऋतु में निकट जैसा कि उसके बिम्बों के आकार से जान पड़ता है (देखो पृष्ठ ८५)। यथार्थ कारण यह है

कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें लम्ब रूप में खड़ी आती हैं इसलिए उनकी प्रखरता अधिक होती है और हेमन्त ऋतु में सूर्य के नीचे होने के कारण किरणें टेढ़ी आती हैं इसलिए उनकी प्रखरता कम पड़ जाती है। यह बात प्रतिदिन देखी जाती है। मध्याह्न में सूर्य ऊँचा होता है इसलिए इसकी किरणें प्रायः खड़ी रहती हैं और गरमी भी बढ़ जाती है। परन्तु प्रातःकाल और सायंकाल इसकी किरणें बहुत तिरछी रहती हैं इसलिये उतनी गरमी नहीं रहती। यही दशा सारे भूपृष्ठ पर एक वर्ष की अवधि में होती है। विषुवत्‌रेखा के आस पास के देशों में सूर्य साल भर तक प्रायः सिर पर देख पड़ता है इसलिये इसकी किरणें लम्बरूप से खड़ी आती हैं और बड़ी तीव्र होती



चित्र १२३

हैं परन्तु उत्तर दक्षिण ध्रुवों पर सूर्य की किरणें बहुत तिरछी हो जाती हैं इसलिये वहां सदैव ठंडक रहती है। यह बात चित्र १२३ से स्पष्ट हो जायगी। इस चित्र में दिखलाया गया है कि सूर्य से आती हुई किरणें ग ख तल पर लम्ब हो कर गिरती हैं और वही किरणें क ख तल पर तिरछी हो जाती हैं। यह स्पष्ट है कि क ख तल ग ख तल से बड़ा है क्योंकि यह समकोण त्रिभुज क ग ख का कर्ण है इसलिये जब वही किरणें अधिक स्थान में फैल जाती हैं तब उनकी शक्ति कम पड़ जाती है और ग ख तल पर जितनी गरमी होती है उतनी क ख तल पर नहीं हो सकती। इसका अनुभव पढ़े, बेपढ़े सभी को है, क्योंकि जब सूर्य की किरणें तिरछी आती हैं तब



चित्र १२४

लोग किसी वस्तु को सुखाने के लिये उसे ऐसे तल पर रखते हैं जो इस प्रकार टेढ़ा कर दिया जाता है कि किरणें लम्ब रूप में गिरें।

चित्र १२४ से प्रकट होता है कि विषुवत् रेखा के आसपास सूर्य की किरणें जितनी आती हैं उतनी ही किरणें विषुवत् रेखा से दूर के देशों में तिरछी होने के कारण अधिक क्षेत्रफल में फैल जाती और मन्द पड़ जाती हैं। इस चित्र से स्पष्ट देख पड़ता है कि जितनी किरणें विषुवत्रेखा के पास क ख भू भाग पर पड़ती हैं उतनी ही किरणें उत्तर ध्रुव के निकट ग ग भूभाग पर पड़ती हैं जो क्षेत्रफल में कहीं अधिक होता है इसलिये फैल जाने के कारण इनकी तीव्रता कम पड़ जाती है।

देवताओं और असुरों के दिन रात के विभाग—

देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम्।
पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वाम सव्ये दिनक्षपे ॥४७॥
मेषादावुदितस्सूर्यः त्रीन् राशिनुदगुत्तरे।
संचरन्प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरुवासिनाम् ॥४८॥
कर्क्यादिसंचरंस्तद्वद् अह्नः पश्चार्धमेव सः।
तुलादीन् त्रीन्मृगादींश्च तद्वदेव सुरद्विषाम् ॥४९॥
अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्।
अहोरात्र प्रमाणं च भानोर्भगण पूरणात् ॥५०॥

अनुवाद—(४७) जिस दिन सूर्य विषुवन्मण्डल पर होता है उस दिन देवता और असुर दोनों उसको क्षितिज पर देखते हैं; इनका दिन रात एक दूसरे से विपरीत होता है। (४८) मेष राशि के आदि में उदय होकर सूर्य उत्तर की तीन रशियों मेष, वृष और मिथुन में उत्तर की ओर बढ़ता हुआ उत्तर मेरु-निवासियों अर्थात् देवआओं के दिन का पूर्वार्ध पूरा करता है। (४९) उसी प्रकार कर्क के राशि आदि से आगे बढ़ता हुआ तीन राशि कर्क, सिंह और तुला में वह उनके दिन का उत्तरार्ध पूरा करता है। इसी प्रकार तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में जाता हुआ वह असुरों के दिन का पूर्वार्ध तथा मकर, कुम्भ और मीन राशियों में जाता हुआ वह असुरों के दिन का उत्तरार्ध पूरा करता है। (५०) इसलिये देवताओं और असुरों के अहोरात्र एक दूसरे के विपरीत होते हैं और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर इनका एक अहोरात्र होता है।

विज्ञान-भाष्य—जिस दिन सूर्य वसंत-सम्पात-विन्दु पर आता है उस दिन को विषुव-दिन कहते हैं। इस दिन यह उत्तर और दक्षिण ध्रुव से क्षितिज

पर रहता है इसलिए उत्तरध्रुव के निवासियों देवताओं को और दक्षिण ध्रुव के निवासियों असुरों को क्षितिज पर देख पड़ता है। परन्तु सूर्य की गति उत्तर होने के कारण वह देवताओं को उदय होता हुआ और असुरों को अस्त होता हुआ देख पड़ता है। अर्थात् इस दिन से देवताओं के दिन का और असुरों की रात का आरम्भ होता है। सूर्य के इस स्थान को अर्थात् वसंत-सम्पात-बिन्दु को मेष का आदि स्थान कहा गया है। इसके बाद सूर्य उत्तर की ओर प्रतिदिन बढ़ता है। जब यह वसंत-सम्पात बिन्दु से ९० अंश पर पहुँचता है तब इसका उत्तर की ओर का बढ़ना रुक जाता है। इसी दिन देवताओं को यह सबसे ऊँचा उठा हुआ देख पड़ता है। यह ऊँचाई सूर्य की परम क्रान्ति के समान होती है। इसलिये इसी दिन देवताओं का मध्याह्न होता है और असुरों की मध्यरात्रि होती है। वसंत-सम्पात-बिन्दु से ९० अंश तक मेष, वृष, मिथुन तीन राशियाँ होती हैं। जब सूर्य कर्कराशि के आरम्भ से लेकर कर्क, सिंह और कन्या राशियों को पार करके तुला के आदि में पहुँचता है तब यह फिर विषुवन्मण्डल पर आता है। इस समय देवताओं को यह अस्त होता हुआ देख पड़ता है। इसलिये इस समय से देवताओं की रात और असुरों के दिन का आरम्भ होता है। सूर्य का यह स्थान शरद-सम्पात बिन्दु कहलाता है और इस दिन को भी विषुव दिन कहते हैं। इसके बाद जब तक सूर्य तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में रहता है तब तक असुरों का पूर्वाह्न और देवताओं की पूर्वरात्रि होती है। जब सूर्य मकर राशि में पहुँचता है तब देवताओं की मध्यरात्रि और असुरों का मध्याह्न होता है। जब सूर्य मकर, कुम्भ और मीन राशियों में होता है तब असुरों का अपराह्न होता है। इस प्रकार सूर्य का एक फेरा जितने समय में पूरा होता है उतने समय में देवताओं या असुरों का एक अहोरात्र होता है। परन्तु देवताओं का जो दिन है वही असुरों की रात और देवताओं की जो रात है वह असुरों का दिन।

इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि मेष, वृष आदि राशियों का आरम्भ वसंत-सम्पात से माना गया है न कि निरयण मेष से जो आजकल वसंत-सम्पात से २३ अंश से भी कुछ आगे है और जो वसंत-सम्पात से सदैव आगे होता जा रहा है। इसी अन्तर को अयनांश कहते हैं। १४०० वर्ष से कुछ अधिक हुए जब वसंत-सम्पात और निरयण मेष साथ-साथ थे इसलिए इस समय मेष का स्थान वही था जिसे आजकल निरयण मेष कहते हैं परन्तु यह दशा अब नहीं है। इस कारण आजकल ज्योतिषियों में दो भेद हो गये हैं, सायन-वादी और निरयण-वादी। जिन्हें सायन-वादी कहा जाता है वे वसंत-सम्पात को ही मेष का आदिस्थान मानते हैं। परन्तु निरयण-वादी लोग निरयण मेष को राशियों का आरम्भ स्थान मानते हैं।

सूर्य-सिद्धान्त में सायन और निरयण का भेद नहीं है। इससे जान पड़ता है कि जिस समय वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त लिपिवद्ध हुआ है उस समय वसंत-सम्पात उसी जगह था जिस जगह आजकल निरयण मेष का आदि स्थान माना जाता है। इसके बाद सिद्धान्त शिरोमणि आदि जो ग्रन्थ बने हैं उनमें इन दोनों की चर्चा है।

देवताओं या असुरों के अहोरात्र के वर्णन से, जो सूर्य-सिद्धान्त में कई जगह आया है, यह सिद्ध होता है कि इनका अहोरात्र सायन वर्ष से समान होता है और यही वर्ष का स्वाभाविक मान है। परन्तु इस अहोरात्र का प्रमाण सूर्य के भगण-काल के समान भी बतलाया गया है जो मध्यमाधिकार के श्लोक २९ और ३७ के अनुसार ३६५·२६५८७५६ मध्यम सावन दिन के समान होता है और सायन वर्ष से ·०१६५४० मध्यम सावन दिन बड़ा है। यह भगणकाल शुद्ध नाक्षत्र-सौर वर्ष से भी ·००२३८२ दिन बड़ा है। (देखो पृष्ठ २४५ की पाद-टिप्पणी)। इसलिये जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धान्त में सायन वर्ष का मान स्थूल रूप से सूर्य के भगण काल के समान मान लिया गया है।

देवासुरों का मध्याह्न काल कब होता है तथा ऊपर नीचे का क्या अर्थ है—

अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्।
उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः ॥५१॥
अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्।
भद्राश्वकेतुमालस्था लंकासिद्धपुराश्रिताः ॥५२॥
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्व वाऽप्यधः ॥५३॥

अनुवाद—(५१) देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि अयन के अंत में एक दूसरे के विपरीत होती है। देवता और असुर दोनों अपने को दूसरे से ऊपर मानते हैं। (५२) जो लोग भूव्यास की दिशा में रहते हैं वे भी दूसरे को अपने से नीचे मानते हैं जैसे भद्राश्व वर्ष के (यमकोटि नगर के) रहने वाले केतुमाल देश के (रोमक नगर के) रहने वालों को और लङ्का नगर के रहने वाले सिद्धपुर वालों को अपने से नीचे समझते हैं। (५३) इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने स्थान को ऊपर मानते हैं क्योंकि यह भूगोल आकाश में स्थित है इसलिये उसका ऊपर और नीचे कहाँ है ?

विज्ञान-भाष्य—५१वें श्लोक का पूर्वार्ध ५०वें श्लोक से सम्बन्ध रखता है और उत्तरार्ध यह बतलाया है कि देवता और असुर दोनों अपने को दूसरे से

ऊपर समझते हैं। इसी बात का प्रमाण आगे के दो श्लोकों में उदाहरण के साथ बतलाया गया है।

अयन के अन्त में देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि परस्पर विपरीत होने का कारण स्पष्ट ही है। क्योंकि जिस समय सूर्य सायन कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय यह उत्तर ध्रुव निवासियों को सबसे ऊँचा देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियों के लिए सबसे नीचे होकर अदृश्य रहता है इसलिए इस समय देवताओं का मध्याह्न और असुरों की मध्यरात्रि होती है। इसी प्रकार जिस समय सूर्य सायन मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय असुरों का मध्याह्न और देवताओं की मध्यरात्रि होती है।

ऊपर नीचे की बात भी समझना कठिन नहीं है क्योंकि सब लोग उस दिशा को ऊपर मानते हैं जो आकाश के मध्य में होता है और इसकी विपरीत दिशा को नीचे समझते हैं। पृथ्वी गोल है और इसके चारों ओर आकाश है इसलिए सब जगह के रहने वाले अपने को ऊपर और अपने भूव्यास के दूसरे सिरे पर रहने वाले को नीचे समझते हैं।

चित्र १२५ में गोल रेखा भूपृष्ठ है। उत्तर ध्रुव के रहने वालों को वह दिशा ऊपर है जिसमें क अक्षर दिखलाया गया है और इसकी विपरीत दिशा वह है जिधर भू-मध्य है। परन्तु इस दिशा की सीध में भूगोल की दूसरी ओर दक्षिण ध्रुव है इसलिए दक्षिण ध्रुव उत्तर ध्रुव से नीचे देख पड़ता है। परन्तु दक्षिण ध्रुव वालों के लिए वह दिशा ऊपर है जिसमें ख अक्षर दिखालाया गया है और भूमध्य की दिशा अथवा उत्तर ध्रुव नीचे है। यह बात चित्र को उलट कर पढ़ने से सहज ही समझ में आ सकती है। इसी प्रकार च स्थान के लिए ग की दिशा ऊपर और छ या घ की दिशा नीचे है परन्तु छ स्थान के लिए घ की दिशा ऊपर और च या ग की दिशा नीचे है।

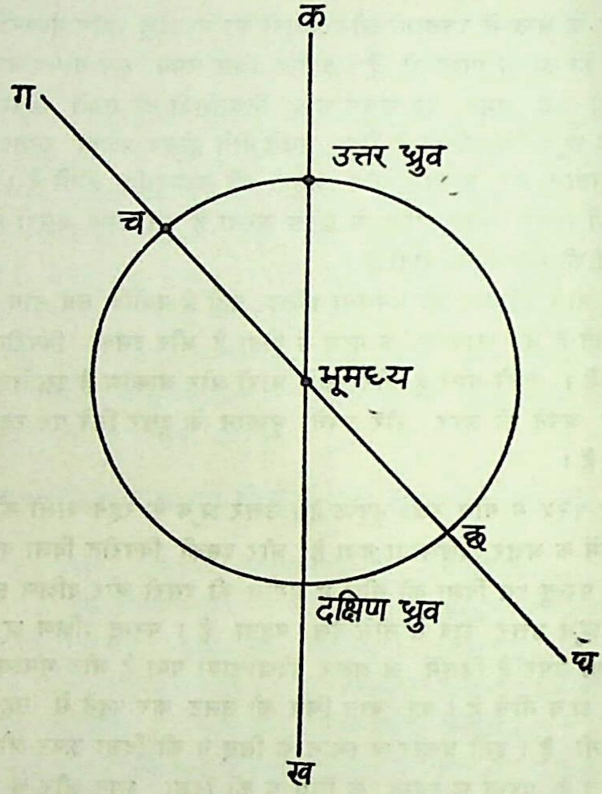
पृथ्वी चपटी देख पड़ने का कारण—

अल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात्सर्वतो दिशम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम् ॥५४॥

अनुवाद—मनुष्य पृथ्वी की अपेक्षा बहुत छोटे होने के कारण अपने स्थान से गोल पृथ्वी को सब दिशाओं में चक्राकार देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—किसी वृत्त के बहुत छोटे खण्ड के धनु और उसकी ज्या में इतना कम अन्तर होता है कि दोनों समान समझे जाते हैं अर्थात् धनु वक्र होने पर भी ज्या के समान होता है और धनु की वक्रता नहीं के समान होती है। इसीलिए

तो २२५ कला की ज्या भी २२५ कला ही समझी गयी है (देखो स्पष्टाधिकार श्लोक १५)। इसी प्रकार किसी गोल पिंड के पृष्ठ का अत्यन्त छोटा भाग वक्र होने पर



चित्र १२५

भी सम देख पड़ता है। यह गणना की जा सकती है कि समतल भूमि या किसी बड़ी झील के तल पर खड़ा होकर चारों ओर देखने से मनुष्य को ३ या ४ मील से अधिक दूर तक का धरातल नहीं देख पड़ता।

मान लो ख भूतल पर एक स्थान है, कख मनुष्य की ऊँचाई हैं, घ भूगोल का केन्द्र है और कग सीधी रेखा है जो भूतल को ग बिन्दु पर स्पर्श करती है। रेखागणित से यह सिद्ध है कि

$$कग^2 = कख \times कच = कख\ (कख + खच)$$

मान लो कख = उ, खघ = घच = त्र, कग = क्ष

$$तब\ क्ष^2 = उ \times (उ + २\ त्र) = उ^2 + २\ उ \times त्र$$

यहाँ २ उ त्र की तुलना में $उ^२$ इतना छोटा है कि नगण्य समझा जा सकता है क्योंकि त्र पृथ्वी की त्रिज्या है इसलिए यह ३९६० मील के लगभग है और उ मनुष्य की ऊँचाई है जो १ मील के हज़ारवें भाग के लगभग है, इसलिए यह माना जा सकता है कि

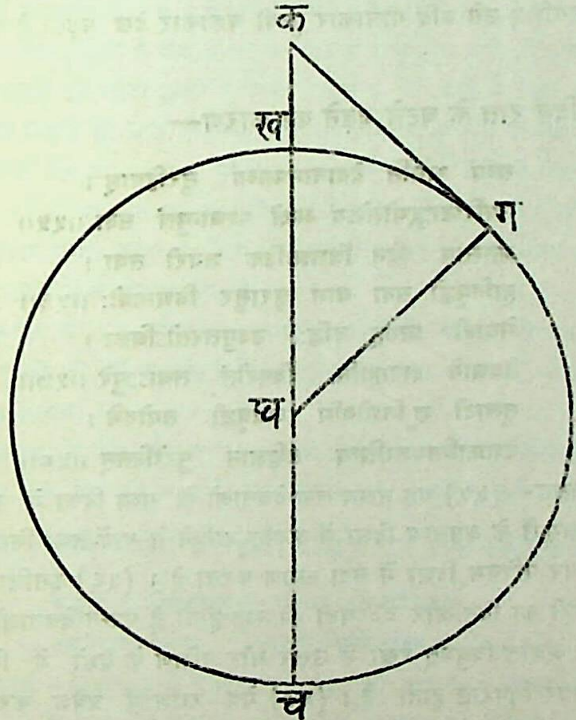
$$क्ष^२ = २\ उ\ त्र \qquad (१)$$

इस समीकरण में सब नाप मीलों में है। यदि मान लिया जाय कि उ की नाप फुट में फ हो तो

$$फ = उ \times १७६० \times ३$$

$$\text{या } उ = \frac{फ}{३ \times १७६०}$$

उ का यह मान समीकरण (१) में उत्थापन करने से और त्र की जगह ३९६० रखने से



चित्र १२९

$$क्ष^२ = २ \times \frac{फ}{३ \times १७६०} \times ३९६० = \frac{३ फ}{२}$$

$$\text{या} \quad क्ष = \sqrt{फ \times १.५}$$

यहां क्ष का मान मीलों में और फ का फुट में समझना चाहिए। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य भूतल से जितने फुट ऊपर हो उसका डेवढ़ा करके वर्गमूल लेने से जो आवे उतने ही मील दूर तक की क्षितिज वह देख सकेगा।

यदि मनुष्य की ऊँचाई ६ फुट हो तो उसकी क्षितिज ३ मील दूर होगी और ऊँचाई २४ फुट हो तो वह ६ मील दूर तक की क्षितिज चारों ओर देख सकेगा।

चित्र से प्रकट है कि यदि क ख ६ फुट हो तो क ग ३ मील होगा और जो क ग होगा वही खग को भी समझना चाहिए।

परन्तु भूतल की परिधि स्थूलरूप से २५००० मील है और ६ फुट ऊँचे मनुष्य की क्षितिज का व्यास ६ मील है जो २५००० मील के चार हजारवें भाग से भी कम है इसलिए उसे यदि गोलाकार पृथ्वी चक्राकार देख पड़ती है तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

भूतल पर दिन रात के घटने बढ़ने का कारण—

सव्यं भ्रमति देवानामपसव्यं सुरद्विषाम् ।
उपरिष्टाद्भगोलोऽयं व्यक्षे पश्चान्मुखं सदा ।।५५।।
अतस्तत्र दिनं त्रिंशन्नाडिकं शर्वरी तथा ।
हानिवृद्धी सदा वामं सुरासुर विभागयोः ।।५६।।
मेषादौ प्रत्यहं वृद्धिः उदगुत्तरतोऽधिका ।
देवभागे क्षपाहानिः विपरीतं तथाऽऽसुरे ।।५७।।
तुलादौ द्युनिशोर्वामं क्षयवृद्धी तयोरुभे ।
देशक्रान्तिवशान्नित्यं तद्विज्ञानं पुरोदितम् ।।५८।।

अनुवाद—(५५) यह नक्षत्र चक्र देवताओं के सव्य दिशा में अर्थात् बायें से दाहिने और असुरों के अपसव्य दिशा में अर्थात् दाहिने से बायें तथा निरक्ष देश वालों के सिर के ऊपर पश्चिम दिशा में सदा भ्रमण करता है। (५६) इसलिए यहाँ निरक्ष देश में ३० घड़ी का दिन और ३० घड़ी की रात होती है परन्तु देवताओं और असुरों के विभागों में अर्थात् विषुवत् रेखा से उत्तर और दक्षिण के देशों में दिन रात की क्षय वृद्धि परस्पर विपरीत होती है। (५७) मेष राशि में प्रवेश करने के पश्चात् सूर्य जैसे उत्तर की ओर बढ़ता है विषुवत् रेखा से उत्तर के देशों में दिन-मान की वैसे ही वृद्धि और रात्रि की हानि होती है परन्तु विषुवत् रेखा से दक्षिण के देशों में

इसका उलटा होता है अर्थात् वहाँ दिन का क्षय और रात्रि की वृद्धि होती है। (५८) तुलाराशि में प्रवेश करने के पश्चात् सूर्य जैसे-जैसे दक्षिण की ओर बढ़ता है वैसे ही वैसे उत्तर भाग में दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि तथा दक्षिण भाग में दिन की वृद्धि और रात्रि की हानि होती है। दिन रात्रि की क्षय वृद्धि स्थान के अक्षांश और सूर्य की क्रान्ति पर निर्भर है जिसका विचार पहले ही किया गया है।

विज्ञान-भाष्य—५५ वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि उत्तर ध्रुव निवासियों को नक्षत्र-चक्र सव्य दिशा में भ्रमण करता हुआ देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियों को अपसव्य दिशा में। सव्य और अपसव्य शब्दों की व्याख्या विज्ञान भाष्य पृष्ठ १२६ में की गयी है। विपुवत् रेखा के निकट देशों में नक्षत्र चक्र सिर के ऊपर पूरब से पच्छिम को भ्रमण करता हुआ देख पड़ता है। विपुवत् रेखा पर दिन का परिमाण ३० घड़ी का और रात्रि का परिमाण भी ३० घड़ी का सदा होता है। इससे उत्तर और दक्षिण के देशों में दिन या रात्रि का परिमाण ३० घड़ी का केवल विपुव दिन को ही होता है जब सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है। अन्य कालों में जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होती है तब उत्तर के देशों में दिन ३० घड़ी से बड़ा और रात ३० घड़ी से उतनी ही छोटी होती है परन्तु दक्षिण के देशों में दिन ३० घड़ी से छोटा और रात उतनी ही बड़ी होती है और जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है तब दक्षिण के देशों में दिन बड़ा, रात छोटी तथा उत्तर के देशों में रात बड़ी, दिन छोटा होता है। दिन या रात की क्षयवृद्धि का विचार सूर्य की क्रान्ति और स्थान के अक्षांश के अनुसार किया जाता है जैसा कि स्पष्टाधिकार के ६०-६१ श्लोकों और उनके विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है।

नक्षत्र-चक्र के इस भ्रमण का कारण प्राचीनों के मत से प्रवह वायु और नवीन मत से पृथ्वी की दैनिक गति है जिसका विचार आगे के ७४वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में किया जायगा।

इन श्लोकों में मेष और तुला का अर्थ सायन मेष और सायन तुला समझना चाहिए क्योंकि दिन रात की क्षयवृद्धि सायन राशियों के ही अनुसार होती है।

विपुवत्‌रेखा से कितने योजन उत्तर या दक्षिण सूर्य ठीक ऊपर होता है।

भूवृत्तं क्रान्तिभागघ्नं भगणांशविभाजितम्।
अवाप्तयोजनैरर्को व्यक्षाच्चेदुपरिस्थितः ॥५९॥

अनुवाद—भूपरिधि के योजनों को सूर्य की तात्कालिक क्रान्ति के अंशों से गुणा करके ३६० से भाग देने पर जो लब्धि आवे उतने ही योजन विषुवत रेखा से दूर सूर्य ऊपर होता है।

विज्ञान-भाष्य — सूर्य की जो क्रान्ति होती है उतने ही अक्षांश पर वह ठीक ऊपर होता है। क्रान्ति यदि उत्तर हो तो अक्षांश उत्तर समझना चाहिए और क्रान्ति दक्षिण हो तो अक्षांश दक्षिण समझना चाहिए (देखो त्रि० पृ० २६१)। कौन अक्षांश विषुवत् रेखा से कितने योजन पर होता है इसकी गणना जैसे की जाती है वैसे ही इस श्लोक में गणना करने की रीति बतलायी गयी है। भूपरिधि का मान योजनों में जो होता है वह ३६० अंश के समान हैं इसलिये अभीष्ट अक्षांश विषुवत् रेखा से कितने योजन पर है यही अनुपात इसमें बतलाया गया है।

३६० अंश : क्रान्त्यंश : : भूपरिधि योजन : अभीष्ट योजन।

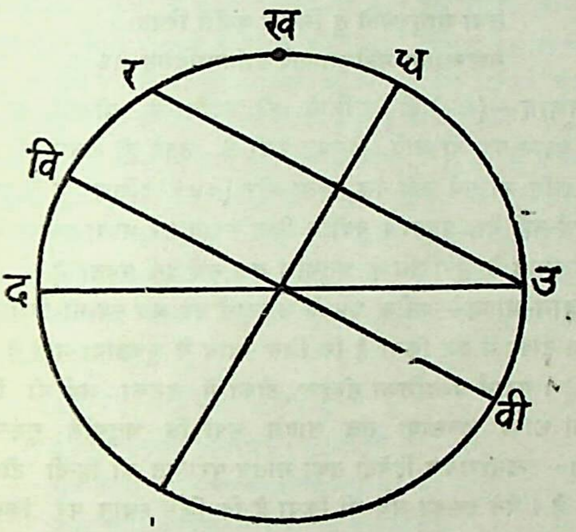
६० घड़ी का दिन या ६० घड़ी की रात कहाँ होती है—

परमापक्रमादेवं योजनानि विशोधयेत्।
भूवृत्तपादाच्छेषाणि यानि स्युर्योजनानि तैः ॥६०॥
अयनान्ते विलोमेन देवासुरविभागयोः।
नाडीषष्ट्या सकृदहर्निशाऽन्यस्मिन्सकृत्तथा ॥६१॥

अनुवाद—(६०) इसी प्रकार सूर्य की परम-क्रान्ति से योजना का मान जान कर इसको भूपरिधि के चतुर्थ भाग से घटाने से जो आवे, विषुवत् रेखा से, उतने ही योजन पर (६१) अयन के अन्त में अर्थात् सायन कर्क संक्रान्ति के दिन उत्तर में ६० घड़ी का एक दिन और दक्षिण में ६० घड़ी की एक रात तथा मकर संक्रान्ति के दिन दक्षिण में ६० घड़ी का एक दिन और उत्तर में ६० घड़ी की एक रात होती है।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों का अर्थ समझने के लिए स्पष्टाधिकार के श्लोक ६०-६१ तथा चित्र ४२, ४३ और उसके विवरण को दुहरा लेना चाहिये। इन चित्रों की सहायता से एक नया चित्र बनाकर यह जानना सुगम है कि जब सूर्य की क्रान्ति परम होती है तब किस अक्षांश पर इसका अहोरात्रवृत्त क्षितिज रेखा के बिल्कुल ऊपर हो जाता है। चित्र ४२ के ढंग पर चित्र १२७ बनाया गया है, अन्तर केवल इतना है कि इस चित्र का केन्द्र उस स्थान को सूचित करता है जिसका लम्बांश सूर्य की परम क्रान्ति के समान और अक्षांश उसके पूरक के समान है। उधखविद यहाँ का यामोत्तर-वृत्त, ख खस्वस्तिक, उद क्षितिज की उत्तर दक्षिण रेखा, विषुवन्मण्डल का एक विन्दु और र सूर्य है जब इसकी क्रान्ति परम होती है अर्थात् सायन कर्क संक्रान्ति का दिन का सूर्य है। उध यहाँ का अक्षांश है इसलिए वीउ=विर। यह स्पष्ट है कि रउ इस दिन के सूर्य का अहोरात्रवृत्त है जो क्षितिज

के बिल्कुल ऊपर है इसलिए इस दिन सूर्य क्षितिज के नीचे नहीं जायगा अथवा अस्त ही न होगा और ६० घड़ी का दिन होगा। इसके विपरीत इतने ही दक्षिण अक्षांश पर इस दिन सूर्य के अहोरात्र वृत्त का व्यास शून्य होगा अर्थात् ६० घड़ी की रात होगी क्योंकि सूर्य वहाँ के क्षितिज रेखा पर ही ६० घड़ी तक रहेगा। जिस स्थान की यह चर्चा है उसका अक्षांश आजकल ९०° − २३° २७′ = ६६° ३३′ है। क्योंकि सूर्य की परम क्रान्ति २३° २७′ के लगभग है। उत्तर वाले स्थान को आजकल उत्तरी ध्रुव-मण्डल और दक्षिण वाले स्थान को दक्षिणी ध्रुव मण्डल कहते हैं।



चित्र १२७

जैसे सायन कर्क संक्रान्ति के दिन उत्तरी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी का दिन और दक्षिणी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी की रात होती है वैसे ही सायन मकर संक्रान्ति के दिन दक्षिणी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी का और उत्तरी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी की रात होती है। यह अवसर एक वर्ष में केवल एक बार आता है।

श्लोकों में अक्षांश को अंशों में न लिख कर योजनों में विषुवत् रेखा से दूरी बतलायी गयी है।

दिन-रात का प्रमाण ६० घड़ी का कहाँ होता है—

तदन्तरेऽपि षष्ट्यन्तं क्षयवृद्धी अहर्निशोः।
परतो विपरीतोऽयं भगोलः परिवर्तते ॥६२॥

अनुवाद—इन अक्षांशों के बीच के देशों में अहोरात्र का प्रमाण ६० घड़ी का होता है और इस समय के भीतर दिन और रात की वृद्धि होती है परन्तु इसके सिवा अन्य स्थानों में यह नियम बदल जाता है क्योंकि वहां नक्षत्र-कक्षा की स्थिति बदल जाती है ।

दो महीने का दिन या रात कहाँ होती है—

ऊने भूवृत्तापादे तु द्विज्यापक्रमयोजनैः ।
धनुर्मृगस्थः सविता देवभागे न दृश्यते ।।६३।।
तथा चासुरभागे तु मिथुने कर्कंते स्थितः ।
नष्टच्छाया महीवृत्तापादे दर्शनमादिशेत् ।।६४।।

अनुवाद—(६२) दो राशियों की क्रांति के योजनों की भूपरिधि के चतुर्थांश से घटाने पर जो आवे, विषुवत् रेखा से, उतने ही अन्तर पर उत्तर में धनु और मकर राशि का सूर्य नहीं देख पड़ता और (६४) दक्षिण में मिथुन और कर्क राशि का सूर्य नहीं देख पड़ता । क्योंकि जिस स्थान पर मध्याह्नकाल में छाया शून्य होती है उस स्थान से भूपरिधि के चतुर्थांश तक सूर्य देख पड़ता है ।

विज्ञान-भाष्य—श्लोक ६४ के उत्तरार्ध का अर्थ स्वामी विज्ञानानन्द जी ने अपनी बंगला टीका में यह किया है कि जिस स्थान में भूच्छाया नहीं है वहाँ सूर्य का दर्शन होता है । गूढ़ार्थ प्रकाशिका संस्कृत टीका में इसका अर्थ यों किया गया है 'अभावं प्राप्ता छाया भूच्छाया तत्र तादृशे भूपरिधि चतुर्थांशे सूर्यस्य दर्शनं सदा कथयेत्' । पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी तथा माधव पुरोहित की हिन्दी टीका में इसका अर्थ ही नहीं है । मैंने इसका अर्थ यों किया है कि जिस स्थान पर किसी वस्तु की मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती हैं उस स्थान से भूपरिधि के चतुर्थ भाग पर्यन्त तक उस दिन सूर्य देख पड़ता है । क्योंकि जहाँ मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती है वहीं के ख-स्वस्तिक पर सूर्य होता है और यहीं से ९० अंश तक चारों ओर सूर्य इस समय देख पड़ता है । इसके सिवा 'छाया' का अर्थ भूच्छाया करना ठीक नहीं, मध्याह्न छाया ही उचित है । इसलिए 'नष्टच्छाया' का अर्थ है वह स्थान जहाँ की मध्याह्न छाया शून्य हो ।

इन दो श्लोकों में यह बतलाया गया है कि जब सूर्य सायन धनु और मकर राशियों में रहता है तब कहाँ दो मास की रात होती है । जब सूर्य सायन धनु में प्रवेश करता है तब इसकी दक्षिण क्रान्ति २०°१०′ होती है (देखो पृष्ठ ३१६) और जब तक यह धनु और मकर राशियों में रहता है तब तक इसकी दक्षिण क्रान्ति २०° १०′ से अधिक होती है । अब देखना है कि जब सूर्य की दक्षिण क्रांति २०°१०′

होती है तब यह भूपृष्ठ के किस भाग पर दिखाई पड़ सकता है। यह स्पष्ट है कि इस समय सूर्य उस स्थान के खस्वस्तिक पर रहता है, जिसका दक्षिण अक्षांश २०° १०′ है। इसलिए इस स्थान पर मध्याह्नकालिक छाया भी शून्य होगी और यहाँ से भूपरिधि के चतुर्थ भाग तक अर्थात् ९० अंश उत्तर दक्षिण तक सूर्य दिखाई पड़ सकता है। २०° १०′ दक्षिण अक्षांश से ९० अंश उत्तर के स्थान का अक्षांश ९०°−२०° १०=६९°५०′ हुआ। इसलिए इस दिन सूर्य की किरणें यहीं तक जा सकती हैं। इसके बाद जब तक सूर्य की दक्षिण क्रांति २०° १०′ से अधिक दक्षिण होगी तब तक वह ६९° ५०′ के उत्तर अक्षांश पर नहीं देख पड़ेगा अर्थात् इस स्थान पर दो मास की रात होगी। इसके प्रतिकूल ६९° ५०′ दक्षिण अक्षांश पर दो महीने का दिन होगा। इस स्थान का योजनात्मक अन्तर विषुवत् रेखा से क्या होगा यही जानने का नियम इन दोनों श्लोकों में बतलाया गया है जो श्लोक ५९ में बतलाये गये नियम के अनुसार है और जिसका व्यवहार श्लोक ६०-६१ में किया गया है।

इसी तरह जब सूर्य सायन मिथुन और कर्क राशियों में रहता है तब इसकी उत्तर क्रान्ति २०° १०′ से अधिक होती है जिससे ६९° ५०′ उत्तर अक्षांश के स्थानों पर इन दो महीने तक सूर्य बराबर देख पड़ता है इसलिए यहाँ दो मास का दिन होता है और इतने ही दक्षिण अक्षांश पर लगातार दो महीने तक सूर्य अदृश्य होने के कारण रात रहती है।

चार महीने का दिन या रात कहाँ होती है—

एकज्यापक्रमानीतैर्योजनैः परिवर्जितैः।
भूमिकक्ष्या चतुर्थांशे व्यक्षाच्छेषैस्तु योजनैः ॥६५॥
धनुर्मृगालिकुम्भेषु संस्थितोऽर्को न दृश्यते।
देवभागेऽसुराणां तु वृषाद्ये भचतुष्टये ॥६६॥

अनुवाद—(६५) एक राशि की क्रान्ति के योजनों को भूपरिधि के चतुर्थांश से घटाने पर जो आवे विषुवत् रेखा से उतने ही अन्तर पर (६६) उत्तर में धनु, मकर, कुम्भ, और मीन राशियों का सूर्य नहीं देख पड़ता और दक्षिण में वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियों का सूर्य नहीं देख पड़ता।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य सायन धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियों में रहता है तब इसकी दक्षिण क्रान्ति एक राशि की क्रान्ति से अर्थात् ११° २९′ से अधिक होती है इसलिए इन चार महीनों में सूर्य उस स्थान पर नहीं देख पड़ता जिसका उत्तर अक्षांश ९०°−११° २९′=७८° ३१′ है। इसका फल यह होता है कि इन दिनों यहाँ चार महीने की रात होती है परन्तु ७८° ३१′ दक्षिण अक्षांश पर

४ महीने का दिन होता है। इसी प्रकार जब सूर्य की उत्तर क्रान्ति ११° २९′ से अधिक होती है अर्थात् जब सायन वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियों में रहता है तब ७८° ३१′ दक्षिण अक्षांश पर ४ महीने की रात और उत्तर अक्षांश पर ४ महीने का दिन होता है।

श्लोकों में अक्षांश की जगह विषुवत् रेखा से योजनों में दूरी जानने की रीति दी गई है जैसा कि पहले के श्लोक में है।

६ महीने का दिन या रात कहाँ होती है—

मेरौ मेषादिचक्रार्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम् ।
सकृदेवोदितं तद्वदसुराश्च तुलादिगम् ।।६७।।

अनुवाद—जब सूर्य मेष से कन्या तक ६ राशियों में रहता है तब उत्तर ध्रुव के रहने वाले देवता लोग उसको एक ही बार उदय हुआ देखते हैं अर्थात् ६ महीने तक उसका अस्त नहीं होता और जब सूर्य तुला से मीन राशियों में रहता है तब दक्षिण ध्रुव पर असुर लोग उसको बराबर उदय हुआ देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य सायन मेष में प्रवेश करता है तब यह उत्तर गोल में आता है और ६ मास तक बराबर उत्तर गोल में रहता है इसलिये उत्तर ध्रुव पर यह इन मासों में सदा दिखाई देता है और दक्षिण ध्रुव पर अदृश्य रहता है। इसीलिये इन ६ महीनों में देवताओं का एक दिन और असुरों की एक रात होती है। परन्तु जब सूर्य सायन तुला में आता है तब यह दक्षिण गोल में हो जाता है और ६ मास तक बराबर दक्षिण गोल में रहता है इसलिये इन ६ महीनों में असुर लोग सूर्य को बराबर देखा करते हैं और यहाँ ६ महीने का दिन होता है तथा उत्तर ध्रुव से अदृश्य होने के कारण देवताओं की ६ महीने की रात होती है।

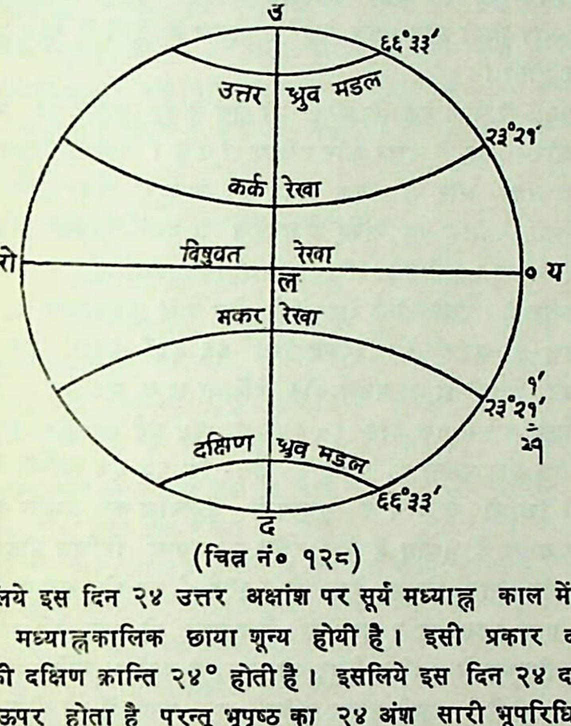
सायन कर्क या मकर संक्रान्ति के दिन सूर्य ठीक ऊपर कहाँ देख पड़ता है और यहाँ क्या विशेषता है—

भूमण्डलात् पञ्चदशे भागे दैवे तथाऽऽसुरे ।
उपरिष्टाद्व्रजत्यर्कः सौम्य याम्यायनान्तगः ।।६८।।
तदन्तरालयोश्छाया याम्योदक् संभवत्यपि ।
मेरोरभिमुख यातः परतश्च स्वभागयोः ।।६९।।

अनुवाद—(६८) विषुवत् रेखा से भूपरिधि के १५वें भाग की दूरी पर स्थित उत्तर या दक्षिण के स्थान के ठीक ऊपर उत्तरायण या दक्षिणायन के अन्तकाल का सूर्य भ्रमण करता है। (६९) इन्हीं रेखाओं के बीच में मध्याह्नकालिक छाया

दक्षिण या उत्तर हो सकती है। इनके बाहर के स्थानों में मध्याह्न छाया अपने-अपने विभाग के मेरु की ओर रहती है।

विज्ञान-भाष्य—उत्तरायण का अन्त सायन कर्क संक्रान्ति काल में होता है जिस समय सूर्य की उत्तर क्रान्ति परम के समान होती है जो सूर्य-सिद्धान्त के मत से २४



(चित्र नं० १२८)

अंश है। इसलिये इस दिन २४ उत्तर अक्षांश पर सूर्य मध्याह्न काल में ठीक ऊपर होता है और मध्याह्नकालिक छाया शून्य होयी है। इसी प्रकार दक्षिणायन के अन्त में सूर्य की दक्षिण क्रान्ति २४° होती है। इसलिये इस दिन २४ दक्षिण अक्षांश पर सूर्य ठीक ऊपर होता है परन्तु भूपृष्ठ का २४ अंश सारी भूपरिधि का १५वां भाग है। आजकल यह २३ अंश २७ कला के लगभग है। इसलिये २३°२७′ उत्तर अक्षांश के देशों पर सायन कर्क संक्रान्ति के दिन मध्याह्न काल में सूर्य ठीक ऊपर होता है और इतने ही दक्षिण अक्षांश पर सायन मकर संक्रान्ति के दिन मध्याह्न काल में सूर्य ठीक ऊपर होता है, २३°२७′ उत्तर अक्षांश रेखा को इसलिये कर्क रेखा और २३°२७′ दक्षिण अक्षांश रेखा को मकर रेखा कहते हैं। इन दोनों अक्षांशों के बीच के भूभाग को उष्ण कटिबन्ध कहते हैं क्योंकि यहाँ सूर्य के बारहों महीने ऊपर रहने से बड़ी गरमी पड़ती है।

इसी भूभाग में प्रत्येक स्थान के मध्याह्न काल की छाया उत्तर या दक्षिण हो सकती है क्योंकि यहाँ के किसी स्थान का अक्षांश सूर्य की परम क्रान्ति से कम

होगा इसलिये जब किसी स्थान का अक्षांश और सूर्य की क्रान्ति एक ही दिशा में है और सूर्य की क्रान्ति कम है तो मध्याह्न छाया उसी दिशा के ध्रुव की ओर होगी परन्तु यदि क्रान्ति अधिक है तो छाया की दिशा उल्टी होगी (देखो त्रिप्रश्नाधिकार चित्र ५५, ५६)। परन्तु कर्क रेखा के उत्तर के देशों में मध्याह्न-छाया की दिशा सदा उत्तर की ओर होगी और मकर रेखा के दक्षिण के देशों में मध्याह्नछाया सदा दक्षिण की ओर होगी।

चित्र १२७ में गोल रेखा के भीतर जो क्षेत्र है वह भूपृष्ठ का गोलार्ध प्रकट करता है। उ और द क्रम से उत्तर और दक्षिण ध्रुव हैं। रो ल य विषुवत् रेखा है। य यमकोटि, ल लंका और रो रोमक नगर है। सिद्धपुरी इस गोलार्ध पर नहीं दिखायी जा सकती क्योंकि यह लंका के समसूत्र में दूसरे गोलार्ध में है। विषुवत् रेखा से २३°२७′ उत्तर कर्क रेखा और दक्षिण मकर रेखा हैं। ये रेखाएँ विषुवत् रेखा के समानान्तर हैं। इन्हीं दोनों रेखाओं के बीच वाले भूभाग पर मध्याह्न-छाया उत्तर या दक्षिण हो सकती है। विषुवत् रेखा ६६ ३३′ उत्तर और दक्षिण तथा उसके समानान्तर उत्तरी ध्रुव मंडल और दक्षिणी ध्रुव मंडल हैं। इन्हीं रेखाओं पर दिन का प्रमाण वर्ष में एक बार ६० घड़ी या २४ घंटे का होता है और रात्रि का प्रमाण भी एक बार इतना ही होता है जैसा कि ६०-६१ श्लोकों में बतलाया गया है। इन्हीं रेखाओं के बीच के भूभाग में अहोरात्र का प्रमाण ६० घड़ी का होता है। इनके बाहर के भूभाग में दिन रात्रि का प्रमाण विचित्र होता है। उत्तरी ध्रुव मंडल के और उत्तर विषुवत् रेखा से ६९°५०′ दूर जो समानान्तर रेखा है उस पर वर्ष में एक बार-बार २ मास का दिन तथा दो मास की रात होती है। इसके भी उत्तर विषुवत् से ७८°३१′ दूर जो रेखा है वहाँ ४ महीने का दिन और ४ महीने की रात होती है। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव मंडल में भी होता है। उत्तरी ध्रुवों पर ६ महीने का दिन और ६ महीने की रात होती है।

विषुवत् रेखा के चार नगरों में सूर्योदय सूर्यास्त कब होता है—

भद्राश्वोपरिगः कुर्याद् भारते तूदयं रविः।
रात्र्यर्धं केतुमालाख्ये कुरुष्वस्तमयं तथा ॥७०॥
भारतादिषु वर्षेषु तद्वदेव परिभ्रमात्
मध्योदयार्धरात्रास्तकालात् कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥७१॥

अनुवाद—(७०) जब भद्राश्व वर्ष के यमकोटि नगरों में सूर्य ठीक ऊपर होता है तब भारतवर्ष के लंका नगर में उसका उदय होता है, केतुमाल देश के रोमक नगर में अर्धरात्रि होती है और कुरुदेश के सिद्धपुरी नगर में उसका अस्त होता

रहता है। (७१) इसी प्रकार भारतवर्ष आदि देशों में क्रम से मध्याह्न, उदय, अर्धरात्रि और अस्तकाल होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन चार नगरों का परस्पर सम्बन्ध ३८--४० श्लोकों में बतलाया जा चुका है। यहाँ इनके समयों का सम्बन्ध बतलाया गया है। जब यमकोटि में मध्याह्न होता है तब लंका में जो उससे ६० अंश पच्छिम है सूर्योदय होता है, रोमक में जो लंका से ६० अंश पच्छिम है मध्य रात्रि होती है और सिद्धपुरी में जो रोमक से ६० अंश पच्छिम है सूर्यास्त होता है। इसी प्रकार जब लंका में मध्याह्न होता है तब रोमक में सूर्योदय सिद्धपुरी में अर्द्ध रात्रि और यमकोटि में सूर्यास्त होता है।

ध्रुवतारा और नक्षत्र चक्र का परस्पर अन्तर—

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः।
निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते ॥७२॥

अनुवाद—ध्रुवों की ओर चलने से ध्रुवतारा का उन्नतांश और नक्षत्र चक्र का नतांश बढ़ता जाता है परन्तु विषुवत् रेखा की ओर चलने से इसका उलटा होता है अर्थात् ध्रुवतारा का नतांश तथा नक्षत्र चक्र का उन्नतांश बढ़ता है।

विज्ञान-भाष्य—नक्षत्र चक्र विषुवन्मण्डल के पास है इसलिए विषुवत् रेखा पर नक्षत्र चक्र ठीक ऊपर देख पड़ता है और ध्रुव तारे क्षितिज पर देख पड़ते हैं। यहाँ से ध्रुवों की ओर चलने में ध्रुवों का उन्नतांश बढ़ता जाता है और विषुवन्मण्डल का उन्नतांश उतना ही घटता जाता अथवा नतांश बढ़ता जाता है। ध्रुवों पर ध्रुव तारे का उन्नतांश ६० और विषुवन्मण्डल का उन्नतांश शून्य अथवा नतांश ६० होता है क्योंकि ध्रुवों पर से विषुवन्मण्डल क्षितिज में हो जाता है। इसके विपरीत विषुवत् रेखा की ओर चलने में ध्रुव तारे का नतांश बढ़ता और नक्षत्र चक्र का उन्नतांश बढ़ता है।

नक्षत्र चक्र की गति का कारण—

भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धम् आक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तद्बद्धा ग्रहकक्ष्या यथाक्रमम् ॥७३॥

अनुवाद—दोनों ध्रुव तारों से बँधा हुआ और प्रवाह वायु का धक्का खाता हुआ नक्षत्र-चक्र निरन्तर घूमा करता है। इसी से क्रमानुसार बँधी हुई ग्रहकक्षाएँ भी इसी के साथ घूमती हैं।

विज्ञान-भाष्य—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारे सभी पूर्व क्षितिज पर उदय होकर ऊपर उठते हैं, पच्छिम की ओर घूमते हुए अस्त हो जाते हैं और २४ घंटे में फिर पूर्व क्षितिज पर आकर उदय होते हैं। इसका कारण प्राचीन काल में यह समझा जाता था कि सारा आकाश-चक्र दोनों आकाशीय ध्रुवों में बँधा हुआ प्रवह वायु के द्वारा घूम रहा है और ग्रहों की कक्षाएँ भी उसी आकाश-चक्र में बँधी हुई पूरब से पच्छिम को घूम रही हैं। इस मत के समर्थक भारतवर्ष के कुछ पण्डित अब भी देखे जाते हैं और वाद विवाद करने के लिये तैयार रहते हैं। परन्तु अब अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध हो गया है कि आकाश-चक्र की इस गति का कारण प्रवह वायु नहीं है वरन् स्वयम् पृथ्वी की गति है। एक गति से पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घंटे में एक बार पच्छिम से पूरब को घूम जाती है, इस दैनिक गति को पृथ्वी का अक्ष-भ्रमण कहते हैं। इसी से आकाश के सभी पिंड पूरब से पच्छिम को घूमते हुए जान पड़ते हैं। इसी से दिन रात की उत्पत्ति होती है। दूसरी गति से पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा कर लेती है जिससे ऋतुओं की उत्पत्ति होती है और आकाश में सूर्य पच्छिम से पूरब को चलता हुआ एक वर्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है। इस गति को पृथ्वी की वार्षिक गति कहते हैं। यह दोनों गतियाँ पृथ्वी में एकसाथ होती हैं जैसे ऊपर फेंकी हुई गेंद अपने अक्ष पर नाचती भी जाती है और अपने स्थान को बदलती भी जाती है अथवा लड़कों के खेलने की फिरकी नाचती हुई अपने स्थान को भी बदलती जाती है।

हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में पृथ्वी को अचला माना गया है इसलिए पृथ्वी की गति की बात सनातन धर्म के कुछ पण्डितों को मान्य नहीं है परन्तु वाद विवाद में वे वही तर्क उपस्थित करते हैं जिसे आचार्य वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि पेश करते थे। इसलिये पहले यह विचार किया जायगा कि वे तर्क कहाँ तक गणित शास्त्र के अनुकूल हैं। इसके बाद अनेक गणित और भौतिक विज्ञान के प्रमाणों से सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वी में दैनिक और वार्षिक दो गतियाँ हैं और इन्हीं के कारण नक्षत्र-चक्र दिन में एक बार पूरब से पच्छिम को घूमता हुआ देख पड़ता है और ऋतु आदि का परिवर्तन होता है तथा ग्रहों की चाल विचित्र प्रकार की देख पड़ती है। आचार्य वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त ने पृथ्वी की गति का खण्डन जिन युक्तियों से किया था वे यह[1] हैं। यहाँ यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि हमारे यहाँ के आचार्य आर्यभट अपने आर्यभटीय ग्रंथ में पृथ्वी का चलना मानते हैं और इसका

---

१. भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षितिरित्यपरेत्वदन्ति नोडुगणः।
यद्येव श्येनाद्यान खात्पुनः स्वनिलयमुपेयुः ॥६॥

समर्थन इस उदाहरण[1] से करते हैं कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठे हुए मनुष्य को नाव स्थिर और किनारे के पेड़, घर आदि उलटी दिशा में चलते हुई दिखाई पड़ते हैं इसी तरह नक्षत्र-चक्र अचल होने पर भी घूमनेवाली पृथ्वी पर के रहने मनुष्यों को पच्छिम की तरफ घूमता हुआ देख पड़ता है परन्तु परम्परा विरुद्ध समझ कर किसी ने नहीं माना और वराहमिहिर आदि ने ये तर्क उपस्थित किये थे ।

आचार्य वराहमिहिर का एक तर्क यह है कि यदि पृथ्वी ही पूरब की ओर घूमती है तो जो पक्षी अपने घोंसले छोड़ कर आकाश में उड़ जाते हैं वे फिर घोंसले तक क्यों पहुँच जाते हैं क्योंकि पृथ्वी के घूमने के कारण पृथ्वी में लगा हुआ घोंसला तो बहुत दूर पूरब में हो जाता और पक्षी आकाश में रह जाने से बहुत पीछे रह जाता । दूसरा तर्क उन्होंने यह किया कि यदि पृथ्वी पूरब की ओर घूमती तो पताका झण्डा आदि सर्वदा पच्छिम की ओर उड़ते देख पड़ते क्योंकि यह साधारण अनुभव की बात है कि यदि कोई मनुष्य रूमाल हाथ में लटका कर दौड़े तो उसके वेग के कारण रूमाल पीछे की ओर उड़ने लगता है । और यदि यह कहा जाय कि पृथ्वी बहुत मंद गति से घूमती है इसलिये पताका आदि पच्छिम को उड़ते हुए नहीं देख पड़ते तो इतनी मन्द चाल से पृथ्वी दिन भर में एक चक्कर कैसे कर लेती है ।

चिड़ियों के अपने घोंसले तक पहुँच जाने का कारण यह है कि जब चिड़िया आकाश में उड़ जाती है तब भी भूभ्रमण का जो वेग उस घोंसले में रहता है वह उतना ही आकाश में भी बना रहता है, इसलिए जिस वेग से घोंसला पूर्व की ओर घूमता जाता है उसी वेग से चिड़िया भी घूमती जाती है, हाँ उसको जान नहीं पड़ता । साथ ही साथ वह अपनी गति भी उत्पन्न कर सकती है जिससे वह घोंसले से दूर जहाँ चाहे जाती है । जैसे रेलगाड़ी पर चढ़ा हुआ आदमी उस वेग का अनुभव नहीं करता जिससे गाड़ी स्वयम् चल रही है, पर उसमें वह वेग वर्तमान रहता

अन्यच्च भवेद्भूमेरह्ना भ्रमरंहसा ध्वजादीनाम् ।
नित्यं पश्चात् प्रेरणमथाल्पगा स्यात्कथं भ्रमति ।।७।।

पंच सिद्धान्तिका अध्याय १३

प्राणेनैति कलां भूर्यदि तर्हि क तो व्रजेत कमध्वानम् ।
आवर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात् ।।१७।।

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त, तन्त्र परीक्षाध्याय

१. अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानिभानि तद्वत्सम पश्चिमगानि लङ्कायाम् ।।९।।

आर्यभटीय, गोलपाद

है। इस वेग के रहते हुए भी वह अपनी इच्छा-शक्ति से डब्बे में इधर-उधर चल फिर सकता है, उछल कूद सकता है, गेंद खेल सकता है। क्योंकि गाड़ी में रखी हुई जितनी वस्तुएँ हैं सबमें गाड़ी का वेग वर्तमान रहता है इसलिए यह वेग सबमें समान रूप से रहने के कारण मालूम नहीं होता। इसका पता भी सहज ही लगाया जा सकता है। यदि बहुत तीव्र चलती हुई गाड़ी में बैठ कर एक कंकड़ बाहर की ओर सीधा फेंका जाय तो जब तक वह पृथ्वी को नहीं छू लेता तब तक गाड़ी के साथ ही साथ आगे बढ़ता हुआ देख पड़ता है। यह बात उस समय और भी स्पष्ट देख पड़ती है जब कंकड़ उस समय फेंका जाय जिस समय गाड़ी किसी नदी के पुल पर चलने लगे क्योंकि ऐसी दशा में कंकड़ को धरातल तक पहुँचने में कुछ देर लगेगी इसलिए वह देर तक गाड़ी के साथ आगे बढ़ता हुआ देख पड़ेगा और उस जगह नहीं गिरेगा जिस जगह लक्ष्य करके फेंका जाय वरन् आगे बढ़ कर ठीक अपने ही सीध में गिरेगा। इससे जाना जा सकता है कि जब कोई वस्तु किसी वेग से चलती हुई गाड़ी, वायुयान आदि से अलग होती है तब भी उसमें वह वेग वर्तमान रहता जो गाड़ी में था और जब तक वह वस्तु किसी दूसरे वस्तु पर ठहर नहीं जाती तब तक उसका वेग नष्ट नहीं होता, इसी कारण यदि चलती हुई गाड़ी से कोई कूदता है तो वह गाड़ी के वेग के कारण आगे बढ़ कर गिर जाता है।

इस बात की दूसरी परीक्षा इस प्रकार की जा सकती है। यह तो सभी को मालूम है कि यदि कोई गरुई चीज़ कुछ ऊँचाई से छोड़ दी जाय तो वह अपने ठीक नीचे पृथ्वी पर गिरती है। बड़ी रेलगाड़ी के डब्बे की ऊँचाई फ़र्श से १० फुट के लगभग होती है। इसलिए यदि छत के पास से पत्थर का टुकड़ा नीचे गिराया जाय तो फ़र्श पर पहुँचने में उसे ९, १० फुट चलना पड़ेगा और इसमें उसे पौन सेकंड के लगभग लगेगा। इतनी देर में यदि गाड़ी ३० मील प्रति घंटे की चाल से चलती हो तो ३३ फुट आगे बढ़ जाती है। इसलिए यदि वराहमिहिर का तर्क ठीक हो तो पत्थर के उस स्थान पर नहीं गिरना चाहिये जो उस स्थान से ठीक नीचे है जहाँ से पत्थर गिराया जाता है वरन् ३३ फुट पीछे गिरना चाहिये। परन्तु ऐसा देख नहीं पड़ता। देखने में वह वहीं गिरता है जिसके ठीक ऊपर से गिराया जाता है। इसका कारण यह है कि पत्थर जिस समय छत से गिराया जाता है उस समय उसमें गाड़ी की जो गति वर्तमान रहती है वह गिरने के समय भी वर्तमान रहती है इसलिए चीज गिरते रहने के साथ-साथ गाड़ी के साथ आगे भी बढ़ता जाता है और ठीक वहीं गिरता है जिसके ऊपर से गिराया जाता है। सर्कस के खेल में दौड़ते हुए घोड़े की पीठ पर से ऊपर से ऊपर उछल जाना और फिर उसी की पीठ पर आ जाना इसी नियम का परिणाम है।

अब रही ध्वजा की बात। ध्वजा के प्रत्येक कण में पृथ्वी का वेग रहता है। इसी तरह हवा में भी जो पृथ्वी का एक अंग ही है वह वेग वर्तमान रहता है इसीलिए ध्वजा का कपड़ा पृथ्वी की गति के कारण पश्चिम की ओर उड़ता हुआ नहीं देख पड़ता। गाड़ी, मोटर या रेलगाड़ी के बाहर ध्वजा लगी हुई हो तो वह पीछे की ओर उड़ती हुई देख पड़ती है क्योंकि रेलगाड़ी या मोटर की गति से बाहर की हवा का कोई लगाव नहीं रहता, यह तो हवा को चीरती हुई चलती है इसलिए यह पीछे की ओर बढ़ती है और ध्वजा पताका इत्यादि को पीछे की ओर उड़ाती है। हाँ यदि रेलगाड़ी या मोटर के सब द्वार बन्द कर दिये जाँय तो इसके भीतर की हवा का सम्बन्ध बाहर की हवा से टूट जाता है और उसमें गाड़ी का वेग वर्तमान रहता है इसलिए उसमें ध्वजा को पीछे उड़ाने की शक्ति नहीं रहती। इसी प्रकार पृथ्वी का वातावरण भी ध्वजा को पीछे उड़ाने में असमर्थ होता है क्योंकि पृथ्वी वातावरण को चीरती हुई नहीं चलती वरन् साथ लिए हुई चलती है इसलिए उसमें भी वही वेग रहता है।

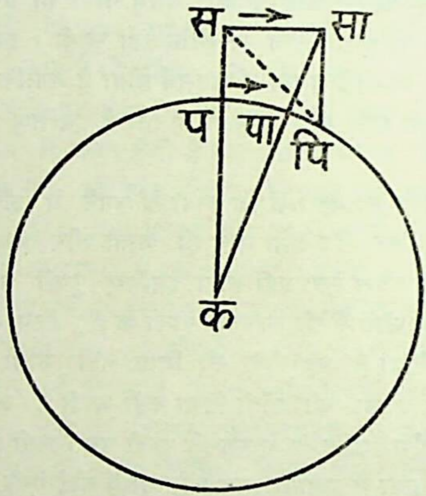
आचार्य ब्रह्मगुप्त का यह तर्क कि पृथ्वी के घूमने से ऊँचे-ऊँचे घरों, पर्वतों आदि कीचोटी कभी ऊपर और कभी नीचे हो जाती और जब नीचे हो जाती तो यह अवश्य गिर पड़ते परन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए पृथ्वी नहीं घूमती, बिल्कुल पृथ्वी है। ऊँचाई और नीचाई की कल्पना पृथ्वी के ही विचार से की जाती है। पृथ्वी की ओर जो दिशा है वह नीचे की दिशा कही जाती हैं और इससे उल्टी आकाश की ओर की दिशा को ऊँची दिशा कही जाती है और जो वस्तुएँ गिरती हैं वे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण ही पृथ्वी पर गिरती हैं इसलिए यदि कोई गोला पृथ्वी के ऊपर हवा में घुमाया जाय और उसमें कोई ऐसी वस्तु चिपका दी जाय तो पृथ्वी की ओर होने पर पृथ्वी पर गिर पड़े तो यह बिल्कुल ठीक है। परन्तु जहाँ पृथ्वी के ही घूमने का प्रश्न है वहाँ इसके नीचे क्या है जिसके आकर्षण से भूपृष्ठ के ऊँचे घर या पर्वत उस ओर गिर कर चले जायँ? पृथ्वी के चारों ओर आकाश ही आकाश है इसलिए वह चाहे जितनी घूमे उस पर के घरों और पर्वतों की चोटी सदैव आकाश की ही ओर रहेगी और नींव पृथ्वी की ओर इसलिए वे गिर कर कहाँ जा सकते हैं।

यहाँ तक तो शंकाओं का समाधान किया गया। अब उदाहरण दे कर गणितशास्त्र के आधार पर सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वी में गति है।

अर्वाचीन विज्ञान से पृथ्वी के अक्ष-भ्रमण के प्रमाण—

यह साधारण अनुभव की बात है कि पहिये का वह विन्दु जो धुरी से दूर

है धुरी के पास वाले विन्दु से अधिक चलता है और पहिये के किनारे पर जो विन्दु है उसमें उन सब विन्दुओं से अधिक वेग रहता है जो बीच में होते हैं। यदि पृथ्वी ऐसे अक्ष पर घूमती हुई मानी जाय जिसका एक सिरा उत्तरी ध्रुव पर और दूसरा दक्षिणी ध्रुव पर हो तो यह स्पष्ट है कि किसी ऊँचे पेड़, मकान या मीनार की चोटी उसके आधार की अपेक्षा पृथ्वी के अक्ष से अधिक दूरी पर है इसलिये चोटी की गति उसके आधार की गति से अधिक होगी। इसलिए यदि कोई वस्तु किसी ऊँचे मीनार की चोटी से गिरायी जाय तो वह अधिक वेग के कारण ठीक नीचे न गिर कर कुछ पूरब की ओर बढ़कर गिरेगी क्योंकि उसके ठीक नीचे वाले विन्दु



चित्र नं० १२६

की चाल उससे मन्द है। मान लो स एक मीनार की चोटी है जहाँ से वस्तु नीचे गिरायी जाती है और प मीनार का मूल है जो स के ठीक नीचे है इसलिये लम्ब रेखा स प बढ़ाने पर पृथ्वी के केन्द्र क पर पहुँचेगी। यदि मान लिया जाय कि जितनी देर में वस्तु पृथ्वी तल पर पहुँचती है मीनार की चोटी स से सा तक घूम गयी तो मीनार का मूल प से पा तक पहुँचेगा क्योंकि चोटी और मूल को मिलाने वाली रेखा पृथ्वी के केन्द्र को सदैव जायगी। यह स्पष्ट है कि प पा, स सा से कम है। यह भी स्पष्ट है कि प की भ्रमण गति स की भ्रमण गति से कम है। परन्तु जो वस्तु स विन्दु से गिरायी जायगी उसकी गति स की गति के समान होगी इस-लिये वह गिरते हुए भी अपनी ऊपर वाली गति को धारण किये रहेगी इसलिये

वह पा पर न गिर कर पि पर गिरेगी जहाँ प पि, स सा के समान है अर्थात् वह वस्तु लम्ब रेखा से कुछ पूरब की ओर बढ़कर गिरेगी।

इसलिये यदि परीक्षा करके यह सिद्ध किया जाय के कि ऊपर से गिरी हुई वस्तु पृथ्वी पर पहुँचते-पहुँचते यथार्थ में कुछ पूरब की ओर बढ़ जाती है तब यह कल्पना भी ठीक मानी जा सकती है कि पृथ्वी पूरब की ओर भ्रमण करती है। परन्तु यह परीक्षा कठिन है क्योंकि इतना ऊँचा स्थान नहीं बनाया जा सकता कि उसकी चोटी और मूल की भ्रमण गतियों में इतना अन्तर हो कि वह साफ साफ देख पड़े क्योंकि पृथ्वी की त्रिज्या ४००० मील के लगभग है और मीनार की चोटी १००० फुट भी नहीं हो सकती। बोलोन और हेमवर्ग में इस सम्बन्ध में जितनी परीक्षाएँ की गयीं उनसे सिद्ध हुआ कि २५० फुट की ऊँचाई से गिरी हुई वस्तु लम्ब रेखा से तिहाई इंच पूरब बढ़ जाती है। गणना करके यह देखा जा सकता है कि जितनी देर में कोई वस्तु २५० फुट नीचे गिरती है उतनी देर में चोटी और मूल की अथवा स और प बिन्दुओं की गतियों का अन्तर भी उतना ही होता है। इसलिये इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वी में भ्रमण गति है। इस प्रयोग की पूरी गणना यहाँ नहीं दी जा सकती क्योंकि बिना उच्च गणित की जानकारी के वह समझ में आ नहीं सकता। इसलिये यहाँ केवल सारमात्र दिया गया है।

इस प्रयोग की कल्पना पहले पहले न्यूटन ने की थी। पृष्ठ ७५४ पर जो चित्र दिया गया है वह विषुवत् रेखा पर स्थित देशों के लिये उपयुक्त है। अन्य स्थानों के लिये इसकी गणना में कुछ परिवर्तन करना पड़ता है क्योंकि विषुवत् रेखा से अन्य स्थानों में गिरनेवाली वस्तु में दो गतियाँ हो जाती हैं जिनकी दिशाएँ भिन्न होती हैं। एक गति तो पृथ्वी के दैनिक भ्रमण की होती है जो गिरने वाली वस्तु को मीनार की चोटी से प्राप्त होती है और पृथ्वी के अक्ष के समकोण तल पर होती है और दूसरी गति पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण होती है जिससे वस्तु पृथ्वी के केन्द्र की ओर गिरती है। इसलिये वस्तु लम्ब दिशा से पूरब की ओर तो बढ़ जाती है, साथ ही साथ कुछ दक्षिण या उत्तर भी हो जाती है। गिरते समय वस्तु पर हवा की रगड़ का भी कुछ प्रभाव पड़ता है परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी मूल सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं होता।

यह प्रयोग कोयले की गहरी खानों में भी किया जाता है क्योंकि यहाँ गिरने के लिये गहराई अधिक मिल सकती है। ५०० फुट की ऊँचाई से गिरायी हुई वस्तु लम्ब दिशा से १ इञ्च के लगभग पूरब बढ़ जाती है। यह कई प्रयोगों का मध्यमान है, गणना से भी यही बात सिद्ध होती है।

(२) परन्तु इससे भी सहज और स्पष्ट प्रयोग फूको (Foucault) का लोलक-प्रयोग (Pendulum experiment) है। गणित शास्त्र से यह सिद्ध है कि यदि कोई लोलक केवल गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के स्पन्दन करे या झूले तो इसका स्पन्दन तल (झूलने की दिशा) वही बना रहेगा और इस तल की दिशा पर लोलक के आधार की गति का प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि ऐसी दूसरी कोई शक्ति नहीं है जो इसे इस तल से विचलित कर सके। यह सहज ही देखा जा सकता है कि यदि एक भारी लोलक एक पतले तार से लटका कर घड़ियों के लोलक की तरह झुलाया जाय और यदि वह आधार जिसमें लोलक लटकाया जाता है घुमाया जाय तो इसके घूमने से लोलक के स्पन्दन-तल में कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि जिस तार या डोरे में लोलक बंधा रहता है उसका जरा सा ऐंठ जाना अधिक सहज है न कि भारी लोलक का ही अपने स्पन्दन तल को बदलना जब कि वह पहले ही से एक तल में झूल रहा है। इसलिये यह सिद्ध है कि यदि पृथ्वी अचल हो तो लोलक के स्पन्दन की दिशा भी आसपास की वस्तुओं तथा आधार के विचार से अचल रहेगी और यदि इसमें भ्रमणगति होगी तो लोलक के स्पन्दन तल की अपेक्षा भूतल की दिशाओं में परिवर्तन हो जायगा और लोलक का स्पन्दन तल ही बदलता हुआ देख पड़ेगा। इसलिये इस लोलक-प्रयोग से पृथ्वी की भ्रमण गति का ही पता नहीं लगेगा वरन् इसकी दिशा का भी पता लगेगा।

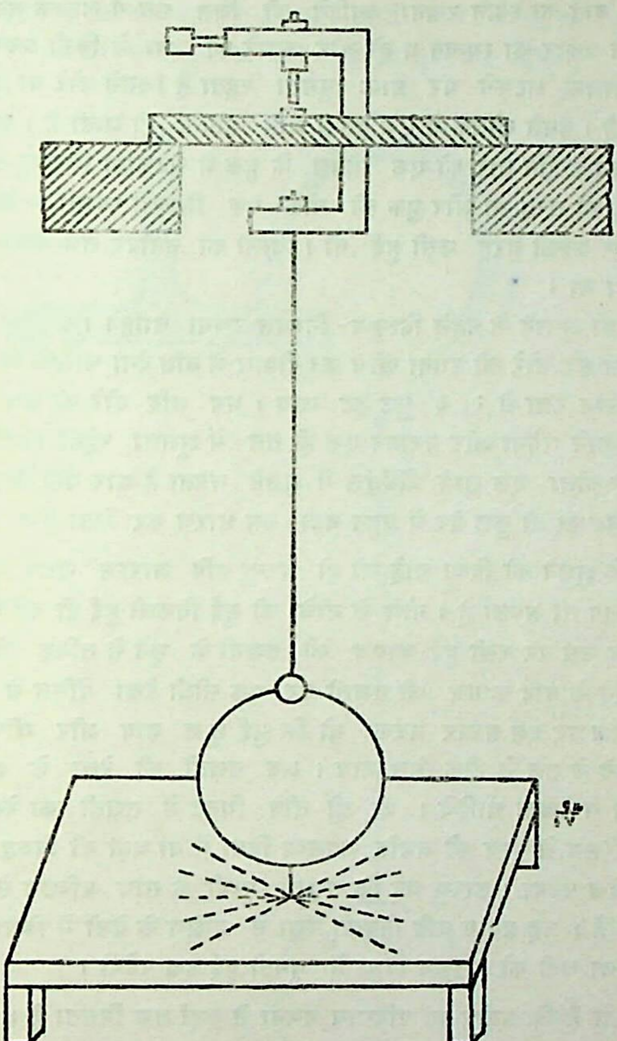
फूको ने यह प्रयोग सन् १८५१ ई० या १६०८ वि० में पेरिस में किया था। उसने अपने लोलक को पैन्थियन नामक विशाल भवन के गुम्बज से लटकाया। इसका तार २०० फुट लम्बा था और गोले की तोल १ मन के लगभग (८० पौंड) थी। जिस समय लोलक झूलता था गोले के नीचे निकली हुई सुई अपने झूलने का चिह्न बालू तल पर बनाती जाती थी और यह देख पड़ता था कि बालू का तल अपसव्य दिशा में अर्थात् दहिने से बायें पच्छिम से पूरब घूमता जाता था।

इस प्रयोग में दो बातों की बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। लोलक का तार जितना ही लम्बा हो उतनी ही अधिक देर तक यह झूलता रहेगा नहीं तो अपनी तीव्र गति से हवा की रगड़ खा कर जल्द रुक जायगा। दूसरे इसका गोला जितना ही भारी हो अच्छा है क्योंकि इससे लटकाने के दोषों का तथा हवा की रगड़ का प्रभाव बहुत कम पड़ जाता है।

इस प्रयोग को बहुत सफलतापूर्वक करने का उद्योग अमेरिका के एक विज्ञानवेत्ता रसेल डेबलू पोर्टर ने[1] किया है। इन्होंने पियानो बाजा के लगभग १२

---

१. देखो जुलाई सन् १९२८ ई० के सायंटिफिक अमेरिकन Scientific American पृष्ठ १४, १५।



चित्र नं० १३०

फुट लम्बे तार से ढलवे लोहे का कोई ४० पौंड या २० सेर का गोला छत की धरन से लटकाया। यह देखा गया है कि लोलक की गति धीरे धीरे मंद पड़ जाती है परन्तु यदि इनका लोलक लम्ब दिशा से तीन फुट तक खींच कर झुलाया जाय तो आधे घंटे के बाद भी वह लम्ब रेखा से २ फुट इधर उधर झूलता रहता है।

हाँ, इस बात का ध्यान रखना चाहिये की जिस छत में लोलक लटकाया जाय उसमें किसी प्रकार का स्पन्दन न हो और कमरे की हवा में किसी प्रकार का झोंका न हो। लोलक लटकने पर प्रायः घूमता रहता है जिससे डोरे या तार में ऐंठन पड़ जाती है। इससे लोलक में एक दूसरी गति उत्पन्न हो जाती है। इसलिये इसे रोकने के लिये इन्होंने तार को एक पीतल के हुक में लटकाया जिसका आकार प्रश्नवाचक चिह्न की तरह था और हुक की नोक एक छिछली प्याली में थांभ दी गयी जो धरन पर अच्छी तरह कसी हुई थी। प्याली का नतोदर तल अच्छी तरह चिकना कर दिया था।

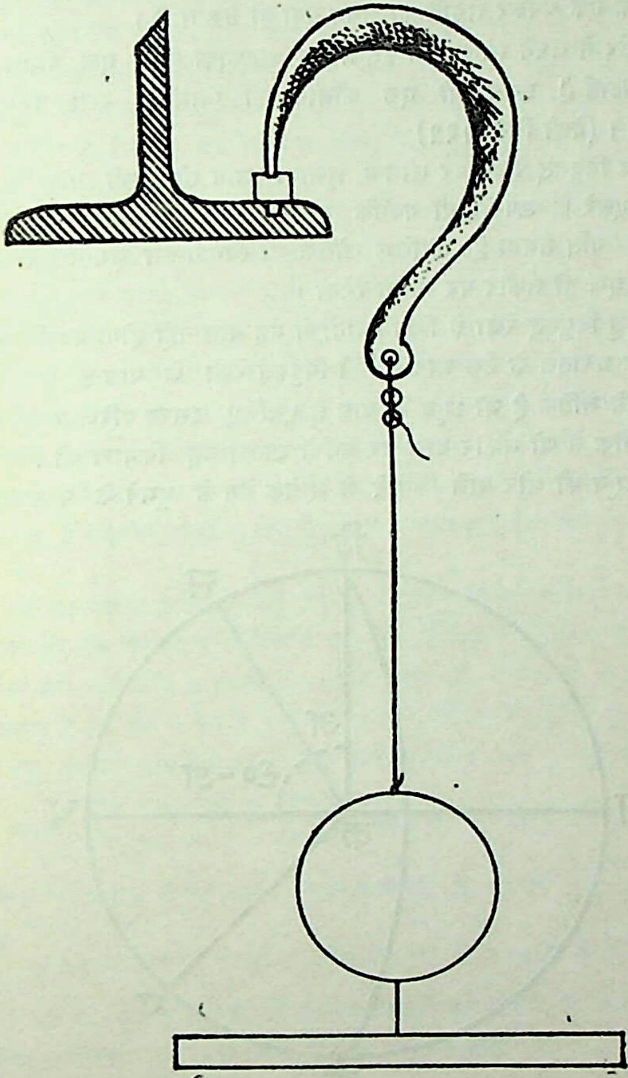
लोलक को झुलाने के पहले बिल्कुल निश्चल रखना चाहिये। इसलिये गोले में एक डोरा बाँध कर डोरे को इतना खींच कर दीवाल में बाँध देना चाहिये कि गोला धरण-बिन्दु की लम्ब रेखा से २, ३ फुट हट जाय। अब यदि डोरे को जला दिया जाय तो गोला हिलने लगेगा और बराबर एक ही तल में झूलता रहेगा। यदि ऐसा न किया जाय तो गोला एक लम्बे दीर्घवृत्त में झूलने लगता है और यदि आरंभ में जरा सी भी गड़बड़ हो तो कुछ देर में बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है।

लोलक के झूलने की दिशा चाहे जो हो परन्तु यदि आरम्भ उत्तर दक्षिण दिशा से किया जाय तो अच्छा है। गोले के नीचे जो सुई निकली हुई हो वह मेज के इतने पास हो कि उस पर रखी हुई कागज की तख़ती के छूने से तनिक ही बची रहे। गोला झुलाने के बाद कागज की तख़ती पर एक सीधी रेखा पेंसिल से खींच कर तख़ती को मेज पर इस प्रकार सरका दो कि सुई छू न जाय और खींची हुई रेखा सुई के झूलने के तल से ठीक मिल जाय। अब तख़ती की रेखा के दक्षिणी किनारे को ध्यान से देखना चाहिये। दो ही तीन मिनट में तख़ती की रेखा का दक्षिणी सिरा पच्छिम से पूरब को अर्थात् अपसव्य दिशा में या घड़ी की विरुद्ध दिशा में घूमता हुआ देख पड़ेगा। कारण यह कि तख़ती पृथ्वी के साथ पच्छिम से पूरब को घूमती रहती है। यह प्रयोग यदि विषुवत् रेखा से दक्षिण के देशों में किया जाय तो तख़ती की रेखा घड़ी की अनुकूल दिशा में घूमती हुई देख पड़ेगी।

अब देखना है कि प्रयोग का परिणाम गणना से कहाँ तक मिलता है।

यदि किसी प्रकार यह सम्भव हो कि लोलक उत्तरी ध्रुव पर लटकाया जाय तो लोलक की लम्ब-रेखा और पृथ्वी का अक्ष एक ही दिशा में होंगे। इसलिए जैसे-जैसे पृथ्वी पच्छिम से पूरब की ओर घूमती जायगी इसके साथ दर्शक के खड़ा होने का तल भी पच्छिम से पूरब को घूमेगा और लोलक का स्पन्दन तल पूरब से पच्छिम की ओर हटता हुआ जान पड़ेगा क्योंकि दर्शक पृथ्वी के घूमने को नहीं देख

सकता । इसलिए लोलक का स्पन्दन-तल उलटी दिशा में २३ घंटे ५६ मिनट ४ सैंकेड में एक चक्कर लगा लेने की गति से घूमता हुआ देख पड़ेगा ।



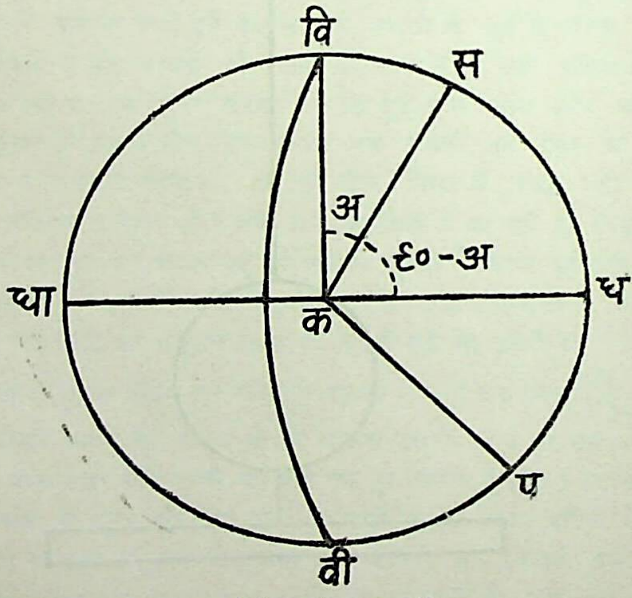
(चित्र नं० १३१)

यह सम्भव नहीं कि एक बार का झुलाया हुआ लोलक लगातार २४ घंटे तक झूलता रहे। परन्तु जितनी देर तक वह झूलता रहेगा उतनी ही देर में इसका स्पन्दन-तल इतना घूमा हुआ देख पड़ेगा कि उससे अनुपात द्वारा सहज ही जाना जा सकता है कि एक चक्कर लगाने का समय क्या हो सकता है।

पोर्टर ने अपने लोलक को इस प्रकार लटकाया था। एक पीतल का हुक जिसकी मोटाई १/८ इञ्च थी एक फौलाद की प्याली में रखा गया है जिसमें ऐंठन न पड़े। (देखो चित्र १३१)

यदि विषुवत् रेखा पर लोलक झुलाया जाय तो इसकी नोक से बनी हुई लकीर एक दूसरे के ऊपर होगी क्योंकि यहाँ इसके दोनों किनारों की पच्छिम से पूरब वाली गति समान है इसलिए लोलक का स्पन्दन-तल घूमता हुआ नहीं देख पड़ेगा वरन् एक ही लकीर पर चलता रहेगा।

परन्तु विषुवत् रेखा से भिन्न स्थानों में यह बात नहीं होगी क्योंकि लोलक के ठीक नीचे के धरातल के उस भाग में जो विषुवत् रेखा के पास है पृथ्वी के घूमने की गति उससे अधिक है जो ध्रुव के पास है इसलिए इसका परिणाम यह होगा कि लोलक की नोक से जो लकीर बालू पर बनेगी उसका वह किनारा जो विषुवत् रेखा की ओर है ध्रुव की ओर वाले किनारे से अधिक वेग से घूमने के कारण पूरब की



(चित्र नं० १३२)

ओर हटता हुआ और ध्रुव की ओर वाले किनारे का चक्कर लगाता हुआ देख पड़ेगा परन्तु यह चक्कर २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेंकेड से अधिक समय में पूरा होगा जैसा कि नीचे की गणना से सिद्ध है।

कल्पना करो कि परीक्षा के स्थान स का उत्तरी अक्षांश अ है। वि वी विषुवत् रेखा, क पृथ्वी का केन्द्र, ध धा पृथ्वी का अक्ष और ध उत्तरी ध्रुव है। ध धा अक्ष पर घूमने वाला पृथ्वी का कोणीय वेग व गति-विज्ञान के अनुसार दो भागों में बाँटा जा सकता है, जिसका एक भाग क स पर और दूसरा भाग क प पर घूमता हुआ समझा जा सकता है।

वेग का यह भाग जो क स पर है व कोटिज्या (९०°–अ) अथवा व ज्या अ के समान होगा और जो भाग कप पर है वह व कोज्या अ के समान होगा। परन्तु कप पर घूमने वाला वेग क स के समानान्तर होगा इसलिए इसका प्रभाव लोलक पर वैसा ही पड़ेगा जैसा विषुवत् रेखा पर पड़ता है अर्थात् इसके कारण लोलक से बनने वाली लकीर की दिशा में कोई परिवर्तन नहीं होगा परन्तु क स पर घूमने वाला वेग झूलते हुए लोलक की सुई से बनी हुई लकीर की दिशा में परिवर्तन करेगा जिससे लकीर का दक्षिणी सिरा पच्छिम से पूरब की ओर खसकता हुआ देख पड़ेगा और जान पड़ेगा मानों लोलक का स्पन्दन तल ही पूरब से पच्छिम की ओर घूम रहा है क्योंकि पहली लकीर से दूसरी लकीर पच्छिम की ओर बनती चली जायगी।

अब यह देखना है कि कितनी देर में लोलक का स्पन्दनतल यदि लगातार झूलता रहा तो एक चक्कर लगा लेगा। यह मान लिया गया है कि पृथ्वी के अक्ष पर घूमता हुआ वेग व है और स स्थान पर इसका खण्ड वेग व ज्या अ है इसलिए यह जानना सहज है कि जब व वेग से एक चक्कर २४ घंटे में पूरा होता है तब व ज्या अ वेग से एक चक्कर अधिक समय में पूरा होगा इसलिए लोलक से बनी हुई लकीरों का पूरा चक्कर $\frac{\text{व} \times \text{२४ घंटा}}{\text{व ज्या अ}} = \frac{\text{२४ घंटा}}{\text{ज्या अ}}$ समय में पूरा होगा। जहाँ अ स्थान का अक्षांश है। यदि प्रयाग में यह प्रयोग किया जाय तो एक चक्कर $\frac{\text{२४ घंटा}}{\text{ज्या २५° २५}'} = \frac{\text{२४ घंटा}}{.\text{४२९२}}$ =५५ घंटा ५५ मिनट या मोटे हिसाब से ५६ घंटे में होगा। इसलिये यदि आधे घंटे भी लोलक झूलता रहे तो स्पन्दनतल की दिशा में पर्याप्त परिवर्तन देख पड़ेगा क्योंकि जब ५६ घण्टे में पूरा चक्कर होता है तब आधे घण्टे में $\frac{१}{२} \times ३६० \times \frac{१}{५६}$अंश$= \frac{४५}{१४} = ३$ अंश १३कला के लगभग परिवर्तन हो जायगा।

जो सहज ही देखा जा सकता है क्योंकि यदि लोलक लम्ब से २ फुट भी हटा कर झुलाया जाय तो ३ अंश के परिवर्तन में लोलक १ इञ्च से अधिक दूर हट जायगा।

इस प्रकार के प्रयोग भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर भिन्न-भिन्न विज्ञानवेत्ताओं ने किये और सबके प्रयोगों से यही बात सिद्ध होती है कि लोलक से बनी हुई रेखा के पूरा घूम जाने का समय $= \frac{\text{२४ घण्टा}}{\text{ज्या अक्षांश}}$ और एक घण्टे में घूमने का परिमाण इस प्रकार निकलेगा $\frac{\text{२४ घण्टा}}{\text{ज्या अक्षांश}}$: १ घण्टा : : ३६० अंश : इष्ट परिमाण

$$\therefore \text{इष्ट परिमाण} = \frac{\text{३६०} \times \text{ज्या अक्षांश}}{\text{२४}} = \text{१५ ज्या अक्षांश}$$

अगले पृष्ठ की सारिणी में[१] भिन्न-भिन्न प्रयोगों का परिणाम दिया जाता है—

इस सारणी से प्रत्यक्ष हो जाता है कि लोलक के स्पन्दन तल की दिशा का परिवर्तन पृथ्वी की ही भ्रमण गति से होता है। यह सब प्रयोग विषुवत् रेखा से उत्तर के देशों के लिए है। विषुवत् रेखा से दक्षिण के देशों में भी परिवर्तन इसी नियम से होता है।

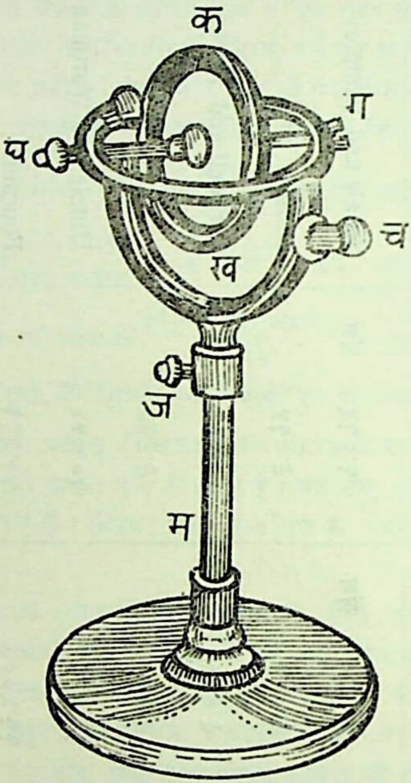
(३) पृथ्वी की भ्रमणगति सिद्ध करने के लिए एक तीसरी रीति भी है, जिसे फूको ने ही निकाली थी। यदि किसी चक्र का किनारा बहुत भारी हो और उसका अक्ष उसके केन्द्र से जाता हुआ उसके धरातल से समकोण बनाता हो वह चक्र अपने अक्ष पर बहुत वेग से घूम सकता हो तो ऐसे चक्र को घुमना पहिया (gyrostat) कहते हैं। यदि इसके साथ इसका आधार भी हो जिससे यह थमा रहता है तो इसका नाम घुमनाचक्र (gyroscope) हो जाता है। एक साधारण घुमना चक्र का चित्र १३३ है—

क ख चक्र सम धरातल अक्ष ग घ पर घूम सकता है और जिस चक्र पर ग घ अक्ष हे वह च छ सम फरातल अक्ष पर घूम सकता है (छ अक्षर चित्र में स्पष्ट नहीं है। यह घ के पास और यंत्र के कुछ पोछे है)। च छ अक्ष कुल को लेता हुआ ज म लम्ब अक्ष पर घूम सकता है। यह यंत्र ऐसा बनाना चाहिये कि इसके घूमते समय रगड़ कम से कम हो। ये तीनों अक्ष एक दूसरे से समकोण पर होने हैं, ग, घ और च छ अक्ष समधरातल में और ज म अक्ष लम्ब दिशा में। यदि रगड़

---

१. उर्दू के वैज्ञानिक मासिक पत्र 'रोशनी' अप्रैल १९१६ ई० पृष्ठ २८०-८१ के आधार पर जो Movements of the earth by Norman Lockyer F.R.S. से लिया गया है।

प्रयोग का स्थान	अक्षांश		१ घंटे में स्पन्दन तल की दिशा में परिवर्तन प्रयोग से	१ घंटे में स्पन्दन तल की दिशा में परिवर्तन गणना से	प्रयोगकर्ता का नाम
	अंश	कला			
सीलोन	६	५६	१·८७० अंश	१·८१५ अंश	Schaw and Lamprey
न्यूयार्क	४०	४४	९·७३३	९·८१४	Loomis
Provinces R. I.	४०	४९·५	९·९५५	९·८३३	Carowell and Norton
न्यूहेवन	४१	१८·५	९·९७०	९·९२७	
जेनेवा	४६	१२	१० ५२२	१०·८५६	Dufair and Wartman
पेरिस	४८	५०	११·५००	११·३२३	Foucault
ब्रिस्टल	५१	२७	११·७८८	११·७६३	Bunt
डबलिन	५३	२०	११·९१५	१२·०६५	Galbraith & Houghton
एवरडीन	५७	९	१२·७००	१२·६२८	Gerard

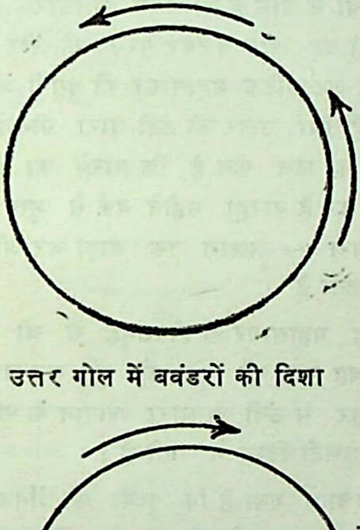


(चित्र नं० १३३)

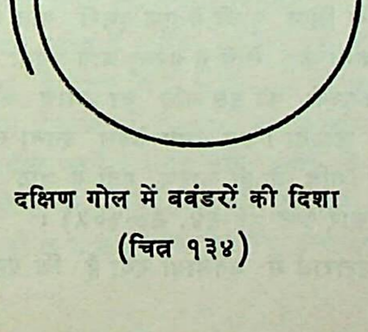
बहुत कम हो जिससे प्रत्येक अक्ष की गति पूरी तरह स्वतन्त्र हो तो घुमने-यंत्र में अनेक अद्भुत गुण पाये जाते हैं जब कि क ख चक्र खूब तेज़ी से घूम रहा हो। एक महत्व का गुण यह है कि यदि क ख चक्र तेज़ी से चला दिया जाय तो ग घ अक्ष की दिशा सर्वदा एक ही बनी रहती है जब कि घुमना-चक्र एक जगह से दूसरी जगह ज म को पकड़ कर हटाया जाता है। जब घुमना-चक्र के अक्ष की दिशा पृथ्वी के अक्ष के समानान्तर रखी जाती है तब तो इसकी दिशा आस पास की वस्तुओं की दृष्टि से स्थिर रहती है परन्तु यदि इसका अक्ष किसी अन्य दिशा में करके यह घुमाया जाय तो अक्ष उसी प्रकार दिशा बदलता है जैसे तारे। यदि अक्ष किसी विशेष तारे की दिशा में करके चक्र घुमाया जाय तो जब तक वह चक्र घूमता रहेगा अक्ष सदा उसी तारे की दिशा में रहेगा। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि तारों की

दिशा स्थिर है और उनका प्रतिदिन का पूरब से पच्छिम को घूमना पृथ्वी की दैनिक गति के कारण है ।

इन प्रयोगों के सिवा वहुत सी घटनाएँ ऐसी हैं जिनसे पृथ्वी का अक्ष भ्रमण सिद्ध होता है । उत्तर गोल में लोलक की नोक से बनी हुई रेखा घड़ी की प्रतिकूल दिशा में घूमती है वैसे ही यहाँ बवंडरों के घूमने की दिशा भी होती है । परन्तु दक्षिण गोल में लोलक की नोक से बनी हुई रेखा तथा बवंडरों की दिशा घड़ी की अनुकूल दिशा में घूमती हैं । जो हवाएँ विपुवत् रेखा से ध्रुव की ओर चलती हैं वे उत्तर गोल में पूरब की ओर अर्थात् दाहिने और दक्षिण गोल में भी पूरब की ओर अर्थात् अपने बायें मुड़ जाती हैं । इसका कारण सिवा इसके और क्या हो सकता



उत्तर गोल में बवंडरों की दिशा



दक्षिण गोल में बवंडरों की दिशा

(चित्र १३४)

है कि जब विषुवत् रेखा के ऊपर की हवा गरम नोकर हलकी होती है तब यह ऊपर उठती है इसलिए इसकी जगह भरने के लिए ध्रुवों के पास की ठंडी हवा विषुवत् रेखा की ओर चलती है। परन्तु विषुवत् रेखा पर पृथ्वी की गति पूर्व की ओर अत्यन्त तीव्र होती है और ज्यों-ज्यों ध्रुवों की ओर जाओ त्यों-त्यों यह गति मन्द पड़ती जाती है इसलिए जो हवा विषुवत् रेखा से चलतो है उसकी भी पूर्व की ओर गति तीव्र रहती है इसलिए यह ध्रुवों की ओर के देशों में पहुँचती है जिनकी पूर्वी गति मन्द रहती है। तब यह पूर्व की ओर मुड़ जाती है। इसी प्रकार जो हवा ध्रवों से विषुवत् रेखा की ओर चलती है वह पच्छिम की ओर को मुड़ जाती है।

समुद्र की धाराओं की दिशा भी इसी प्रकार की होती है। मेक्सिको की खाड़ी से जो विषुवत् रेखा के पास है जो गरम जलधारा अटलांटिक महासागर में उत्तर की ओर चलती है वह आगे चलकर पूरब की ओर मुड़ जाती है और उत्तर पूरब दिशा में चलती हुई अटलांटिक महासागर की दूसरी ओर फ्रांस, इंगलैंड, नारवे आदि देशों में पहुँचती है तथा उत्तर की ठंडी धारा ग्रीनलैंड से उत्तरा अमेरिका की ओर जाती है। इसी का फल फल है कि नारवे का हैमरफैस्ट का बन्दरगाह जो ७०$\frac{1}{2}$ उत्तरी अक्षांश पर है बारहों महीने बर्फ से मुक्त रहता है जब कि उत्तरी अमेरिका का पूरबी किनारा ४० अक्षांश तक जाड़ा भर और गरमी के भी अधिक भाग तक बर्फ से ढका रहता है।

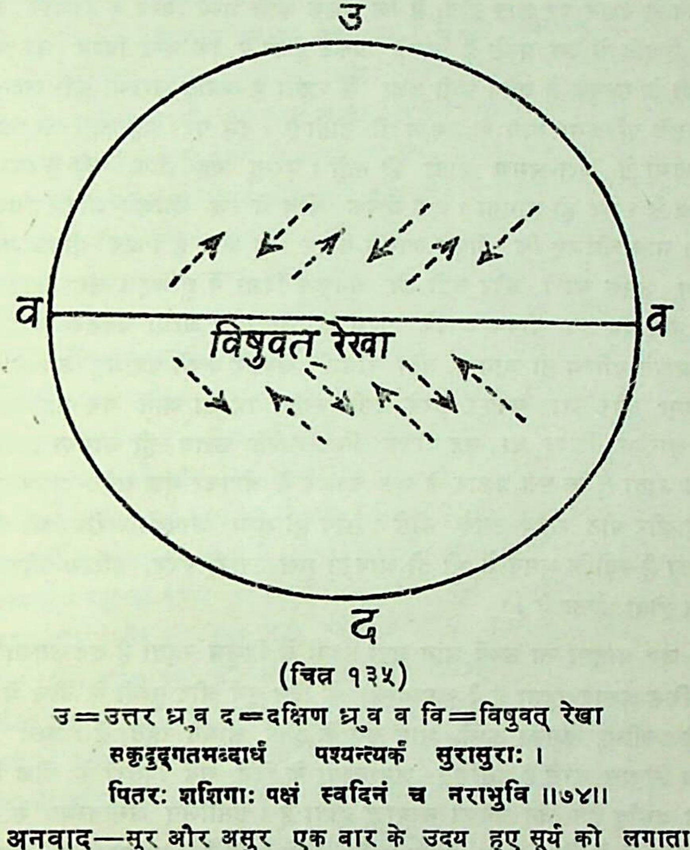
इसी प्रकार हिन्द महासागर के द्वीपसमूह से जो गरम जल धारा उत्तर की ओर को चलती है वह पूरब की ओर को मुड़ कर जापान के पूरबी भाग को गरम रखती है और उत्तर से ठंडी जलधारा जापान के पच्छिमी किनारे से होती हुई चीन सागर में ठीक उलटी दिशा में आती है।

यह संक्षेप में बतलाया गया है कि पृथ्वी की दैनिक गति के कारण हवाओं और धाराओं की दिशाओं में क्या परिवर्तन हो जाता है। यदि इस विषय पर अधिक जानना हो तो भूगोल की अच्छी पुस्तकों से काम लेना चाहिए।

इस अक्ष भ्रमण के सिवा पृथ्वी में एक दूसरी गति भी होती है जिससे यह वर्ष में भर सूर्य की परिक्रमा कर लेती है परन्तु जान पड़ता है मानों सूर्य ही पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी की इस गति का प्रमाण और भी सूक्ष्म है जिसका विचार आगे कहीं किया जायगा। इस समय केवल इतना स्मरण करा देना पर्याप्त होगा कि पृथ्वी की इस गति के ही कारण ग्रहों में आठ प्रकार की गतियाँ देख पड़ती हैं (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८४-९४, ९७-१०५)।

७३ श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि ग्रह कक्षाएँ भी भचक्र में

बंधी हुई पूरब से पच्छिम को जा रही हैं। परन्तु इन सब गतियों का कारण पृथ्वी की दैनिक गति ही है।



(चित्र १३५)

उ=उत्तर ध्रुव द=दक्षिण ध्रुव व वि=विषुवत् रेखा

सकृदुद्गतमब्दार्धं पश्यन्त्यर्कं सुरासुराः।
पितरः शशिगाः पक्षं स्वदिनं च नराभुवि ॥७४॥

अनुवाद—सुर और असुर एक बार के उदय हुए सूर्य को लगातार आधे वर्ष तक देखते रहते हैं, चन्द्रलोक के निवासी पितृगण उसको एक पक्ष तक और पृथ्वी के निवासी मनुष्य उसको अपने एक दिन तक देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक के पूर्वार्ध का अर्थ वही है जो ६७वें श्लोक में बतलाया गया है। उत्तरार्ध के प्रथम पद के अर्थ में ही कुछ विशेषता है जिसे समझाने की आवश्यकना है। सनातनधर्मी हिन्दुओं का विश्वास है कि चन्द्रगोल के ऊर्ध्व भाग में पितृगण निवास करते हैं। यह भाग पृथ्वी के सन्मुख नहीं होता। पाश्चात्य ज्योतिषी भी कहते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा इस प्रकार करता है कि इसका अधोभाग ही पृथ्वी के सन्मुख रहता है और ऊर्ध्व भाग सदैव पीछे रहता

है। इसलिए चन्द्रमा अपने अक्ष पर एक भ्रमण उतने ही दिनों में करता है जितने दिन में वह पृथ्वी की परिक्रमा करता है। इसका प्रमाण कठिन नहीं है। चन्द्र विम्व को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि उसके काले धव्वे विम्व के किनारे से सदैव एक ही स्थिति में देख पड़ते हैं जिससे प्रकट होता है कि चन्द्र विम्ब का वह भाग जो पृथ्वी के सन्मुख है सदैव उसी दशा में रहता है अर्थात् चन्द्रमा का अक्ष-भ्रमण-काल उसके परिक्रमा काल के समान ही होता है। इस पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रमा में अक्ष-भ्रमण होता ही नहीं। परन्तु यह ठीक नहीं है। यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। एक दीपक बीच में रख दीजिये और उसकी ओर देखिए। मान लीजिए कि दीपक आपके उत्तर की ओर है। अब दीपक को देखते हुए आप उसके चारों ओर घड़ी की अनुकूल दिशा में घूमिए। जब आप चौथाई चक्कर कर लेंगे तब दीपक आपके पूरव हो जायगा। आधा चक्कर कर लेने पर दीपक आपके दक्षिण हो जायगा, तीन चौथाई चक्कर करने पर वह आपके पच्छिम हो जायगा और पूरा चक्कर करके उसी स्थान पर आ जाने पर जहाँ से चक्कर लगाना आरम्भ किया था वह दीपक फिर आपके उत्तर हो जायगा। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि इस प्रकार के एक चक्कर में आपका मुख सदैव दीपक की ओर रहता है और पीठ सदैव उसके पीछे। साथ ही साथ आपका शरीर भी एक बार घूम जाता है क्योंकि घूमने में भी तो आपका मुख उत्तर, पूरव, दक्षिण और पच्छिम की ओर होता रहता है।

जब चन्द्रमा का ऊर्ध्व भाग सदा पृथ्वी से विमुख रहता है तब उसका सम्बन्ध सूर्य से किस प्रकार रहता है? अमावस्या के दिन सूर्य और पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा रहता है इसलिए इसका ऊर्ध्व भाग सूर्य के ठीक सामने रहता है। ऊर्ध्व भाग में पितृलोग निवास करते हैं इसलिए अमावस्या के दिन सूर्य पितरों के ठीक सिर पर रहता है अर्थात् इस दिन उनका मध्याह्न होता है। इसीलिए अमावस्या के मध्याह्न काल में पितरों के लिए श्राद्ध तर्पण आदि किये जाते हैं। पूर्णमासी के दिन इनकी मध्यरात्रि होती है। कृष्ण पक्ष का आधा भाग बीतने पर सूर्य पितरों को उदय होता हुआ देख पड़ता है और शुक्ल पक्ष के आधे भाग तक वह बराबर उनको देख पड़ता है अर्थात् पितरों का प्रातःकाल कृष्ण पक्ष की अष्टमी को होता है और सायंकाल शुक्ल पक्ष की अष्टमी को।

ग्रह कक्षा और ग्रह गतियों का सम्बन्ध —

उपरिस्थस्य महती कक्षाऽल्पाधः स्थितस्यच।
महत्याकक्षया भागा महान्तोऽल्पास्तथाल्पया ॥७५॥

कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्प भ्रमणाश्रितः ।
ग्रहः कालेन महता मण्डले महति भ्रमन ।।७६।।
स्वल्पयातो बहून भुङ्क्ते भगणांश्छीतदीधितिः ।
महत्या कक्षया गच्छंस्ततः स्वल्पं शनैश्चरः ।।७७।।

अनुवाद—(७५) जो ग्रह कक्षा ऊपर है अर्थात् पृथ्वी से दूर है उसका परिमाण अधिक है और जो ग्रह कक्षा नीचे है अर्थात् पृथ्वी से निकट है उसका परिमाण कम है। बड़ी कक्षा के अंश बड़े और छोटी कक्षा के अंश छोटे होते हैं। (७६) छोटी कक्षा पर चलने वाले ग्रह अल्प काल में अपना भगण अर्थात् चक्कर पूरा कर लेते हैं और बड़ी कक्षा पर चलने वाले ग्रह अधिक काल में अपना भगण पूरा करते हैं। (७७) चन्द्र कक्षा बहुत छोटी है इसलिए चन्द्रमा अनेक भगण पूरा करता है जब कि शनिश्चर बड़ी कक्षा में होने के कारण थोड़े ही भगण पूरा कर पाता है।

विज्ञान-भाष्य—ग्रहों की कक्षाओं और उनकी गतियों के सम्बन्ध में मध्यमाधिकार श्लोक २६, २७ तथा उसके विज्ञान भाष्य पृष्ठ १४-१७ में कुछ बतलाया जा चुका है इसलिए यहाँ अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है। बड़ी कक्षा के अंश बड़े और छोटी कक्षा के अंश छोटे कैसे होते हैं इसका प्रमाण पृष्ठ १४ के चित्र १ से सहज ही मिल सकता है। बड़े वृत्त का २४ अंश जितना बड़ा है उतना ही छोटे वृत्त का ३६ अंश है अर्थात् बड़े वृत्त का एक अंश छोटे वृत्त के एक अंश से बड़ा है। यह भी स्पष्ट है कि जो ग्रह बड़ी कक्षा में भ्रमण करते हैं उनका भगण काल बड़ा और जो ग्रह छोटी कक्षा में भ्रमण करते हैं उनका भगण काल छोटा होता है। परन्तु ग्रह के भगण काल और उसकी दूरी में ऐसा सरल सम्बन्ध नहीं जैसा कि भारतीय ज्योतिषी समझते थे और जैसा कि इसी अध्याय में आगे बतलाया गया है। यह सम्बन्ध केपलर के तीसरे नियम के अनुसार है जो ग्रह गतियों और उनकी दूरियों के सूक्ष्म विचार से निश्चित किया गया है (देखो पृष्ठ ८४-९१)।

दिनपति, मासपति आदि जानने की रीति

मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपः ।
वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाश्चे प्रकीर्तिता ।।७८।।
ऊर्ध्वं क्रमेण शशिनो मासानमधिपाः स्मृताः ।
होरेशा सूर्यतनयादधोधः क्रमशस्तथा ।।७९।।

अनुवाद – (७८) शनि से नीचे का चौथा ग्रह क्रमानुसार दिनपति और तीसरा ग्रह वर्षपति होता है। (७९) चन्द्रमा से ऊपर के ग्रह क्रमशः मासपति तथा शनि से नीचे ग्रह क्रमशः होरापति होते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इन दोनों श्लोकों की पूरी व्याख्या मध्यमाधिकार के पृष्ठ ४०-४५ में की गयी है इसलिये यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है ।

नक्षत्र कक्षा, आकाश कक्षा तथा ग्रह की गतियों का सम्बन्ध—

भवेद्भकक्षा तिग्मांशोर्भ्रमणं षष्टि ताडितम् ।
सर्वोपरिष्टाद्भ्रमति योजनैस्तैर्भमण्डलम् ।।८०।।
कल्पोक्त चन्द्रभगणा गुणिताः शशिकक्षया ।
आकाशकक्षा सा ज्ञेया कर व्याप्तिस्तथा रवेः ।।८१।।
सैव यत्कल्पभगणैर्भक्ता तद्भ्रमणं भवेत् ।
कुवासरैर्विभज्याह्नः सर्वेषां प्राग्गतिः स्मृता ।।८२।।
भुक्तियोजनजा संख्या सेन्दोर्भ्रमण संगुणा ।
स्वकक्षाप्तातु सा तस्य तिथ्याप्ता गति लिप्तिकाः ।।८३।।

अनुवाद—(८०) सूर्य-कक्षा के योजनों को ६० से गुणा करने पर नक्षत्र-कक्षा के योजनों का मान आ जाता है । सब ग्रहों से ऊपर नक्षत्र मण्डल इतने ही योजना में घूमता है । (८१) शशिकक्षा के योजनों को एक कल्प के चन्द्र भगणों की संख्या से गुणा करने पर आकाश कक्षा का मान ज्ञात होता है । सूर्य की किरणें वहीं तक जाती हैं । (८२) आकाश कक्षा के मान को जिस ग्रह के कल्प-भगणों की संख्या से भाग दिया जायगा उसी ग्रह की कक्षा का मान योजनों में ज्ञात होगा । आकाश-कक्षा को कल्प के सावन दिनों के भाग देने पर सब ग्रहों की दैनिकगति योजनों में आ जाती है । (८३) इस योजनात्मक ग्रह गति को चन्द्र-कक्षा से गुणा करके जिस ग्रह की कक्षा से भाग देकर लब्धि को १५ से भाग दें उस ग्रह की दैनिक गति कलाओं में आ जायगी ।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों में जो कुछ बतलाया गया है उसकी चर्चा कई जगह की गयी है (देखो पृ० १५-१७; ४५१-५३) । संक्षेप में इसका सार यह है :—

(१) नक्षत्र कक्षा = रवि कक्षा × ६०

(२) आकाश कक्षा = कल्प के चन्द्र भगण × चंद्र कक्षा

(३) $\dfrac{\text{आकाशकक्षा}}{\text{कल्प में किसी ग्रह की भगण संख्या}}$ = उस ग्रह की कक्षा

(४) $\dfrac{\text{आकाश कक्षा}}{\text{कल्प के सावन दिन}}$ = प्रत्येक ग्रह की दैनिक योजनात्मक गति

(५) $\dfrac{\text{ग्रह की योजनात्मक गति} \times \text{चंद्र कक्षा}}{\text{ग्रह कक्षा} \times १५}$ = ग्रह की दैनिक कलात्मक गति

दूसरे और तीसरे समीकरण से स्पष्ट है कि आकाश कक्षा का विस्तार उतना माना गया है जितना प्रत्येक ग्रह एक कल्प में योजनों में चलता है। इससे यह सिद्ध है कि हमारे आचार्य प्रत्येक ग्रह की योजनात्मक गति समान समझते थे जो आजकल के वेधों से अशुद्ध है। ग्रह की दैनिक कलात्मक गति जानने का सिद्धान्त वही है जो ४५१-५३ पृष्ठों में अच्छी तरह समझाया गया है।

नक्षत्र कक्षा और आकाश कक्षा के विस्तार कल्पित हैं। नक्षत्रों या तारों की दूरी की सीमा नहीं है। आजकल के वेधों से सिद्ध होता है कि कोई-कोई तारे पृथ्वी से इतनी दूर हैं कि उनके प्रकाश के पहुँचने में लाखों वर्ष लग जाते हैं।

ग्रह की दूरी जानने की रीति

कक्ष्या भूकर्णगुणिता महोमण्डलभाजिता।
तत्कर्णा भूमिकर्णात्स्यु र्ग्रहोच्चे स्वे दलीकृताः ॥८४॥

अनुवाद—किसी ग्रह की कक्षा को भूव्यास से गुणा करने और भूपरिधि से भाग देने पर उस ग्रह की कक्षा का व्यास होता है। इससे भूव्यास घटा कर शेष का आधा करने से भू-पृष्ठ से उस ग्रह की ऊँचाई अथवा दूरी ज्ञात होती है।

विज्ञान-भाष्य—परिधि से व्यास जानने का यह एक नियम है। भूव्यास का भू-परिधि से जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध है वही सम्बन्ध प्रत्येक ग्रह की कक्षा के व्यास और परिधि में होता है। इस श्लोक के पूर्वार्ध का सरल अर्थ यह है कि ग्रह की कक्षा को ३·१४१६ से भाग देने पर उसकी कक्षा का व्यास आ जाता है।

श्लोक के उत्तरार्ध में जो बात बतलायी गयी है वह पृष्ठ ४०८ के चित्र ७८ से स्पष्ट हो जाती है। इस चित्र में यदि भ द रेखा को द की ओर इतना बढ़ाया जाय कि वह चन्द्र कक्षा और सूर्य कक्षा तक पहुँच जाय तो द से चन्द्र कक्षा के विन्दु की दूरी को चन्द्रमा की ऊँचाई और सूर्य कक्षा के विन्दु की दूरी को सूर्य की ऊँचाई समझनी चाहिये। इसी तरह अन्य ग्रहों की ऊँचाई के बारे में भी समझना चाहिये।

ग्रह कक्षाओं के विस्तार योजनों में

खत्रयाब्धिद्विदहनाः कक्ष्या तुहिनदीधितेः।
ज्ञशीघ्रस्याष्टखद्वित्रिकृशून्येन्दवस्तथा ॥८५॥
शुक्रशीघ्रस्य सप्ताग्नि रसाब्धि रसषड्यमाः।
ततोऽर्कबुधशुक्राणां खखार्थैकसुरार्णवाः ॥८६॥
कुजस्यातोऽष्टशून्याङ्कषडवेदैकभुजङ्गमाः।
चन्द्रोच्चस्य रसार्थाष्टमुनिद्वित्र्यष्टह्लयः ॥८७।
कृतर्तुमुनिपञ्चाद्रिगुणेन्दुविषया गुरोः।
स्वर्भानोर्दस्रतत्वाब्धिशैलार्थाकाशकुञ्जराः ॥८८॥

पञ्चपञ्चाश्विनागतुं रसाद्रर्काशशनेस्ततः ।
भानां खखखशून्शङ्कवसुरन्ध्रशराश्विनः ॥८९॥
खव्योमखत्रयखसागरषट्कनाग-
व्योमाष्टशून्ययमरूपनगाष्टचन्दाः ।
ब्रह्माण्डसंपुटपरिभ्रमणं समन्ता-
दभ्यन्तरा दिनकरस्य कर प्रसाराः ॥९०॥

अनुवाद—(८५) चन्द्रमा की कक्षा ३२४००० योजन, बुध शीघ्र की कक्षा १०४३२०९ योजन; (८६) शुक्र शीघ्र की कक्षा २६६४६३७ योजन, सूर्य, बुध और शुक्र की कक्षाएँ ४३३१५००; (८७) मङ्गल की कक्षा ८१४६९०९ योजन, चन्द्रोच्च की कक्षा ३८३२८४८४ योजन; (८८) गुरु की कक्षा ५१३७५७६४ योजन; राहु की कक्षा ८०५७२८६४ योजन; (८९) शनि की कक्षा १२७६६८२५५ योजन; नक्षत्र कक्षा २५९८९००१२ योजन और (९०) आकाश या ब्रह्माण्ड की परिधि १८७१२०-८०८६४०००००० योजन है जहाँ तक सूर्य की किरणों का प्रसार होता है।

विज्ञान-भाष्य—यदि ग्रहों के कल्प-भगण मध्यमाधिकार के श्लोक २९-३३ के अनुसार मान कर इनकी कक्षाओं की गणना श्लोक ८२ के अनुसार की जाय तो ऊपर दी हुई संख्याओं की इकाई के अंक में थोड़ा सा अन्तर पड़ता है इसका कारण यह जान पड़ता है कि पूरी संख्या लिखने के लिए भिन्नात्मक अंश या तो छोड़ दिया गया है या आधे से अधिक होने के कारण १ मान लिया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि चन्द्रोच्च और राहु की कक्षाएँ नियम की समानता दिखलाने के लिए दी गयी हैं क्योंकि ये आकाश में स्वतन्त्र पिंड नहीं है, ये तो चन्द्र कक्षा के ही दो विशेष विन्दु हैं। नक्षत्र कक्षा का भी विशेष महत्व नहीं जान पड़ता।

आजकल वेधों से यह सिद्ध होता है कि ग्रहों की कक्षाएँ गोल नहीं हैं वरन् दीर्घवृत्त है जिनकी एक नाभि पर सूर्य रहता है और सब ग्रह सूर्य की ही परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी से किसी ग्रह की दूरी सर्वदा समान नहीं रहती जैसा कि ४१० पृष्ठ के लम्बनों की सारणी से तथा पृष्ठ ५९८ में दिये हुए शीघ्र कर्णों की सारणी से स्पष्ट है। इन शीघ्र कर्णों के मान ऐसी इकाइयों में दिये हुए हैं जिनकी १००० इकाई पृथ्वी से सूर्य की मध्यम दूरी मानी गयी है। ऐसी १००० इकाइयां ९२९००००० मील (९ करोड़ २९ लाख मील) के समान होती हैं क्योंकि पृथ्वी से सूर्य की मध्यम दूरी इतनी ही है (देखो पृष्ठ ४५२)। यदि यह दूरी योजनों में जानना हो तो मीलों को ५ से भाग दे देना चाहिए (देखो पृ० ५४)।

इस प्रकार भूगोलाध्याय नामक १२वें अध्याय का विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

त्रयोदश अध्याय

ज्योतिषोपनिषदध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-३—भूभगोल की रचना का उपदेश कैसे करना चाहिये। श्लोक ३-१३ भूभगोल बनाने की रीति। श्लोक १३-१५—लग्न, अन्त्या आदि के स्थान निश्चय करना। श्लोक १६-१७—भूभगोल किस प्रकार अपने आप घूम सकता है। श्लोक १८-२४—समय बतलानेवाले अन्य यन्त्रों की चर्चा। श्लोक २५—ज्योतिष का माहात्म्य।]

भूभगोल बनाने की तैयारी—

अथ गुप्ते शुचौ देशे स्नातश्शुचिरलङ्कृतः।
संपूज्य भास्करं भक्त्या ग्रहान्भान्यथ गुह्यकान्॥१॥
पारंपर्योपदेशेन यथा ज्ञातं गुरोर्मुखात्।
आचार्यः शिष्यबोधार्थं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्॥२॥
भूभगोलकस्य रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम्।

अनुवाद—तब आचार्य स्नान करने के बाद अलंकार धारण करके शुद्ध मन से एकान्त और पवित्र स्थान में सूर्य, ग्रहों, नक्षत्रों और यक्षों की भक्ति के साथ पूजा करके परम्परा से प्राप्त उपदेश के द्वारा गुरु के मुख से सुने हुए और स्वयं प्रत्यक्ष देखे हुए ज्ञान से शिष्य को पूरी तरह समझाने के लिये भूभगोल की आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली रचना करे।

विज्ञान-भाष्य—कई टीकाकारों ने आचार्य का अर्थ सूर्यांश पुरुष और शिष्य का अर्थ मयासुर किया है; परन्तु मेरी समझ में यह सभी आचार्यों के लिये साधारण उपदेश है। 'कुर्यात्' शब्द भी यही प्रकट करता है। इन श्लोकों से प्रकट होता है कि आचार्य को केवल मौखिक उपदेश से ही सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये वरन् व्यावहारिक और क्रियात्मक ज्ञान भी कराना चाहिये जिसके लिये उसे स्वयं व्यावहारिक ज्ञान भी रखना चाहिये और ज्ञान को प्रत्यक्ष देनेवाला भी होना चाहिये, ऐसा नहीं कि टीका कर डालें सूर्य सिद्धांत ऐसे गूढ़ ग्रन्थ की, परन्तु आकाश के मुख्य-मुख्य तारों की भी पहचान न हो।

ग्रहों की पूजा में सूर्य की पूजा भी आ जाती है परन्तु यहाँ ग्रहों के साथ सूर्य शब्द अलग भी आया है जो सूचित करता है कि सूर्य की विशेष प्रकार से

पूजा करनी चाहिये क्योंकि इस सिद्धांत के आदि आचार्य सूर्यदेव ही माने गये हैं। ग्रहों की आधुनिक परिभाषा में सूर्य आते भी नहीं हैं परन्तु सूर्य-सिद्धांतकार ने इस विचार से सूर्य का नाम अलग नहीं दिया है क्योंकि और कहीं यह मत नहीं प्रकट होता।

यक्ष लोग धन के देवता कुबेर के सेवक हैं, उनके कोप और बाग की रखवाली करते हैं। यह शायद शिल्पकला में भी निपुण माने गये हैं क्योंकि पुष्पक विमान कुबेर का ही था। इसलिये यन्त्र रचना के अर्थ में दैवी सहायता प्राप्त करने के लिये इनकी भी पूजा करने का आदेश है।

भूभगोल शब्द भू, भ और गोल तीन शब्दों से बना है इसलिये इसका अर्थ है ऐसा गोल जिसमें भूगोल के साथ आकाश का वह गोल हो जिसमें ग्रह नक्षत्र आदि घूमते हुए माने गये हैं।

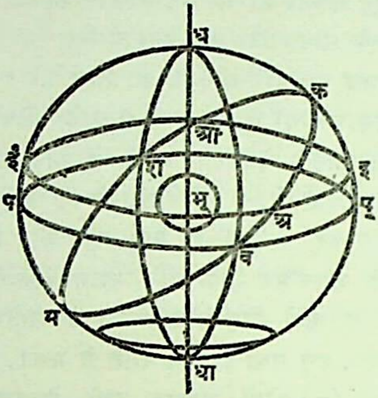
भूभगोल बनाने की रीति—

अभीष्टं पृथिवीगोलं कारयित्वा तु दारवम् ॥३॥
दण्डं तन्मध्यगं मेरोरुभयत्र विनिर्गतम्।
आधारकक्ष्याद्वितयं कक्ष्यां वैषुवतीं तथा ॥४॥
भगणांशाङ्गुलैः कार्या दलितास्तिस्र एव ताः।
स्वाहोरात्रार्धकर्णैश्च तत्प्रमाणानुपाततः ॥५॥
क्रान्तिविक्षेपभागैश्च दलिता दक्षिणोत्तरा।
स्वैस्स्वैरपक्रमैः कार्या मेषादीनामपक्रमात् ॥६॥
कक्ष्याः प्रकल्पयेत्ताश्च कर्क्यादीनां विपर्ययात्।
तद्वत्तिस्रस्तुलादीनां मृगादीनां विलोमतः ॥७॥
याम्यगोलाश्रिताः कुर्यात् कक्ष्याधारद्वयोपरि।
याम्योदग्भागसंस्थानां भानामभिजितस्तथा ॥८॥
सप्तर्षीणामगस्त्यस्य ब्रह्मादीनां प्रकल्पयेत्।
मध्ये वैषुवती कक्ष्या सर्वासामेव संस्थिता ॥९॥
तदाधारयुतेः भार्धमयने विषुवद्द्वये।
विषुवत्स्थानतो भागैः स्फुटैर्भगणसंचरात् ॥१०॥
क्षेत्राण्येवमजादीनां तिर्यग्ज्याभिः प्रकल्पयेत।
अयनादयनं चैव कक्ष्या तिर्यक्तथाऽपरा ॥११॥
क्रान्तिसंज्ञा तया सूर्यः सदा पर्येति भासयन्।
चन्द्राद्याश्च स्वकैः पातैरपमण्डलमाश्रितैः ॥१२॥
ततोऽपकृष्टा दृश्यन्ते विक्षेपाग्रेष्वपक्रमात्।

अनुवाद—(३) लकड़ी का अभीष्ट आकार का एक गोला (भूगोल) बनाकर (४) इसमें छेद करके एक सीधा डंडा कस देना चाहिए जो भूगोल के केन्द्र से होकर दोनों ओर बराबर निकला रहे और मेरु दंड का काम करे। इसी दंड में दो आधार-वृत्त (एक दूसरे से समकोण पर) स्थिर करो जिनके बीचोबीच विषुवद्वृत्त हो। (५) इन तीनों वृत्तों को अंगुल से ३६० अंशों में बाँट दो। विषुवद्वृत्त के माना-नुसार अहोरात्र वृत्त के व्यासार्ध से (६) दक्षिणोत्तर वृत्त पर क्रान्ति और शर के अंशों के द्वारा जो इस पर अंकित हों मेष, वृष और मिथुन राशियों के अंतिम विन्दुओं की क्रान्तियों के अंतर पर इन तीन राशियों के (७) अहोरात्र वृत्त स्थिर करो जो विलोम रीति से कर्क, सिंह और कन्या के अहोरात्र वृत्त भी होंगे। इसी प्रकार तुला, वृश्चिक और धनु तथा विलोम रीति से मकर, कुम्भ और मीन राशियों के भी तीन अहोरात्र वृत (८) दोनों आधार वृत्तों के ऊपर दक्षिण गोल में स्थिर करो। ऐसे ही उत्तर और दक्षिण गोलों में स्थित नक्षत्रों, अभिजित (९) सप्तर्षि, अगस्त्य, ब्रह्महृदय आदि तारों के अहोरात्र वृत्त स्थिर करो। इन सब अहोरात्र वृत्तों के बीच में विषुवद्वृत्त होता है। (१०) विषुवद्वृत्त और दोनों आधारवृत्तों के युतिबिन्दुओं पर दोनों अयन विन्दु और दोनों विषुव सम्पात होते हैं। विषुव सम्पात के स्थान से सायन राशि चक्र का आरम्भ करो। (११) इस प्रकार मेष वृष आदि राशियों के विभाग तिर्यक ज्याओं द्वारा करो। एक अयन विन्दु से दूसरे अयन विन्दु तक तथा दूसरे से फिर पहले तक जो तिर्यकवृत्त स्थिर किया जायगा (२) उसी का नाम क्रान्तिवृत्त है जिस पर सूर्य सदा प्रकाश देता हुआ भ्रमण करता है। चन्द्र, मंगल आदि ग्रह अपने अपने पातों के द्वारा जो क्रान्तिवृत्त पर होते हैं (१३) खिंचे हुए अपनी अपनी क्रान्ति से विक्षेप के अंत में देख पड़ते हैं।

विज्ञान-भाष्य—यहाँ यह नहीं बतलाया गया है कि आधार कक्षा और विषुवत् कक्षा किस चीज का बनाना चाहिये। अन्य ग्रन्थों में बाँस की पतली-पतली तीलियों का प्रयोग किया गया है क्योंकि यही इतनी लचीली होती हैं कि गोलाई में मोड़ी जा सकती हैं। आजकल लोहे या पीतल के तार से यह काम आसानी से हो सकता है। ऊपर बतलायी हुई रीति से जो भूभगोल बनता है वह अनेक वृत्तों (वलयों) के कारण बहुत ही दुर्बोध हो जाता है इसलिये आजकल यदि चित्र १३६ के अनुसार भूभगोल बनाया जाय तो बनाने में भी सुगमता होगी और समझने में भी।

इस चित्र के बीच में जो सबसे छोटा वृत्त है वह भूगोल (पृथ्वी-गोल) को सूचित करता है, इसीलिये बीच में 'भू' लिखा है। 'धधा' दंड है जो पृथ्वी-गोल के केन्द्र से होकर इसके दोनों ओर निकला रहता है। भू से ध और धा की दूरी समान है। इन्हीं स्थानों से दो आधारवृत्त 'धशधाव' और 'धपधापू' एक दूसरे से समकोण



चित्र १३६

पर बाँधे जाते हैं। इन्हीं दोनों वृत्तों पर ध और धा से समान अन्तर पर 'प व पू श' वृत्त बाँधा जाता है जिसे विपुवत् कक्षा कहा गया है। इन तीनों वृत्तों को ३६० समान भागों में बाँट कर चिह्न बना देते हैं जो अंश कहलाते हैं। इसके बाद मेपादि बारह राशियों के अहोरात्रवृत्त वनाने का आदेश है। परन्तु मेरी समझ में यह आवश्यक नहीं है। ऊपर के तीन वृत्त बाँधने के बाद सीधे क्रान्ति-वृत्त को ही बाँधना सुगम होगा। यह भी ऊपर के किसी वृत्त के समान लेना चाहिए। इसे पहले व और श स्थानों पर विपुवदवृत्त और धशधाव आधारवृत के जोड़ पर बाँधना चाहिये फिर दूसरे आधारवृत्त 'क' और 'म' स्थानों पर बाँधना चाहिये। 'क' या 'म' का अन्तर विपुवद् वृत्त से उतना ही होना चाहिये जितनी सूर्य का परमक्रान्ति होती है जो आजकल साढ़े तेईस अंश (२३° ३०′) के लगभग है। इस क्रान्तिवृत को भी ३६० समान भागों में बाँट देना चाहिये। 'व' स्थान को सायनमेष या वसंत सम्पात तथा 'श' स्थान को सायनतुला या शरद सम्पात कहते हैं। 'क' और 'म' स्थानों को क्रम से सायन कर्क और सायन तुला अथवा दक्षिणायन और उत्तरायण विन्दु कहते हैं (देखो पृ० २३०)। इन स्थानों के विचार से 'ध श धा व' आधार कक्षा को विपुवसम्पातवृत्त (Equinoctial Colure) और 'ध प म धा पू क' आधार कक्षा को अयनवृत्त (Solstitial Colure) कहते हैं; क्योंकि पहले पर दोनों विपुव-सम्पात विन्दु और दूसरे पर दोनों अयन विन्दु होते हैं। चित्र में क्रान्ति वृत्त के 'अ' स्थान पर विपुवद् वृत के समानान्तर एक अहोरात्र वृत्त 'अ इ आई' दिखलाया गया है। यह क्रान्तिवृत्त के दूसरे स्थान 'आ' पर मिलता है। 'अ' विन्दु वसंत-सम्पात 'व' से जितने अंतर पर है उतने ही अंतर पर परन्तु

विलोम दिशा में शरद सम्पात 'श' से 'आ' का स्थान है अथवा 'क' से 'अ' और 'आ' समान दूरी पर हैं। यदि 'अ' सायन वृष राशि के आदि में हो तो 'आ' सायन कन्या राशि के आदि में होगा और यदि पहला सायन मिथुन राशि के आदि में हो तो दूसरा सायन सिंह राशि के आदि में होगा। इसी प्रकार क्रान्ति-वृत्त के किसी स्थान का अहोरात्र वृत्त बाँधा जा सकता है। यही बात श्लोक ६-७ में बतलायी गयी है। इसके सिवा 'धा' स्थान के पास एक अहोरात्र वृत्त समझा जा सकता है।

१२वें श्लोक में चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहों के कक्षा वृत्तों की भी चर्चा है परन्तु चित्र में ऐसा कोई भी कक्षा वृत्त नहीं दिखलाया गया है। ऐसा कक्षा वृत्त बांधने के लिये पहले ग्रह का पात-विन्दु क्रान्ति-वृत्त पर स्थिर करना चाहिये। इसी पर उस ग्रह का कक्षा वृत्त बांधना चाहिये जिसका दूसरा जोड़ इस स्थान से १८० अंश पर क्रान्ति-वृत पर हो। यह दोनों स्थान ग्रह के पात स्थान हुए। फिर इस वृत्त को ९० अंश के अंतर पर क्रान्ति-वृत्त से उस ग्रह के परम विक्षेप के बराबर उत्तर और दक्षिण स्थानों पर भी बांध देना चाहिये (परम विक्षेप की चर्चा मध्यमाधिकार के पृ० ७४-७६ में की गयी है)।

उदयलग्न, मध्यलग्न, अन्त्या, चरज्या आदि का निश्चय—

उदयं क्षितिजे लग्नमस्तं गच्छति तद्वशात् ।।१३।।
लङ्कोदयैस्तथा सिद्धं खमध्योपरि मध्यगम् ।
मध्यक्षितिजयोर्मध्ये या ज्या साऽन्त्याऽभिधीयते ।।१४।।
ज्ञेया चरदलज्या च विषुवत्क्षितिजान्तरम् ।
कृत्वोपरि स्वकं स्थानं मध्ये क्षितिजमण्डलम् ।।१५।।

अनुवाद—(१३) क्रान्ति वृत्त का जो विन्दु पूर्व क्षितिज में लगा रहता है वह उदय लग्न है। इस उदय लग्न के अनुसार क्रान्ति वृत्त का जो विन्दु पच्छिम क्षितिज में लगा रहता है वह अस्त लग्न होता है। (१४) यामोत्तर वृत्त पर मध्यम लग्न होता है जिसकी गणना लंका के उदयासुओं से की जाती है। अहोरात्र वृत्त और यामोत्तर वृत्त के संधिस्थान से क्षितिज वृत्त तक जो ज्या होती है उसे अन्त्या कहते हैं। (१५) विषुवत् रेखा के क्षितिज जिसे उन्मण्डल कहते हैं और अपने स्थान के क्षितिज के बीच जो अन्तर होता हैं वह चरज्या है। भूगोल पर अपने स्थान को सबसे ऊपर करने पर क्षितिज वृत्त भूगोल के मध्य में होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों में एक ही शब्द कई परिभाषाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है इसलिये इनका भाव जल्दी समझ में नहीं आता। १२वें श्लोक के पूर्वार्ध में 'मध्यम' मध्य लग्न के लिये आया है। उत्तरार्ध में 'मध्य' शब्द अहोरात्र

वृत्त और यामोत्तर वृत्त की सन्धि स्थान के लिये आया है। १५वें श्लोक के पूर्वार्ध में 'विषुवत्' विषवक्षितिज या उन्मण्डल के लिये तथा क्षितिज शब्द अपने स्थान के क्षितिज वृत्त के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसके उत्तरार्ध में 'मध्ये' शब्द अपने स्थान के ऊर्ध्वाधर यामोत्तर वृत्त के मध्य के लिये आया है। इस प्रकार का प्रयोग बड़ा ही भ्रमोत्पादक होता है और वैज्ञानिक ग्रंथों के लिये दोष समझा जाता है।

यह सब परिभाषाएँ त्रिप्रश्नाधिकार के २८६-२९० पृष्ठों पर तथा स्पष्टाधिकार के चित्र ३६, ४२, ४३ और त्रिप्रश्नाधिकार के चित्र ६३ से अच्छी तरह समझी जा सकती है। उपर्युक्त विवरण से भूभगोल यंत्र से इन सब परिभाषाओं का ज्ञान सहज ही हो सकता है।

युक्ति जिससे भूभगोल यंत्र सदा घूमता रहे—

वस्त्रच्छन्नं बहिश्चापि लोकालोकेन वेष्टितम्।
अमृतस्रावयोगेन कालभ्रमणसाधनम् ॥१६॥
गुणबीजसमाकृष्ट गोलयंत्र प्रकल्पयेत्।
गोप्यमेतत्प्रकाश्योक्त सर्वगम्यं भवेद्यत: ॥१७॥

अनुवाद—(१६) लोकालोक से अर्थात् क्षितिजवृत्त से घिरे हुए गोल को ऊपर कपड़े से ढक कर जल प्रवाह के द्वारा ऐसा प्रबन्ध करे कि यह अपने आप घूमकर नाक्षत्रकाल सूचित करे। (१७) अथवा इस गोल यंत्र को पारे के संयोग से ऐसा बनावे कि वह अपने आप घूमे। इसको गुप्त रखना चाहिये। साफ-साफ बतला देने से इस संसार में यह सबको मालूम हो जायगा।

विज्ञान-भाष्य—इन दोनों श्लोकों की भाषा बहुत ही अस्पष्ट है। इस बात का तनिक भी बोध नहीं होता कि यह गोलयंत्र किस प्रकार अपने आप घूमकर आकाश का प्रकार दैनिक भ्रमण सिद्ध करता था। इतना तो प्रकट है कि गोलयंत्र का मेरुदण्ड इस प्रकार स्थिर किया जाता था कि वह ध्रुव की ओर रहे। फिर उसमें ऐसी युक्ति की जाती होगी कि जल की धारा से उसमें ऐसी टक्कर लगे कि एक नाक्षत्र दिन में वह एक बार घूम जाय जैसे पनचक्की चलती है। पानी की जगह पारे से भी काम लिया जाता था परन्तु यह पता नहीं कि कैसे। अंत में यह बतलाया गया है कि यह युक्ति सबसे नहीं बतलानी चाहिये। शायद इसीलिये संकेत मात्र कर दिया गया है। इससे लोग यह परिणाम निकाल सकते हैं कि लेखक स्वयं इस क्रिया को अच्छी तरह नहीं जानता था। उसको केवल आभास था कि ऐसा यन्त्र बन सकता है जो अपने आप चलता हो, इसीलिये उसने सब बातें गोल रखी हैं। यह भी संभव है कि प्राचीन काल में शिल्पकला की इतनी उन्नति थी कि ऐसे स्वयंवह यंत्र पारे और पानी के संयोग

से उसी प्रकार वनते थे कि जैसे आजकल घड़ी आदि अपने आप चलने वाले यन्त्र बनते हैं, परन्तु बीच में समय के फेर से सब ज्ञान नष्ट हो गया हो।

तस्माद्गुरूपदेशेन रचयेद्गोलमुत्तमम्।
युगे युगे समुत्पन्ना रचनेयं विवस्वतः ॥१८॥
प्रसादात्कस्यचिद्भूयः प्रादुर्भवति कालतः।
कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि कारयेत् ॥१९॥
एकाकी योजयेद्बीजं यन्त्रे विस्मयकारणम्।

अनुवाद—(१८) इसलिये गुरु के उपदेश के अनुसार उत्तम गोल की रचना करनी चाहिये। यह रचना प्रत्येक युग में नष्ट हो जाती है और सूर्य भगवान की (१९) इच्छानुसार उनके प्रसाद से फिर किसी को प्राप्त होती है। इसी प्रकार समय का ज्ञान करने के लिये अन्य यन्त्रों की भी रचना करनी चाहिये। (२०) आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले यंत्र में (उसको चलाने के लिये) पारे का प्रयोग एकान्त में करना चाहिये।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों से प्रकट होता है कि स्वयंवह यंत्र बनाने की क्रिया काल पाने पर नष्ट हो जाती है, जिसको फिर सूर्य भगवान् अपनी इच्छा से किसी को बतला देते हैं। इसके सिवा समय वतलानेवाले अन्य यंत्रों को बनाने के लिये भी कहा गया है और अंत में फिर वतलाया गया है कि पारे का प्रयोग एकान्त में करना चाहिये, सबको नहीं बतलाना चाहिये।

समय वतलानेवाले अन्य यन्त्रों के नाम—

शङ्कुयष्टिधनुश्चक्रैश्छाया यन्त्रैरनेकधा ॥२०॥
गुरूपदेशाद्विज्ञाय कालज्ञानमतन्द्रितः।
तोययन्त्रैः कपालाद्यैर्मयूरनरवानरैः।
सूत्रेश्च वेणुगर्भस्थैः सम्यक्कालं प्रसाधयेत् ॥२१॥
पारतालाबुसूत्राणि गुञ्जातैलजलानि च।
बीजानि पांसवश्चैषां प्रयोगास्ते सुदुर्लभाः ॥२२॥

अनुवाद—(२०) शंकु, यष्टि, धनु और चक्र नामक अनेक प्रकार के छाया यंत्रों के द्वारा (२१) चतुर और परिश्रमी मनुष्य गुरु के उपदेश से काल का ज्ञान प्राप्त करते हैं। कपाल आदि जल यंत्रों से, मयूर, नर और वानर यंत्रों से जिनके पेट में बालू रहती है जो सूत के सहारे निकलती है समय का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त

करना चाहिये । (२२) पारे का आरा, जल, सूत, शुल्व, तेल और जल, पारा और बालू इन सबका प्रयोग करना चाहिये । परन्तु यह भी कठिन है ।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों में समय जानने के अनेक यंत्रों के नाम गिना दिये गये हैं परन्तु उनके बनाने की विधि कहीं नहीं बतलायी गयी है । पहले चार यंत्रों से सूर्य की छाया देखकर समय जाना जा सकता है इसलिये वे दिन में ही काम कर सकते हैं और उनको छाया यंत्र कहा गया है । इनमें से शंकु की चर्चा त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्याय में बहुत हुई है । उस अध्याय में यह बतलाया गया है कि १२ अंगुल के शंकु से अक्षांश, नतांश, नतकाल, दिशा आदि का ज्ञान कैसे किया जाता है । इसके द्वारा समय जानने के लिये गुणा भाग की क्लिष्ट क्रिया करनी पड़ती है, सीधे समय नहीं निकलता । छाया की नाप भी बहुत शुद्ध नहीं ली जा सकती इसलिये इस यंत्र से जो समय आता है वह चार पाँच मिनट अधिक या कम हो सकता है । इसलिये आजकल इससे काम लेने की जरूरत नहीं ।

यष्टि यंत्र—इसकी चर्चा इस पुस्तक में और कहीं नहीं की गई है इसलिये यह नहीं बतलाया जा सकता कि इससे कैसे काम लिया जाता था । भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्त शिरोमणि के यंत्राध्याय में इसकी विशेष चर्चा की है जिससे जान पड़ता है कि इससे भी समय का ज्ञान करने के लिये क्लिष्ट गणना करनी पड़ती है । इस-लिये आजकल अच्छे साधनों के होते हुए यह यंत्र भी आवश्यक नहीं है ।

धनुष और चक्र-यंत्र से समय का ज्ञान सहज ही हो सकता है । यह दोनों यंत्र वास्तव में एक ही हैं । चक्र-यंत्र में एक गोल चक्र होता है जिसके किनारे समान भागों में अंकित रहते हैं । यदि ६० समान भाग हों तो प्रत्येक भाग एक घड़ी का समय सूचित करता है । इस चक्र के केन्द्र से एक सीधी कीली लोहे या पीतल की कस दी जाय और चक्र पृथ्वी पर दो खंभों में इस प्रकार गाड़ दिया जाय कि कीली का सिर आकाश के ध्रुव की दिशा में हो तो इस यन्त्र से सूर्य का नतकाल (Hour Angle) सहज ही जाना जा सकता है । दिल्ली और काशी आदि के मान-मन्दिरों में पत्थर के वृहदाकार चक्र यन्त्र बने हैं जो पृथ्वी पर इस प्रकार स्थिर किये गये हैं कि इनके तल विषुवद्वृत्त के समानान्तर हैं और इनके केन्द्र से एक कीली दोनों ओर ६ इंच के लगभग निकली हुई ध्रुवों की दिशा में है । इस चक्र-यंत्र के दोनों तरफ़ के किनारे सम भागों में अंकित हैं । जब सूर्य उत्तर गोल में रहता है (सायनमेष संक्रान्ति से सायन तुला संक्रान्ति तक) तब कील की छाया यंत्र के उत्तरी तल पर पड़कर नतकाल बतलाती है और जब सूर्य दक्षिण गोल में रहता है तब कीली की छाया दक्खिनी तल पर पड़ती है और नतकाल सूचित करती है । जैसे-जैसे सूरज ऊपर उठता है छाया

नीचे होती जाती है। मध्याह्नकाल में कील की छाया ठीक नीचे हो जाती है। यदि चाहें तो इसके किनारे घंटों में भी अंकित हो सकते हैं। यह भी एक प्रकार की धूप-घड़ी है।

भास्कराचार्य जी ने एक दूसरे प्रकार का चक्र-यंत्र वतलाया है। यह भी चक्राकार होता है परन्तु यह स्थिर नहीं किया जाता। किनारे से कुछ दूर एक छेद होता है जिसमें एक जंजीर लगी रहती है। इसी जंजीर से यह लटकाया जा सकता है। इसके किनारे ३६० अंशों में अंकित रहते हैं। लटकने पर इसका केन्द्र छेद के ठीक नीचे रहता है। इन दोनों विन्दुओं के मिलाने वाली रेखा से समकोण पर जो रेखा होती है, और जो चक्र के केन्द्र पर भी रहती है उसके एक किनारे शून्य का अंक रहता है और दूसरे किनारे १८० का। जव समय जानना हो इसको लटकाकर ऐसा घुमाओ कि इसके केन्द्र पर जड़ी हुई कीली की नोक की छाया किनारे के भागों पर पड़े। यदि इसके किनारे सायन राशियों के इष्ट स्थान के उदयमानों में भी विभाजित हों तो इससे लग्न का ज्ञान भी किया जा सकता है। आजकल के सूक्ष्म यंत्रों के सामने इस यंत्र से भी विशेष लाभ नहीं है।

चाप या धनुष यन्त्र—यदि चक्र-यन्त्र का आधा भाग लेकर यंत्र बताया जाय तो सूर्य का नतकाल उसी प्रकार जाना जा सकता है।

आजकल दिन में सूर्य का किसी समय का नतांश एक साधारण चापयंत्र से जो कार्ड-वोर्ड का वनाया जा सकता है सहज ही जाना जा सकता है और उससे नतकाल का ज्ञान भी हो सकता है। ऐसे यंत्र की चर्चा इस लेखक ने विज्ञान भाग ४३ संख्या १ पृष्ठ १८ में चित्र १३८ में की है। उसमें कई सारणियां भी दी गयी हैं जिनसे २८ अक्षांश से २२ अक्षांश तक के स्थानों में दिन में समय जाना जा सकता है। इस यंत्र से सूर्य की छाया के अनुसार समय जाना जाता है और चार-पांच मिनट से अधिक अंतर नहीं पड़ता। इस लेखक की घड़ी जव कभी बन्द हो जाती है या ठीक समय नहीं देती तव वह इसी से मिला लेता है। इस यंत्र से किसी स्थान का अक्षांश भी सहज ही जाना जा सकता है। यह सारणी त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ २६१ के गुर (१) के अनुसार तैयार की गयी है। इससे काम लेने की संक्षिप्त रीति इस अध्याय के अंत में दी गयी है जहाँ, एक धूप-घड़ी की भी चर्चा की जायगी।

इन छाया-यन्त्रों के सिवा जल-घड़ी और बालू-घड़ी आदि से भी काम लिया जाता था। जल-घड़ी को कपाल यंत्र कहते थे क्योंकि यह कपाल की तरह अर्द्ध-गोलाकार होती थी इसके पेंदे में एक छोटा सा छेद होता है। यदि यह पानी में तैरा दिया जाय तो छेद से पानी धीरे-धीरे कटोरे में भरने लगता है और इतना भर जाता है कि कटोरा डूब जाता है। इस कटोरे का और छेद का आकार ऐसा होता

था कि दिन रात में ६० बार डूब जाता था। जितनी देर में वह एक बार डूबता था उसे घड़ी कहते थे। वह इसीलिये इसका नाम घटीयंत्र हो गया जो आगे चलकर घड़ी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। प्राचीनकाल में घटीयंत्र वनाने के लिये ऐसे नियम बन गये थे जिनसे स्पष्ट बोध होता था कि कपाल या कटोरा कितना बड़ा हो और छेद कैसा हो। इसका विशेष वर्णन २३वें श्लोक के विज्ञान-भाष्य में किया जायगा।

मयूर और बानर यंत्रों के विषय में विस्तारपूर्वक कहीं नहीं लिखा गया है। यह शायद मोर, और वानर के आकार के यंत्र बनाये जाते होंगे जिनमें सूत और बालू के सहारे समय का ज्ञान किया जाता रहा होगा। इन यंत्रों में पारा, तेल, जल आदि के द्वारा ऐसी युक्ति की जाती थी कि वे स्वयम् चलें और समय का ज्ञान करावें परन्तु इस बात का स्पष्ट वर्णन नहीं है कि वह किस प्रकार बनाये जाते थे, केवल इतना ही संकेत है कि इनका प्रयोग बड़ा दुर्लभ है।

पता नहीं कि ऐसे स्वयंवह यंत्र यथार्थ में बनाये गये थे या केवल कल्पना में ही थे। आज कल तो अपने आप चलने वाली तरह तरह की घड़ियां सभी काम में ला सकते हैं परन्तु उनका सिद्धांत बतलाने की यहाँ आवश्यकता नहीं जा पड़ती।

कपाल यन्त्र—

ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुम्भेऽमलाम्भसि।
षष्टिर्मज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्॥२३॥

अनुवाद—ताम्बे का कटोरा जिसके पेंदे में छेद हो निर्मल जल के कुंड में रखने से दिन रात में ६० बार डूबे तो वह शुद्ध कपाल यन्त्र होता है।

विज्ञान भाष्य—ऐसे कपाल यन्त्र का विशेष वर्णन आचार्य श्रीपति ने सिद्धांत शेखर में इस प्रकार दिया :—

शुल्बस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत् षडङ्गुलोच्चं द्विगुणायतास्यम्।
तदम्भसा षष्ठिपलैः प्रपूर्यं पात्रं घटार्धप्रतिमं घटीस्यात्॥
सत्र्यंशमाषत्रयनिर्मिता या हेम्नः शलाका चतुरङ्गुलास्यात्।
विद्धं तया प्राक्तनमत्र पात्रं प्रपूर्यते नाडिकयाम्बुना तत्॥

अर्थात् दस पल तोल का तांवा लेकर उसका अर्धगोलाकार एक कटोरा ऐसा बनाया जाय जिसकी ऊँचाई ६ अंगुल और जिसके मुख की चौड़ाई इसकी दूनी हो, जिसमें ६० पल पानी आता हो और जिसकी पेंदी में इतना बड़ा छेद होना चाहिये कि उसमें ३⅓ माशा सोने की चार अंगुल लम्बी सुई जा सके जिससे एक घड़ी में वह कटोरा पानी से भर जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि यह आचार्य समय की शुद्ध-शुद्ध नाप के लिये

कितना प्रयत्नशील था। परन्तु इस प्रकार का यन्त्र बनाना सुगम नहीं था। इसीलिये भास्कराचार्य[1] जी ने इसकी उपेक्षा की है।

नरयन्त्र—

नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ।
छाया संसाधनैः प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम् ॥२४॥

अनुवाद—इसी प्रकार नरयन्त्र अथवा शङ्कु दिन में जब सूर्य स्वच्छ हो अच्छा होता है। छाया की ठीक-ठीक नाप से समय का ठीक-ठीक ज्ञान करने की रीति बतलायी गयी है।

विज्ञान-भाष्य—त्रिप्रश्नाधिकार में यह विस्तारपूर्वक बतलाया गया है कि १२ अंगुल लम्बे शंकु की छाया से दिशा, देश और काल की गणना कैसे की जाती है।

उपसंहार—

ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्वतः।
ग्रहलोकमवाप्रोति पर्यायेणात्मवान् नरः ॥२५॥
इति सूर्य-सिद्धान्ते ज्योतिषोपनिषदध्याय

अनुवाद—ग्रह और नक्षत्रों की चाल तथा गोल गणित के तत्व को जानने वाला मनुष्य ग्रहलोक को प्राप्त होता है और जन्मान्तर में आत्मज्ञानी होता है।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक से यह प्रकट होता है कि हमारे आचार्य ज्योतिष-शास्त्र के तत्व की जानकारी का कितना महत्व समझते थे और इसका प्रत्यक्ष बोध कराने के लिये अनेक प्रकार के यन्त्रों की कैसी रचना करते थे। आजकल यन्त्रों की इतनी उन्नति हो गयी है कि इनके द्वारा आकाशीय पिंडों की गति का साधन बड़ी सूक्ष्मता से किया जा सकता है। इसमें अध्याय में ऐसे एक यन्त्र की चर्चा संक्षेप में की जाती है। जिनको इनके सम्बन्ध में विशेष रीति से जानने की इच्छा हो उन्हें प्रकाश-विज्ञान की पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

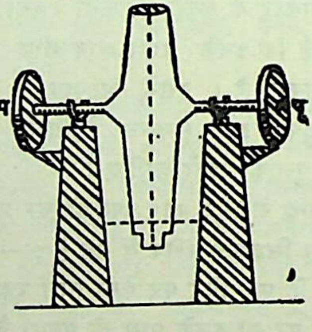
दूरदर्शक—इस यन्त्र से दूर की वस्तुओं का प्रतिबिम्ब बहुत बड़ा और स्पष्ट देख पड़ता है। इसका सिद्धान्त संक्षेप में यह है :—

पीतल की नलिका के एक सिरे पर ऐसा ताल रहता है जिससे दूर की वस्तु का प्रतिबिम्ब उसकी नाभी पर या इसके पास ही बनता है। इस प्रतिबिम्ब के पास

१. अत्र दशभिः शुल्बस्य पलैरित्यादि यद् घटी लक्षणम् कैश्चित् कृतं तद्युक्ति शून्यं दुर्घटं चेत्ये तदुपेक्षितम्। (गोलाध्याय, यन्त्राध्याय श्लोक ८ की व्याख्या)।

ही दूसरे सिरे पर एक छोटा ताल होता है जिससे यह प्रतिविम्ब वड़ा होकर दिखाई पड़ता है। यह छोटा ताल एक दूसरी नलिका के सिरे पर जड़ा रहता है जो बड़ी नलिका में खिसक सकती है। वड़ा ताल वस्तु की ओर रहता है इसलिये इसका नाम 'वस्तु ताल' और छोटा ताल देखनेवाले के नेत्र की ओर रहता है इसलिये इसे 'नेत्र ताल' कहते हैं। माउन्ट विल्सन के वेधालय के दूरदर्शक के वस्तु ताल का व्यास १०० इंच अथवा ८ फुट ४ इंच हैं। दस वर्ष से एक ऐसा ताल बनाया जा रहा है जिसका व्यास २०० इंच का होगा। इसकी मोटाई २५ इंच की है और तोल ३३००० पौंड अथवा ४०२ मन से कुछ ऊपर। इस ताल से जो प्रतिविम्ब वनेगा वह दस लाख गुना वढ़ाया जा सकता है। चन्द्रमा यहाँ से २५००० मील दूर है परन्तु इस ताल से देखने पर वह ऐसा जान पड़ेगा मानो केवल २० मील की दूरी पर है। यह ताल जिस नली में जड़ा जायगा उसकी लम्वाई ५५ फुट और तोल २५०००० पौंड अथवा ३०४९ मन[१] है।

यदि यह यंत्र इस प्रकार स्थिर किया जाय कि यह पूर्व-पच्छिम दिशा में स्थापित सम अक्ष पर यामोत्तर वृत्त के तल में घूमे तो इसका नाम यामोत्तर यंत्र हो जाता है। इससे किसी ग्रह या तारे का यामोत्तरलंघन काल, विषुवांश और क्रान्ति की नाप हो सकती है। चित्र १३७ से इस यंत्र के स्थिर करने की रीति मोटे तौर पर मालूम हो सकती है। 'पू प' अक्ष के दोनों सिरों पर दो चक्र होते हैं जिनके किनारों पर अंशों और कलाओं के चिह्न अंकित रहते हैं। दूरदर्शक को किसी ग्रह या तारे की सीध में करते समय चक्र जितना घूम जाता है उसी से उस ग्रह का



चित्र १३७

नतांश जान लिया जाता है। स्थान का अक्षांश मालूम ही रहता है। वस इन दोनों की सहायता से उस ग्रह की क्रान्ति सहज ही जानी जा सकती है।

---

१. २५ अक्टूवर १९३८ के अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' से

साधारण चापयन्त्र (अथवा सभी जगह काम देने वाली धूप-घड़ी)

चाप-यंत्र

विज्ञान भाग ४३ संख्या १ पृष्ठ १८ का ब्लाक यहाँ देना चाहिये

चाप यंत्र से समय जानने की सारणी (२५॥ अक्षांश के स्थानों के लिये जैसे काशी, प्रयाग, पटना आदि)

मास	तारीख	काल समीकरण	१२	११	१०	९	८	७	६	काल समीकरण	तारीख	मास	सूर्योदय	
				१	२	३	४	५	६				घं०	मि०
जनवरी	१	+३	४९	५१	५७	६५॥।	७६	८७॥।		–१॥	२२	दिस०	६	४८
	१०	७॥	४७॥	४९॥।	५६	६४॥।	७५।	८७		१०।	३		६	४४
	२१	११॥	४५॥	४७॥	५४।	६३।	७४	८६		१३॥	२२	नवम्बर	६	४०
	२९	१३।	४३॥	४५॥।	५२॥	६२	७३	८५		१५॥।	१३		६	३५
फरवरी	५	१४	४१॥	४३॥।	५०॥।	६०॥	७१॥।	८४		१६।	६		६	३१
	११	१४॥	३९॥	४२	४९।	५९	७०॥	८३		१६।	३१	अक्टूबर	६	२७
	१७	१४।	३७॥	४०।	४७॥।	५७॥।	६९॥	८२		१५॥	२५		६	२३॥
	२३	१३॥	३५॥	३८।	४६	५६॥	६८॥	८१		१५	१९		६	१९॥
	२८	१२॥	३३॥	३६॥	४४॥	५५।	६७।	८०।		१३॥।	१४		६	१५॥

मास	तारीख	काल समी-करण	१२	११	१०	९	८	७	६	काल समीकरण	तारीख	मास	सूर्योदय	
				१	२	३	४	५	६				घं०	मि०
मार्च	५	११॥	३१॥	३४॥।	४३	४४	६६।	७९।		१२॥	९		६	१२
	१०	१०॥	२९॥	३२॥।	४१॥	५२॥।	६५।	७८।		१०॥।	३		६	८
	१६	९॥।	२७॥	३१	४०	५१॥	६४।	८७॥		९।	२८	सितम्बर	६	४
	२१	७॥	२५॥	२९।	३८॥।	५०॥	६३।	७६॥		७॥	२३		६	०
	२६	५॥।	२३॥	२७॥	३७।	४९।	६२।	७५॥	८९	५॥।	१८		५	५६
	३१	४।	२१॥	२५॥।	३६	४८।	६१।	७४॥।	८८।	४	१३		५	५२
अप्रैल	५	२॥।	१९॥	२४।	३४॥।	४७।	६०॥	७४	८७॥	२	७		५	४८
	१०	१॥	१७॥	२२॥	३३॥	४६।	५९॥	७३	८६॥	१	२		५	४४॥
	१६	०	१५॥	२१	३२॥	४५॥	५८॥।	७२।	८५॥।	+१॥	२७	अगस्त	५	४०॥
	२२	−१॥	१३॥	१९॥	३१॥	४४॥	५८	७१॥	८४॥।	३	२२		५	३६॥
	२८	२॥	११॥	१८	३०॥	४३॥।	५७।	७०॥।	८४	४॥	१५		५	३३
मई	४	३।	९॥	१६॥।	२९॥	४३	५६॥	७०	८३	५॥	९		५	२९
	१२	३॥।	७॥	१५॥।	२८॥।	४२।	५५॥।	६९।	८२।	६।	१		५	२५
	२०	३॥।	५॥	१४॥।	२८॥।	४०॥।	५५	६८॥	८१॥	६।	२४	जुलाई	५	२०
जून	१	२॥	३॥	१४	२७॥।	४१।	५४॥	६७॥।	८०॥।	५॥	१२		५	१६
	१४	०	...	...	...	...	...	...	...					
	२१	+१॥	२	१३॥	२७।	४०॥।	५४	६७	८०				५	१२

सारणी को ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि जहाँ १२ लिखा हुआ है वह मध्याह्न काल सूचित करता है। इसके बाद वाले खाने में नीचे १ और ऊपर ११ लिखे हुए हैं। इनका अर्थ यह है कि सूर्य का नतांश ११ बजे जितना होता है उतना ही एक बजे होता है। परन्तु मध्याह्नकालिक नतांश से इनमें अधिक अन्तर नहीं रहता। जनवरी और दिसम्बर में तो यह अन्तर सवा दो अंश से अधिक नहीं होता। फरवरी और अक्टूबर में यह २॥ से अंश तक हो जाता है। मार्च और सितम्बर में ४। के लगभग हो जाता है। अप्रैल और अगस्त में ६॥ अंश और मई, जून, जुलाई, अगस्त में इससे भी अधिक हो जाता है। इसलिये इस धूप घड़ी से जाड़े के दिनों में ११ बजे से १ बजे तक का समय बहुत शुद्धता के साथ नहीं जाना जा सकता।

एक बजे से २ बजे तक या १० बजे से ११ बजे तक का समय सुगमता से जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कालों में समय का ज्ञान बहुत ही सूक्ष्मता के साथ किया जा सकता है।

काल-समीकरण—धूप धड़ी से जो समय आता है वह शुद्ध स्थानीय काल होता है। तार घर की घड़ी से जा समय जाना जाता है वह इससे भिन्न होता है। स्थानीय-काल से तार घर की घड़ी का समय जानने के लिये स्थानीय-काल में २ संस्कार करने पड़ते हैं। एक को काल-समीकरण और दूसरे को देशान्तर-संस्कार कहते हैं। काल-समीकरण पहली जनवरी से १६ अप्रैल तक धनात्मक होता है, इसके बाद १४ जून तक वह ऋणात्मक रहता है। १४ जून के बाद फिर धनात्मक हो जाता है और अगस्त तक ऐसा ही रहता है। सितम्बर से दिसम्बर तक प्रायः ऋणात्मक रहता है। जब धनात्मक रहता है तब धूप घड़ी के समय में इसे जोड़ना पड़ता है और जब ऋणात्मक होता है तब घटाना पड़ता है। यह संस्कार करने पर शुद्ध स्थानीय-काल मध्यम स्थानीय काल के समान हो जाता है।

देशान्तर संस्कार—मध्यम-स्थानीय काल जान लेने के बाद यदि अपना स्थान ८२॥ अंश की देशान्तर रेखा से १ अंश पूर्व हुआ तो ४ मिनट, २ अंश पूर्व हुआ तो आठ मिनट और दस अंश पूर्व हुआ तो ४० मिनट घटाना पड़ता है। परन्तु यदि अपना स्थान ८२॥ अंश की देशान्तर रेखा से पश्चिम हुआ तो उसी हिसाब से जोड़ना पड़ता है। ऐसा करने से जो समय आता है वही तारघर या रेलघड़ी का समय होता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त-काल—सारणी में सूर्योदय काल भी घण्टा मिनटों में दिया हुआ है। यदि सूर्योदय काल को १२ घंटे से घटा दिया जाय तो सूर्यास्त काल आ जायेगा। यह वह समय है जिस समय सूर्य के बिम्ब का केन्द्र क्षितिज पर

गणित के अनुसार आना चाहिये। परन्तु वास्तव में प्रकाश-वर्तन के कारण सूर्य का विम्ब क्षितिज के नीचे रहते हुए भी दिखाई पड़ने लगता है। इस वर्तन के कारण सूर्योदय दिये हुये समय से प्रायः २॥ मिनट पहले और सूर्यास्त २॥ मिनट बाद होता है।

सूर्य का विम्ब भी विन्दु के समान नहीं है इसलिये उसके ऊपरवाला किनारा प्राय: एक मिनट पहले उदय हो जाता है और १ मिनट बाद अस्त होता है। इसलिये सूर्योदय काल में ३॥ मिनट घटा देने से वह समय आ जायगा जिस समय सूर्य विम्ब का ऊपर वाला किनारा देख पड़ने लगता है। इसी प्रकार सूर्यास्त काल में ३॥ मिनट जोड़ देने से यह समय आ जायगा जिस समय सूर्य का पूरा विम्ब छिप जाता है। परन्तु यह समय स्थान का स्पष्ट-काल है। रेल घड़ी का समय जानने के लिये काल-समीकरण और देशान्तर-संस्कार भी करना चाहिये। समीकरण को देखने से पता चलता है कि दो तारीखों में सूर्योदय काल एक ही होता है। उदाहरण के लिये १० जनवरी और ३ दिसम्बर को सूर्योदय ६ बजकर ४४ मिनट पर इलाहाबाद में या २५॥ अक्षांश के स्थानों में सब जगह होता है। परन्तु इन तारीखों में सूर्योदय के समय रेल की घड़ी में भिन्नता दीख पड़ती है। कारण स्पष्ट है। ३ दिसम्बर को काल समीकरण १०। मिनट घटाना पड़ता है। और १० जनवरी को ७॥ मिनट जोड़ना पड़ता है। अन्य संस्कार दोनों में समान होते हैं। उदाहरण के लिये इन दो तारीखों का सूर्योदय काल रेल की घड़ी से जो आता है, वह नीचे बतलाया जाता है—

	३ दिसम्बर	१० जनवरी
स्पष्ट सूर्योदय काल	६ घं० ४४ मि०	६ घं० ४४ मि०
वर्तन-संस्कार	—२॥ मि०	—२॥
काल समीकरण संस्कार	—१०।"	+७॥
देशान्तर संस्कार (इलाहाबाद के लिये)	+२"	+२
रेल की घड़ी से सूर्योदय काल	६ घं० ३३।मि०	६ घं० ५१ मि०

यदि सूर्य विम्ब के ऊपरी किनारे के उदय का समय जानना हो तो १ मि० कम कर देना चाहिये। इन तारीखों में रेल घड़ी से सूर्यास्त-काल जानने के स्पष्ट सूर्योदय काल को १२ घंटे से घटाने पर ५ घंटा १६ मिनट होता है। इसमें वर्तन, काल-समीकरण और देशान्तर-संस्करण इस प्रकार करना चाहिये।

	३ दिसम्बर	१० जनवरी
स्पष्ट सूर्यास्त	५ घं० १६ मि०	५ घं० १६ मिनट
वर्तन-संस्कार	+२॥ मि०	+२॥ मि०

काल-समीकरण	−१०"	+७॥ मि०
देशान्तर	+२ मि०	+२ "
रेल घड़ी का समय	५ घं० १० मि०	५ घंटा २८ मि०

टिप्पणी—गणित सिद्ध सूर्योदय काल में वर्तन-संस्कार घटाना और सूर्यास्त काल में जोड़ना चाहिये।

सूर्य का नतांश नापकर समय जानना—

उदाहरण १—१७ फरवरी को मध्याह्न के पहले सूर्य का नतांश ५० है। समय क्या है? इस तारीख को १० बजे का नतांश ४७॥ और ९ बजे का ५७॥ है इसलिये ९ बजे और १० बजे के बीच सूर्य का नतांश ५० होगा। यह भी प्रगट है कि ९ से १० बजे तक नतांश १० अंश कम होता है। इसलिये इस घंटे में नतांश १ घंटे में १० अंश की दर से घट रहा है अर्थात् १ अंश ६ मिनट में घटता है। ५७॥ से ५० तक ७॥ अंश होते हैं। इसलिये ७॥ अंश की कमी ६×७॥ मिनट अथवा ४६॥ मि० में होती है। इसलिये स्पष्ट स्थानीय काल ९ बजकर ४६॥ मिनट हुआ। इस दिन काल-समीकरण +१४। मिनट है। इसलिये यह संस्कार देने पर मध्यम स्थानीय काल ९ घं० ४६॥ मिनट+१४। मिनट=१० घण्टा १ मिनट हुआ। यदि स्थान इलाहाबाद है तो उसमें २ मिनट और जोड़ना चाहिये। इस प्रकार रेल का समय १० घंटा ३ मिनट हुआ। यदि स्थान काशी हो तो दस घंटा १ मिनट से २ मिनट घटाना चाहिये, क्योंकि काशी २ मिनट पूर्व है। इसलिये काशी में इस तारीख को जिस समय सूर्य का नतांश ५० होगा उस समय ९ बजकर ५९ मिनट हुआ होगा।

उदाहरण २—२३ मार्च को पटना नगर में दोपहर के बाद सूर्य का नतांश ७४ अंश है। इस समय रेल की घड़ी में क्या बजा है?

सारणी में २३ मार्च कहीं नहीं है। उसमें तो मार्च की २१ और २६ तारीखों के नतांश और नतकाल दिये हुए हैं। २१ मार्च को ४ बजे का नतांश ६३। और ५ बजे का ७६॥ है। २६ मार्च को ४ बजे का नतांश ६२। और ४ बजे का ७५॥। है। ५ दिन में ४ बजे के नतांश में १ अंश की कमी पड़ती है और ४ बजे के नतांश में पौन अंश की। इसलिये २ दिन में चार बजे के नतांश में लगभग आधे अंश की कमी पड़ेगी और पाँच बजे के नतांश में लगभग चौथाई अंश की। इसलिये २३ ता० को ४ बजे का नतांश ६२॥ और ५ बजे का नतांश ७६। होंगे। इन दोनों का अन्तर हुआ १३॥ अंश। यह वृद्धि १ घंटे में होती है। इसलिये नतांश के बढ़ने की गति लगभग ४॥ मिनट प्रति अंश है। परन्तु ७४ नतांश का समय जानना है

जो ७६। से २। अंश कम है। ४।। मिनट प्रति अंश की दर से २। अंश लगभग १० मिनट में पूरा होगा। इसलिये स्थानीय स्पष्ट काल ५ बजने में १० मिनट है अर्थात् ४ बजकर ५० मिनट हुआ है। यही पटने की धूप-घड़ी का समय है।

अब देखना चाहिये कि इस दिन का काल-समीकरण क्या है। २१ मार्च का काल-समीकरण ७।। मिनट और २६ तारीख का ५।।। है इसलिये ५ दिन में काल-समीकरण में १।।। मिनट की कमी हुई, और २ दिन में पौन मिनट की। इसलिये २३ मार्च को काल समीकरण ६।।। मिनट है। यह धनात्मक है, इसलिये इसको जोड़ने पर स्थानीय मध्यमकाल ४ बजकर ५६।।। मिनट अथवा ४ बजकर ५७ मिनट हुआ।

पटने का देशान्तर ग्रीनविच से ८५ अंश ३० कला के लगभग है जो भारतवर्ष के प्रधान देशान्तर ८२° ३०′ से ३ अंश पूर्व है। इसलिये पटने का देशान्तर-काल १२ मि० पूर्व हुआ। उपर्युक्त समय से १२ मि० घटाने पर आया ४ घंटा ४५ मिनट। यही रेल-घड़ी का का समय हुआ।

किसी स्थान का अक्षांश जानना—किसी सारणी से इष्ट दिन का मध्याह्नकालिक (१२ बजे का) नतांश जान लीजिये। फिर उसी सारणी में देखिये कि २१ मार्च का मध्याह्नकालिक नतांश कितना है। दोनों का अन्तर जान लीजिये। यही उस दिन की सूर्य की क्रान्ति है। अब अपने स्थान का मध्याह्नकालिक नतांश नतांशदर्पण से देख लीजिये। यदि क्रान्ति उत्तर हो तो इस नतांश में जोड़ने से और दक्षिण हो तो घटाने से उस स्थान का अक्षांश आ जावेगा।

उदाहरण—१७ फरवरी को रायबरेली का मध्याह्नकालिक नतांश ३८।। है। सारणी में १७ फरवरी का मध्याह्नकालिक नतांश ३७।। है, और २१ मार्च का २५।।; इन दोनों नतांशों का अन्तर हुआ १२. इसलिये इस दिन की सूर्य की क्रान्ति हुई १२° दक्षिण। इस क्रान्ति को ३८।। से घटाने पर आता है २६।।, जो रायबरेली का अक्षांश हुआ। यह यथार्थ में २६। है। इसलिये इसमें चौथाई अंश की अशुद्धि है।

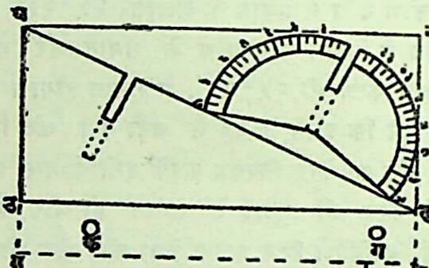
जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने ज्योतिष शास्त्र का उचित रीति से अध्ययन करने के लिए पहले दिल्ली में, फिर जयपुर, मथुरा, काशी और उज्जैन में ईसा को १८वीं शताब्दी के पहले चरण में अथवा विक्रम की उसी शताब्दी के चौथे चरण में वेधालय बनवाये। प्रत्येक वेधालय में सात आठ यंत्र प्रायः एक ही ढंग के परन्तु भिन्न भिन्न आकार के अब भी दीख पड़ते हैं। उनके नाम यह हैं :—

१—सम्राट यन्त्र, २—षष्टांश यन्त्र, ३—राशिवलय यन्त्र, ४—जयप्रकाश

यन्त्र, ५—कपाल यन्त्र, ६—राम यन्त्र, ७—दिगंश यन्त्र, ८—नाडीवलय यंत्र, ९—दक्षिणोत्तरभित्ति यन्त्र, १०—उन्नतांश यन्त्र, ११—चक्र यन्त्र, १२—क्रान्तिवृत्त यन्त्र।

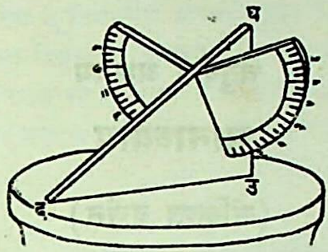
इन यन्त्रों की विशेष चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ नहीं है। इनसे प्रकट होता है कि प्राचीन काल में हमारे राजे महाराजे ज्योतिष सम्बन्धी खोज के लिये कैसा परिश्रम करते थे और कितना रुपया खर्च करते थे। इस अध्याय को एक साधारण धूप घड़ी के बनाने की रीति लिखकर समाप्त किया जायगा। ऐसी धूप घड़ी के लिये पीतल की चद्दर जिसकी मुटाई $\frac{1}{16}$ इंच के लगभग, लम्बाई १५ से २० इंच तक और चौड़ाई दस या वारह इञ्च हो तो काम चल सकता है। इस चद्दर से एक समकोण त्रिभुज ऐसा काट लेना चाहिये जिसकी लम्बी भुज पर जो कोण बने वह उस स्थान के अक्षांश के समान हो जहाँ धूप-घड़ी स्थापित करना हो। इसी प्रकार का एक समकोण त्रिभुज वची हुई चद्दर में भी बन जायगा। मान लीजिये त थ न ध पीतल की चद्दर का चौकोर टुकड़ा है। इससे द ध न एक समकोण त्रिभुज ऐसा काट लिया जिसका कोण द ध न प्रयाग के अक्षांश २५°२५′ के समान है। वचा हुआ टुकड़ा त थ द ध है जिसमें द से त थ के समानान्तर द उ रेखा खींच दी जाय तो इसका उ द ध कोण भी २५°२५′, के समान होगा। अब द ध न टुकड़े को लेकर यह देखना चाहिये कि इसमें से वड़े से बड़ा वृत्त खंड किस प्रकार काटा जा सकता है। ऐसे वृत्त खंड का केन्द्र निश्चय करके इसी के पास दो समानान्तर रेखाएं जिनके बीच की दूरी चद्दर की मुटाई के समान हो और जो द ध भुज पर लम्ब बनाती हों खींच लेनी चाहिये। फिर प्रत्येक रेखा की नोक को केन्द्र मान कर दो समान धनु खींच लेने चाहिये। इन धनुओं के केन्द्र पर का कोण ९० अंश से कम न हो और १०५ अंश से अधिक न हो क्योंकि प्रयाग में दिनमान १४ घंटे से अधिक नहीं होता। इस वृत्त खंड के किनारों को पहले पन्द्रह-पन्द्रह अंकों के अंतर पर विभाजित करना चाहिये फिर इन भागों को तीन-तीन या चार-चार समान भागों में बांटना चाहिये (चित्र में तीन ही तीन भाग दिखलाये गये हैं)। पन्द्रह-पन्द्रह अंश-वाले भाग घंटा वतलावेंगे और यदि प्रत्येक घंटे में तीन-तीन भाग हों तो हर एक से २० मिनट और चार-चार भाग हो तो हर एक से पन्द्रह मिनट का ज्ञान हो सकता है। चित्र में इससे छोटे-छोटे भाग नहीं दिखलाये जा सके परन्तु यथार्थ में प्रत्येक चौथे भाग के भी तीन-तीन समान भाग किये जा सकते हैं जिनसे पाँच मिनट का अन्तर जाना जा सकता है। वलिया और रायवरेली के गवर्नमेंट हाई स्कूलों में ऐसी ही धूप-घड़ी स्थापित की गयी हैं। वलिया की धूप-घड़ी को तो नवीं कक्षा के एक विद्यार्थी ने ही इस लेखक की देख-रेख में तैयार की थी परन्तु रायवरेली की धूप-घड़ी एक मिस्त्री से बनवायी गयी थी।

चित्र १३६ को ध्यान से देखने पर यह बातें समझ में आ जायँगी। वृत्त खंड के दो समानान्तर त्रिज्याओं के बीच के आधे भाग को जो परिधि की ओर है काट कर निकाल देना चाहिये और द ध भुज पर लम्ब बनाती हुई दो समानान्तर रेखाएँ इस प्रकार खींचनी चाहिये कि दोनों के बीच का अंतर चद्दर की मुटाई के समान हो। इन्हीं रेखाओं के बीच के उतने हिस्से को निकाल देना चाहिये जिसकी लम्बाई वृत्त खंड के उस भाग के बराबर हो जो कटी हुई रेखाओं से प्रकट किया गया है। अब इस वृत्त खंड को द ध भुज पर इस प्रकार जोड़ देना चाहिये कि वृत्त खंड का केन्द्र द ध भुज पर आ जाय और इसका खुला हुआ भाग त्रिभुज के उस भाग पर बैठ जाय जो कटी हुई रेखाओं से प्रकट किया गया है। ऐसा करने पर इन दोनों का आकार चित्र १४० के उस भाग के समान हो जायगा जो खम्भे पर दिखलाया गया है।



चित्र १३६

इस धूप घड़ी को ऐसे स्थान पर स्थापित करना चाहिये जहाँ धूप दिन भर रहती हो, घर या पेड़ की छाया कम पड़े तो अच्छा है। चार साढ़े चार फुट ऊंचा पक्का खम्भा बनवा कर उस पर यह इस प्रकार स्थिर करना चाहिये कि इसका त थ द उ भाग खम्भे की गच के नीचे हो, द उ ठीक दक्षिण-उत्तर रेखा पर हो, द उ ध त्रिभुज का तल ठीक सीधा खड़ा हो पूरब या पच्छिम किसी तरफ झुका न हो। ऐसी दशा में द ध किनारा ठीक आकाशीय ध्रुव की दिशा में रहेगा। यह खम्भे में अच्छी तरह जकड़ा रहना चाहिये, इसलिये यह अच्छा होगा कि क, ग, स्थानों पर छेद करके इनमें दो लोहे की छड़ें एक-एक हाथ लम्बी जड़ दी जायँ जिनके दूसरे किनारे दो-दो इञ्च पर झुके रहें। इनके द्वारा यह धूप घड़ी खम्भे में डेढ़ फुट की गहराई तक जकड़ी रहेगी (देखो चित्र १४०)।



चित्र १४०

इस घड़ी का समय भी स्थानीय काल के समान होता है। रेलवे टाइम जानने के लिये काल समीकरण और देशान्तर संस्कार उसी प्रकार करना चाहिये जैसा पहले बतलाया गया है।

इस प्रकार ज्योतिषोपनिषदध्याय नामक १३वें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

चतुर्दश अध्याय

मानाध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-२—मानों की संख्या और व्यवहार। श्लोक ३-११—सौर मान से अहोरात्र, षडशीतिमुख, अयन, विषुव संक्रान्तियाँ; संक्रान्तियों के पुण्यकाल और ऋतु की गणना। श्लोक १२-१४—चान्द्रमान से तिथि, करण, विवाहादि संस्कार, व्रतोपवासादि तथा पितरों के दिन रात का निश्चय। श्लोक १५-१६—नाक्षत्र दिन तथा नक्षत्रों से चान्द्रमासों के नाम। श्लोक १७—बृहस्पति के वर्षों के नाम। श्लोक १८-१९—सावन दिन से यज्ञकाल तथा सूतक आदि का निश्चय। श्लोक २०-२१—दिव्य, प्राजापत्य तथा ब्रह्ममान। श्लोक २२-२७—उपसंहार। अन्त में बीजोपनयनाध्याय के २१ श्लोक हैं जो क्षेपक कहे जाते हैं।

नव मानों के नाम

ब्राह्मं पित्र्यं तथा दिव्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव ॥१॥

अनुवाद—ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र नव कालमान हैं।

विज्ञान भाष्य—इन शब्दों की व्याख्या आगे आनेवाले श्लोकों में ही दे दी गयी है इसलिये इस समय अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

व्यवहार में आनेवाले मान

चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौरचान्द्रार्क्ष सावनै।
बार्हस्पत्येन षष्ट्यब्दा ज्ञेया नान्यैस्तु नित्यशः ॥२॥

अनुवाद—इस श्लोक में सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन मानों का व्यवहार होता है। साठ संवत्सरों की गणना बृहस्पति मान से होती है, शेष चार मानों का काम नित्य नहीं पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इन पांच मानों की चर्चा मध्यमाधिकार में भी आ चुकी है।

सौरमान

सौरेण द्यु तिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च ।
अयनं विषुवच्चैव सङ्क्रान्तेः पुण्यकालता ॥३॥

अनुवाद—दिन रात्रि का परिमाण, षडशीतिमुख, उत्तरायण और दक्षिणायन, विषुव संक्रान्ति, तथा अन्य संक्रान्तियों का पुण्यकाल सौरमान से निश्चय किया जाता है ।

षडशीतिमुख

तुलादेः षडशीत्यंशैः षडशीतिमुखं दिनम् ।
भचतुष्टयमेवं स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु ॥४॥
षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशेऽतिमिनस्य च ।
मिथुनेऽष्टादशे भागे कन्यायां च चतुर्दशे ॥५॥

अनुवाद—(४) तुला संक्रान्ति से छियासी दिनों का षडशीति मुख क्रम से होता है । यह चार हैं और द्विस्वभाव राशियों में होते हैं । (५) धनु राशि के २६वें अंश, मीन राशि के २२वें अंश, मिथुन राशिके १८वें अंश और कन्या राशि के १४वें अंश तक ।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में दिन का अर्थ सावन दिन नहीं है, वरन् वह समय है जिसमें सूर्य एक अंश चलता है । ऐसे ३६० दिनों का एक वर्ष होता है जो सावनमानानुसार ३६५ दिन ६ घंटे से कुछ अधिक हुआ । परन्तु सूर्य की गति सदा समान नहीं होती इसलिये चारों षडशीतिमुखों के मान भी सावन दिनों में समान नहीं हैं । तुला राशि से आरंभ करके तुला और वृश्चिक राशियों के तीस-तीस अंश और धनु के २६ अंश मिलकर ८६ अंश हुए इसलिये प्रथम षडशीतिमुख धनु के २६ अंश पर समाप्त होता है । दूसरा षडशीतिमुख धनु के २७वें अंश से आरम्भ होकर मीन के २२वें अंश पर समाप्त होता है । इसी प्रकार तीसरा मिथुन के १८वें अंश पर और चौथा कन्या के १४वें अंश पर समाप्त होता है । जिन चारों राशियों में षडशीति मुखों का अंत होता है वे द्विस्वभाव की बतलायी गयी हैं जिसकी चर्चा फलित ज्योतिष में आयी है ।

किसी किसी ग्रन्थ में तिमिनस्य के स्थान में निमिषस्य पाठ है जो अशुद्ध जान पड़ता है क्योंकि निमिष का अर्थ मीन राशि नहीं है ।

पितृपक्ष

ततश्शेषे तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश ।
क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृणांदत्तमक्षयम् ॥६॥

अनुवाद—इसके उपरान्त कन्या राशि के शेष १६ दिन यज्ञकाल के समान हैं। इसमें पितरों का श्राद्धादि कर्म करने से अक्षय फल मिलता है।

विज्ञान भाष्य—इससे प्रकट होता है कि पितरों का श्राद्ध उस समय करना चाहिये जब सूर्य कन्या राशि में १५ से ३० अंश तक हो। आजकल तो पूर्णिमान्त गणना से आश्विन कृष्ण पक्ष में और अमान्त गणना से भाद्र कृष्ण पक्ष में अर्थात् चान्द्रमान के अनुसार पितृपक्ष माना जाता है।

संक्रान्तियों के नाम—

भचक्रनाभौ विषुवत्द्वितीयं समसूत्रगम्।
अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः ॥७॥
तदन्तरेषु सङ्क्रान्तिद्वितयं द्वितयं पुनः।
नैरन्तर्यात्तु सङ्क्रान्त्यो ज्ञेयं विष्णुपदीद्वयम् ॥८॥

अनुवाद—(७) भगोल के मध्य में एक ही व्यास पर दो विषुवत् संक्रान्तियाँ और उसी प्रकार दो अयन संक्रान्तियाँ कुल चार संक्रान्तियाँ होती हैं। (८) इनके बीच में दो दो संक्रान्तियाँ और होती हैं जिनमें से वह संक्रान्तियाँ जो इन चारों के बाद ही आती हैं विष्णुपदी कहलाती हैं।

विज्ञान भाष्य—चौथे श्लोक से आरम्भ करके आठवें श्लोक तक १२ संक्रान्तियों के नाम बतलाये गये हैं। जिस समय सूर्य किसी राशि में प्रवेश करता है उस समय संक्रान्ति होती है। राशियाँ बारह हैं जिनमें से चार राशियों को षडशीतिमुख कहते हैं। शेष में दो को विषुवत्, दो को अयन और चार को विष्णुपदी कहते हैं।

राशि	संक्रान्ति के नाम	ऋतुओं के नाम
१ मेष	विषुवत्	वसंत
२ वृष	विष्णुपदी	ग्रीष्म
३ मिथुन	षडशीतिमुख	,,
४ कर्क	अयन	वर्षा
५ सिंह	विष्णुपदी	,,
६ कन्या	षडशीतिमुख	शरद
७ तुला	विषुवत्	,,
८ वृश्चिक	विष्णुपदी	हेमन्त
९ धनु	षडशीतिमुख	,,
१० मकर	अयन	शिशिर

११ कुम्भ	विष्णुपदी	"
१२ मीन	षडशीतिमुख	वसंत

उत्तरायण दक्षिणायन और ऋतु—

तयोर्मकरसङ्क्रान्तेः षण्मासेषूत्तरायणम् ।
कर्क्यादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम् ।।९।।
द्विराशिमानादृतवः षड्क्ताश्शिशिरादयः ।
मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः ।।१०।।

अनुवाद—(९) सूर्य जिस समय मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय से ६ महीने तक उत्तरायण और जिस समय कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय से ६ महीने तक दक्षिणायन होता है। (१०) ऋतु दो दो राशियों को भोग करता है; मकर संक्रान्ति से शिशिर आदि ऋतु-चक्र का आरम्भ होता है; मेष संक्रान्ति से १२ सौर मासों का आरम्भ होता है जिनका एक वर्ष होता है।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में राशियों, संक्रान्तियों और ऋतुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखलाया गया है। राशियाँ स्थिर मानी गयी हैं और इनका आरम्भ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार अश्विनी के आदि विन्दु से होता है जिसके अनुसार चित्रा तारे का भोगांश १८० है। परन्तु ऋतुओं का क्रम विषुवत्-सम्पात के अनुसार चलता है जो चल है इसलिये राशि, अयन और ऋतुओं का सम्बन्ध धीरे धीरे छूट रहा है। एक समय था जब उत्तरायण का आरम्भ मकर राशि में उसी समय होता था जब सूर्य की गति भी उत्तर दिशा में आरम्भ होती थी और ६ महीने तक बराबर उत्तर की ओर बढ़ती जाती थी। इसी प्रकार दक्षिणायन का आरम्भ कर्क राशि में उस समय होता था जब सूर्य की गति दक्षिण की ओर हो जाती थी। परन्तु अब यह दोनों घटनाएँ एकसाथ नहीं होतीं, सूर्य की उत्तर की गति मकर संक्रान्ति से २३ दिन पहले ही आरम्भ हो जाती है। पाँच सौ वर्ष में यह अन्तर एक महीने के लगभग हो जायगा। इस विषय पर त्रिप्रश्नाधिकार में विशेष चर्चा की गयी है। सूर्य-सिद्धान्त का यह मत अवश्य है कि विषुव सम्पात अश्विनी के २७ अंश इधर उधर ही रहता है, इससे अधिक अन्तर नहीं होता परन्तु यह न तो आजकल के विज्ञान से सिद्ध होता है और न भास्कराचार्य आदि ने ही इसे माना था। इसके विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाये गये कृत्तिका आदि नक्षत्रों की स्थितियों से सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त का मत ठीक नहीं है (त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ २४०)।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है जिसका समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थों के ही आधार पर अच्छी तरह होता है कि उत्तरायण का आरम्भ पहले उस समय से नहीं माना

जाता था जब सूर्य की प्रवृत्ति उत्तर की ओर होती है वरन् उस समय से माना जाता था जब सूर्य विपुवत रेखा से उत्तर होकर उत्तर गोल में आ जाता है। इससे देवताओं के दिन और रात का भी समाधान अच्छी तरह हो जाता है क्योंकि देवता उत्तर ध्रुव के निवासी समझे जाते हैं और उत्तर ध्रुव पर दिन का आरम्भ अथवा सूर्योदय उसी समय होता है जब सूर्य विपुवत रेखा से उत्तर होने लगता है इसीलिये उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन उनकी रात समझी जाती है। यह युक्तियुक्त भी है। यदि भास्कराचार्य जी इस बात पर विचार करते तो उनको उत्तरायण के सम्बन्ध में यह कल्पना न करनी पड़ती।[1]

संक्रांति का पुण्यकाल

अर्कमानकलाष्षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः ।
तदर्धनाड्यस्सङ्क्रास्तेरर्वाक् पुण्यास्तथापराः ॥११॥

अनुवाद—सूर्य के विम्ब मान की कलाओं को साठ से गुणा करके उसकी दैनिक गति से भाग देने पर जो आवे उसकी आधी घड़ियाँ पहले और पीछे संक्रान्ति का पुण्यकाल होता है।

विज्ञान भाष्य—संक्रान्ति उस समय होता है जिस समय सूर्य विम्ब का केन्द्र राशि में प्रवेश करता है परन्तु सूर्य विम्ब का मान ३२ कला के लगभग है इसलिये संक्रान्ति का पुण्यकाल उस समय आरंभ होता है जब सूर्य के विम्ब का पूर्वी किनारा राशि को प्रवेश करते समय स्पर्श करता है और उस समय तक रहता है जब तक विम्ब का पच्छिमी किनारा राशि के आदि विन्दु को पार नहीं कर जाता। यह समय मोटे हिसाव से ३२ घड़ी के लगभग होता है जिसका आधा १६ घड़ी है। इस लिये संक्राति से लगभग १६ घड़ी पहले पुण्यकाल का आरंभ होता है और १६ घड़ी वाद तक रहता है। सूक्ष्म गणना के लिये श्लोकों में वतलाये हुये अनुपात से काम लेना चाहिये। संक्रान्ति काल में सूर्य की जो दैनिक गति हो उतनी गति ६० घड़ी में होती है तो सूर्य विम्ब के समान गति कितनी घड़ियों में होगी। अर्थात्

$$\text{पुण्यकाल} = \frac{\text{सूर्य विम्ब का मान} \times \text{६० घड़ी}}{\text{सूर्य की दैनिक गति}}$$

---

१. दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम् ।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत् फल कीर्तनाय तत् ॥११॥
(गोलाध्याय त्रिप्रश्नवासना)

इससे जो फल आवे उसका आधा संक्रान्तिकाल से घटाने पर पुण्यकाल का आरम्भ जाना जाता है और जोड़ने पर उसकी समाप्ति का समय निकल आता है।

चान्द्र और पितृमान

अर्काद्विनिस्सृत: प्राचीं यद्यात्यहरहश्शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथि: ॥१२॥
तिथि: करणमुद्वाहक्षौरकर्मादिसत्क्रिया:।
व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण गृह्यते ॥१३॥
त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्र: पित्र्यमहस्स्मृतम्।
निशा च मासपक्षान्ते तयोर्मध्ये विभागत: ॥१४॥

अनुवाद—(१२) चन्द्रमा सूर्य से अलग होकर जो दिन प्रति दिन पूरब की ओर बढ़ता है वही चन्द्रमान है। इस अंतर के १२ अंशों की एक तिथि होती है। (१३) तिथि, करण, विवाह, क्षौर कर्म, मुंडन आदि सब क्रियाएं तथा व्रत, उपवास, यात्रा आदि चान्द्रमान से निश्चय किये जाते हैं। (१४) तीस तिथियों का एक चान्द्रमास होता है जो पितरों का एक अहोरात्र समझा जाता है। चान्द्रमास के अंत में अर्थात् अमावस्या के अन्त में पितरों का मध्याह्न और पक्ष के अन्त अर्थात् पूर्णिमा के अन्त में पितरों की मध्यरात्रि होती है। इस प्रकार शुक्ल पक्ष की अष्टमी के आधे भाग से पितरों की रात्रि का आरम्भ और कृष्ण पक्ष की अष्टमी के आधे भाग से उनके दिन का आरम्भ होता है।

विज्ञान भाष्य—तिथि के सम्बन्ध में मध्यमाधिकार पृष्ठ ८ और स्पष्टाधिकार पृष्ठ २१७ में विशेष चर्चा की गयी है। वहीं पृष्ठ २१८ में करण के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ लिखा गया है। पितरों के मध्याह्न और मध्यरात्रि के बारे में भूगोलाध्याय पृष्ठ ७६७-६८ देखिये।

नाक्षत्रमान तथा नक्षत्रानुसार मासों के नाम—

भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।
नाक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेया: पर्वान्तयोगत: ॥१५॥
कार्तिकादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयं द्वयम्।
अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासास्त्रयस्स्मृता: ॥१६॥

अनुवाद—(१५) जितने समय में नक्षत्र चक्र का एक भ्रमण पूरा होता है उसे नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है उसी के नाम पर मासों के नाम पड़े हैं। (१६) कार्तिक आदि मासों का संयोग कृत्तिकादि

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम-संख्या सहित	पूर्णिमान्तकाल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
चैत	१४—चित्रा १५—स्वाती	हस्त +	चित्रा	चित्रा	स्वाती	चित्रा
वैशाख	१६—विशाखा १७—अनुराधा	{ विशाखा अनुराधा	विशाखा	विशाखा	अनुराधा	विशाखा
ज्येष्ठ	१८—ज्येष्ठा १९—मूल	मूल	मूल	ज्येष्ठा	मूल	ज्येष्ठा
आषाढ़	२०—पूर्वाषाढा २१—उत्तराषाढा	उत्तराषाढा	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा
श्रावण	२२—श्रवण २३—धनिष्ठा	शतभिषा	धनिष्ठा	श्रवण	धनिष्ठा	धनिष्ठा
भाद्रपद	२४—शतभिषा २५—पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद	पू० भाद्रपद	{ शतभिषा उ० भाद्रपद	उ० भाद्रपद	पूर्वाभाद्रपद

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम-संख्या सहित	पूर्णिमान्तकाल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
आश्विन	२६—उत्तराभाद्रपद २७—रेवती १—अश्विनी २—भरणी	अश्विनी	रेवती	भरणी	अश्विनी	रेवती
कार्तिक	३—कृत्तिका ४—रोहिणी	कृत्तिका	भरणी +	रोहिणी	कृत्तिका	भरणी +
मार्गशीर्ष	५—मृगशिरा ६—आर्द्रा	मृगशिरा	मृगशिरा	आर्द्रा	मृगशिरा	रोहिणी +
पौष	७—पुनर्वसु ८—पुष्य	पुष्य	पुनर्वसु	पुष्य	पुनर्वसु	पुनर्वसु
माघ	९—आश्लेखा १०—मघा	मघा	आश्लेखा	पू० फाल्गुनी +	मघा	आश्लेषा
फाल्गुन	११—पूर्वाफाल्गुनी १२—उत्तराफाल्गुनी १३—हस्त	उत्तरा फाल्गुनी	पू० फाल्गुनी	हस्त	उ० फाल्गुनी	पूर्वाफाल्गुनी

नक्षत्रों से दो दो के साथ होता है, केवल अन्तिम मास और उससे ठीक पहले का मास तथा पांचवे मासों का संयोग तीन तीन नक्षत्रों से होता है।

विज्ञान भाष्य—नाक्षत्र दिन की व्याख्या पृष्ठ ७, ३००-३०१, और ३३६ में की गयी है। चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर रखे गये हैं जिन पर चंद्रमा पूर्णिमा के दिन रहता है। इस युक्ति से तिथि, मास और नक्षत्रों का जो गठबंधन कर दिया गया है वह संसार के ज्योतिष के इतिहास में अनुपम है। इससे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में हिन्दू ज्योतिषी कितने प्रतिभावान थे और उनपर दूसरे देशों के ज्योतिष शास्त्र के नकल करने का जो अभियोग लगाया जाता है वह कितना निस्सार और पक्षपात पूर्ण है। अब सूक्ष्म गणना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि नक्षत्रों और मासों का यह परस्पर सम्बन्ध कभी-कभी छूट जाता है परन्तु यहाँ यह भी विचार करना होगा कि जो नियम तीन हजार वर्ष से अधिक समय से चला आ रहा है उसका कहीं कहीं ढीला पड़ जाना अचंभे की बात नहीं है और न नियम बनानेवालों की ही अनभिज्ञता का प्रमाण है। पृष्ठ ५५७-५८ में दी हुई सारणी से यह सहज ही जाना जा सकता है कि इस समय कितना अंतर पड़ गया है।

इस सारिणी में १६६४-६५ वि० के नीचे के नक्षत्र बंगला के विशुद्ध सिद्धान्त-पञ्जिका से लिखे गये हैं जो आधुनिक ज्योतिषशास्त्र के आधार पर बनायी जाती है, जिसमें वर्षमान् ३६५ दिन ६ घंटा ६ मिनट ६-५०४ सेकंड का होता है और चित्रा तारे का भोग ठीक १८० अंश माना गया है। शेष तीन वर्षों के नक्षत्र लखनऊ और काशी के साधारण पंचांगों से लिये गये हैं। जिन नक्षत्रों पर धन के चिह्न बने हुए हैं वही उपर्युक्त नियम से कुछ भिन्न हो गये हैं। जहाँ दो नक्षत्र एक साथ दिये हैं वे अधिमासों के सूचक हैं। इससे प्रकट है कि अब भी यह नियम अच्छी तरह काम दे रहा है।

वार्हस्पत्य वर्ष के नाम—

वैशाखादिषु कृष्णे: च योग: पञ्चदशे तिथौ।
कार्तिकादीनि वर्षेषु गुरोर्युक्तोदयास्तभात् ।।१७।।

अनुवाद—(जिस प्रकार चन्द्रमा के पूर्णिमान्त काल के नक्षत्रों के नाम से चान्द्रमासों के नाम पड़े हैं इसी प्रकार) वैशाखादि मासों के कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि के योग में वृहस्पति के अस्त और उदय होने से इसके कार्तिकादि वर्षों के नाम रखे गये हैं।

विज्ञान भाष्य—जिस समय बृहस्पति सूर्य के बहुत पास आ जाता है उस समय सूर्य के प्रकाश के कारण यह देखा नहीं जा सकता इसलिये अस्त समझा जाता है। फिर जब सूर्य से इतनी दूर हो जाता है कि देख पड़ने लगता है तब उदय समझा जाता है। (देखो उदयास्ताधिकार पृ० ६५६-५७)। यह घटना उस समय के लगभग होती है जब सूर्य और बृहस्पति की युति होती है जो लगभग ३९९ दिन या १३ मास के अंतर पर हुआ करती है। इस काल को 'वार्हस्पत्य वर्ष' कहते हैं। ऐसे वर्षों का नाम उन नक्षत्रों के अनुसार रखा जाता है जिन पर बृहस्पति के उदय या अस्त होने के समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों रहते हैं। १६ वें श्लोक में बतलाया गया है कि चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर पड़े हैं जिन पर चन्द्रमा पूर्णिमान्त काल में रहता है इसलिये यह सिद्ध है कि सूर्य इन मासों के पूर्णिमान्त नक्षत्रों से १४ वें नक्षत्र पर होता है। जैसे वैशाख मास में पूर्णिमा विशाखा या अनुराधा नक्षत्रों पर होती है तो इस मास में सूर्य विशाखा या अनुराधा के १४ वें नक्षत्र कृत्तिका या रोहिणी में रहेगा। यदि इसी समय बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो निश्चय है कि यह भी इन्हीं नक्षत्रों पर या इसके एकाध नक्षत्र आगे पीछे रहेगा और अमावस्या भी इन्हीं नक्षत्रों पर होगी, इसलिये बृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' इसी समय से आरम्भ होगा। अर्थात् वैशाख मास में यदि बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो बृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' लगेगा, ज्येष्ठ मास में उदय हो तो 'वार्हस्पत्य मार्ग शीर्ष' वर्ष लगेगा इत्यादि। चान्द्र मासों और वार्हस्पत्य वर्षों की दुविधा मिटाने के लिये दोनों में यह अंतर भी कर दिया जाता है कि वार्हस्पत्य वर्षों के नाम के पहले 'महा' लगा देते हैं। परन्तु आजकल इन कार्तिक आदि वर्षों का प्रचार नहीं है।

ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि सूर्य-सिद्धान्त का यह नियम बहुत ढीला होता है। बृहस्पति के अस्तकाल से उदय काल का अंतर एक मास के लगभग होता है जिसमें सूर्य दो नक्षत्र से अधिक हट जाता है। यह संभव है कि अस्तकाल के समय सूर्य स्वाती नक्षत्र में हो और उदय काल के समय अनुराधा में। ऐसी दशा में कौन सा वार्हस्पत्य वर्ष मानना चाहिये 'महा चैत्र' या 'महा वैशाख' ? शायद इसी दुविधा को दूर करने के लिये आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में यह नियम दिया है कि उदय काल में बृहस्पति जिस नक्षत्र पर हो उसी के नाम से बृहस्पति के वर्ष का नाम रखना चाहिये[1]। वराहमिहिर ने इन वर्षों के भिन्न-भिन्न फलों की चर्चा की है।

---

१. नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपति मन्त्री।
तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मास क्रमेणैव ॥१॥
वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि।
क्रमशस्त्रिभंतु पञ्चममुपांत्यमंत्य च यद्वर्षम ॥२॥ (गुरुचाराध्याय)

वृहस्पति का वर्ष दूसरे प्रकार का भी होता है जिसे सम्वत्सर कहते हैं (मध्यमाधिकार श्लोक ५५ और उसका भाष्य)। पंचांगों में इन्हीं संवत्सरों की चर्चा रहती है। संकल्प के मंत्रों में तो यह प्रतिदिन काम में आते हैं। ऐसे ६० संवत्सरों का एक चक्र होता है। इनके सिवा ५ संवत्सरों का एक चक्र और होता है जिनके नाम क्रमानुसार यह हैं—(१) संवत्सर, (२) परिवत्सर, (३) इदावत्सर, (४) अनुवत्सर, (५) इद्वत्सर। इनकी चर्चा वेदाङ्ग ज्योतिष तथा वृहत्संहिता में है जहाँ इनके फल भी बतलाये गये हैं।

सावनमान—

उदयादुदयं भानोः सावनं तत्प्रकीर्त्यते।
सावनानि स्युरेतानि यज्ञकालविधिस्तु तैः ॥१८॥
सूतकादि परिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा।
मध्यमाग्रह भुक्तिश्च सावनेन प्रकीर्त्यते ॥१९॥

अनुवाद—(१८) सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय के बीच के समय को सावन दिन कहते हैं। सावन दिनों से यज्ञ करने के समय का विधान किया जाता है। (१९) जन्म का सूतक और चाद्रांयण आदि व्रत की सीमा, दिन, मास और वर्ष के स्वामियों का निश्चय, ग्रहों की मध्यम गति की गणना सावन दिनों से ही की जाती है।

विज्ञान भाष्य—इस विषय पर मध्यमाधिकार में अच्छी तरह विचार किया गया है। सावन दिनों में जिन जिन कार्यों के करने की अवधि निश्चित की जाती है वे यहाँ गिनाये गये हैं। जिस घर में सन्तान उत्पन्न होती है, अथवा जिस घर में किसी की मृत्यु होती है वह घर दस, बारह या पन्द्रह दिनों के लिये अपवित्र समझा जाता है। यही सूतक है जिसकी अवधि सावन दिनों के अनुसार निश्चय की जाती है।

दिव्यमान

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
यत्प्रोक्तं तद्भवेद्दिव्यं भानोर्भगणपूरणात् ॥२०॥

अनुवाद—देवताओं और असुरों का जो परस्पर विरोधी अहोरात्र बतलाया गया है वही दिव्यमान है। और सूर्य के एक भगण पूरा होने का समय है।

विज्ञान भाष्य—इसकी चर्चा विस्तार के साथ भूगोलाध्याय श्लोक ४७-५० के भाष्य में की गयी है।

प्राजापत्य तथा ब्राह्ममान

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम् ।
न तत्र द्युनिशोश्छेदः ब्राह्मं कल्पं प्रकीर्तितम् ॥२१॥

अनुवाद– मन्वन्तर की व्यवस्था प्राजापत्य मान का उदाहरण है जहाँ दिन और रात का कोई भेद नहीं है। कल्प ब्राह्ममान कहलाता है ।

विज्ञान भाष्य—कल्प, मन्वन्तर आदि की व्याख्या मध्यमाधिकार के श्लोक १८-२० और उसके विज्ञान-भाष्य में की गयी है ।

माहात्म्य

एतत् ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतम् ।
ब्रह्मतत्परमं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२२॥
दिव्यं चार्क्षं ग्रहाणाञ्च दर्शित ज्ञानमुत्तमम् ।
विज्ञायार्कादि लोकस्य स्थानं प्राप्नोति तादृशम् ॥२३॥

अनुवाद—(२२) तुझसे यह दूसरा खंड बतलाया गया जो रहस्यमय और बड़ा ही अद्भुत है, यह ब्रह्म रूप है, उत्कृष्ट है, पवित्र है और सब पाप का नाश करने वाला है । (२३) आकाशीय, नाक्षत्र और ग्रहों का उत्तम ज्ञान दिखलाया गया जिसको अच्छी तरह जान कर मनुष्य सूर्यादि लोकों में वैसा ही स्थान प्राप्त कर लेता है ।

विज्ञान भाष्य—सूर्य-सिद्धान्त का पूर्वार्ध पाताधिकार के साथ समाप्त हो गया था जिसका उपसंहार उसके अन्तिम श्लोक में कर दिया गया था । उसके उपरान्त भूगोलाध्याय के आरम्भ में मयासुर के प्रश्न करने पर उत्तरार्ध का आरम्भ किया गया था जो यहाँ आकर समाप्त होता है इसलिये यहाँ इस खंड का भी उपसंहार कर दिया गया ।

उपसंहार

इत्युक्त्वा मयमामन्त्र्य सम्यक्तेनापि पूजितः ।
दिवमुद्गत्य सूर्यांशः प्रविवेश स्वमण्डलम् ॥२४॥
मयोऽथ दिव्यं तज्ज्ञानं ज्ञात्वा साक्षाद्विवस्वतः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने निर्धूतकल्मषम् ॥२५॥
ज्ञात्वा तमृषयश्चाथ सूर्यलब्धवरं मयम् ।
परिवव्रुरुपेत्याथो ज्ञानं पप्रच्छुरादरात् ॥२६॥

स तेभ्यः प्रददौ प्रीतो ग्रहाणां चरितं महत् ।
अत्यद्भुततमं लोके रहस्यं ब्रह्मसम्मितम् ।।२७।।

अनुवाद—(२४) यह कह कर सूर्यांश पुरुष मय से विदा होकर और उससे अच्छी तरह पूजित होकर स्वर्ग को जाकर अपने मण्डल में घुस गये। (२५) तब मयासुर सूर्य ने साक्षात् भगवान् से इस दिव्य ज्ञान को प्राप्त करके अपने को पाप रहित और कृतकृत्य माना। (२६) तब ऋषियों ने यह जान कर कि मय को सूर्य भगवान से यह बरदान मिला उसके पास आये और घेर कर आदर के साथ पूछा। (२७) इस पर उसने प्रेम के साथ ग्रहों के इस महान् चरित्र को जो इस लोक में अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करने-वाला, रहस्य और ब्रह्मज्ञान के समान है उनको बतलाया।

विज्ञान भाष्य—इससे स्पष्ट होता है कि यह सूर्य-सिद्धान्त नामक ज्योतिष ग्रन्थ ऋषियों को मयासुर से मिला जिसने तपस्या करके यह ज्ञान सूर्य भगवान् अथवा सूर्यांश पुरुष से प्राप्त किया था। इससे कुछ विद्वान यह परिणाम निकालते हैं कि यह ग्रन्थ यवन ज्योतिषियों से प्राप्त किया गया था। इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचार न करके भूमिका में विस्तारपूर्वक लिखा जायगा।

इति सूर्य-सिद्धान्ते मानाध्यायः

किसी-किसी ग्रन्थ में वीजोपनयनाध्याय नामक २१ श्लोकों का एक छोटा अध्याय और लिखा मिलता है जिस पर टीकाकारों ने यह समझ कर टीका नहीं की है कि ग्रन्थ निर्माण-काल में वीज-संस्कार की आवश्यकता नहीं पड़ सकती इसलिये यह अध्याय पीछे से जोड़ा गया है। मेरी लघु सम्मति में यह सम्भव है कि अब तक जो कुछ लिखा गया है वह इसी रूप में सूर्यांश पुरुष से मयासुर को मिला हो परन्तु उसके बाद मयासुर ने कई वर्ष तक जीवित रह कर अपने अनुभव से कुछ अन्तर पाया होगा जिसके अनुसार उसने वीजोपनयनाध्याय अन्त में जोड़ दिया। अथवा मयासुर के बाद किसी अन्य ज्योतिषी ने ही इसे बढ़ाया होगा। भूमिका में इस पर भी प्रकाश डालने का यत्न किया जायगा। इस समय मैं भी यह अध्याय जोड़ देने की धृष्टता करता हूँ।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा
तद्वद्वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।।१।।
न देयं तत् कृतघ्नाय वेदविप्लवकाय च।
अर्थलुब्धाय मूर्खाय साहङ्काराय पापिने ।।२।।
एवं विधाय पुत्रायाप्यदेयं सहजाय च।
दत्तेन वेद मार्गस्य समुच्छेदः कृतो भवेत् ।।३।।

व्रजेतामन्धतामिस्त्रं गुरु शिष्यौ सुदारुणम् ।
ततः शान्ताय शुचये ब्राह्मणायैव दापयेत् ॥४॥
चक्रानुपातजो मध्यो मध्यवृत्तांशजः स्फुटः ।
कालेन दृक्समो न स्यात् ततो बीजक्रियोच्यते ॥५॥
राश्यादिरिन्दुरङ्कघ्नो भक्तो नक्षत्रकक्षया ।
शेषं नक्षत्रकक्षायास्त्यजेच्छेषकयोस्तयोः ॥६॥
यदल्पं तद्भजेद्भानां कक्षया तिथिनिघ्नया ।
बीजं भागादिकं तत् स्यात् कारयेत् तद्धनं रवौ ॥७॥
त्रिगुणं शोधयेदिन्दौ जिनघ्नं भूमिजे क्षिपेत् ।
दृग्यमघ्नमृणं ज्ञोच्चे खरामघ्नं गुरावृणम् ॥८॥
ऋणं व्योमनवघ्नं स्याद्दानवेज्यचलोच्चके ।
धनं सप्ताहतं मन्दे परिधीनामथोच्यते ॥९॥
युग्मान्तोक्ताः परिधयो ये ते नित्यं परिस्फुटाः ।
ओजान्तोक्तास्तु ते ज्ञेयाः परबीजेन संस्कृताः ॥१०॥
वच्मि निर्बीजकानोजपदान्ते वृत्त भागकान् ।
सूर्येन्द्वोर्मनवो दन्ता धृतितत्वकलोनिताः ॥११॥
बाणतर्का महीजस्य सौम्यस्याचल बाहवः ।
वाक्पतेरष्टनेत्राणि व्योमशीतांशवो भृगोः ॥१२॥
शून्यर्त्तवोऽर्क पुत्रस्य बीजमेतेषु कारयेत् ।
बीजं खाग्न्युद्धृतं शोध्यं परिध्यंशेषु भास्वतः ॥१३॥
इनाप्तं योजयेदिन्दोः कुजस्याश्वहृतं क्षिपेत् ।
विदश्चन्द्रहृतं योज्यं सूरेरिन्द्रहृतं धनम् ॥१४॥
धनं भृगोर्भुवा निघ्नं रविघ्नं शोधयेच्छने ।
एवं मान्दाः परिध्यंशाः स्फुटाः स्युर्वच्मि शीघ्रकान् ॥१५॥
भौमस्याभ्रगुणाक्षीणि बुधस्याब्धि गुणेन्दवः ।
बाणाक्षा देव पूज्यस्य भार्गवस्येन्दु षड्यमाः ॥१६॥
शनिश्चन्द्राब्धयः शीघ्रा ओजान्ते बीजवर्जिताः ।
द्विघ्नं स्वं कुज भागेषु बीजं द्विघ्नमृणं विदः ॥१७॥
अत्यष्टिघ्नं धनं सूरेरिन्दुघ्नं शोधयेत्कवेः ।
चन्द्रघ्नमृणमार्कस्य स्युरेभिर्दृक्समा ग्रहाः ॥१८॥
एतद्बीजं मया ख्यातं प्रीत्या परमया तव ।
गोपनीयमिदं नित्यं नोपदेश्यं यतस्ततः ॥१९॥

परीक्षिताय शिष्याय गुरुभक्ताय साधवे।
देयं विप्राय नान्यस्मै प्रतिकञ्चुककारिणे ॥२०॥
बीजं निःशेष सिद्धान्त रहस्यं परमं स्फुटम्।
यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणां शुभसिद्धिदम् ॥२१॥

विज्ञान भाष्य—यह २१ श्लोक मानाध्याय के २३वें श्लोक के उपरान्त और अन्तिम ४ श्लोकों के पहले मिलते हैं और कम से कम ४०० वर्ष पुराने हैं क्योंकि रंगनाथ जी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका में जो शक १५२५ की लिखी है इसका उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त में भी बीज संस्कार करने की आवश्यकता पड़ी थी और हमारे पुराने आचार्य भी ज्योतिष शास्त्र को दोषरहित और सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के पक्ष में थे, आजकल के कुछ पंडितों की तरह लकीर के फकीर नहीं थे।

इन श्लोकों की टीका इधर के किसी टीकाकार ने नहीं की है इसलिए मैं भी इसका अनुवाद करना व्यर्थ समझता हूँ क्योंकि इन पुराने बीजों से भी अब काम नहीं चल सकता। अब तो सारी गणना नवीन वेधों से स्थिर करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार सूर्य-सिद्धान्त के मानाध्याय नामक १४वें और अन्तिम अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

परिशिष्ट

सूर्य-सिद्धान्त में प्रयुक्त संख्या सूचक शब्द

०—अम्बर, ख, वियत, व्योम, शून्य

१—इन्दु, कु, निशाकर, रूप

२—अक्षि, अश्वि, अश्विन, दस्त्र, दस्त्रक, द्वि, नेत्र, यम, यमल, लोचन

३—अग्नि, गुण, ज्वलनः, त्रि, त्रिक, पावक, वह्नि, शिखि, हुताश

४—अब्धि, अर्णव, कृत, चतुः, चतुष्क, युग, वेद, समुद्र, सागर

५—अर्थ, इषु, पंच, बाण, मार्गण, विषय, शर

६—अङ्ग, ऋतु, रस, षट्, षड्

७—अग, अद्रि, नग, पर्वत, भूधर, भूमिधर, मुनि

८—अष्ट, कुञ्जर, गज, नाग, भुजङ्ग, वसु, सर्प

९—अङ्क, गो, छिद्र, नव, रन्ध्र

१०—दिक्, दिङ्

११—ईश, ईश्वर, रुद्र, शंकर

१२—अर्क, मास, सूर्य

१३—विश्व

१४—मनु

१५—तिथि

१८—धृति

१९—अतिधृति

२०—कृति, नख

२५—तत्व

३२—रद

३३—सुर

ग्रन्थ सूची

(संस्कृत, हिन्दी या उर्दू के उन ग्रन्थों, पंचांगों या पत्रों की सूची जिनकी सहायता विज्ञान भाष्य में ली गयी है।)

आर्यभटीय परमेश्वराचार्य कृत संस्कृत टीका तथा उदय नारायण सिंह की हिन्दी टीका के साथ, ब्रह्म प्रेस इटावा का सं० १९६३ वि० का छपा।

खंडखाद्यक मराठी के भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

गणक तरंगिणी म० म० सुधाकर द्विवेदी की लिखी और मेडिकल हाल प्रेस बनारस की सं० १९४९ वि० की छपी।

गीता रहस्य लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के मराठी पुस्तक का माधवराव सप्रे का हिन्दी अनुवाद जो पूना के चित्रशाला स्टीम प्रेस में सं० १९७३ वि० में छपा था।

ग्रहलाघव मल्लारि, विश्वनाथ और सुधाकर द्विवेदी की संस्कृत टीका सहित और म० म० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित।

चलनकलन म० म० सुधाकर द्विवेदी कृत।

ज्योतिर्गणित वेंकटेश बापूजी केतकर कृत शक १८१२ का छपा।

तैत्तिरीय संहिता भारतीय ज्योतिःशास्त्र के आधार पर

दामोदरीय भटतुल्य ,, ,,

धर्म-सिन्धु निर्णय सागर प्रेस का शक १८२६ का छपा

नक्षत्र कल्प भारतीय ज्योतिःशास्त्र के आधार पर।

नारद संहिता ,, ,,

निर्णय सिन्धु निर्णय सागर प्रेस का छपा।

पंचसिद्धान्तिका वराहमिहिर कृत और डाक्टर थीबो तथा म० म० सुधाकर द्विवेदी के अंग्रेजी, संस्कृत अनुवाद के साथ मेडिकल, हाल प्रेस बनारस की १८८९ ई० की छपी।

पंचांग (१९८५ वि० के केतकी, चित्रशाला प्रेस का, गुजराती का चैत्री, नवल किशोर प्रेस का, पंचांग प्रवर्तक कमेटी का, बालकृष्ण शास्त्री का, बालकृष्ण तुकाराम का, हिन्दू विश्व-विद्यालय का विश्व पंचांग, शास्त्र शुद्ध ऐक्य वर्द्धक तथा

१६८३ वि० का गणेशदत्त शर्मा का, नवल किशोर प्रेस का, भारत भूषण, विजय और विश्व पंचांग; नाविक पंचांग १६२२ तथा १६२८ ई० के)

बाराही संहिता (बृहत्संहिता) म० म० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी की हिन्दी टीका सहित नवल किशोर प्रेस में छपी।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त म० म० सुधाकर द्विवेदी की संस्कृत टीका सहित और उन्हीं की सम्पादित, मेडिकल हाल प्रेस बनारस में १६०२ ई० का छपा।

भगवत्गीता

भगवत्गीता रहस्य (देखो गीता रहस्य)

भारतीय ज्योतिःशास्त्र शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मराठी में लिखा और पूना के आर्य भूषण प्रेस का शक १८१८ में छपा।

भारत भ्रमण

मकरंदसारिणी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई की संवत् १६६० वि० की छपी।

मनुस्मृति पं० जनार्दन झा का भाषा टीका सहित कलकत्ता की हिन्दी पुस्तक एजेंसी से सं० १६८१ में प्रकाशित।

महासिद्धान्त द्वितीय आर्यभट का लिखा, म० म० सुधाकर द्विवेदी की टीका सहित चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस की १६१० ई० का छपा।

माधुरी खंड २ संख्या ४ नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित मासिक पत्रिका।

मर्यादा १६७८ और १६७६ वि० की, काशी के ज्ञान मण्डल से प्रकाशित मासिक पत्रिका।

मुहूर्त चिन्तामणि पं० रामेश्वर भट्ट की टीका सहित सं० १६७४ वि० का निर्णय सागर प्रेस का छपा।

मुहूर्त तत्व भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

रत्नमाल श्रीपति कृत ,, ,,

रत्नकोश लल्ल कृत ,, ,,

रोशनी उर्दू का वैज्ञानिक मासिक पर अप्रैल १६१६ ई० की।

लघु मानस भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

लल्ल तंत्र भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

लीलावती

विज्ञान मासिक पत्र

विशुद्ध सिद्धान्त पंजिका बंगला।

वेदाङ्ग ज्योतिष सोमाकर की टीका तथा म० म० सुधाकर द्विवेदी की टीका सहित और इन्हीं के द्वारा सम्पादित।

वृद्ध गार्गीय संहिता भा० ज्यो शा० के आधार पर।

वृहत्तिथि चिंतामणि गणक तरंगिणी के आधार पर।

शतपथ ब्राह्मण भा० ज्यो० शा० के आधार पर।

शाकल्य ब्रह्मसिद्धान्त ,, ,,

सिद्धान्ततत्वविवेक म० म० सुधाकर द्विवेदी तथा म० म० मुरलीधर शर्मा की टिप्पणियों सहित ब्रजभूषण दास कम्पनी द्वारा बनारस से १६२४ ई० में प्रकाशित।

सिद्धान्त दर्पण चन्द्रशेखर सिंह सामन्त का लिखा और प्रो० योगेशचन्द्र राय द्वारा सम्पादित और १८६६ ई० में प्रकाशित।

सिद्धान्त शिरोमणि (१) गणिताध्याय कलकत्ते के वाचस्पत्य यंत्र का १६१५ ई० का छपा और गोलाध्याय नारायण यंत्र का १८६६ का छपा, (२) म० म० बापूदेव शास्त्री की टिप्पणी सहित बनारस के मेडिकल हाल प्रेस का १८६६ ई० का छपा, (३) गोलाध्याय पं० गिरिजा प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रभा भाषा भाष्य सहित सम्पादित तथा नवल किशोर प्रेस में १६११ ई० का छपा।

सिद्धान्त शेखर सुधा वर्षिणी टीका के आधार पर।

सुन्दरी सिद्धान्त भा० ज्यो० शा० के आधार पर।

सूर्य-सिद्धान्त (१) पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी द्वारा अनुवादित और संपादित तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा सं० १६७५ वि० में प्रकाशित।

(२) गूढार्थ प्रकाशित टीका के साथ पं० बल्देव प्रसाद मिश्र द्वारा हिन्दी में अनुवादित और सम्पादित तथा वेंकटेश्वर प्रेस में १८६६ ई० में मुद्रित।

(३) पं० माधव पुरोहित की टीका सहित पं० गिरिजा प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित और नवल किशोर प्रेस में १६०४ ई० में मुद्रित।

(४) विज्ञानानन्द स्वामी द्वारा वंगला भाषा में अनुवादित और सम्पादित तथा भारत मिहिर यन्त्रालय द्वारा १६०६ ई० में मुद्रित।

(५) म० म० सुधाकर द्विवेदी की सुधावर्षिणी टीका सहित बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा १६२५ ई० में दूसरी बार मुद्रित परन्तु लेखक को १६३४ ई० में प्राप्त।

(६) पंच सिद्धान्तिका का डाक्टर थीवो और सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित।

विज्ञान-भाष्य में उपयोग किये गये

अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची

Askwith's pure Geometry.
Asutosh Mukhopadhyaya's Geometry of Conics.
Ball's Spherical Astronomy.
Berry's Short History of Astronomy.
Brennand's History of Hindu Astronomy.
Burgess Suryasiddhanta published by Calcutta University in 1935
Encyclopaedia Brittanica.
Godfray's Treatise of Astronomy.
Hall and knight's Trigonometry.
Heath's Popular Astronomy.
Heroes of Science (Astronomer).
Herschel's Outlines of Astronomy.
Imperial Gazetteer.
Kaye's Hindu Astronomy.
L.D. Swami kannu Pillai's Indian Chronology.
Leader 25th Oct. 1939.
Lockyer's Elementary Lessons on Astronomy.
Loney's Elements of Coordinate Geometry.
Loomi's Practical Astronomy.
Nautical Almanac of 1922 and 1928.
Parkers Elements of Astronomy.
Popular Hindu Astronomy Part I (by Kalidas Mukherji).
Scientific American July 1928.
Todhunter and Leathern Spherical Trigonometry.
Williamson Differential Calculus.

[illegible]

अंग्रेजी ग्रंथों की सूची

[illegible]'s pure Geometry.
[illegible] Analytical Geometry of Conics.
[illegible] Astronomy.
[illegible]'s Short History of Astronomy.
[illegible]'s History of Hindu Astronomy.
[illegible] Surya Siddhanta published by Calcutta University in 1935
Encyclopaedia Britannica.
[illegible]'s Treatise of Astronomy.
[illegible] and Knight's Trigonometry.
[illegible]'s Popular Astronomy.
Heroes of Science (Astronomers)
[illegible]'s Outlines of Astronomy
Imperial Gazetteer.
Kaye's Hindu Astronomy.
L.D. Swami Kannu Pillai's Indian Chronology.
Lancet 12th Oct. 1935.
Lockyer's Elementary Lessons on Astronomy
Loney's Elements of Coordinate Geometry.
Newcomb's Popular Astronomy.
Nautical Almanacs of 1922 and 1925.
Parker's Elements of Astronomy.
Popular Hindu Astronomy (by Kalinath Mukherji).
Scientific American July 1925.
Todhunter and Leathem's Spherical Trigonometry.
Williamson's Differential Calculus.

3.

परिचय

स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव का जन्म कार्तिक शुक्ल २ संवत् १९४४ वि० तदनुसार १८ अक्टूबर, १८८७ में ग्राम बिझौली, तहसील हँडिया, जिला इलाहाबाद में हुआ। इलाहाबाद के ही कायस्थ पाठशाला से हाईस्कूल (१९०६) तथा इन्टर परीक्षाएँ (१९०८) और म्योर कालेज से बी० एस-सी० परीक्षा (१९१०) उत्तीर्ण की। आर्थिक स्थिति ठीक न होने से नौकरी कर ली। सं० १९७९ वि० के कार्तिक मास से 'सूर्य-सिद्धान्त' का 'विज्ञानभाष्य' लिखना प्रारम्भ किया जो विज्ञान परिषद् की मासिक पत्रिका में लगातार छपता रहा। यह भाष्य सं० १९९७ वि० में समाप्त हुआ। विज्ञान परिषद् ने इसे दो भागों में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया था।

इस ग्रंथ पर उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक तथा चुन्नूलाल पुरस्कार प्राप्त हुए।

इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण समाप्त हो जाने पर पाठकों के शतत अनुरोध पर इसे पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

अपनी कोटि की 'विज्ञान भाष्य' टीका से युक्त यह ग्रंथ 'सूर्य-सिद्धान्त' प्राचीन भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि एवं हिन्दी का एक गौरव ग्रंथ है। 'सूर्य-सिद्धान्त' समस्त पुस्तकालयों एवं जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी एवं संग्रहणीय है।